हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जनवरी, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जनवरी, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जनवरी, १९३८

संपादक रामचंद्र टंडन

संपादक मंडल

१—डाक्टर ताराचंद एम० ए० डा० फिल० (आक्सन)
२—प्रोफेसर अमरनाथ झा एम० ए०
३—डाक्टर बेनीप्रसाद एम० ए० पी एच० डी० डी० एस-सी० (लन्दन)
४—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए० डी० एस-सी० (लन्दन)
५—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा एम० ए० डी० लिट्० (पेरिस)
६—श्रीयुत रामचंद्र टंडन एम० ए० एल एल० बी०

लेख-सूची

7126

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } जनवरी, १६३८ { अंक १

संत विष्णुपुरी जी और उन की 'भक्ति-रत्नावली'

[लेखक—श्रीयुत मजुलाल मजमूदार, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

तिरहुत के श्री विष्णुपुरी

अपने ग्रथ 'भक्ति-रत्नावली' मे श्री विष्णुपुरी जी अपने विषय मे केवल इतना कहते है कि वह परमहस सन्यासी थे, और तिरहुत के निवासी थे।

हमे उन का वर्णन नाभा जी के 'भक्तमाल' (१७वी सदी) मे मिलता है। नाभा जी एक पर्यटक वैष्णव साधु थे, जिन्हो ने अपनी तीर्थयात्रा मे भिन्न-भिन्न स्थलो पर एकत्र की हुई सूचना के आधार पर अपनी पुस्तक की रचना की थी।

नाभा जी और उन का 'भक्तमाल'

नाभा जी ने अपनी पुस्तक राजपूताने की हिंदी—अथवा पश्चिमी हिंदी—में लिखी। वह स्वय अधिकतर राजपूताने में रहे।

'भक्तमाल' मे १६० भक्तो की चर्चा है। उन्ही मे विष्णुपुरी जी का आ जाना स्वाभाविक है। सब भक्तो मे प्राय बीस औपाख्यानिक है, परतु शेष ऐतिहासिक है। ऐसा जान पडता है कि नाभा जी भक्तो की कथा पौराणिक कथानको से आरभ कर के काल-क्रमानुसार ही देते है। जयदेव का वर्णन आने के अनतर हमें ऐसा अनुभव होने लगता है कि अब हम दृढ ऐतिहासिक भूमि पर अवस्थित है। जयदेव के अनतर श्रीधर आते है, तदनतर बिल्वमगल और वल्लभाचार्य और उन के

बाद ही विष्णुपुरी जी की चर्चा है। विष्णुपुरी जी का नाम पद्रहवी सदी के मराठा सत ज्ञानदेव के पूर्व ही आ जाता है।

विष्णुपुरी जी के सबंध में छप्पय

'भक्तमाल' में विष्णुपुरी जी के विषय मे जो छप्पय है वह बहुत स्पष्ट है —

भगवत धर्म उतग आन धर्महि नहिं देखा।
पीतलपट तर विगत निकष ज्यों कुदन रेखा।
कृष्णकृपा कहि बेल फलित सतसग दिखायो।
कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह विरचन में गायो।
मथि महासमुद भागौत तें भक्ति-रतन-राजी रची।
कलि जीव जँजाली कारणे विष्णुपुरी बडि निधि सँची॥

विष्णुपुरी जी निस्सदेह नाभा जी से, जो कि सत्रहवी सदी मे हुए हैं, पूर्व हुए होगे। कारण यह कि भक्तमाल म बहुत आरभ म ही उन की चर्चा है और उस पुस्तक मे स्थान

विष्णुपुरी की तिथि

पाने के लिए उन की ख्याति सत्रहवी सदी में प्रतिष्ठित हो चुकी होगी।

विष्णुपुरी जी की 'भक्ति रत्नावली', जिसे सक्षप मे 'रत्नावली' भी कहते है, पद्रहवी सदी के पूर्वभाग में कृष्णदास लौरिया द्वारा अनूदित हुई। इस से यह बात स्पष्ट

विष्णुपुरी जी के ग्रंथ का बँगला अनुवाद १५वीं सदी

हो जाती है कि मूल सस्कृत ग्रंथ इस से कुछ काल पूर्व ही रचा गया होगा। अतएव विष्णुपुरी जी का समय सन् १४०० ई० के आस-पास निर्धारित किया गया है।[1]

इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति-रत्नावली' के रचनाकाल की तिथि,

विष्णुपुरी जी के ग्रंथ की रचना के लिए १५५५ शकाब्द मान्य नहीं

जो कि ग्रंथ की कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे किसी श्रीधर की 'कांतिमाला टीका के साथ प्राप्त हुई है और मूल के निम्न दो श्लोको में दी गई है, मान्य नही —

---

[1] डाक्टर जे० एन्० फर्कुहर, 'आउटलाइन अव् दि रेलिजस लिट्रेचर अव् इंडिया,' (१९२०), पृष्ठ ३०२

वाराणस्यां महेशस्य सान्निध्ये हरिमंदिरे।
भक्तिरत्नावली सिद्धा सहिता कांतिमालया ॥
महायज्ञ-शर-प्राण-शशाङ्क-गणिते शके।
फाल्गुने शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सुमंगले ॥

शक १५५५, १३५ वर्षों के जोड से सवत् १६९० वि० हो जाता है। यदि 'कांति-माला' टीका वाली 'भक्ति-रत्नावली' की यही रचना-तिथि है, और दोनो के लेखक एक ही है तो विष्णुपुरी जी के नाम के 'भक्तमाल' मे आने की कल्पना भी नही की जा सकती, क्योकि 'भक्तमाल' की रचना सवत् १६८६ वि० मे हुई थी। बाद मे यह बतलाया जायगा कि शकाब्द १५५५ श्रीधर की टीका की रचना-तिथि है।

विष्णुपुरी जी कौन थे?

यह कहा जाता है[1] कि विष्णुपुरी जी का नाम बैकुठपुरी भी था, और यह तिरहुत (तिरभुक्त) के थे, तथा मदनगोपाल के शिष्य थे। उन के रचित चार ग्रथ बताए जाते है —(१) 'भगवद्-भक्ति-रत्नावली' (२) 'भागवतामृत', (३) 'हरि-भक्ति-कल्पलता', और (४) 'वाक्य-विवरण'।

'विश्वकोष'-कार विष्णुपुरी गोस्वामी नाम के एक अन्य व्यक्ति का भी वर्णन करते है, जिन्हो ने 'विष्णु-भक्ति-रत्नावली' नाम के एक वैष्णव-काव्य की रचना की, जो उपर्युक्त रचना से भिन्न थी। परतु जान पडता है कि समनामधारी दोनो रचयिता वास्तव में एक ही है।

'भक्ति-रत्नावली' की रचना के विषय में तीन भिन्न किंवदंतियाँ

'भक्ति-रत्नावली' की रचना के सबध मे तीन भिन्न-भिन्न किंवदतिया है, और यह तीनो ही बताती है कि पुरी (पुरुषोत्तमक्षेत्र) के श्री जगन्नाथदेव जी के चरणो पर अर्पित करने के लिए वैष्णव सत विष्णुपुरी जी ने, जो कि काशी मे रहते थे, यह रचना की थी।

'विश्वकोष' में जिस घटना का उल्लेख है, और जो 'भक्तमाल' के आधार पर वर्णित है, इस प्रकार है —

---

[1] हिंदी 'विश्वकोष', जिल्द २१, पृ० ७०४

कहा जाता है, विष्णुपुरी जी, अधिकतर बनारस में रहते थे। इस पर यह

पहली किंवदंती

कथा बना ली गई है। इस में 'पुरी' शब्द पर श्लेष है, जिस से तात्पर्य विष्णुपुरी जी तथा जगन्नाथपुरी तीर्थ दोनो ही से है।

काशी मुक्तिपुरियों में से एक है। कहा जाता है कि पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) से भगवान् जगन्नाथदेव ने विष्णुपुरी के पास यह संदेश भेजा—"पुरी, मैं तुम को भलीभाँति समझ गया हूं। तुम भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करने के लिए काशी में बसे हो। और मैं झाडखंड का निवासी न तुम को भुक्ति दे सकता हूं न मुक्ति। इसी लिए मेरे पास आना तुम्हे रुचिकर नही, फिर भी मैं तुम्हे देखने की आशा करता हूं।"

भगवान् जगन्नाथदेव के इस व्यंग्य और प्रेमपूर्ण संदेश को सुन कर विष्णुपुरी ने निम्न उत्तर भेजा—"मेरे स्वामिन्, मैं भुक्ति, मुक्ति, गया, काशी, मथुरा, वृंदावन अथवा किसी और वस्तु को नही जानता। मेरे स्वामिन्, मैं आप को तथा आप की महत्ता को भी नही जानता। मैं केवल इतना जानता हूं कि जब से जगन्नाथ-कृष्ण का नाम मेरे कानों में पड़ा है, तब से मैं उस नाम की माला गले में धारण किए हुए हूं। अब जब स्वामी की प्रसन्नता पूर्वक यह आज्ञा हुई है कि मैं आप के सामने उपस्थित होऊं, तो मैं अवश्य चरणो पर उपस्थित होऊँगा।"

कुछ समय के अनंतर, विष्णुपुरी जी अपनी रचना 'विष्णुभक्ति-रत्नावली' ले कर पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) गए और जगन्नाथदेव के दर्शन कर के उन के चरणो पर उसे समर्पित किया।

भगवान् के समक्ष अर्पित होने के कारण वैष्णव भक्त-जनों के बीच विष्णुपुरी जी के ग्रंथ का मूल्य और बढ़ गया। वैष्णवों में एक दूसरी कथा भी प्रचलित है। वह यह कि

दूसरी कथा

नदिया के चैतन्यदेव और विष्णुपुरी जी की काशी में भेंट हुई, जिस समय कि चैतन्यदेव जी अपनी वृंदावन की तीर्थयात्रा से वापस आ रहे थे। यह स्वाभाविक ही था कि दोनो महात्मा एक-दूसरे को देख कर अत्यंत हर्षित होते। चैतन्यदेव विष्णुपुरी जी की विद्वत्ता से और विष्णुपुरी जी नदिया के संत के व्यक्तिगत आकर्षण तथा धार्मिक महानता से प्रभावित हुए। चैतन्यदेव बंगाल चले गए और बाद में उन्हो ने पुरी में स्थायी रूप से निवास किया।

जो किंवदंती वैष्णवो में प्रचलित है[१] वह यह है कि विष्णुपुरी का एक शिष्य यात्री के रूप में काशी से पुरी गया, और वहा पर चैतन्यदेव से मिला और अपने गुरु की ओर से वंदना निवेदन किया। पुरी से काशी के लिए प्रस्थान करते समय उस ने चैतन्यदेव से पूछा कि आप विष्णुपुरी जी के पास कोई संदेश तो न भेजेंगे। एकत्रित वैष्णवो के सामने चैतन्यदेव ने लौटते हुए यात्री से कहा कि विष्णुपुरी से कह देना कि मेरे लिए एक 'रत्नावली' भेजेंगे।

जो साधु वहा एकत्र थे, उन्हो ने चैतन्यदेव जैसे त्यागी महात्मा के मुख से इस बात को सुन कर आश्चर्य माना। परंतु किसी को उन से जिज्ञासा करने का साहस न हुआ।

कुछ समय बीता और एक दिन अचानक फिर वही काशी का यात्री आ उपस्थित हुआ। उस ने चैतन्यदेव से कहा कि "विष्णुपुरी जी ने आप के पास यह 'रत्नावली' भेजी है" और यह कह कर एक हस्तलिखित पोथी भेंट की। यही पुस्तक 'भक्ति-रत्नावली' थी।

उस वैष्णव-समाज ने, जिस ने कि चैतन्यदेव की माँग पर मन में खेद माना था, अपनी भूल को समझ लिया अब उस ने जाना कि उन के महागुरु ने केवल अपने मित्र को एक शुभ कार्य के लिए प्रेरित किया था। उस हस्तलिखित पोथी को चैतन्यदेव ने जगन्नाथ जी के चरणो पर रख दिया।

क्या विष्णुपुरी जी चैतन्य-देव के समकालीन थे?

उपर्युक्त कथा के आधार पर विष्णुपुरी जी की तिथि लगभग १५०० ई० के होगी। क्योंकि चैतन्यदेव (१४८५-१५३३) के वह समकालीन हुए। परंतु यह बात सत्य नही जान पड़ती जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

तीसरी कथा

'भक्ति-रत्नावली' की रचना-संबंधी ऊपर की दोनो ही कथाएं एक तीसरी कथा द्वारा कट जाती हैं। यह तीसरी कथा हमे 'भक्ति-रत्नावली' के किसी अज्ञात टीकाकार की 'भाषा-निबद्ध भक्ति-प्रकाशिका

---

[१] 'दि सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज', जिल्द ७ (भक्ति-रत्नावली कांतिमाला-सहित) (१९१२) भूमिका-भाग, पृ० ३

टीका' से प्राप्त होती है। यह टीका हिंदी मे दोहा, चौपाई, सोरठादि छदो में है[1]।

इस पुस्तक द्वारा 'भक्ति रत्नावली' की रचना के विषय में और ही कथा ज्ञात होती है। यद्यपि काशी और पुरी दोनो ही के नाम उस में आ गए है।

सत विष्णुपुरी के एक परम भक्त माधवदास ने एक बार उन से मोती और मणियो की अपूर्व माला माँगी थी, जिस से कि उन्हे आनद हो। उन की प्रार्थना पर विष्णुपुरी जी ने (भागवत से ले कर) भक्ति-वाक्य रत्नो की एक माला बना कर पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) में भेजी, जहा कि उन के मित्र माधवदास रहा करते थे। इस कथा के सबध में इस प्रकार लिखा है—

विष्णुपुरी के मित्रवर, माधवदास प्रवीन।
तिन मागी मनि मुक्ति की, माला सुखद नवीन॥७॥
तब श्री भगवद्-भक्ति की, रत्नावली बनाइ।
श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र महु, उन की दई पठाइ॥८॥

विष्णुपुरी जी का वैष्णव-सप्रदाय

कुछ लोग विष्णुपुरी जी का माध्व-साधु होना बताते है और कहते है कि वह चौदहवी सदी के उत्तरार्ध में जीवित थे।[2] परतु इस वक्तव्य पर पुन विचार करने की आवश्यकता है। सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज' (हिंदुओ के धार्मिक ग्रथ) सीरीज़ म जो मूल-पाठ 'भक्ति-रत्नावली' ग्रथ का दिया है वह "श्री गोपीनाथाय नम।" इस प्रकार कृष्ण के नमस्कार द्वारा आरभ होता है। मैं ने बारह भिन्न-भिन्न हस्तलिखित प्रतिया इस ग्रथ की जाँच की है। उन मे इस प्रकार की वदनाए है —

श्री राधावल्लभाय नम।
निम्बादित्याय नम।

---

[1] देखिए हस्तलिखित प्रति न० १५४८, जो कि बडोदा ओरियटल इंस्टिट्यूट में सुरक्षित है। इस प्रति के २ से १०२ पृष्ठ तक है। पहला और १०२ के अनतर के पृष्ठ लुप्त है। ग्रथ तेरहवें विरचन के केवल १२ छदो तक पहुंचा है। प्रति के प्रारंभिक तथा अतिम पृष्ठों के चित्र इस लेख के साथ दिए गए है।

[2] डाक्टर जे० एन्० फर्कुहर, 'आउटलाइन अव् दि रेलिजस लिट्रेचर अव् इडिया,' पृष्ठ० ३०२

श्रीमते नीमादित्याय नमः।

श्री राधाकृष्णाय नमः।

श्री राधावल्लभो जयति।

इन से कम से कम इस बात का पता लगता है कि यह ग्रंथ निंबार्क के अनुयायियों में, जो राधाकृष्ण की भक्ति में मन लगाते थे, बहुत प्रचलित था।

वैष्णवों का सब से महत्वपूर्ण ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' है। इस में विष्णु, उन के अवतारों तथा भक्तों के प्रति भक्ति के सिद्धांतों की विवेचना है। 'भक्ति-रत्नावली' में

'भक्ति-रत्नावली' का विषय

नवधा भक्ति के संबंध में विषय-क्रम से तेरह अध्यायों में संगृहीत 'भागवत' के सुंदरतम उद्धरण हैं। लेखक ने इन में से प्रत्येक अध्याय को विरचन (मणिमाल) कहा है और संपूर्ण का नाम-करण 'भक्ति-रत्नावली' किया है। विवेचन जनसाधारण के प्रीत्यर्थ हुआ है।

'भागवत' की रचना का प्रमुख कारण यह था कि 'महाभारत' में उस के रचयिता

'भागवत' के बालकृष्ण के प्रति नवधा भक्ति

व्यास ने भक्ति का वर्णन नहीं किया था। उस कमी की पूर्ति के लिए यह ग्रंथ रचा गया।

'हरिवंश' और 'विष्णुपुराण' में यद्यपि कृष्ण के बाल्यकाल की गोप-गोपियों के साथ वृंदावन और उस के आस-पास क्रीडा की कथाएं भी हैं, परंतु इन में कृष्ण के चरित्र का समग्ररूप से विचार हुआ है। 'भागवत' में बाद के जीवन की चर्चा नहीं के बराबर है, परंतु कृष्ण के बाल्यकाल और युवावस्था के वर्णन में संपूर्ण जोर लगा दिया गया है। यही कारण है कि समस्त वैष्णव-संप्रदाय पर और भारतवर्ष के अनेक महापुरुषों पर इस का इतना असर हुआ है।

'भागवत' की उस के पूर्वगामी साहित्य की अपेक्षा विशेषता यह है कि उस में एक नए भक्ति-सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। इसी में उस का महत्त्व है। इस विषय पर 'भागवत' के बहुत से कथन रहस्यवाद तथा भक्ति-साहित्य में प्रमुख स्थान पाने के योग्य हैं। इस अंग की परीक्षा 'भक्ति-रत्नावली' द्वारा सहज में हो सकती है।

चार प्रारंभिक श्लोकों (७,८,९,१०) में 'भक्ति-रत्नावली' के उद्देश्य, उस की

विष्णुपुरी जी का 'भक्ति-रत्नावली'-समर्थन प्रेरणा तथा मूल्य के विषय में विष्णुपुरी जी ने स्वयं लिखा है, और प्रस्तुत संग्रह की उपयोगिता वर्णित की है। अपनी रचना के विषय में लेखक का वक्तव्य होने के कारण यह श्लोक मूल्यवान् है—

दूरान्निशम्य महिमानमुपेत्य पार्श्वं—
मन्त प्रविश्य शुभभागवतामृताब्धे ॥
पश्यामि कृष्णकरुणाञ्जननिर्मलेन
हृल्लोचनेन भगवद्भजनं हि रत्नम् ॥७॥

अर्थात 'भागवत' की महिमा दूर से सुन कर मैं उस के निकट आया, और उस के अमृतरूपी सागर में प्रविष्ट हुआ। वहां मैं कृष्ण के कृपारूपी अंजन से निर्मल हुए हृदय के लोचन द्वारा भगवद्भजन रूपी रत्न को देखता हूं।

रचना के लिए प्रेरणा

तदिदमतिमहार्घं भक्तिरत्नं मुरारे—
रहमधिकं सयत्नं प्रीतये वैष्णवानाम् ॥
हृदिगतजगदीशादेशमासाद्य माद्यन्
निधिवरमिव तस्माद् वारिधेरुद्धरामि ॥८॥

अर्थात हृदय के निवासी जगदीश की आज्ञा से प्रेरित हो कर मैं बहुत यत्न के साथ वैष्णव जनों की प्रीति के लिए उस वारिधि (भागवत) से भक्ति-रूपी रत्न का उद्धार करता हूं।

संग्रह का मूल्य

कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब मूल्यवान् ग्रंथ 'भागवत' ही मौजूद है तब इस कृति की सार्थकता क्या हो सकती है? उत्तर यह है कि मूलग्रंथ हस्तामलक नहीं है, अस्तु ऐसे संग्रह की आवश्यकता हुई जो कंठस्थ[1] किया जा सके।

---

[1] संवत १८०६ की गुजराती टीका जो आठवें श्लोक के अनंतर है देखिए—
ए ग्रंथनुं प्रयोजन। श्री भागवत छते ए नवो ग्रंथ करवो पड्यो ते शुं?
ते एटला माटे। भक्तरत्नावली किहिता माला कंठनि विषि धरी होय
तो घणुं शोभे ते माटे ए ग्रंथ कर्यो छि।

कठे कृता कुलमशेषमलकरोति
वेश्मस्थिता निखिलमेव तमोपहन्ति ।।
तामुज्ज्वला गुणवती जगदीशभक्ति–
रत्नावली सुकृतिन परिशीलयंतु ।।९।।

अर्थात् कठ मे धारण करने पर (अथवा कठस्थ या याद कर लेने पर) यह माला पहनन वाले के शरीर को विभूषित करती है, घर मे रख लेने पर यह अधकार (अज्ञान) का निवारण करती है। सुकृतिजन उस उज्ज्वल गुणवती, जगदीश-भक्ति-रूपी रत्नावली को ग्रहण करे।

रचना की उपयोगिता

निखिलभागवतश्रवणालसा
बहुकथाभिरथानवकाशिन ।
अयमय मनु ताननु सार्थको
भवतु विष्णुपुरीग्रथनग्रह ।।१०।।
—प्रथम विरचनम्।

अर्थात् विष्णुपुरी द्वारा ग्रथित यह रत्नमाल उन लोगो के लिए सार्थक हो जो कथा के विस्तार अथवा अवकाश न होने के कारण समस्त 'भागवत का श्रवण करन म असमर्थ है।

लक्ष्मीपति के चरणो मे अपन प्रयास के फल को समर्पित कर के विष्णुपुरी जी

रचयिता का विनम्र निवेदन

त्रयोदश विरचन म नीच उद्धृत तीन श्लोको में अपनी रचना समाप्त करते हैं।

एव श्रीश्रीरमण भवता यत्समुत्तेजितोऽह
चाचल्ये वा सकलविषये सारनिर्धारणे वा।
आत्मप्रज्ञाविभवसदृशैस्तत्र यत्नैर्ममैतै
साक भक्तैरगतिसुगते तुष्टिमेहि त्वमेव ।।११।।
—त्रयोदश विरचनम्।

अर्थात् हे लक्ष्मीपति, आप के ही द्वारा प्रेरित हो कर, चाचल्य-वश अथवा समस्त विषय मे सत्य निर्धारण करने के लिए जैसा भी समझा जाय, मै न अपनी

२

योग्यतानुसार और भक्तों की सहायता से इस माला के गूँथने का कार्य किया है। इसे कृपा कर आप ही ग्रहण करें।

पाठकों को संबोधन

विष्णुपुरी जी इस के बाद कहते हैं कि उन का प्रयास विविध-जनों द्वारा ग्रहण किए जाने के योग्य है—

साधूनां स्वतएव सम्मतिरिह स्यादेव भक्त्यर्थिना-
मालोक्य ग्रथनश्रम च विदुषामस्मिन् भवेदादरः।
ये केचित्परकृत्युपश्रुतिपरास्तानर्थये मत्कृतिं
भूयो वीक्ष्य यदत्रवद्यमिह चेत्तत्र वासना स्यात्स्यति॥१२॥

अर्थात् भक्तियुक्त साधु-जन स्वत इस कृति का स्वागत करेंगे और मेरे रत्न-ग्रथन-संबंधी श्रम को देख कर विद्वान् लोग उस का आदर करेंगे। जो कोई दूसरे की कृति में दोष ढूंढते हैं, वे मेरी कृति को अच्छी तरह देखें और यदि उस में दोष पावें तो यदि उन की वैसी इच्छा हो तो उसे विदित करें।

रचना का भार अपने ऊपर ले कर लेखक विनम्रता-पूर्वक कहता है कि यदि उस

विनय-वचन

के उद्योग से किसी को लाभ पहुँचा तो वह अपने को कृत-कृत्य समझेगा—

एष स्यामहमल्पबुद्धि विभवोप्येकोऽपि कोऽपि ध्रुवम्।
मध्ये भक्तजनस्य मत्कृतिरियं न स्यादवज्ञास्पदम्॥
किं विद्या सरघा विमुज्ज्वलकुला किं पौरुष किं गुणा—
स्तत्किं सुंदरमादरेण रसिकैर्नापीयते तन्मधु॥१३॥

अर्थात् मैं जैसा भी हूँ—अल्पबुद्धि, अविदित और एकाकी—मेरी कृति भक्त जनों के मध्य में अनादर का पात्र न हो। मधु-मक्खियाँ विद्या, उज्ज्वल कुल, पौरुष और गुण का क्या गर्व कर सकती हैं? फिर भी क्या रसिक-जन आदर के साथ उन का सुंदर मधु पान नहीं करते?

'भक्ति-रत्नावली' का मूलपाठ, जैसा कि 'सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज' ग्रंथमाला में इलाहाबाद के पाणिनि आफिस द्वारा १९१२ में प्रकाशित हुआ है, कुछ भ्रांतियों का

'भक्ति-रत्नावली' का मूलपाठ

कारण बन गया है। प्रथम तो उस में दी हुई संस्कृत टीका, बिना संकोच के स्वयं विष्णुपुरी जी की निर्मित मान ली गई

है। दूसरे पाठ के विना कई प्रतियो से शोधे हुए छाप देने से कई स्थलो पर अशुद्धिया रह गई है।

जहा तक कि पहली बात है, अर्थात टीकाकार कौन था, यह कई हस्तलिखित प्रतियो के मिलान द्वारा अब निश्चय हो गया है। हमें चार प्रकार की 'भक्ति-रत्नावली' की हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त हुई है। एक तो वह है जिन में कि विष्णुपुरी जी की कृति का मूलपाठ मात्र है। दूसरी वह है जिन म

टीकाएं

कातिमाला' टीका है, जिस में टीकाकार श्रीधर ने स्पष्ट शब्दो में अपनी रचना की त्रुटिया के विषय में विनम्रता-पूर्वक क्षमा-याचना की है। इसी के साथ श्रीधर की रचना तिथि तथा रचना-स्थान का निर्देश इस सबध म सदेह की गुजाइश नहीं छोडता।

'कातिमाला' के अत में श्रीधर इस प्रकार लिखता है —

इत्येषा बहुयत्नत खलु कृता श्रीभक्तिरत्नावली।
तत्प्रीत्यैव तथैव सम्प्रकटिता तत् कातिमाला मया॥
अत्र श्रीधरसत्तमोक्तिलिखने न्यूनाधिक यत्त्वभूत्।
तत्त्वतु सुधियोऽर्हतस्वरचनालुब्धस्य मे चापलम्॥१॥[1]
महायज्ञ-शर-प्राण-शशाङ्क-गुणिते शके।
फाल्गुने शुक्लपक्षस्य द्वितीयाया सुमगले॥२॥
वाराणस्या महेशस्य सान्निध्ये हरिमदिरे।
भक्ति-रत्नावली सिद्धा सहिता कातिमालया॥३॥

तीसरे प्रकार की हस्तलिखित प्रतिया वे है। जिन में सस्कृत मूल के साथ-साथ हिंदी गद्य में वार्तिक दिया हुआ है। यह वार्तिक जिस प्रकार के साधारण वार्तिक होते है वैसा ही है और कदाचित् इस में

हिंदी-वार्तिक

---

[1]एक हस्तलिखित प्रति (पृष्ठ १–१६०), जिस में सस्कृत मूल के साथ हिंदी वार्तिक है, श्लोक के उत्तरार्ध का अर्थ इस प्रकार देती है —
अत्र कहत। इहा श्रीधर स्वामी की सत्तम कहते उत्तम जो उक्ति ताको जो लिखन ताके विषे जो न्यूनाधिक घटिबढि होय तत् तत्र रचना जे कर्तव्य ताके विषे लुब्ध ते चपलता ताको क्षतु कहत क्षमावान् अह कह योग्य है।

श्रीधर की कातिमाला' टीका का आधार ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार का नमूना देन के लिए एक प्रति से आरभ का भाग उद्धृत करता हू, जिस म मूल से मिलान हो सके—

श्रीमते नीमादित्याय नम । श्री राधाकृष्णाय नम ।

अथ भक्तिरत्नावली सटीक लिख्यते।

श्रीकृष्ण परमानद नत्वा कुर्वे यथामति ।
भक्तिरत्नावलीवार्तिक वृत्या सज्जनसमुखे ।।

ये मुक्तावपि। टीका। विष्णुपुरी कहत हैं। तान भक्तानपि तिन वैष्णवनिको सतत अह वदे। च पुन ता भक्तिमपि ता भक्ति को अनुदिवस अर्थये हू मागी। त ताहि भक्तप्रिय भक्त है प्रिय जाको शरण्य शरण्ये योग्य ऐसो जो हरि ताहि नित्य भजे। ते भक्त है कैसे। ये भक्ता मुक्तावपि निस्पृहा मुक्ति हू विषे स्पृहा जे वाछा ताकरि रहित। जिन भक्तनि हरिभक्ति छाडि मुक्ति हू की वाछा नाही। तिनहा सो भक्ति है। कैसी प्रतिपद प्रतिक्षण प्रोन्मीलत प्रकट होत है आनद ताको देन हारो जो भक्ति को अस्याय (?) करि श्री हरि समस्त जे ब्रह्मादिक तिनको मस्तक मणि जाको स्वेवशे कुर्वन्ति ताहि अहं वदे।[1]

भक्ति रत्नावली का नया पद्य वार्तिक जो खोज मे प्राप्त हुआ है अत्यत मूल्य वान है। परतु दुर्भाग्यवश यह हस्तलिखित प्रति, जो बडोदा ओरिएटल इस्टीटचूट में

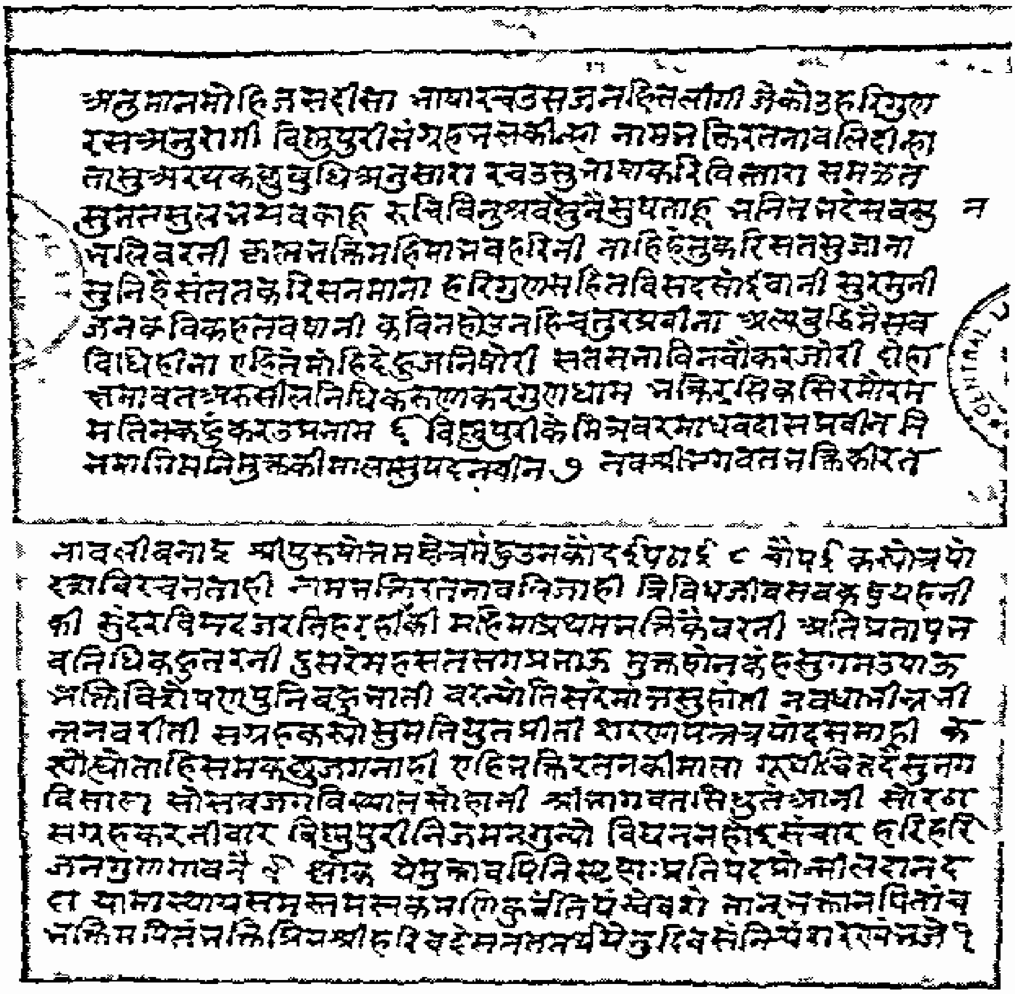
हिंदी पद्य में 'भक्ति प्रकाशिका' टीका

रक्षित है उस का प्रथम पना प्राप्त नही। इसी प्रकार अत के दो-तीन पन्ने अलब्ध है। अतएव लेखक का नाम और इस टीका की तिथि नही ज्ञात हो सकी है। इस टीका का पूरा नाम है 'भाषानिबद्ध भक्ति प्रकाशिका टीका।

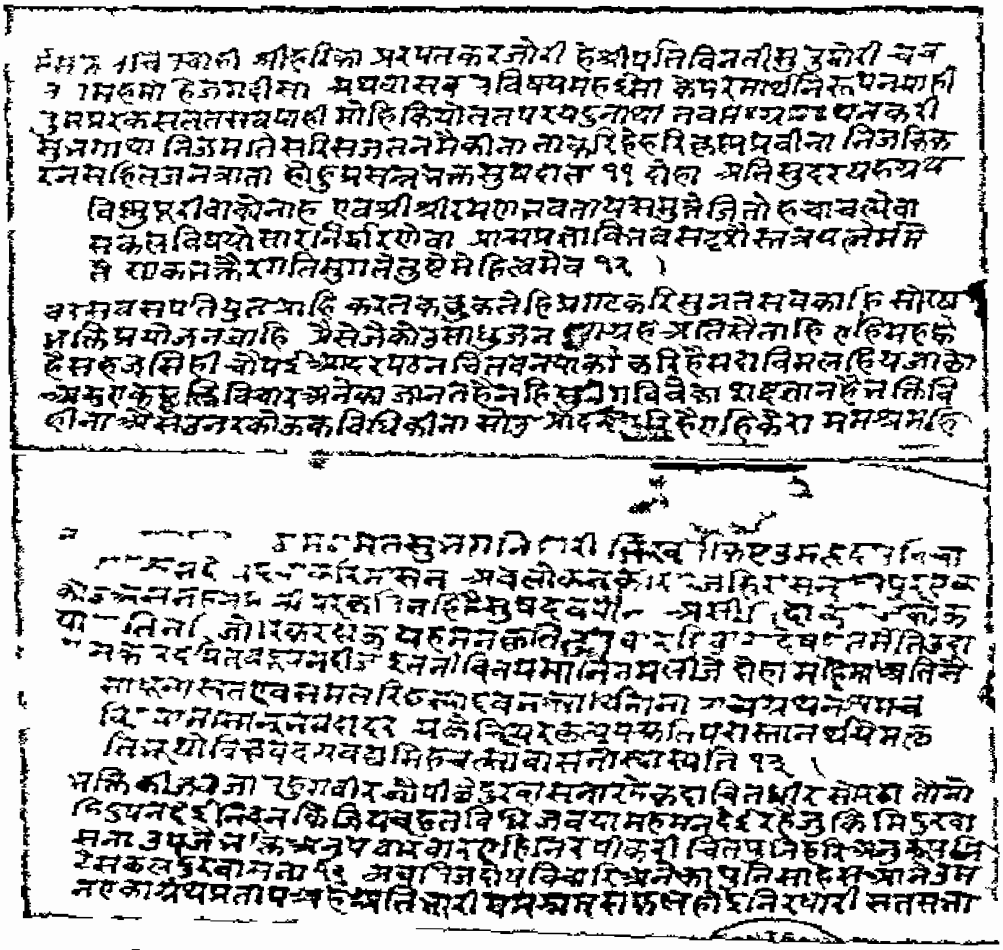
फिर भी, टीका का प्रारंभिक अश जो लुप्त होन से रह गया है, कुछ आवश्यकीय सूचना प्रकट करता है। इस लिए नीचे जो लबा उद्धरण उस से दिया जाता है, उस के लिए पाठक क्षमा करग—

---

[1] मूल श्लोक, जो कि 'भक्ति-रत्नावली' का मगल-श्लोक है और सभी प्रतियो में इस रूप में पाया जाता है, विष्णुपुरी रचित है, परतु भूल से इसे पाणिनि आफिस के सस्करण में टीका का प्रारभिक श्लोक कर के दे दिया गया है।



'भक्ति-रत्नावली' की 'भाषा-निबद्ध टीका' का एक पृष्ठ (नं० २)
मूल प्रति बड़ोदे के ओरिएटल इन्स्टिट्यूट के संग्रह (नं० १५४५) में है।
—इन्स्टिट्यूट के अनुग्रह से।



भक्ति रत्नावली' की भाषा निबद्ध टीका का एक अन्य पृष्ठ (न० १०२) जो कि हस्तलिखित प्रति का अंतिम प्राप्त पृष्ठ है। पृष्ठ १ तथा न० १०२ के बाद के पृष्ठ लुप्त है।

—बड़ौदा ओरिएंटल इंस्टिट्यूट के अनुग्रह से।

॥ चउपाइ ॥

भाषा रचउ सजन हित लागी। जे कोउ हरि गुण रस अनुरागी॥
विष्णुपुरी संग्रह भल कीन्हा। नाम भक्ति रत्नावली दीन्हा॥
तासु अरथ कछु बुधि अनुसारा। रचउ सुभाषा करि विस्तारा॥
समझत सुनत सुलभ सब काहू। रुचि बिन श्रवन सुने सुख ताहू॥
भनित भदेस वसु भलि वरनी। कृष्णभक्ति महिमा भवहरनी।
ताहि हेतु करि सत सुजाना। सुनिहं सतत करि सनमाना॥
हरिगुन सहित बिसद सोई बानी। सुरमुनि जन कवि कहत बखानी॥
कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीना। अल्प बुद्धि मं सब बिधि हीना॥
एहो ते मोहि देहु जनि खोरी। संतसभा बिनवौं कर जोरी॥

॥ दोहा ॥

क्षमावंत अरु शीलनिधि, करुणाकर गुणग्राम।
भक्ति-रसिक सिरमौर मम, तिन कहु करउ प्रनाम॥
विष्णुपुरी के मित्रवर, माधव दास प्रवीन।
तिन मागि मनि मुक्त की, माला सुखद नवीन॥
तब श्री भगवद्भक्ति की, रत्नावली बनाइ।
श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र महु, उनकौ दई पठाइ॥

॥ चउपाइ ॥

तेरह विरचनो की सूची

करयो त्रयोदश विरचन ताही।
नाम भक्ति रत्नावली जाही॥
त्रिविध जीव सब कहु यह नीकी।
सुंदर बिसर जरति हर हीयकी।

महिमा प्रथम भक्ति के बरनी। अति प्रताप भवनिधि कहु तरनी॥
दुसरे महत सतसंग प्रभाऊ। मुक्तिहोन कहँ सुगम उपाऊ॥
भक्ति विशेषण पुनि बहु भाती। बरन्यौ तीसरे मांझ सुहाती॥

नवधा भिन्न भिन्न नव रीति। सग्रह कर्‌यो सुमति मत प्रीति॥
शरणापन्न त्रयोदश माँही। कह्यो ताहि सम कछु जग नाहीं॥
एही भक्ति रतन की माला। गूँथी चित दै सुभग बिसाला॥
सो सब जग विख्यात सोहानी। श्री भागवत सिंधु ते आनी॥

॥ सोरठा ॥

सग्रह करती बार, विष्णुपुरी निज मन गुन्यो।
विघन न होइ सचार, हरिहरि जन गुण गावतै॥[१]

चौथे प्रकार की हस्तलिखित प्रतियो म सस्कृत मूलपाठ के साथ प्राचीन गुजराती गद्य मे टीकाए मिल्ती हैं। नीच एक नमूना उद्धृत किया जाता है जो उसी अश का है जिस का हिंदी अश पीछे उद्धृत हो चुका है। इस से पाठको को दोनो का मिलान करन मे सुभीता होगा—

प्राचीन गुजराती गद्य-टीका

श्रीराधावल्लभो जयति। यें मुक्तावधि। श्रीकृष्णाय नम। टीका। भक्त रत्नावली लिखिता। एह नो कर्ता विष्णुपुरी। ग्रथिताय श्री भागवत अमृत समुद्र मध्येथी उधर्ण कीधू छि तेहनो अर्थ प्राकृते लषीए छि। विष्णुपुरी-वचन। श्री हरि ने नमू छू निति। ते हरि केहवा छि। जेह ने भक्त वल्लभ छि अथवा भक्तने जे वल्लभ छि। ते भक्त केहवा छि जे मुक्तिनि विषि निस्पृह छि। ते भक्त ने नमू छु। वली हरि केहेवा छि, प्रतिपद किहता क्षण क्षणमि विषि भक्तरूप विकास पामतो थे आनद तेहनो आपनार छि। वली यें पोतानाने समस्तना मुकुट मणि करि छि। वली ते भक्त केहेवा छि जे सदा हरिना गमताना चालनार छि। ते हरिनि समस्त अर्थनी प्रापतिनि अर्थि निरतर भजू छू। सप्त रिपिनू यें सदाचार जेणि अनुमीत। वली हू ते जणावू। यें आरभ निरविघ्न समाप्ति करवानि अर्थि श्री भागवत पदि करीने श्रीकृष्ण कीर्तन आचरू छू।

मरी जांच की हुई विविध हस्तलिखित प्रतियो में इस ग्रय की सब से मनोरजक

---

[१]भक्ति-साहित्य के प्रेमियो के विनोदाय 'भक्तिप्रकाशिका' के पूरे मूल-पाठ के प्रकाशित होने की आवश्यकता है।

प्रति वह है जो लगभग २०० वर्ष हुए अहमदाबाद मे लिखी गई थी और जिस मे मूल को चित्रित करते हुए प्राय ५० छोटे चित्र दिए गए है। लिखावट की दृष्टि से भी यह मूल्यवान् है, क्योंकि इस से तत्कालीन गुजराती लिपिकला का और टीका-गद्य का भी अनुमान हो जाता है।

गुजराती गद्य टीका-सहित सचित्र प्रति

यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'भक्ति-रत्नावली' की अनेक हस्तलिखित प्रतिया, जो या तो मूल सस्कृत मे है या गुजराती अनुवाद सहित है, प्राप्त होती है। गुजरात मे, जहा प्रभासपत्तन और द्वारिका जैसे कृष्णोपासना से सबध रखने वाले तीर्थ-स्थल है, वैष्णव धर्म का प्रचुर-रूप से प्रचार रहा है।

गुजरात में श्रीकृष्णोपासना

सतो के निरतर आवागमन के कारण ही पश्चिम भारत मे हम 'गीतगोविद' की रचना के कुछ वर्ष बाद ही उस का, तथा बिल्वमगल की 'कृष्ण-कर्णामृत' और 'बालगोपाल-स्तुति' जैसी रचनाओ का प्रचार पाते है। यह एक तथ्य है कि चैतन्यदेव ने नृसिह मुनि के 'भक्ति-रसायन' के विषय मे द्वारका मे ही सुना था और यह ग्रथ अपने साथ ले गए थे।

'भक्ति-रत्नावली' की एक सचित्र प्रति मिल जाने से सस्कृत की हस्त-लिखित भक्ति-विषयक प्रतियो की सख्या मे एक और वृद्धि होती है। साथ ही साथ हमे लोककला का परिचय भी इन चित्रो द्वारा मिलता है।

गुजरात में प्राप्त 'भक्ति-रत्नावली' की सचित्र हस्तलिखित प्रति

सस्कृत ग्रथो की सचित्र हस्तलिखित प्रतिया कम मिलती है। 'गीता', 'भागवत', 'महाभारत' 'हरिवश', 'देवीमाहात्म्य', 'सौंदर्यलहरी', 'गीतगोविद' और 'बालगोपाल-स्तुति'—यह ब्राह्मणधर्म-सबधी सस्कृत के कुछ ग्रथ है जो कि विभिन्न छोटे चित्रो द्वारा चित्रित हुए है। चूकि 'भक्ति-रत्नावली' की यह प्रति गुजरात मे प्राप्त हुई है, अतएव यह स्पष्ट है कि जो शैली चित्रो की इस मे है वह वही है जो गुजरात मे १८वी सदी में प्रचलित थी। यह प्रति गुजराती चित्रशैली को समकालीन मुगल और राजपूत शैलियो के बराबर स्थापित करती है।

पुस्तक मे अकित सूचना से यह पता चलता है कि इस प्रति का कर्त्ता अहमदा-बाद के श्रीमाली ब्राह्मणो के वश मे किसी कुबेर का पुत्र भट्ट कृपाराम था। और इस का लेखन रविवार, फाल्गुन कृष्णपक्ष की सप्तमी को सवत् १८०६ वि० (१७५० ई०) मे,

अर्थात् लगभग २००[1] वर्ष पूर्व समाप्त हुआ है। नकल करने का स्थान वही है जो 'वसत-विलास' का था जो कि ठीक ३०० वर्ष पूर्व नकल हुई थी। हिंदू मदिरो मे तथा पुराने विद्या प्रतिष्ठित घरानो में खोज करने से अब भी बहुत मूल्यवान् सामग्री के प्राप्त होने की सभावना है।

हस्तलिखित प्रति कैसे मिली ?

यह हस्तलिखित प्रति किसी प्रकार श्री फूलाशकर महाराज के हाथो मे पहुँच गई जो कि एक धार्मिक व्याख्याता है और खभात (मध्य गुजरात) के निवासी थे तथा बनारस म बस गए है। एक मित्र की सहायता से मैं ने उसे प्राप्त किया, मुख्यतया चित्रो के अध्ययन के लिए, और बाद मे यह निश्चित किया कि यह सत विष्णुपुरी की 'भक्ति रत्नावली' है, जिस मे बाए हाथ की ओर मूल सस्कृत है और दाए हाथ प्राचीन गुजराती गद्य म एक चालू टीका है, जिस के बीच-बीच में छोटे चित्र लगे हुए है जो कि मूल को चित्रित करते है। प्राप्त प्रति का आकार १०½"×५½" है। इस में २ इच की एक पटरी सस्कृत मूल के लिए और ६ इच की दूसरी पटरी गुजराती टीका के लिए है और आवश्यकतानुसार चित्रो को स्थान दिया गया है। परतु ये चित्र लबाई में ६ इच से अधिक कही भी नही है। प्राय केवल गुजराती भाग मे चित्र दिए गए है और चित्रो के चारो ओर सुदर फूल है।

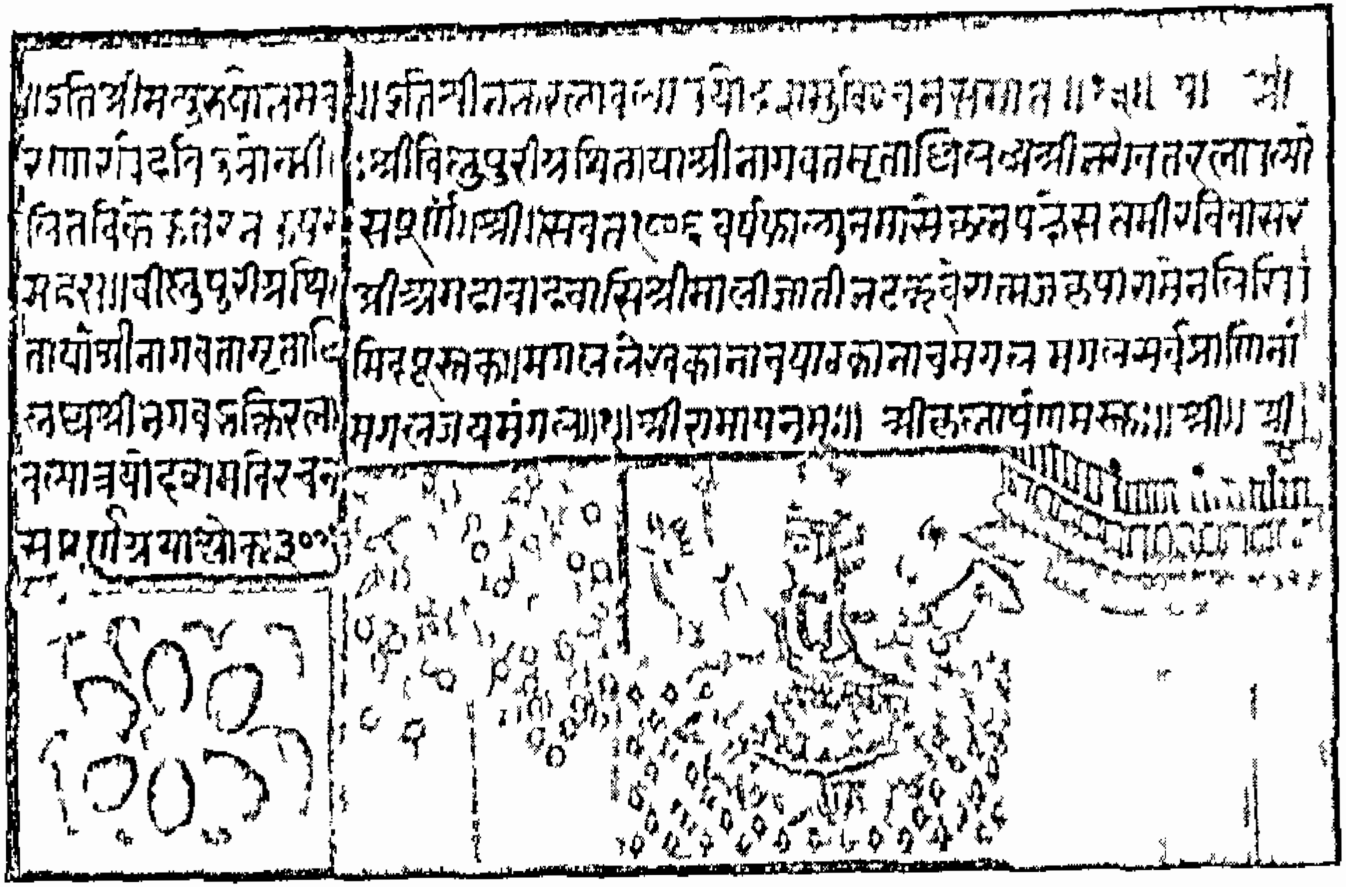
चित्रो की शैली

इन चित्रो में मुगल और राजपूत शैलियो के ह्रास-युग का आभास मिलता है। फिर भी कुछ स्थलो पर वषभूषा, भूप्रदेश और शैली से गुजराती लोकशैली का भी प्रदर्शन होता है, जो उस समय प्रचलित थी।

'भागवत' के कुछ प्रमुख व्यक्तियो और दृश्यो के इन चित्रो द्वारा सत विष्णुपुरी जी की 'भक्ति रत्नावली' मे गूँथे हुए रत्नो की आभा का पाठक सुदरतर आभास पा सकें यह इन पक्तिया के लेखक की कामना है।

---

[1] इति श्री भक्तरत्नावल्या त्रयोदशमु विरचन समाप्त। १३। श्री विष्णुपुरी ग्रथिनाया श्री भागवतमृताब्धिलब्ध श्री भगवत् रत्नावल्या सपूर्ण। श्री सवत् १८०६ वर्षे फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे सप्तमी रविवासरे श्री अमदावाद-वासि श्रीमाली ज्ञाती भट कुबेरात्मज कृपारामेन लिखितमिद पुस्तक। मगल लेखकाना च पाठकाना च मगल। मगल सर्व प्राणीना मगल जय मगल। श्री रामाय नम। श्रीकृष्णार्पणमस्तु।



भक्ति रत्नावली के सम्पूर्ण गुजराती सचित्र हस्तलिखित ग्रंथ का अंतिम पृष्ठ जिस में नकल की तिथि दी हुई है।

——बड़ोदा ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट [illegible]।

वासवदत्ता-हरण का टिकरा

(पकाई मिट्टी का; कौशांबी से प्राप्त)

[लेखक—श्रीयुत राय कृष्णदास]

(१)

उदयन (छठी शताब्दी ई० पू०) प्राचीन भारत के प्रसिद्ध और प्रतापी राजाओ मे से है। वे पाडव-वश में थे और बुद्ध भगवान् के तुल्यकालीन थे। महाभारत से प्राय सौ वर्ष बाद हस्तिनापुर को गगा बहा ले गई थी। अतएव पाडव के वशधरो ने अपनी राजधानी वहा से उठा कर कौशाबी म स्थापित की थी। यह कौशाबी प्रयाग से कोई बीस कोस पश्चिम-दक्षिण यमुना के किनारे वत्स जनपद की एव सारे देश की एक बडी समृद्ध नगरी थी। अब इस का अवशेष दस बारह मील के घेरे मे, एक पठार के रूप मे विद्यमान है, जिस पर कोसम इत्यादि गाव बसे है। आज भी वहा असख्य प्राचीन वस्तुए भरी पडी है, सिक्के, मनके और मृण्मूर्तिया तो जमीन छू देने से मिल जाती है। इस प्रकार की वस्तुओ का सर्वोत्तम सग्रह इलाहाबाद म्युनिसिपल सग्रहालय मे है, और उस के बाद काशी के भारतकला-भवन का नबर है, इन दोनो ही सग्रहो का श्रेय इलाहाबाद सग्रहालय के प्राण श्री ब्रजमोहन व्यास के उत्साह को प्राप्त है। उन्ही के उत्साह का फल यह भी है कि विगत १५ नवबर से वहा पुरातत्व-विभाग ने, अपने डाइरेक्टर-जेनरल श्री काशिनाथ दीक्षित की प्रेरणा से खुदाई प्रारभ कर दी है, जिस मे अभी से बडी आशाजनक सफलता होने लगी है।

कौशाबी के पठार को देख कर अब भी उस महानगरी की बीती समृद्धि आँखो के सामने नाच उठती है, और जितने पग आप उस पर चलते है, यही जान पडता है कि या तो यहा कुक्कुटाराम रहा होगा जिसे बुद्ध भगवान् ने अपने अनेक चातुर्मास-निवास से पावन बनाया

था, किंवा महाराज उदयन का सुयामुन प्रासाद रहा होगा जिस से उन की बीन की स्वर-लहरी चारो ओर आदोलित हुआ करती थी, क्योंकि वे अपने समय के बहुत बडे बीनकार थे—मनुष्य तो क्या हाथियो तक को मोह लिया करते थे।

अस्तु, उदयन का जीवन बहुल घटनापूर्ण था। यहा तक कि उन के सैकडो वर्ष बाद उन की कथा प्रचलित थी। कालिदास के 'मेघदूत' से सूचित है कि उदयन से प्राय हज़ार वर्ष बाद तक अवति में उदयन-कथा के कोविद ग्राम-वृद्ध मौजूद थे[1]।

उदयन के जीवन की मुख्य घटनाओ मे से एक यह भी थी कि उन्हो ने अवनि जनपद[2] के राजा प्रद्योत वशी, अपनी प्रचडता के कारण चड उपाधिधारी, महासेन की कन्या वासव दत्ता का हरण किया था। कालिदास ने 'मेघदूत' में इस कथा का भी इगित किया है[3]।

सप्रति इस कथा के पाँच लिखित रूप ज्ञात है—(१) भास के नाटक 'प्रतिज्ञा यौगधरायण'[4] म, (२) बौद्ध साहित्य[5] म, (३) जैन साहित्य[6] में तथा (४) 'कथा-सरित् सागर'[7] और (५) 'बृहत्कथामजरी'[8] में। इन मे सब से प्राचीन रूप वह है जो 'प्रतिज्ञा-यौगध-

---

[1] 'प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्'। पूर्वमेघ—३१

[2] जिस की राजधानी उज्जयिनी थी।

[3] 'प्रद्योतस्य प्रियदुहितर वत्सराजोऽत्रजह्रे'। पूर्वमेघ—३४

[4] इस नाटक की कथा-वस्तु यही घटना है। इसे 'त्रिवेंद्रम सस्कृत सीरीज़' ने प्रकाशित किया है। इस लेख में आगे इस के अवतरण दिए गए है जिन का पृष्ठ-निर्देश इस के सन् '२० वाले तीसरे सस्करण से है।

[5] 'धम्मपदत्थकथा' अप्पमादवग्ग, उदेनवत्थु के अतर्गत वासुलदत्तायवत्थु। साराश के लिए देखिए 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' जिल्द १, पृ० ३६३-३६५

[6] जैन साहित्य में यह कथा अपेक्षाकृत बहुत इधर आती है; इस का सब से पुराना उल्लेख सभवत 'आवश्यक सूत्र' की टीका में है, जो विक्रम की ७वीं-८वीं शती की रचना है। इस के बाद यह कई ग्रथो में मिलती है, जैसे—वि० १४वीं शती के, हेमचद्र सूरिकृत, 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित्र' के अतर्गत 'महावीरचरित्र' में एव 'कुमारपालप्रतिबोध' में (गायकवाड प्राच्य-ग्रथमाला में पडितवर मुनि जिनविजय-सपादित)। शेषोक्त ग्रथवाली उदयन कथा पर स्व० डा० गुणे का, जुलाई १९२० के 'एनल्स आव् भडारकर इन्स्टिटयूट' में (पृ० १—२१) एक लेख है।

उक्त ब्योरो के लिए मै जिनविजय जी का कृतज्ञ हू।

[7] 'कथामुखलम्बक', तरग ३-५

[8] 'कथामुखलम्बक', गुच्छ २। यह रूप बिल्कुल 'कथा-सरित्सागर' का, किंतु बहुत सक्षिप्त है।

रायण' में है, जैसा कि हम आगे देखेंगे। उस का साराश यो है—

महासेन उदयन से वैर रखता है, किंतु उन की शक्तिमत्ता के कारण उन से युद्ध न कर के उन्हे एक कृत्रिम गज के छल से बदी करा मँगाता है। उन की बीन 'घोषवती' उसे विजयोपहार रूप दी जाती है जिस को वह अपनी युवती कन्या वासवदत्ता को जो बीन सीख रही है, (और जिस के विवाह के सदेश आ रहे है) दे देता है।

उदयन को छुडाने उन के मत्री यौगधरायण तथा सखा वसतक इत्यादि अपने दल सहित उज्जैन पहुँचते है, और छद्मवेश मे छिट-फुट हो कर अपना जाल फैलाते है। उन में से वसतक उदयन तक जा-आ सकता है।

यौगधरायण महासेन के प्रसिद्ध हाथी नलागिरि को उपचारो द्वारा उन्मत्त करा देता है, कि उस हाथी को स्वस्थ करने और वश मे लाने के लिए वत्सराज बधन-मुक्त किए जाय और उन की बीन 'घोषवती' उन्हे वापस मिल जाय, क्योकि उन मे अपनी बीन से हाथी को वश मे लाने की विलक्षण शक्ति है। यौगधरायण बधन-मुक्त वत्सराज को उसी हाथी पर 'घोषवती' बीन सहित, भगा देने का बदोबस्त रखता है कि—

येनैव द्विरदच्छलेन नियतस्तेनैव निर्वाह्यते ![1]

किंतु इसी बीच एक दिन वासवदत्ता जल की परनाली फूट जाने के कारण विषम राजमार्ग को छोड कर बदीगृह की ओर से 'अवतिसुदरी यक्षिणी' के पूजार्थ जाती है। कारागार के परिरक्षक (जेलर) को मिला कर उदयन सयोगवश उसी समय बदीगृह के द्वार तक आ गए है। वे राजकुमारी पर आसक्त हो जाते है और यौगधरायण से कहला भेजते है कि राजकन्या समेत मेरे उड जाने का उपाय करो। यह सदेश पा कर मत्री प्रतिज्ञा करता है कि—अपने स्वामी को 'घोषवती' बीन और राजकन्या के साथ हाथी पर सवार करा के यहा से चपत न कर दू तो मै यौगधरायण नही[2]।

इस बीच नलागिरि का मद उतारने के लिए और इस उस के त्रास से अपनी और

---

[1]प्रतिज्ञा०, ३।५
[2]यदि ता चैव तं चैव ता चैवायतलोचनाम्।
नाहरामिनृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः ॥प्रतिज्ञा०।३।६

अपनो की रक्षा करने के निमित्त महासेन उदयन को मुक्त कर देता है,[१] और हाथी के ठीक हो जाने पर भी उन्हे इस डर से पुन बंदी नही बनाता कि ऐसे उपकर्ता के प्रति वैसे दुर्व्यवहार से निंदा होगी[२]।

राजकन्या की एक हथिनी है जिस का नाम है–भद्रवती[३]। यौगधरायण का एक गण, गात्रसेवक नाम से, उस हथिनी का रक्षक बन गया है। एक दिन वह शराब के नशे की ओट ले कर यह घटित करता है कि भद्रवती कही चली गई[४]। वस्तुत हुआ यह कि उदयन मुक्त होने पर, पहुँचते-पहुँचते राज-अत पुर तक पहुँच गए,[५] एव वासवदत्ता से उन का प्रेम हो गया। यद्यपि नाटकीय घटना म इस का समावेश नही है कितु इस का उल्लेख अवश्य है कि इधर उदयन की वीणावादन-कला, उधर वासवदत्ता की बीन सीखने की प्रवृत्ति इस प्रम-बध का कारण हुई थी[६]। *अस्तु अब वे नलागिरि के बदले उस हथिनी पर* उज्जैन से उड जाते हैं।

राजकुमारी-हरण के समाचार से स्वभावत सारी उज्जयिनी खडबडा उठती है। भागे हुए प्रमी प्रमिका का पीछा राजसेना किया चाहती है, जिसे यौगधरायण और उस का

---

[१]यदस्य चाज्ञा कुरुते नलागिरि स शिक्षिताना वचनेषु तिष्ठति।
ततो विमुक्त स्वशरीररक्षणे यश प्रदातु सुहृदा च जीवितम् ॥प्रतिज्ञा०, ४।१६

[२]यौगधरायण —नैति पश्यत्सुपक्रोशभयान। प्रतिज्ञा०, ॥ पृ० १२२

[३]भट–भतृदारिकाया वासवदत्ताया भद्रवती न दृश्यते। प्रतिज्ञा० पृ० १०६

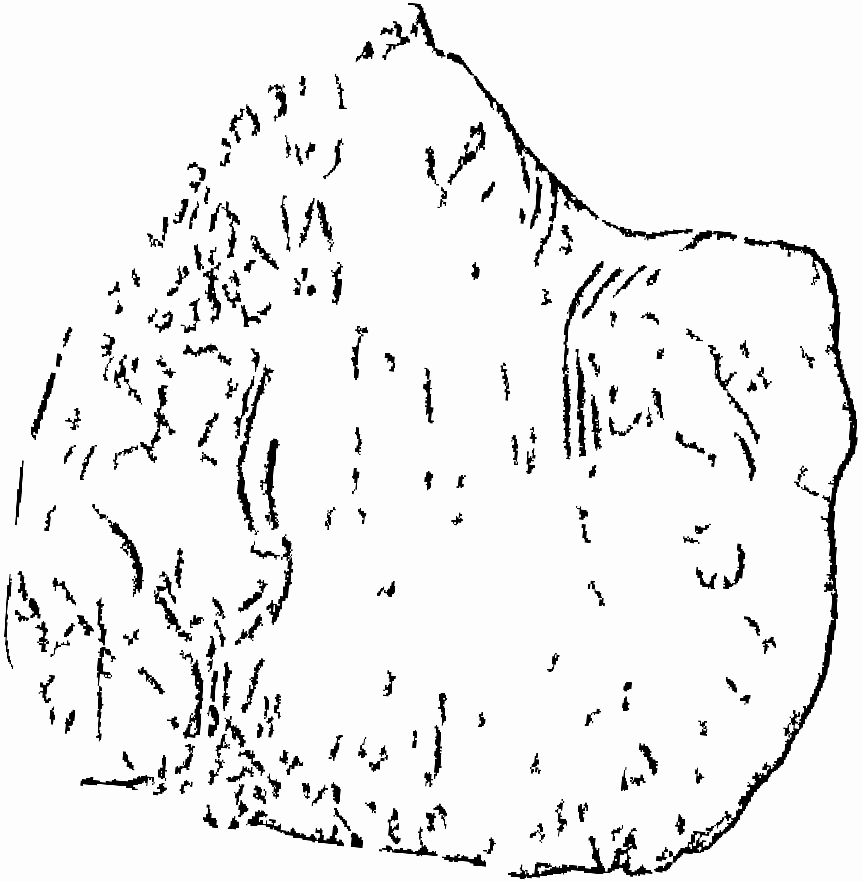
[४]गात्रसेवक — कण्डिलशौण्डिक्यागेह भित्वा भद्रवती पलायते। प्रतिज्ञा०, पृ० ११०

[५]हस्तप्राप्तो हि वो राजा रक्षितस्तेन साधुना।
नह्य नारुह्य नागेंद्र वैजयन्ती निपात्यते ॥ प्रतिज्ञा०, ४।२०

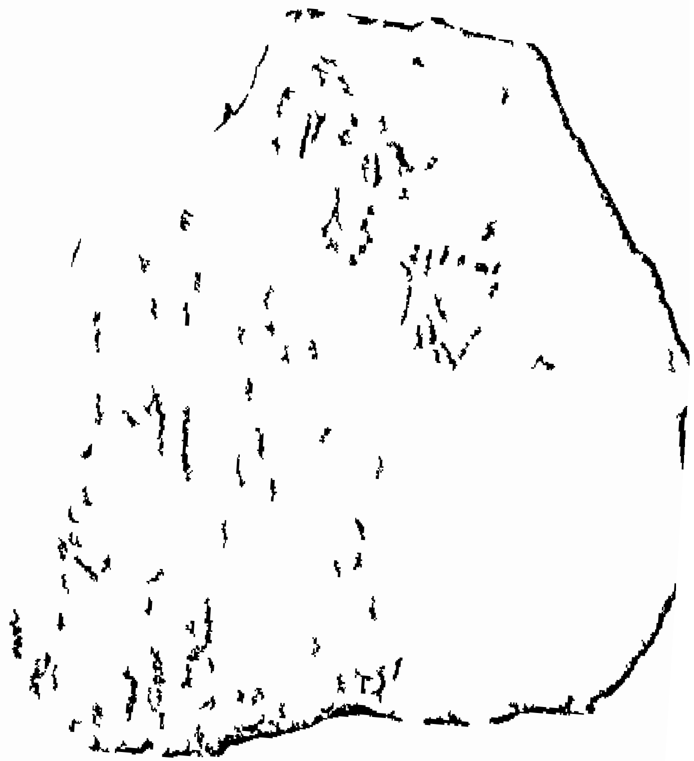
भाव यह है कि अन्त पुर में पहुँचे बिना उदयन वासवदत्ता को कैसे पाते और जब वहा तक पहुँच गए थे तो उन्हे महासेन को मार डालते क्या लगता था।

[६]भरतरोहक —भो यौगधरायण! यदग्निसाक्षिक महासेनस्य दुहितर शिष्या प्रतिगृह्य अदत्तापनयन कृत, युक्तेय भोस्तस्करप्रवृत्ति ?
यौ०—मा मा भवानेवम। विवाह खल्वेष स्वामिन —
भरतान कुले जातो वत्सानामूर्जित पति।
अहृत्वा दारनिर्देशमुपदेश करिष्यति॥ प्रतिज्ञा०, पृ० १२१

चित्र (१)



चित्र (२)



वासवदत्ता हरण के टिकरे

अच्छी हालत वाला टिकरा आकार में मूल से कोई एक सूत बढ़ाया हुआ है घिसा हुआ टिकरा मूल के बराबर है।

(फोटो जायसवाल स्टूडियो बनारस)

दल रोक रखता है। अत मे वह बदी कर लिया जाता है। किंतु पकडे जाने तक वह इतना समय बिता देता है कि वत्सराज निकल जाते है।[1]

अब क्या हो सकता था ! महासेन को हार माननी पड़ती है। वह अपने अमात्य भरतरोहक को यौगधरायण के मुक्त करने के लिए भेजता है और अतत वासवदत्ता-हरण को क्षात्रधर्म के अनुकूल विवाह मान कर उन दोनो के चित्र-फलक द्वारा विवाह सपन्न करता है।

(२)

हाल ही मे भारत कला भवन, काशी, को कौशाबी के, एक ही साँचे से बने, पकाई मिट्टी के दो टिकरे मिले है, जिन पर प्रत्यक्षत इसी घटना का एक दृश्य अंकित है। एक टिकरे पर की आकृतिया स्पष्ट है[2], दूसरा[3] कुछ अधिक घिसा हुआ है (देखिए चित्र १,२, तथा ३)। दृश्य इस प्रकार है—

एक हथिनी पर तीन व्यक्ति सवार है। दाँत न होने के कारण वह स्पष्टत हथिनी है। उस का अगला बाया पाव उठा हुआ है। ऐसा लगता है कि अब चली। उस पर झूल कसा है। घिसे टिकरे म तीनो सवारो के सिर खडित है। साफ टिकरे मे सब से आग वाली मूर्ति का अधिकाश टूट गया है। चेहरा और धड नही बचा है। जितना अश बचा है उस के दहिने हाथ मे अकुश है जो हस्ति-सचालन की मुद्रा म हथिनी के मस्तक से लगा हुआ है। घिसे टिकरे मे इस व्यक्ति का छाती वाला अश बचा है, जिस से स्पष्ट है कि वह स्त्री है। साथ ही उस (घिसे टिकरे) मे उस का बाया हाथ भी बचा है, जो आगे की ओर बढा हुआ है, मानो हथिनी को आगे बढने का इगित कर रहा है। इस व्यक्ति के पीछे, बिल्कुल भिड कर दूसरा व्यक्ति बैठा है। साफ टिकरे में उस के दहिने कधे से ले कर दहिने

---

[1] चिरमरिनगरे निरोधमुक्त स किल वनान्युपलभ्य भद्रवत्या।
ग्रहणमुपगमिष्यति प्रयातो निर्मिषित मात्र गतेषु योजनेषु ॥ प्रतिज्ञा०, ४।१०

[2] कलाभवन के सहायक सग्रहाध्यक्ष श्री० विजयकृष्ण द्वारा सगृहीत।

[3] दाता—श्री० व्रजमोहन व्यास।

चित्र (३)



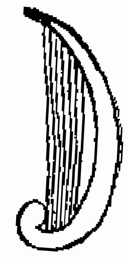
वासवदत्ता-हरण का टिकरा

(रेखा-चित्र; आकार मूल के बराबर। श्रीशंभुनाथ मिश्र द्वारा अंकित)

क—स्पष्ट टिकरा।

ख—घिसे टिकरे का वह अंश जो स्पष्ट टिकरे से अधिक है।

चित्र (४)



सप्ततंत्री वीणा

हाथ तक बचा है, जिस में वह सप्त-तत्री वीणा[1] लिए है। घिसे टिकरे म उस के वक्षस्थल का कुछ अश भी बचा है, जिस से प्रमाणित हो जाता है कि यह दूसरा व्यक्ति पुरुष है। उस का कद भी पुरुष का है। उस का निचला धड (अच्छे टिकरे मे) सुरक्षित है, कमर मे धोती है, घुटने पर दुपट्टा पडा हुआ है तथा पैर हथिनी के कान की ओट मे हो गया है। तीसरा व्यक्ति इन दोनो से अलग, पीछे बैठा है। वह भी पुरुष है। स्पष्ट टिकरे मे उस का चेहरा घिस गया है लेकिन आकृति पूरी है। उस के तन पर धोती है और कमर से रस्सा कसा है, जिस का एक छोर आगे बढा है और उसे वह अपने बाए हाथ से थाम्हे है, यह रस्सा हथिनी की कमर के तग वाले रस्से से मिल गया है। अर्थात् तीसरे महाशय इस रस्से के द्वारा हथिनी से इस प्रकार कस दिए गए है कि लुढक न पडे। अस्तु इस तीसरे व्यक्ति का धड कुछ पीछ की ओर झुका हुआ है और मुँह भी पीछे को फिरा हुआ है, क्योकि अपने दहिन हाथ से वह हथिनी के पीछे की ओर एक थैली झाड रहा है, जिस म से चौकोर और गोल सिक्के नीचे गिर रहे है। उन्हे हथिनी के पीछे स्थित दो व्यक्ति ले रहे है। इन मे से एक उन्मुख है और अपना दहिना हाथ ऊँचा कर के सिक्के लोक रहा है। इस के सिर और कान शिरस्त्राण से ढके है। दूसरा—जो उक्त व्यक्ति के आगे की ओर है—झुक कर पृथ्वी पर गिरे हुए सिक्को को बीन रहा है। यह व्यक्ति वृद्ध है, जैसा कि उस के चेहरे पर की झुर्रियो और भुजा पर की उभरी नसो से मालूम होता है।

टिकरे की कोर पर सितारेदार फूलो की एक लडी बना कर टिकरे की सरहद बाँधी गई है। दृश्य की पृष्ठिका में जो अश रिक्त है वे नौ पखडी वाली चौफुलिया से अलकृत किए गए है, टिकरे मे नीचे की ओर शृगाटक बने है। टिकरा पीछे की ओर सादा है और हाथ से पाथ कर बनाया गया है। उस पर हथेली की रेखाए छप गई है। उस के ऊपरी सिरे पर

---

[1] सप्ततत्री वीणा आज-कल की बीन-जैसी नहीं होती थी, बल्कि वह उस बाजे की तरह होती थी जिसे आज-कल 'कानून' वा 'सुरमडल' कहते है। अग्रेज़ी में इस का नाम 'हार्प' है। प्राचीन यूनान में भी इस का प्रचार था। एक टेढी लकडी में एक के बाद दूसरा कर के सात तार कसे होते है (चित्र ४) जो जवे से बजाए जाते है। प्राचीन काल में तूबे वाली बीन के साथ-साथ इस सप्ततत्री का भी प्रचार था। समुद्रगुप्त के सोने के सिक्को में एक प्रकार ऐसा भी है जिस में वह मच पर बैठा ऐसी सप्ततत्री वीणा बजा रहा है।

बीचो-बीच एक छेद है। ऐसे छेद प्राचीन काल की अधिकाश मृण्मूर्तियो में पाए जाते है। जान पड़ता है, इन मे डोरी पिरो कर मूर्तियो को दीवार पर लटका देते थे।

इन टिकरो के अनुसार वासवदत्ता-हरण की कथा का यह रूप खडा होता है कि उदयन और वासवदत्ता हथिनी पर उज्जैन से भागे। हथिनी वासवदत्ता की थी इसी लिए वह उसे चला रही है। प्राचीन काल में राजकुमारो की भाँति राजकुमारिया भी हस्ति-सचालन करती थी। उस के वाद वाला, सट कर बैठा हुआ, व्यक्ति उदयन है जो दहिने हाथ में अपनी घोषवती वीणा लिए है।

तीसरा व्यक्ति, जो सब से पीछे है और इस युगल से अलग बैठा है, उदयन का विदूषक वसतक होना चाहिए,[1] क्योंकि वत्सराज के लिए कौशाबी का जो दल उज्जयिनी गया था उस में से वसतक ही की पहुँच उदयन तक थी[2]। दूसरे उस का इस तरह हाथी से बाँध दिया जाना केवल उस की रक्षा का ही नही उस के विदूषकत्व का भी द्योतक है।

जिन लोलुप पिछलगुओ को वह सिक्के बिखेर कर बरका रहा है उन में से एक (शिरस्त्राण-धारी) सैनिक और दूसरा (झुका हुआ) कचुकी होना चाहिए। इस झुके हुए व्यक्ति के वृद्ध होने के कारण हमारी यह उपपत्ति प्रमाणित हो जाती है, क्योंकि राजकुमारियो की देख-भाल के लिए ऐसे ही वृद्ध कचुकी रहा करते थे[3]।

इस टिकरे का भास के कथानक से प्राय सर्वथा ऐक्य है। यथा—

(क) उदयन और वासवदत्ता जिस वाहन पर भागे थे वह हथिनी थी।

(ख) वह हथिनी वासवदत्ता की थी।

---

[1] उदयन अपने हाथ में बीन लिए हुए थे तथा उन के साथ वसंतक भी था, ये दोनों अनुश्रुतिया हेमचद्र के समय तक जीवित थीं—

वत्सराजो घोषवतीपाणि प्रद्योतनन्दना।
काचनमाला वसन्तश्चारोहस्तामथद्विपीम्।। त्रिषष्टि०—१०।११।२४८

वसतक को तो जैन कथा में इतनी प्रधानता है कि वही हस्ति-संचालक है—

.... .वसतको हस्तिपकः।
—वही १०।११।२४७

'कुमारपालप्रतिबोध' में भी उक्त ब्योरे प्रायः इसी प्रकार है।

[2] यौगधरायण—वसतक। गच्छ भूय स्वामिन पश्य—प्रतिज्ञा०, पृ० ८६

[3] अन्तपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित।
सर्वकार्यार्थकुशल. कचुकीत्यभिधीयते।।

(ग) उस हथिनी पर उस का महावत न था।

(घ) उदयन के साथ उस की बीन भी थी।

(ङ) उन के साथ विदूषक वसतक भी था।

भास मे इस दपती के साथ वसनक के जाने का कोई सीधा उल्लेख नही है, किंतु यदि वह उज्जयिनी मे रह गया होता तो चौथे दृश्य मे जहा यौगधरायण उज्जयिनी वालो से मोर्चा लेता है और अतत पकडा जा कर भी महासेन पर विजयी होता है, वहा वसतक महोदय के लतीफे बीच-बीच मे अवश्य आते। अतएव वसनक का चला जाना भी भास-सम्मत है।

यदि भास वासवदत्ता-हरण का दृश्य अकित करता तो क्या वसनक के मुह से कुछ ऐसा व्यग न कराता—"तुम दोनो तो जीवन का रस लेने के लिए चले। यहा इस ब्राह्मण को क्या स्वस्ति-बलिदान के निमित्त छोडे जाते हो?" अस्तु।

ये टिकरे असदिग्ध रूप से शुगकालीन है। इन के डौल[1] का चिपटापन (फ्लैट माडेलिंग) उस युग के मूर्ति-शिल्प की विशेषता है। इन मे चौकोर सिक्को का आना भी मार्के की बात है। ये चौकोर सिक्के आहत (पच-मार्क्ड) वा ढले हुए (कास्ट) होने चाहिए। शुगकाल में इन दोनो ही प्रकार के चौकोर सिक्को का चलन था। शुगकाल के बाद चौकोर सिक्को का बनना और सभवत प्रचलन भी, बद हो गया था।

प्रसगवश यहा यह कह देना भी अनुचित न होगा कि इन टिकरो पर के दृश्य की 'प्रतिज्ञा-यौगधरायण' वाली कथा स एककल्पना के कारण भास के समय पर भी—जो बडा विवादास्पद विषय रह चुका है—एक नया प्रकाश पडता है। अर्थात् इस ऐक्य के कारण भास का समय इन टिकरो से अधिक दूर नहीं ठहरता। दूसरे शब्दो मे इन टिकरो के कारण जायसवाल द्वारा निर्णीत भास का समय, ई० पू० प्रथम शती, विनिश्चित हो जाता है।

एक तो ये टिकरे कौशाबी के है, दूसरे शुगकाल के है अतएव इन से वासवदत्ता-हरण का जो रूप मिलता है वह अपेक्षाकृत प्रामाणिक होना चाहिए। उधर भास वाला रूप भी, जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, प्राय यही है, अतएव यह मानना चाहिए कि

---

[1] 'माडेलिंग' के लिए अपने यहा की क्रिया 'डौलियाना' वा 'डौलना' है। इसी से सुडौल, बेडौल आदि विशेषण बनते है।

वासवदत्ता-हरण का वास्तविक ऐतिहासिक रूप यही है, इस स्वरूप की स्वाभाविकता भी इस बात की पोषक है।

'कथासरित्सागर'[1] में इस घटना का जो रूप मिलता है उस मे कहानीपन है। थोडे में वह इस प्रकार है—

" बदी उदयन को चड-महासेन ने वासवदत्ता के बीन सिखाने पर नियत किया। वह उदयन से प्रेम करने लगी। उस के पिता ने उसे भद्रवती नाम की हथिनी दी थी, जिस की चाल बडी तेज़ थी। उदयन ने यौगधरायण की (जो एक विद्या के बल से अदृश्य हो कर वत्सराज के पास रह रहा था) सीख से वासवदत्ता को समझाया कि इसी हथिनी पर भाग चले। कुमारी ने हथिनी के महावत आषाढक को, जिसे यौगधरायण ने मिला लिया था, बुला कर हथिनी लाने के लिए कहा। सध्या समय, जब मेघ गरज रहे थे, आषाढक हथिनी तैयार कर के ले आया। उदयन ने, मत्रबल से अपना बधन खोल डाला। अपनी बीन और शस्त्रों को ले कर, वासवदत्ता, उस की सखी काचनमाला, अपने सखा वसतक (जो मत्र-बल से छद्मवेश मे उस के पास रहता था) तथा आषाढक के साथ, उस हथिनी पर सवार हो के वह चलता बना। नगर का परकोटा जो उन का बाधक हुआ तो भद्रवती ने उसे तोड डाला और वहा के दो रक्षको ने जो उन्हे रोका तो उदयन ने उन्हे हथियार के घाट उतार दिया[2]। इस प्रकार वह मडली चड-महासेन के हाथ से निकल गई।"

'कथासरित्सागर' मे उदयन द्वारा दो नगर-रक्षक मारे जाते हैं। इधर टिकरे में भी दो व्यक्ति उदयन के पीछे लगे है, किंतु यहा उन के मारने की नौबत नही आई है। यहा रिश्वत दे कर उन से पीछा छुडाने मे वसतक ही समर्थ हो जाता है।

कला की दृष्टि से यह टिकरा एक सुदर चीज़ है। इस का डौल चिपटा होते हुए भी कायदे से है। इस की प्रत्येक रेखा सुनिश्चित है, उस में बारीकी है, साथ ही दम-खम भी है। भारतीय कला में आरभ ही से हाथी का एक विशिष्ट स्थान है और उसे अकित करने में अपने कलाकार यथेष्ट सफल भी रहे हैं। प्रस्तुत टिकरे की हथिनी का अकन भी वैसा ही हुआ है। उस का अग—कद-कॅडे से है, उस के बदन की झुर्री बारीकी से दिखाई

---

[1] 'कथामुखलम्बक', ५ वीं तरंग, श्लो० १—२५

[2] तत्स्यानरक्षिणौ वीरौ स्वैरं स हतवान्नृपः। वही, श्लो० २५

है। भद्रवती सीधी और सधी हुई हथिनी थी[1], इसी लिए वह वासवदत्ता को मिली थी—स्वभावत वह अधेड रही होगी, अत ये झुर्रियां सार्थक है। उस के अगले पैर के भग से गति भी खूबी से दिखाई गई है। वस्त्रो की सिलवटे और मोड कुशलता से अकित है। पृष्ठिका का खडहर (व्यर्थ अवकाश) आलकारिक फूल छीट कर दूर किया गया है। वासवदत्ता का हस्ति-सचालन के लिए किंचित् झुक कर दहिने हाथ से भद्रवती के सिर पर अकुश लगाना और बाए हाथ को आगे कर के उसे बढाना, उधर वसतक का थैली बिखेरने के लिए, अपने शरीर को सम्हाले हुए, पीछे मुडना भी अच्छा अभिव्यक्त हुआ है, इसी प्रकार सिक्के लोकने और बिनने वालो की मुद्राए भी ठीक अकित हुई है।

इस भांति इतिहास तथा कला, दोनो ही, की दृष्टि से यह टिकरा विशेष महत्व का है।

अत मे, यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के टिक्रे बनाने की प्रवृत्ति अपने कुम्हारो मे, आज तक चली आती है। मुझे बचपन की याद है कि (वर्तमान महाराज बनारस के पितामह) बूढ़े काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह की—जो बडे रूप-स्वरूप के आदमी थे और काशी मे बहुत लोकप्रिय थे—आकृति वाले मिट्टी के चौखूंटे टिकरे काशी मे बना करते थे। उन मे भी डोरी से लटकाने के लिए छेद रहता था और अलकरण के लिए बूटियो का छिटाव। इसी प्रकार के जगन्नाथ जी की त्रिमूर्ति और रुपए पर की विक्टोरिया की आकृति वाले टिकरे भी बनते थे। सभवत आज भी वैसे सब टिकरे बनते है।

---

[1] स्वभावविनीताया भद्रवत्या अंकुशेन किं कार्यम्। प्रतिज्ञा०, पृ० १०७
पुष्पबंध्याया भद्रवत्याक्षुरप्रमलिया किं कार्यम्। प्रतिज्ञा०, पृ० १०८
पुष्पबध्यायाः—पुष्पेण बधु शक्यायाः।

प्राचीन वैष्णव-संप्रदाय

[लेखक—डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० (इलाहाबाद)]

(क्रमागत)

३—ब्रह्म-संप्रदाय

मध्वाचार्य ने इस सप्रदाय का प्रचार किया। यह वायु देवता के अवतार माने जाते है। इन का जन्म ११९९ ई० मे कन्नड प्रदेश में हुआ था। इन के पिता का नाम 'मध्य गेह' और माता का 'देवता' था। इन का प्रसिद्ध नाम 'आनदतीर्थ' और 'पूर्णप्रज्ञ' था किंतु पिता इन्हे 'वासुदेव' कहा करते थे। जन्म ही से इन मे कुछ वैलक्षण्य था। इन्हो ने बहुत ही अल्पवयस में सन्यास ग्रहण करने की उत्कट इच्छा प्रकट की, किंतु पिता-माता के अनुरोध से इन की इच्छा उस समय पूरी न हो सकी। कुछ दिन बाद जब इन के पिता के दूसरा पुत्र हुआ तब इन्हो ने सन्यास ग्रहण कर लिया और तब से 'पूर्णप्रज्ञ' ही के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस के बाद यह भारत-भ्रमण के लिए निकले और हरिद्वार पहुचे। यहा कुछ दिन रह कर बदरिकाश्रम की तरफ चले गए और किसी एकात स्थान मे इन्हो ने योगाभ्यास और तपस्या की। कहा जाता है कि तपस्या के अत मे व्यासदेव ने इन्हे दर्शन दिया और इन को वैष्णव धर्म-प्रचार के लिए तथा 'बादरायणसूत्र' के ऊपर एक भाष्य-रचना के लिए आज्ञा दी। इन्हो ने 'बादरायणसूत्र', 'उपनिषद्' तथा 'गीता' की अपने मतानुसार टीका की। इन के अनेक प्रसिद्ध शिष्य हुए, जिन्हो ने इन के मत के समर्थन में ग्रथो की रचना की। 'अनु-व्याख्यान', 'न्यायसुधा', 'पदार्थसग्रह', 'मध्वसिद्धातसार' आदि ग्रथ इन के बहुत प्रसिद्ध है। इन का दार्शनिक सिद्धात 'द्वैतवाद' है।

पूर्णप्रज्ञ के अनुसार पदार्थ दस है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव। इन का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

पदार्थ-विचार : द्रव्य-निरूपण

दो विवादशील वस्तुओं में जो द्रवण अर्थात् गमन प्राप्य हो वही 'द्रव्य' है। उपादान-कारण को भी 'द्रव्य' कहते हैं, अर्थात् जिस का परिणाम हो या जिस रूप में परिणाम हो दोनो ही द्रव्य हैं। उपादान भी दो प्रकार के होते हैं—परिणाम और अभिव्यक्ति।[१]

द्रव्य के पुन बीस भेद हैं—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अहकार, बुद्धि, मन, इद्रिय, तन्मात्रा, भूत, ब्रह्माड, अविद्या, वर्ण, अधकार, वासना, काल, तथा प्रतिबिंब[२]। इन मे परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत आकाश, तथा वर्ण की तो अभिव्यक्ति होती हैं, और बाकी का परिणाम होता है।[३]

१—परमात्मा—यह अनत गुणो से पूर्ण हैं। लक्ष्मी आदि की अपेक्षा परमात्मा का ज्ञान अनत गुण अधिक है। इस मे श्रुत, अश्रुत, विरुद्ध ये सभी गुण नित्य वर्तमान हैं। इस का ज्ञान महाशुद्ध, चितिस्वरूप, समस्त विशेषो का स्पष्ट-रूप से दर्शनात्मक, नित्य, एक ही प्रकार का, सूर्य-प्रभा के समान निरतर वस्तुमात्र का प्रकाशक, अभिमान तथा दोषो से रहित, तथा सदैव विकारहीन है[४]। लक्ष्मी में भी प्राय ये सभी गुण हैं, किंतु भेद इतना ही है कि परमात्मा में जो विशेष है वह लक्ष्मी में नही। यह सभी अत्यत सूक्ष्म विशेषो के साथ अपने को तथा दूसरो को भी देखता है।

सृष्टि, स्थिति, सहार, नियम, अज्ञान, बोधन, बध, तथा मोक्ष इन कार्यों को परमात्मा निरतर करता है। दूसरा कोई भी इन्हे नही कर सकता, अतएव परमात्मा 'एकराट्' कहलाता है। बिना सर्वज्ञ हुए ये कार्य नहीं किए जा सकते इस लिए यह सर्वज्ञ है।[५] प्रकृत्यादि जड पदार्थ, ब्रह्मादि जीव तथा महालक्ष्मी सबो से यह अत्यत भिन्न है। शरीर के बिना परमात्मा भी सृष्टि आदि नही कर सकता है, इस लिए परमात्मा का भी शरीर है। यह शरीर नित्य, ज्ञानात्मक, आनदात्मक तथा अप्राकृतिक है। इस का प्रत्येक अग आनदमय और चित्स्वरूप है। यह सर्वस्वतत्र और एक ही है। इस के समान या इस से परे

---

[१] 'पदार्थसग्रह', पृ० २३ (क)
[२] वही, पृ० १ (ख)
[३] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० २३ (क)
[४] वही।
[५] वही, पृ० २४ (क)

कोई भी नही है। कोई भी मुक्त पुरुष इस का साम्य नही लाभ कर सकता है, ऐक्य तो दूर है।

जीव के प्रत्येक रूप मे परमात्मा परिपूर्ण-रूप से वर्तमान है। इस लिए सभी अवतारो मे भगवान् पूर्ण-रूप से वर्तमान रहते है। अवतारो के सबध में बधन और मुक्ति का प्रश्न ही नही हो सकता क्योंकि ये अजर, अमर और चिदानदमय है। इन मे परस्पर किसी प्रकार का भेद नही है। भगवान् का अपना रूप तथा आविर्भूत रूप कोई भी देश, काल तथा गुण से परिच्छिन्न नही है।

सृष्टि, प्रलय, नियमन, ज्ञान, अज्ञान, जीव का बधन अर्थात् ईश्वरेच्छा, अविद्या, कामकर्म, लिंगशरीर, त्रिगुणात्मक मन, स्थूल शरीर तथा मोक्ष ये सब परमात्मा के अधीन है।[१] परमात्मा वैकुठ मे सब प्रकार का भोग करता है। लक्ष्मी आदि के साथ ब्रह्मा आदि मुक्त जीव वैकुठ मे परमात्मा को पूजते हैं। लक्ष्मी के स्वरूप के अपराजित 'विमिला' नाम के चिन्मय सुवर्ण के बने हुए परम-दिव्य पलग पर भगवान् शयन करते हैं। अविद्या, विद्या, सत्वादि, तीनो गुण, देहोत्पत्ति, सुख-दुःख ये सब परमात्मा के अधीन हैं, इस लिए यह नित्य-बध और मोक्ष से रहित है और नित्य-मुक्त है।

मुक्त जीव अपनी इच्छा से शुद्धसत्वमय देह धारण कर उस के द्वारा यथेष्ट भोग का अनुभव कर पुनः स्वेच्छा ही से उसे त्याग देते है। इस शरीर मे रजोगुण तथा तमोगुण के न रहने ही के कारण उन मे शरीर-धारण-जन्य बधन नही रहता। इसे ही 'लीला-विग्रह' कहते है। फिर भी यह प्राकृत शरीर ही है[२]। किसी-किसी के मत में मुक्त जीव पाँच भौतिक शरीर के द्वारा भी भोग कर सकता है, किंतु यह कर्म से उत्पन्न नहीं है, इस लिए इस शरीर मे इन्हे हम लोगो की तरह सुख-दुःख का ज्ञान नही होता और न उस से किसी प्रकार का बधन ही उन्हे प्राप्त होता है। यह शरीर उन का स्वेच्छा-स्वीकृत शरीर कहलाता है।[३]

२—लक्ष्मी—यह परमात्मा से भिन्न किंतु केवल उन्ही के अधीन है। ब्रह्मा आदि

---

[१] 'पदार्थसग्रह', पृ० १४७ (ख)
[२] श्री-सप्रदाय के अनुसार शुद्धसत्वमय लीलाविग्रह अप्राकृत देह है।
[३] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० ३६ (ख), ३७ (क)

जीव लक्ष्मी के पुत्र है, और प्रलय मे ये सब लक्ष्मी ही मे लीन हो जाते है। परमात्मा की कृपा से बलवती लक्ष्मी एक क्षण मे विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय, महाविभूति, वृत्तिप्रकाश, नियमावृत्ति, बधन तथा मोक्ष को सपादन करती है। हिरण्यगर्भादि जीवो की अपेक्षा, भगवान् की प्रीति, भक्ति और ज्ञान में लक्ष्मी कोटिगुण अधिक है।

परमात्मा के समान लक्ष्मी भी नित्यमुक्त और आप्तकाम है। ऐसा होने पर भी यह विष्णु की सर्दैव उपासना करती है। लक्ष्मी और विष्णु का सबध अनादि है इस लिए ये दोनो अनादिनित्य, अनादियुक्त, अनादिमुक्त तथा अनादिकृत है। यह परमात्मा की पत्नी है। ये दोनो नित्यमुक्त है अतएव इन के परस्पर सयोग से सुख की अभिव्यक्ति तो हो ही नही सकती, फिर इन मे पति-पत्नी का सबध मानने का यह कारण है कि भगवान् 'आत्मरमण' होने पर भी लक्ष्मी के प्रति अनुग्रह-पूर्वक लक्ष्मी मे स्वस्त्रीरूप में प्रवेश कर दूसरे रूप में क्रीडा करते है, अर्थात् लक्ष्मी मे वर्तमान अपने ही रूप के साथ भगवान् क्रीडा करते है। लक्ष्मी भी चिद्रूप और अनत है।

श्री, भू, दुर्गा, तृणी, ह्री, महालक्ष्मी, दक्षिणा, सीता, जयती, सत्या, रुक्मिणी, आदि सभी लक्ष्मी की मूर्तिया है। यह भगवान् के उर-स्थल मे रहती है और इस अवस्था में 'यज्ञा' नाम को धारण करती है। 'दक्षिणा' मूर्ति के साथ भगवान् को अत्यत सुख होता है। यह भी अप्राकृत शरीर है। यह देश और काल से ही पूर्ण है, न कि गुण से और यही परमात्मा और लक्ष्मी के आनत्य का भेदक है।

३—जीव—ससारी जीव अज्ञान, दुःख, भय, मोह, आदि दोषो से युक्त है। ब्रह्मा और वायु में भी ये दोष है। अज्ञान ने चार बार, भय तथा शोक ने दो बार ब्रह्मा पर आक्रमण किया था। विष्णु के वश में रहने वाली उन्ही की सूक्ष्म प्रकृति श्री, भू तथा दुर्गा ब्रह्मा आदि को भय देती है, किंतु रुद्र आदि में जिस प्रकार भय आदि स्थिर होते है, उस प्रकार ब्रह्मा में नही। अज्ञान भी ब्रह्मा के शरीर को स्पर्शमात्र कर बाहर चला जाता है। ब्रह्मा का मोह मिथ्याज्ञान-रूप नही है, किंतु नियत अपरोक्ष ज्ञान का अभावरूप है। ब्रह्मा का भी शरीर पच-भौतिक है और बधन मे पड़ा है। वह भी मोक्ष चाहते है।

ऐसे जीव असख्य है। यह इतने सूक्ष्म है कि एक परमाणु-प्रदेश मे भी अनत जीव रहते है। यह आनत्य केवल व्यक्तिगत नही है, किंतु गणगत भी, जैसे—ऋजुगण, असुरगण इत्यादि।

जीव के तीन भेद है—मुक्तियोग्य, तमोयोग्य तथा नित्यससारी।

मुक्तियोग्य पुन पाँच प्रकार के है—'देव', जैसे—ब्रह्मा, वायु आदि, 'ऋषि', जैसे—नारदादि, 'पितृ', जैसे—विश्वामित्र आदि, 'चक्रवर्ती', जैसे—रघु, अबरीष आदि, तथा 'मनुष्योत्तम'। इन जीवो में अनेक तारतम्य है।

तमोयोग्य पुन दो प्रकार के है—'चतुर्गुणोपासक' और 'एकगुणोपासक'। जो सत्, चित्, आनद और आत्मा-रूप मे ईश्वर की उपासना करते है वे तो 'चतुर्गुणोपासक' है। और जो केवल आत्मा ही को परमदेव भगवान् समझ कर उस की उपासना करते है वह 'एकगुणोपासक' है। इस उपासना के द्वारा कोई-कोई इसी शरीर मे रहते ही मुक्ति पाते है, और इन का आक्रमण नहीं होता, जैसे—तृणजीव, स्तव इत्यादि। यह फिर चार प्रकार के है—दैत्य, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य।

नित्यससारी—ये जीव सदैव सुख-दु ख भोगते है। ये मध्यम मनुष्य ही होते है और अनत है। ये सदैव स्वर्ग, नरक तथा पृथ्वी मे घूमते रहते है।

रामानुज के मत मे ब्रह्मादि जीवो मे केवल ससार दशा ही मे अतर है। मुक्त होने पर ये सभी जीव समान है, और परमात्मा के साथ भी इन का साम्य मोक्ष में हो जाता है। तार्किको के अनुसार भी मुक्ति-दशा में सभी जीव समान है। परतु मुक्त-जीव और परमात्मा में फिर भी भेद है, क्योकि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वकर्ता और सर्वोत्तम है। मायावाद मे भी सभी जीव परमात्मा से अभिन्न है। भेद तो केवल भ्रम है।

परतु माध्वमत मे ससार तथा मोक्ष दोनो ही अवस्था में जीवो मे भी परस्पर भेद है, और परमात्मा भी इन सवो से भिन्न है।[१] इसी कारण मुक्त-जीवो मे परस्पर उन के काम, सकल्प तथा आनद में भी अतर है और इसी से ये मुक्त-जीव भी शुभकर्म करते है। इसी प्रकार परमानद को पाए हुए आविर्भूत स्वरूप योगियो में भी परस्पर भेद है। फिर भी जो मुक्त-जीवो में साम्य कहा जाता है वह यह है कि उन मे दु खाभाव, परानद तथा लिगभेद एक ही सदृश है। और ज्ञान के भेद से परमानद के आस्वादन मे भी भेद है।

४—अव्याकृत आकाश—इसे एक प्रकार से दिक् ही समझना चाहिए। सृष्टि-काल में इस में न तो कोई विकार और न प्रलयकाल ही में इस का नाश होना है। इसी लिए

---

[१] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ३२ (क)

इसे 'अव्याकृत' कहते हैं। इसे गगन, साक्षिगोचर, तथा प्रदेश भी कहते है। यह नित्य है और अहकार के तामस अश से उत्पन्न भूताकाश से भिन्न है। यह एक, व्याप्त और स्वगत हैं। पूर्व, दक्षिण आदि विभाग इस के स्वाभाविक अवयव है। इसी कारण जिस स्थान में सूर्यादि नही भी होते, जैसे वैकुठ मे, वहा भी पूर्व आदि दिशाओ का ज्ञान होता है।

भूताकाश से यह भिन्न है, क्योकि अव्याकृत आकाश रूपरहित, कूटस्थ, नित्य, साक्षिसिद्ध, विभु और क्रिया-रहित है, किंतु भूताकाश रूपयुक्त, देहाकार मे विकारशील, तामस तथा अहकार का कार्यरूप, एक और अविभु एव गतिशील हैं। लक्ष्मी इस की अभिमानिनी देवी है। इन्ही के अधीन यह हैं।[1]

५—**प्रकृति**—साक्षात्, जैसे—काल और तीनो गुणो का, या परपरा, जैसे—महदादि का, उपादान प्रकृति हैं। इसी से यह द्रव्य भी है। यह जडा, परिणामिनी, तीनो गुणो से अतिरिक्त, अव्यक्त और नानारूपा है। महाप्रलय के अनतर नवीन सृष्टि का उपादान कारण होने से यह 'नित्य' है। क्षण, लव आदि काल के विभागो का भी कारण यह है, इसी से व्यापक भी है। इस की अभिमानिनी देवी रमा है। जीवो के लिंग-शरीर की समष्टिरूप ही प्रकृति हैं। महाप्रलय मे यह अकेली रहती हैं।

६—**गुणत्रय**—सत्व, रजस् और तमस् इन तीनो गुणो के समुदाय को गुणत्रय कहते हैं। भगवान् ने सृष्टिकाल मे मूला प्रकृति से सत्वराशि, रजोराशि तथा तमोराशि को उत्पन्न किया। इसी से महदादि सृष्टि होती हैं। सृष्टि के लिए इन तीनो गुणो में निम्नलिखित परिमाण रहता है—तमस् से दो गुना रजस्, और रजस् से दो गुना सत्व। तमोगुण महत्तत्व से दस गुना अधिक परिमाण का है। महत्तत्व के चारो ओर यह दशगुणित तमोगुण घिरा हुआ है।

प्रकृति से पहले केवल शुद्ध सत्व उत्पन्न होता है। सत्व और तमोगुण के मिश्रण से रजोगुण तथा सत्व एव रजोगुण के मिश्रण से तमोगुण होता है। रजोगुण में १ भाग रजस्, १०० भाग सत्व और $\frac{१}{१००}$ भाग तमस् है। तमोगुण मे १ भाग तमस्, १० भाग सत्व और $\frac{१}{१०}$ रजस् है। गुणो के इसी वैषम्य को सृष्टि कहते है। सृष्टिकाल में सत्व-

[1] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० ३३ (क), ३५ (ख)

गुण कभी मिश्रित नहीं रहता है, यह सर्वदा शुद्ध ही रहता है। गुणों की साम्यावस्था ही को प्रलय कहते हैं।

रजोगुण से जगत् की सृष्टि, रजोगुण में विद्यमान सत्वगुण से स्थिति तथा तमोगुण से संहार होता है। सत्व की अभिमानिनी श्री, रजस् की अभिमानिनी भू, तथा तमस् की अभिमानिनी दुर्गा रमा हैं। ब्रह्मा आदि भी गुणत्रय के अभिमानी हैं।

७—महत्तत्व—इस का उपादान साक्षात गुणत्रय का अंश है। सभी तीनों गुण महत्तत्व रूप में नहीं परिणत होते, कारण महत्तत्व की अपेक्षा मूला-प्रकृति दशगुण अधिक है। प्रलय-काल में महत्तत्व गुणत्रय में लीन हो जाता है। उस समय महत्तत्व बारह भागों में विभक्त होता है। उस से दश भाग शुद्धसत्व में, एक भाग रजस् में तथा एक भाग तमस् में प्रवेश करता है। और फिर सृष्टिकाल में शुद्धसत्व का दश भाग तथा रजस् का एक भाग तमोगुण के साथ मिल जाता है। तब महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। इस में तीन भाग रजस् है, और एक भाग तमस्। इस प्रकार चारों भागों से युक्त महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्व में विद्यमान रजोगुण में सत्वगुण का भी कुछ अंश है, इस लिए महत्तत्व में भी सत्वगुण का अंश रहता ही है। इस महत्तत्व का परिमाण तमोगुण की अपेक्षा दशगुण न्यून है। ब्रह्मा तथा वायु अपनी स्त्रियों सहित महत्तत्व के अभिमानी हैं।

८—अहंकारतत्व—महत्तत्वगत तमोगुण के भाग से 'अहंकार' की उत्पत्ति होती है। इस में दश भाग सत्वगुण, एक अंश रजस् तथा रजस् का दसवां हिस्सा तमस् है। यह महत्तत्व से दशांश न्यून है। गरुड, शेष, रुद्र आदि इस के अभिमानी हैं। इस के तीन भेद हैं—वैकारिक, तैजस तथा तामस।

९—बुद्धितत्व—महत्तत्व से 'बुद्धितत्व' की उत्पत्ति होती है। यह दो प्रकार का है—तत्वरूप तथा ज्ञानरूप। इन में ज्ञानरूप-बुद्धि गुणविशेष है। यह तत्व नहीं माना जाता है। तैजस अहंकार के द्वारा यह उपचित होता है। ब्रह्मा से ले कर उमा पर्यंत इस के अभिमानी हैं।

१०—मनस्तत्व—यह भी दो प्रकार का है—तत्वरूप तथा उस से भिन्न। वैकारिक अहंकार से मनस्तत्व की उत्पत्ति होती है। रुद्र, गरुड, शेष, काम, इन्द्र, अनिरुद्ध, ब्रह्मा, सरस्वती, वायु और चन्द्रमा इस के अभिमानी हैं।

तत्वभिन्न मन, इन्द्रिय है। वह भी दो प्रकार की है—नित्य और अनित्य। नित्य

मनोरूप इद्रिय परमात्मा, लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि सब जीवो का स्वरूप भूत है। यह साक्षी कहलाता है। इसी लिए यह चैतन्य-स्वरूप है। बद्ध जीवो का मन चेतन और अचेतन दोनो है। किंतु मुक्तो का मन केवल चेतन ही है। भगवान् यद्यपि अपने स्वरूप ही से सब भोगो को भोग सकते है तथापि जीव के देह मे रह कर वह जीव के इद्रियो द्वारा ही भोग भोगते है। अनित्य मनोरूप इद्रिय ब्रह्मादि सब जीवो मे है और यह बाह्य पदार्थ है। यह पाँच प्रकार का है—मन, बुद्धि, अहकार, चित्त तथा चेतना। 'मन' सकल्प विकल्पात्मक है। निश्चयात्मिका 'बुद्धि' है। अपने रूप से भिन्न में अपने रूप की मति ही को 'अहकार' कहते है। 'चित्त' स्मरण का हेतु है। कार्य करने की शक्ति स्वरूप चैतन्य ही 'चेतना' है।

११—इद्रियतत्व—अपने-अपने विषयो के प्रति गमन की शक्ति जिस में हो वह 'इद्रिय' है। यह भी दो प्रकार की है—तत्वभूत एव तत्वभिन्न। और भी इस के दो भेद है —ज्ञानेंद्रिय और कर्मेद्रिय। फिर भी यह नित्य और अनित्य भेद से दो प्रकार की है। इस में तत्वरूप और अनित्य ज्ञानेंद्रिय एव कर्मेंद्रिय तो तैजस अहकार से उत्पन्न है, किंतु तत्व-भिन्न और नित्य ज्ञानेंद्रिय तथा कर्मेंद्रिय परमात्मा, लक्ष्मी, आदि सब जीवो के स्वरूप भूत है। ये साक्षी कहलाते है। परमात्मा और लक्ष्मी की दस इद्रिया प्रत्येक सब आदि सब पदार्थों की ग्राहक है। परतु मुक्त तथा बद्ध जीवो की इद्रिया प्रत्येक केवल अपने ही विषय की ग्राहक है। ब्रह्मादि सब जीवो की इद्रिया अनित्य एव तत्वभिन्न है। ब्रह्मादि की भी स्थूल इद्रिया है और इन की उत्पत्ति के सबध में यह कहा गया है कि ब्रह्माडात पंच-भूत सृष्टि के अनतर ब्रह्मादिगत सूक्ष्म इद्रिया ही पाचो भूतो से तथा अहकार से वृद्धि को प्राप्त होती है। और ये ही बाद को स्थूल इद्रिया हो जाती है।[1] अतएव ये प्राकृत इद्रिया है। ब्रह्मा आदि तथा सूर्य आदि इन इद्रियो के अभिमानी देव है।

स्वरूपभूत इद्रिया साक्षी कही जाती है। मुक्तावस्था में इन के द्वारा साक्षात् सभी पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। ससारावस्था में भी साक्षी-स्वरूप इद्रियो के आत्मा, मन, मनोधर्म, सुख-दु ख आदि, अविद्या, काल एव अव्याकृताकाश साक्षात् विषय है। बाह्येंद्रियो के द्वारा शब्द आदि भी साक्षिगोचर है। ज्ञातभाव से या अज्ञातभाव से सभी अतींद्रिय पदार्थ साक्षिगोचर है।

---

[1] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० ४२ (क)

१२—तन्मात्रा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पाँच विषय 'मात्रा' (अर्थात् इंद्रियों के द्वारा जानने के योग्य) कहलाते हैं। ये भी दो प्रकार के हैं—तत्वरूप तथा उस से भिन्न। तत्वरूप तामस अहंकार से उत्पन्न होते हैं, तथा इन्हें 'पंचतन्मात्रा' कहते हैं। ये द्रव्य हैं। इस से भिन्न आकाशादि के गुण जो शब्दादि हैं वे न तो तत्व हैं और न द्रव्य ही हैं। उमा, सुपर्णी, वारुणी, बृहस्पति आदि इन के अभिमान रखने वाले देव हैं।

१३—भूत—इन सब तन्मात्राओं द्वारा तामस अहंकार से आकाश आदि पाँचों भूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द से 'आकाश' की उत्पत्ति होती है। इस के अभिमान रखने वाले विनायक हैं। अहंकार से दशगुण न्यून आकाश है।

१४—ब्रह्मांडतत्व—महत् से ले कर पृथिवी-पर्यंत प्राकृत पदार्थ हैं। ब्रह्मांड तो विकृत पदार्थ है। महदादि की उत्पत्ति अलग-अलग एकमात्र उपादान से होती है, किंतु ब्रह्मांड तो चौबीसों, उपादान से उत्पन्न होता है। इसी लिए कहा गया है कि इन चौबीस तत्वों के द्वारा विष्णु बीज-रूप में हो कर अपने स्वरूप को ब्रह्मांड के रूप में परिणत करते हैं। यह पचास कोटि योजन विस्तीर्ण है।

यह ब्रह्मांड एक ही है और घड़े के दो कपालों के समान इस के दो टुकड़े हैं। ऊपर का हिस्सा तो सोने का है और नीचे वाला चाँदी का। सोने वाला भाग 'द्यौ' (आकाश) कहलाता है, और चाँदी वाला 'पृथिवी'।[१] इस ब्रह्मांड को भगवान् कूर्मरूप में तथा वायु धारण किए हुए हैं। यही सभी प्राणियों का तथा चौदहों भुवन का आवास-स्थान है। संधि-स्थल में क्षुर के धार के समान सूक्ष्म छिद्रों से युक्त है।[२] इस के अभिमान रखने वाले देव चतुर्मुख, शक्र, शेष, सुपर्ण आदि हैं।[३]

ब्रह्मांड के अंतर्गत सृष्टि करने के लिए भगवान् ने महत् आदि तत्वों के अंश को अपने उदर में रख कर ब्रह्मांड के भीतर प्रवेश किया। इस के पश्चात् जलशायी भगवान् के उदर के भीतर वर्तमान जलरूप उपादान कारण से नाभि के द्वारा कमल उत्पन्न

---

[१] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ५३ (ख)
[२] वही, पृ० ५४ (क-ख)
[३] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ५४ (ख)

हुआ[१]। उस से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। इस के बाद फिर ब्रह्मांड के भीतर देवताओं की, मन की, तथा आकाश आदि पंचभूतों की क्रमश उत्पत्ति हुई।[२]

१५—अविद्यातत्व—पंचभूत की सृष्टि के बाद चतुर्मुख ने 'अविद्या' की उत्पत्ति की। यथार्थ में 'अविद्या' या 'माया' अनादि हैं अतएव इस की उत्पत्ति नहीं होती, फिर इस की उत्पत्ति हुई, इस कथन से यह जानना चाहिए कि सूक्ष्म रूप से तो 'अविद्या' सर्वदैव है फिर भी सृष्टि के लिए इस का स्थूल रूप आवश्यक है। अतएव ब्रह्मांड के बाहर ही अविद्या के स्थूल रूप को उत्पन्न कर परमात्मा ने ब्रह्मांड के मध्य में रहने वाले चतुर्मुख में उसे रक्खा और ब्रह्मा ने उसे अपने शरीर से बाहर निकाला। इसी से इस की उत्पत्ति मानी जाती है।[३] पंचभूतों के तमोगुण ही इस के उपादान हैं।[४]

इस की पाँच श्रेणियाँ होती हैं जिन्हें क्रमश मोह, महामोह, तामिस्र, अंधतामिस्र तथा तम कहते हैं। विपर्यय, आग्रह क्रोध, मरण तथा शार्वर इन के क्रमिक नामांतर हैं।[५] इस के जीवाच्छादिका परमाच्छादिका, शैवला तथा माया ये भी चार भेद होते हैं।[६] 'अविद्या' के ये सभी प्रकार जीव ही के आश्रित रहते हैं। प्रत्येक जीव के लिए भिन्न भिन्न अज्ञान है। इस की अभिमानिनी देवी दुर्गा है।[७]

१६—वर्णतत्व—अकारादि 'वर्ण' के ५१ भेद होते हैं। इन्हीं वर्णों से लौकिक तथा वैदिक सभी शब्द बने हुए हैं। इन वर्णों में प्रत्येक देश और काल की अपेक्षा आकाश के समान व्यापक अनादि तथा नित्य हैं।[८] वर्ण नित्य-द्रव्य होने के कारण किसी में समवाय संबंध से नहीं रहता।

१७—अंधकारतत्व—अंधकार भी एक द्रव्य है, यह तेज का अभाव नहीं है, और यह प्रकाश का नाशक है। यदि यह अभाव-स्वरूप होता तो 'नील रंग' का अंधकार

---

[१] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ५५ (क)
[२] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ५५ (क)
[३] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ५६ (क-ख)
[४] तात्पर्य, तृतीयस्कंध। [५] वही।
[६] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ५६ (ख)
[७] तात्पर्य, एकादशस्कंध
[८] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ५९ (ख)

इधर-उधर जाता है' ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव नही होता। नील-रूप तथा चलन-रूप क्रिया के आश्रय होने के कारण अधकार का मूर्त द्रव्य होना सिद्ध होता है।[1]

अधकार जडा प्रकृति रूप उपादान ही से उत्पन्न होता है और वह इतना घनीभूत हो जाता है[2] कि दूसरे कठोर द्रव्य के समान वह भी हथियार से काटा जाता है।[3] महाभारत के युद्ध में जब सूर्य चमक ही रहा था उसी समय कृष्ण भगवान् ने इसे उत्पन्न किया था।[4] भावरूप द्रव्य होने ही के कारण ब्रह्मा ने इस का पान किया था। स्वतत्र रूप से इस की उपलब्धि लोगो को होती है और यह अन्य वस्तुओ को ढाक देता है इस लिए इस का भावरूप होना निश्चित है।[5]

१८—वासनातत्व—स्वप्न मे देखी जाने वाली बातो के उपादान कारण को वासना कहते है।[6] माध्व के मत में स्वप्न मे अनुभूत बाते सभी सत्य मानी जाती है। स्वप्न शुभदायक और अशुभदायक भी होता है। यदि स्वप्न मिथ्या ही होता तो इस के सबध मे शुभ और अशुभ का प्रयोग ही नही होता।[7]

जाग्रत अवस्था मे स्वप्न की बाते नही दीख पडती, इस का कारण यह है कि ईश्वर से प्रेरित हो कर वे विद्युत् के समान स्वप्नावस्था ही म उत्पन्न होती है, और नष्ट भी हो जाती है।[8]

जाग्रत अवस्था में जिन बातो का अनुभव होता हैं उन्ही अनुभवो से अत करण के सहारे ये वासनाए उत्पन्न होती है। अत करण ही इन का आश्रय है। ये अनुभव अनादि काल से चले आ रहे है और प्रत्येक जीव के मन मे सस्कार-रूप से वर्तमान रहते है। अपनी इच्छा से यही मनोगत सस्कार जीव को दिखलाते है और यही दिखलाई देना स्वप्न कहलाता है।

मनोरथ तथा ध्यान मे भी तो सस्कार से उत्पन्न विषय का अनुभव मन के द्वारा

---

[1] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० ६० (ख)
[2] वही, पृ० ६१ (क)
[3] 'पदार्थसग्रह', पृ० ६१ (क)
[4] निर्णय
[5] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६१ (क)
[6] वही, पृ० ६१ (ख)
[7] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० ६१ (ख)
[8] वही, पृ० ६२ (क)

होता है, और स्वप्न में भी ऐसा ही होता है, फिर मनोरथ तथा स्वप्न के अनुभवो में भेद इतना ही है कि मनोरथ की सृष्टि मनुष्य के प्रयत्न से होती है किंतु स्वप्न की सृष्टि अदृष्ट के सहारे ईश्वर के अधीन है।[१] इसी प्रकार ध्यान या उपासना में भी जो भगवान् के सदृश आकार दिखाई देता है वह भी वासनामय है, क्योकि भगवान् साक्षात् ध्यान-विषय तो हैं नही। चित्त का प्रतिबिंब ही उस समय दिखाई देता है। अतएव श्रवण तथा दर्शन आदि से उत्पन्न मानसिक वासनामय वस्तु का अवलोकन करने को ही आचार्यो ने 'ध्यान' कहा है।[२]

१६—कालतत्व—आयु का व्यवस्थापक 'काल' कहलाता है। क्षण, लव, त्रुटि इत्यादि इस के अनेक रूप है। नैयायिको की तरह माध्व ने काल को नित्य नही माना है। इन के मत मे काल प्रकृति से उत्पन्न होता है, और उसी मे लय भी होता है।[३] प्रलय-काल मे भी काल की उत्पत्ति मानी जाती है और इसी लिए काल का आठवा हिस्सा प्रलय-काल कहलाता है।[४] काल मे भी काल होता है, जैसे—'इदानी प्रात काल'। यहा 'इदानी' भी तो कालवाचक ही है।[५] काल सब का आधार है। काल अनित्य होने पर भी काल का प्रवाह नित्य है। यह सब कार्यो की उत्पत्ति का कारण भी है।[६]

२०—प्रतिबिबतत्व—बिब से अलग न रहने वाला और उस के सदृश ही तत्व 'प्रतिबिंब' है।[७] बिंब ही के अधीन इस की सत्ता और क्रिया होने से यह क्रियावान् कहलाता है।[८] स्वय प्रतिबिंब में क्रिया नही है।[९] बिंब और प्रतिबिंब में कही ज्ञान, आनद, आदि गुणो से तथा कही चैतन्य, हाथ, पैर आदि के होने से सादृश्य है। इसी लिए परमात्मा का प्रतिबिंब दैत्यो में भी है।[१०]

---

[१] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६२ (क-ख)
[२] वही।
[३] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६३ (क)
[४] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६३ (ख)
[५] वही, पृ० ६५ (क)
[६] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६५ (क) [७] वही, पृ० ६५ (ख)
[८] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० ६५ (ख)
[९] 'गीताभाष्य'।
[१०] 'मध्वसिद्धांत सार', पृ० ६५ (ख)

यह प्रतिबिंब नित्य और अनित्य दोनो हैं। परमात्मा[1] से अतिरिक्त जितने चेतन हैं सभी परमात्मा के प्रतिबिंब हैं, और ये प्रतिबिंब सभी नित्य हैं। क्योकि परमात्मा-रूप बिंब का तथा अन्य चेतनो का अथवा उन की सन्निधि का नाश कभी नहीं होता। दर्पण मे जो मुख का प्रतिबिंब है वह बिंब-स्वरूप मुख के नाश से, अथवा दर्पण-रूप उपाधि के नाश से, या उन के सन्निधि के नाश से नाश होता है। अतएव ये सब अनित्य प्रतिबिंब हैं। छाया, परिवेष, इंद्रचाप, प्रतिसूर्य, प्रतिध्वनि, स्फटिक का लौहित्य, इत्यादि भी प्रतिबिंब कहलाते हैं।[2]

गुणनिरूपण

द्रव्य के बाद 'गुण' दूसरा तत्व है। माध्व ने 'गुण' का 'दोष' से भिन्न अर्थ में प्रयोग किया है। इन के मत मे रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, गुरुत्व, लघुत्व, मृदुत्व, काठिन्य, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, आलोक, शम, दम, कृपा, तितिक्षा, बल, भय, लज्जा, गांभीर्य, सौंदर्य, धैर्य, स्थैर्य, शौर्य, औदार्य, सौभाग्य आदि अनेक गुण माने गए हैं।

इन गुणो मे रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्द पृथ्वी मे पाकज और अपाकज दोनो है, किंतु अन्य द्रव्यो मे केवल अपाकज का ही भेद है। माध्वमत मे 'पीलुपाकवाद' नहीं मानते, क्योकि यह प्रक्रिया प्रत्यक्षविरुद्ध है।

कर्मनिरूपण

साक्षात् वा परंपरा से पुण्य और पाप का जो असाधारण कारण है वही 'कर्म' है। कर्म के तीन भेद हैं—विहित, निहित तथा उदासीन। विधिपूर्वक की गई यज्ञादि क्रिया 'विहित कर्म' है। इस के काम्य और अकाम्य दो भेद हैं। फल की इच्छा से किया गया कर्म 'काम्य' है, और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए किया गया कर्म 'अकाम्य' है। ये दोनो प्रकार के कर्म ब्रह्मा से ले कर छोटे से छोटे जीव तक सभी करते हैं। 'प्रारब्ध कर्म' भी काम्य ही है। इस मे भी पूर्वतन काम्य पुण्य दो प्रकार का है—प्रारब्ध और अप्रारब्ध। प्रारब्ध का नाश नहीं होता। अप्रारब्ध फिर दो प्रकार का है—इष्ट और अनिष्ट। इष्ट का भी नाश नहीं होता।

---

[1] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६६ (क)
[2] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६८ (क)

६

सत्यलोक के आधिपत्य तथा जगत के सर्जन आदि से भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्रह्मा जो कर्म करते हैं वही उन का काम्य कर्म है। लक्ष्मी-नारायण के जो तपस्यादि कर्म हैं वे लीला के लिए या शत्रुओं को मोहने के लिए होते हैं। ये काम्य नही कहलाते।

मन, वाणी और शरीर से अपने से बडो का अपराध करना ही निषिद्ध कर्म है। इस के अतिरिक्त जिन कर्मों का वेद या तन्मूलक शास्त्र में निषेध है, वे भी 'निषिद्ध कर्म' हैं। जैसे, 'न कलज भक्षयेत'।

विधि और निषेध से भिन्न कर्म 'उदासीन' कहलाता है। यह अनेक प्रकार का है—'उत्क्षेपण'—ऊपर फेंकना, 'अपक्षेपण'—नीचे फेंकना, 'आकुचन'—सिकुडना, 'प्रसरण'—फैलाना, 'गमन'—जाना, 'भ्रमण'—घूमना, 'वमन'—कै करना, 'भोजन'—खाना, 'विदारण'—फाडना इत्यादि। ये कर्म चेतन और अचेतन दोनो ही में रहते हैं।

कर्म पुन दो प्रकार का है—नित्य और अनित्य। ईश्वर, जीव आदि चेतनो के स्वरूप-भूत कर्म नित्य हैं, जैसे—सृष्टि, संहार तथा गमन इत्यादि। अनित्य कर्म शरीर आदि अनित्य वस्तुओं मे हैं।

सामान्य-निरूपण

'सामान्य' के दो भेद हैं—'नित्य' और 'अनित्य'। 'जाति' और 'उपाधि' इस के दो और भी भेद हैं। शास्त्रीय जाति-व्यवहार का जो विषय है वही 'जाति' है, जैसे—ब्राह्मणत्व। इतर निरूपणाधीन निरूपण जिस में हो वही 'उपाधि' है, जैसे—'प्रमेयत्व', 'जीवत्व', 'देवत्व' इत्यादि। जाति, जो 'यावद्वस्तु भावि' है, नित्य जाति है, किंतु 'ब्राह्मणत्व', 'मनुष्यत्व' इत्यादि, 'अयावद्वस्तु भावि' होने के कारण अनित्य है। इसी तरह 'उपाधि' भी नित्य और अनित्य है। 'सर्वज्ञत्व' परमात्मा में नित्य उपाधि है, किंतु 'प्रमेयत्व' घट आदि में अनित्य है।

विशेष-निरूपण

भेद न रहने पर भी भेद के व्यवहार का कारण 'विशेष' है। यह अनत है। यह सभी पदार्थ मे है। इसी 'विशेष' के कारण गुण और गुणी में भेद किया जाता है, किंतु विशेषो मे भी परस्पर भेद के लिए उस पर भी अन्य विशेष नही माना जाता है। वह स्वय विशेष का काम कर लेता है। यह भी नित्य और अनित्य है। ईश्वरादि नित्य द्रव्य में तो नित्य-विशेष है, घटादि अनित्य द्रव्य मे अनित्य-विशेष। 'समवाय' ये नही मानते।

विशेषण के सबध से विशेष का जो आकार है वही 'विशिष्ट' है। नित्य और अनित्य इस के भी दो भेद है। सर्वज्ञत्व आदि विशेषणो से विशिष्ट परब्रह्म आदि 'नित्य-विशिष्ट' है। दड आदि विशेषणो से विशिष्ट दडी आदि 'अनित्य–विशिष्ट' है।

विशिष्ट-निरूपण

हाथ, वितस्ति, आदि से अतिरिक्त पट, गगन आदि प्रत्यक्ष सिद्ध 'अशी-पदार्थ' है। आकाशादि तो नित्य अशी है, किंतु पट आदि अनित्य-अशी।

अंशी-निरूपण

शक्ति-निरूपण

'शक्ति' के चार भेद है—अचिंत्य-शक्ति, सहजशक्ति आधेय-शक्ति, और पदशक्ति।

१—**अचिंत्यशक्ति**—अघटित घटना मे पटीयसी शक्ति ही 'अचिंत्यशक्ति' है। वह परमेश्वर मे सपूर्णरूप से है, और लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि की अपेक्षा परमात्मा म अवधि-रहित है। बैठे रहने पर भी दूर चला जाना, अणुत्व और महत्व दोनो को एक ही समय म अपने मे रखना इत्यादि अचित्यशक्ति के उदाहरण है। लक्ष्मी मे परमात्मा की शक्ति से अनत अश न्यून शक्ति है। लक्ष्मी की शक्ति से कोटिगुण न्यून ब्रह्मा तथा वायु की शक्ति है। इस प्रकार तारतम्य सभी द्रव्यो मे है।

२—**सहजशक्ति**—कार्यमात्र के अनुकूल स्वभावरूप शक्ति ही 'सहजशक्ति' है। जैसे—दड आदि मे घट बनाने की अनुकूल शक्ति। यह अतींद्रिय है। एक प्रकार से यह कारण धर्म-विशेष ही है। यह सभी पदार्थ मे है। यह भी नित्य और अनित्य है—नित्य द्रव्य मे नित्य और अनित्य द्रव्य में अनित्य।

३—**आधेयशक्ति**—अन्य वस्तु मे आहित अर्थात् दी हुई शक्ति 'आधेयशक्ति' है। जैसे—प्रतिष्ठित प्रतिमा की ही पूजा होती है। उस म प्रतिष्ठारूप क्रिया के द्वारा प्रतिमा म पूर्व न रहने वाले देवता का सान्निध्य होता है। उसे ही 'आधेयशक्ति' कहते है। इसी प्रकार 'व्रीहीन् प्रोक्षति' इस से व्रीहि म, कामिनी-चरण के आघात से अशोक वृक्ष मे अकालिक पुष्प की उत्पत्ति, तथा औषध-लेपन से बास के पात्र मे दौडने की शक्ति 'आधेयशक्ति' के उदाहरण है।

४—**पदशक्ति**—पद और उस के अर्थ मे जो वाच्य-वाचक भावसबध है वही

'पदशक्ति' है। गोपद से गो-अर्थ का ज्ञान जिस से हो वही 'पदशक्ति' है। यह स्वर, ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य में रहती है। मुख्या और परममुख्या इस के भेद है। परमात्मा में सभी शब्दो की परममुख्या शक्ति है, अन्य मे केवल मुख्या।

सादृश्य-निरूपण

'यह इस के सदृश है', 'वह उस के सदृश है' इन वाक्यो मे जिस से परस्पर प्रतियोगी और अनुयोगी का अनुभव होता है वही 'सादृश्य' है। यह नाना है। यह भी नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। नित्य द्रव्य में नित्य और अनित्य द्रव्य में अनित्य है।

अभाव-निरूपण

प्रथम प्रतिपत्ति, अर्थात् ज्ञान में निषेधात्मक भान ही 'अभाव' है। प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अन्योन्याभाव तथा अत्यताभाव ये चार इस के भेद है। कार्य की उत्पत्ति से पूर्व ही रहने वाला उस वस्तु का जो अभाव है वही 'प्रागभाव' है। उत्पत्ति के अनतर ही रहने वाला अभाव 'प्रध्वस' है। सार्वकालिक जो अभाव है वही 'अन्योन्याभाव' है। यह पदार्थ स्वरूप ही है। यह पुन नित्य मे रहने वाला 'नित्य' है, जैसे—जीवो के आपस के भेद। और अनित्य मे रहने वाला अनित्य है, जैसे घट-पट मे। अप्रामाणिक प्रतियोगिक जो अभाव, अर्थात् असत् प्रतियोगिक जो अभाव है वही 'अत्यताभाव' है। जैसे—शशशृग।

कारण-विचार

'कारण' के दो भेद है—उपादान तथा अपादान। परिणामी कारण ही को उपादान कारण और अपादान ही को निमित्त कारण भी बतलाया है। कार्य सत् और असत् दोनो होता है। उत्पत्ति के पूर्व कारण-रूप मे तो 'सत्' है किंतु कार्य-रूप में वह 'असत्' है। परतु उत्पत्ति के बाद कार्य-रूप म तो 'सत्' है और कारण-रूप मे 'असत' है। उपादान और उपादेय में भेद और अभेद दोनो ही है। द्रव्य के साथ-साथ रहने वाले गुण, क्रिया, जाति आदि का गुणी, क्रियावान् तथा व्यक्ति के साथ अत्यन अभेद है। द्रव्य के साथ-साथ न रहने वालो मे भेद और अभेद दोनो ही है।

ज्ञान-विचार

अत करण का परिणाम ज्ञान है। इस का उत्पत्ति-क्रम यह है—आत्मा का मन के साथ सयोग होता है, मन इद्रिय के साथ और इंद्रिय अपने विषय के साथ सयुक्त होता है। तब अत करण का परिणाम होता है और इसी परिणाम को ज्ञान कहते है। ज्ञान से इच्छा और इच्छा से प्रवृत्ति होती है। अत करण मे रहने वाले ज्ञान के साथ बाहर के घट, पट आदि से सयोग नही

हो सकता, अतएव इन दोनो में 'विषय-विषयिभाव' सबध माना गया है। प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण इद्रिय और अर्थ का सयोग है। गुण, क्रिया आदि के साथ भी इद्रिय का सयोग ही होता है। इद्रिय और अर्थ के सयोग के द्वारा चक्षु आदि छ इद्रिया ज्ञान को उत्पन्न करती है। सस्कार के द्वारा मन स्मरण का कारण है। इन के मत मे यथार्थ-स्मृति भी प्रमाण है। प्रत्यक्ष आदि जन्य ज्ञान सविकल्पक ही होता है, निर्विकल्पक नही।

प्रत्यक्ष के आठ भेद है—साक्षि, यथार्थ ज्ञान, तथा छ इद्रियो से साक्षात् उत्पन्न ज्ञान। अनुमान के तीन भेद है—अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी, तथा केवलव्यतिरेकी। अनुमान में उतने ही अवयव माने जाते है जितने अनुमिति के लिए आवश्यक हो। पाँच अवयवो का होना आवश्यक नही है। पौरुषेय और अपौरुषेय के भेद मे आगम दो प्रकार का है। आप्तो[1] से कहे जाते ही पर पौरुषेय प्रमाण है। अपौरुषेय वेदवाक्य सभी प्रामाणिक है। वेद के अपौरुषेय होने मे एक तो श्रुति (वेद) ही प्रमाण है और यदि वेद पौरुषेय होता तो धर्म और अधर्म आदि की सिद्धि ही नही होती। इन के मत में प्रमाणो का प्रामाण्य स्वत होता है। ज्ञान के कारण मात्र ही से ज्ञानगत प्रामाण्य का भी बोध होता है इस लिए उत्पत्ति मे स्वतस्त्व है और जहा कही प्रामाण्यग्रह होता है वहा ज्ञान-ग्राहक साक्षी ही के द्वारा प्रामाण्यग्रह होना नियत है, इस प्रकार ज्ञप्ति मे भी स्वतस्त्व है। अप्रामाण्य तो परत होता है और जाना भी जाता है।

प्रलय के अत में सृष्टि करने की परमात्मा को इच्छा होती है। तब वह प्रकृति के गर्भ म प्रवेश कर उसे कार्योन्मुख करते है। बाद तीनो गुणो का परस्पर विभाग होता है।

सृष्टिप्रक्रिया-विचार

बाद इस के महद् से ले कर अड-पर्यंत तत्वो की तथा उन के अभिमान रखने वाले ब्रह्मा आदि देवताओ की सृष्टि करते है। फिर चेतन और अचेतन अशो को उदर में निक्षेप कर परमात्मा ब्रह्माड में प्रवेश करते है। तब देवताओ के मान से हजार वर्ष के अत में अपने नाभि से पद्म (कमल) को उत्पन्न करते है। उस पद्म से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न होते है।

---

[1] 'पदार्थसग्रह', पृ० १०० (क)

और चतुर्मुख जगत की उत्पत्ति के निमित्त हजार दिव्य वर्ष पर्यंत तपस्या करते हैं। उस तपस्या से प्रसन्न भगवान् अपने शरीर से पञ्चभूत की सृष्टि करते हैं। पंचभूत की सहायता से परमात्मा के द्वारा सूक्ष्म रूप में उत्पन्न किए हुए चतुर्दश लोकों को परमात्मा चतुर्मुख के अंदर प्रवेश कर उन्हीं के नाम को धारण कर स्थूल-रूप में उत्पन्न करते हैं। बाद को सभी देवता अंड के भीतर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार क्रमश: अवशिष्ट सृष्टि हुई।

जब राजसिक तथा तामसिक प्रकृति के लोग सात्विकों पर उपद्रव करने लगे हैं तभी भगवान् के भिन्न-भिन्न अवतार हुए। इन में कृष्ण को छोड़ कर और सभी अवतार परमेश्वर के अंशभूत हैं। किंतु एकमात्र अवतार कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।[१] सब से पहले 'मत्स्य' अवतार हुआ। मत्स्य-अवतार दो बार हुआ। 'कूर्म'-अवतार भी दो बार हुआ, क्योंकि अमृत-मथन दो बार हुआ था। 'वराह'-अवतार भी दो बार हुआ। 'नृसिंह'-अवतार एक बार हुआ। 'वामन'-अवतार भी दो बार हुआ। 'राम'-अवतार भी एक ही बार त्रेता-युग में हुआ। 'परशुराम'-अवतार भी एक ही बार हुआ। इसी प्रकार 'कृष्ण'-अवतार एक ही बार हुआ। 'बुद्ध' तथा 'कल्कि' अवतार भी प्रत्येक एक बार हुआ। ये दश अवतार हुए हैं। इन के अतिरिक्त और भी अवतार हैं जैसे 'व्यास'-अवतार 'राम'-अवतार से पहले हुआ था। 'स्वायंभुव' मनु के समय में 'यज्ञ' और 'ऋषभ' ये दोनों अवतार हुए।[२] इन सभी अवतारों का एकमात्र प्रयोजन दुष्टदमन तथा सज्जनोद्धार है।

भगवान् नानारूप से जगत में आ कर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मोह तथा तुरीय इन अवस्थाओं द्वारा पोषण करते हैं। जाग्रत-अवस्था ब्रह्मादि सभी चेतनों में होती है, स्वप्नावस्था सभी जीवों की होती है। सुषुप्ति तथा मोह अवस्था रुद्रादि सभी जीवों की है। तुरीयावस्था मोक्ष है। गर्भावस्था में भी भगवान् ही सब का पोषक है।

इसी प्रकार प्रलयरूप संहार भी होता है। प्रलय दो प्रकार का है—महाप्रलय और अवांतर प्रलय। तीनों गुणों से ले कर ब्रह्मांड-पर्यंत के अभिमानी ब्रह्मा आदि का नाश महाप्रलय में होता है।[३] इस अवसर पर भगवान् सृष्टि के नाश की इच्छा करते

---

[१] 'भागवत', प्रथम स्कंध।
[२] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० १११ (क-ख)
[३] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ११६ (ख)

हुए शेष या संकर्षण के भीतर प्रवेश कर मुख से अग्नि की ज्वाला निकालते हैं और उस से आवरण-रहित ब्रह्माड जल कर भस्म हो जाता है। सभी कार्य अपने-अपने कारण में लीन हो कर केवल प्रकृति मात्र रह जाती है। लक्ष्मी भी जलस्वरूपा हो जाती है और उस महान् जल राशि मे लक्ष्मी-स्वरूप एक वट के पत्र पर शून्य नाम के (शून्यनामा) नारायण शयन करते हैं।[1] प्रलय मे अन्य कोई आश्रय न होने के कारण सभी जीव नारायण के उदर में प्रविष्ट हो कर रहते है। श्वेतद्वीप, अनत-आसन, तथा वैकुठ में श्री के अशो का नाश प्रलय मे नही होना। अघतमस का भी नाश नही होना। रौरव आदि नरको का नाश होना है। 'अवातर प्रलय' के दो विभाग है—'दैनदिन-प्रलय' तथा 'मनुप्रलय'। प्रतिदिन ब्रह्मा के रात्रि आने पर जो नाश होता है वह दैनदिन-प्रलय है। इस अवस्था मे भू, भुव तथा स्व इन्ही तीनो लोको का नाश होना है। इद्र आदि इस समय मे महर्लोक को चले जाते है। प्रत्येक मनु के भोगकाल समाप्ति के अवसर पर जो नाश होता है वही 'मनुप्रलय' है। इस में भूलोक के मनुष्यादि मात्र का नाश होता है। अन्य दोनो लोक के वासी महर्लोक को चले जाते है और तब ये तीनो लोक जल से पूर्ण रहते है।

महाप्रलय-विचार

सभी ज्ञान परमात्मा के अधीन है। शरीर, स्त्री, आदि का ममता-रूप ज्ञान तो ससार का कारण होना है और योग्य अपरोक्ष-रूप ज्ञान मोक्ष का हेतु होना है। चतुर्मुख से ले कर उत्तम श्रेणी के मनुष्यपर्यंत सज्जीवो ही को अपरोक्ष ज्ञान होना है। तमोयोग्यो को नहीं होना। मोक्ष के हेतु अपरोक्ष-रूप ज्ञान के साधन निम्नलिखित है—नाना प्रकार के सासारिक दु ख को देख कर सतो की सगति से इहलौकिक तथा पारलौकिक फल में विराग उत्पन होना, शम, दम, तितिक्षा आदि गुणो से युक्त होना, अध्ययन मे निरत होना, शरणागति, गुरुकुलवास, गुरु के उपदेश से सत्-शास्त्रो को श्रवण करना, उन का मीमासा आदि के द्वारा मनन करना, यथायोग्य गुरुभक्ति, परमात्मा में भक्ति, अपने नीचो के प्रति दया, अपने समान वालो के प्रति स्नेह, अपने से उत्तम म भक्ति, ज्ञानपूर्वक निष्काम होना, शास्त्रो में निषिद्ध बातो का त्याग, भगवान् मे सब का समर्पण, जीवो मे, देवो मे तारतम्य को सम-

---

[1] 'भागवत', तृतीय स्कध।

ज्ञना और भगवान् को सब से ऊँचा जानना, पाँच प्रकार के भेदो का ज्ञान,[१] प्रकृति और पुरुष में विवेक-ज्ञान, अयोग्यो की निंदा, और उपासना। ये ब्रह्मा से ले कर सभी योग्य जीवो को मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक है।

'उपासना' के दो भेद है—सर्वदा शास्त्र का अभ्यास करना तथा ध्यान करना। किसी को अभ्यास से और किसी को ध्यान से अपरोक्ष ज्ञान मिलता है। अन्य सभी विषयो को हेय दृष्टि से देखते हुए भगवान् के विषय में अखड स्मृति[२] को ही ध्यान कहते है। इसी को निदिध्यासन तथा समाधि भी कहा है। यह श्रवण और मनन के द्वारा अज्ञान, सशय तथा मिथ्याज्ञान के नाश होने पर होता है। भगवान् के भिन्न-भिन्न गुणो के अनुसार उपासना में भी अनेक प्रकार होते है। कोई आत्मत्वरूप एकमात्र गुण को ले कर भगवान् की उपासना करते है—वे एक-गुणोपासक है। उत्तम श्रेणी के मनुष्य सत्, चित्, आनद तथा आत्म-स्वरूपवान् इन चारो गुणो से विशिष्ट भगवान् की उपासना करते है। इसी प्रकार देवो में भी ब्रह्मा वेद मे कहे हुए अनत गुण और क्रिया से विशिष्ट भगवान् का ध्यान करते है। सरस्वती क्रिया अश ले कर सामान्य-रूप मे भगवान् की उपासना करती है। अपने-अपने अधिकार के अनुसार देवता लोग भगवान् के भिन्न-भिन्न अश को ले कर उपासना करते है। कोई-कोई ऋषि अपने देह के अतर्गत बिंब ही की उपासना करते है। अप्सराओ को काम-भक्ति से उपासना करनी चाहिए। देवताओ की स्त्रियो को श्वशुर-भाव से भगवान् की उपासना करनी चाहिए। अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उपासना करने से मुक्ति मिलती है अन्यथा उपासना का फल अनर्थ को प्राप्त करता है।[३] उपासना के भेद से दृष्टि में भी भेद है। जैसे कोई अतर्दृष्टि, कोई बहिर्दृष्टि, कोई अवतारदृष्टि, और कोई सर्वदृष्टि होते है। ऋषि लोग अत प्रकाश वाले होते है, इस लिए वे अतर्दृष्टि कहे जाते है। मनुष्य बहि प्रकाश के होते है और अतएव वे बहिर्दृष्टि होते है। देवता लोग सर्वप्रकाश

उपासना-विचार

---

[१] जीव-ईश-भेद, जीवो में परस्पर भेद, जड-ईश-भेद, जड़ो में परस्पर भेद तथा जड़-जीव-भेद।

[२] 'तंत्रसार'

[३] 'मध्वसिद्धातसार', पृ० १४० (ख)

तथा सर्वदृष्टि होते हैं। अतएव मनुष्यों को अग्नि तथा प्रतिमा (मूर्ति) की उपासना करनी चाहिए।[1] उपासना के अनुसार ही ज्ञान भी होता है।[2]

इन साधनाओं के द्वारा 'मोक्ष' होना है। इन के अतिरिक्त हरि का स्मरण, कीर्तन, जप, अर्चन, द्वादशी[3] आदि व्रत आदि अनेक साधन हैं जो भक्ति के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के हेतु हैं। अज्ञान तथा बंधन परमात्मा के अधीन हैं।

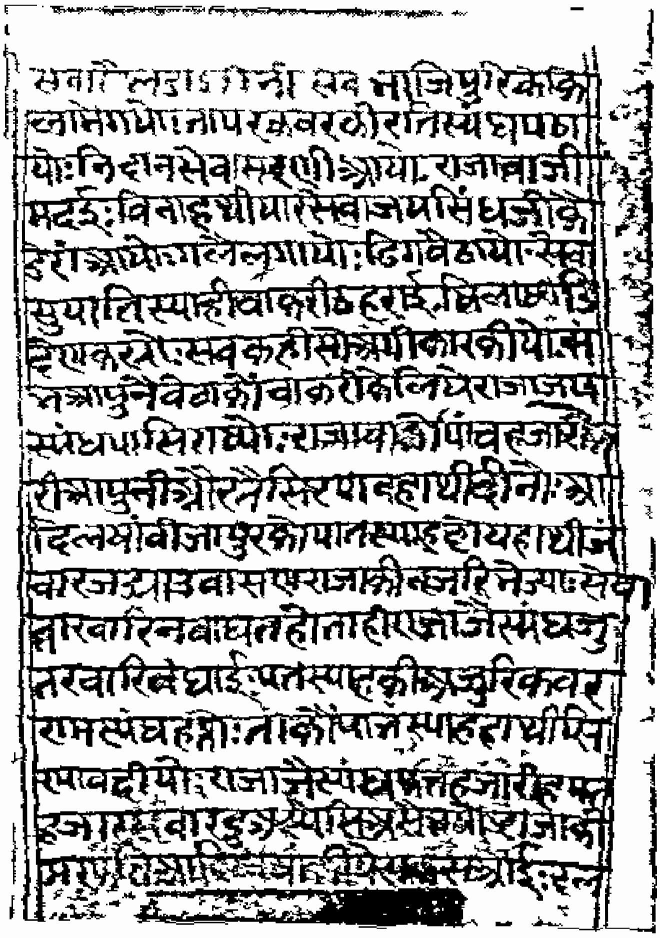
मोक्ष-विचार

मोक्ष भी परमात्मा के अधीन हैं। उक्त साधनों के द्वारा अपरोक्ष ज्ञान होने के बाद परमभक्ति उत्पन्न होती है। तब अत्यंत प्रसादप्राप्ति होती है। इस से प्रकृति अविद्यादि से मोक्ष मिलता है। यह मोक्ष चार प्रकार का है—कर्मक्षय, उत्क्रांतिलय, अर्चिरादिमार्ग, और भोग। अपरोक्ष ज्ञान होने पर सभी संचित पापों का अनिष्ट तथा पुण्यों का सब तरह से नाश हो जाना ही 'कर्मक्षय' कहलाता है। प्रारब्धकर्म का नाश भोग ही से होता है। सत्यलोक के आधिपत्य-रूप पुण्यात्मक प्रारब्धफल का अनुभव ब्रह्मा को शत ब्रह्मकल्पपर्यंत होता है। गरुड तथा शेष को पुण्य-पाप-रूप प्रारब्ध का अनुभव पचास ब्रह्मकल्पपर्यंत होता है। इंद्र और काम को बीस ब्रह्म-कल्पपर्यंत, सूर्य, चंद्र आदि देवताओं को दश कल्पपर्यंत प्रारब्ध कर्म का अनुभव रहता है। अन्य उत्तम श्रेणी के मनुष्यों को एक ब्रह्मकल्प मात्र अनुभव रहता है। प्रारब्ध कर्म के भोग-फल का अनुभव समाप्त कर सुषुम्ना-रूपी ब्रह्मनाडी द्वारा देह से निकल कर ऊपर जीव उठता है। यहां से कोई वायु द्वारा चतुर्मुख तक पहुंचते हैं, किसी को सीधे परमात्मा की प्राप्ति होती है। देवताओं का न तो उत्क्रमण होता है और न अर्चिरादिमार्ग ही होता है। मनुष्य आदि को ही दोनों प्राप्त होते हैं। किंतु इस से मुक्ति नहीं होती है। उत्तम जीवों में देह का लय हो जाने से क्रमश: मोक्ष मिलता है। उत्तरोत्तर देहों में क्रमश: लय होते-होते चतुर्मुख के देह में जब जीव प्रविष्ट हो जाते हैं तब ब्रह्मा के साथ-साथ विरजा नदी[4] में स्नान करने से लिंग-शरीर का नाश[5] हो जाता है। लिंग के नाश से जीव-संबंध का नाश

7/26

[1] 'पदार्थसंग्रह', पृ० १४१ (क)
[2] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० १४१ (ख)
[3] द्वादशी तिथि ही हरिवासर है। इस लिए द्वादशी-व्रत हरि की उपासना का अंग कहा गया है।
[4] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० १५६ (क-ख)
[5] 'पदार्थसंग्रह', पृ० १५६ (ख)

समझा जाता है। अत मे सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य ये चार प्रकार से मुक्ति म भी जीव भोग प्राप्त करता है। सभी अवस्था मे तारतम्य है, और अपने-अपने उपासना के अनुसार सभी ईर्ष्या, आसूया आदि से रहित हो कर आनद में मग्न रहते हैं। ये मुक्ति-ससार में फिर नही आते। ब्रह्मा आदि जब मुक्त हो जाते हैं तब उन मे सृष्टि करने का व्यापार नही रहता हैं।



ब्रजभाषा गद्य में मुगलवंश के इतिहास का एक पृष्ठ
(आकार में संक्षिप्त)

ब्रजभाषा गद्य में दो सौ वर्ष पुराना मुगलवंश का संक्षिप्त इतिहास

[लेखक—श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्, बी०]

हिंदी साहित्य के इतिहास के पन्ने उलटने पर यह ज्ञात हो जाता है कि उस का प्राय सब गद्य-भाग एक सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नही है, और जो कुछ पहले का है वह भी विशेषत धर्म-सबधी है। कुछ पुस्तकें केवल सस्कृत ग्रथो की टीका मात्र है और कुछ भक्ति-सबधी हैं। तथा धर्मप्रचार की दृष्टि से सकलित की गई हैं। इतिहास, जीवनी तथा अन्य गहन विषयो पर ब्रजभाषा या खडीबोली हिंदी मे ग्रथ प्राप्त नहीं होते। राजस्थानी मे जो दो चार ख्याते प्राप्त है, वे राजस्थान के एक-एक राजवश की ख्यात है और उन मे भी एक भी ऐसी नही है, जिस मे दिल्लीश मुगलवश का शुद्ध इतिहास दिया गया हो। केवल अपने-अपने राजवश से सबध रखने वाली घटनाओ के सिलसिले मे जो कुछ उल्लेख हो सका है, वही हुआ है। अत ऐसी हालत में ब्रजभाषा गद्य म यदि कोई ऐसा इतिहास प्राप्त हो, जिस में सिलसिलेवार अकबर के समय से मुहम्मदशाह के समय तक का पूरा इतिहास दिया गया हो तो वह कितना भी सक्षिप्त हो तब भी सग्रहणीय है। फारसी म इतने बडे-बडे तथा समकालीन इतिहास-ग्रथो के रहते हुए हिंदी म इन का अभाव विशेष खटकता है। खोज म जो नए-नए ग्रथ मिलते जाते है, वे प्राय सभी काव्य ग्रथ होते है और यदि कोई गद्यग्रथ मिले भी तो वही कथा-कहानी टीका टिप्पणी ही के निकलते है।

कुछ समय हुए, एक स्थानीय सज्जन द्वारा मुझे वह हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई जो इस लेख का विषय है, और जिस का मूल पाठ भी प्रस्तुत किया जाता है।

इस पुस्तक के आरभ के चार पृष्ठ, ६वा पृष्ठ, २६वा पृष्ठ तथा कुछ अत के पृष्ठ जिन की सख्या का अनुमान नहीं किया जा सकता, खो गए हैं। अतिम पृष्ठ की सख्या ५४ है। इस का आकार लगभग चौथाई फुल्सकेप है। और प्रति पृष्ठ मे औसतन १८ पक्तिया

है। आदि के पृष्ठो के अभाव में पुस्तक का नाम नही ज्ञात होता। पाँचवें पृष्ठ से पुस्तक का आरभ होता है, जिस मे मुगलराज्य सबधी बहुत से शब्द मात्र दिए हैं। 'सूब, सरकार, प्रगना, मौजे-रकबा, मैदानी चौधरी, कानूनगो, हासिल, सायर, अबबाब, खालसा, जागीर, दवाब, आल्तमगा, इनाम, खेल, बीघा, बिसवा, अमीन' इतनी प्रथम चार पक्तिया हैं। इस प्रकार पाँचवा पृष्ठ समाप्त होने पर छठे से इतिहास शुरु होता है, जो पूरा आगे दे दिया गया है। यह बाइसवें पृष्ठ पर समाप्त होता है, तब श्री गणेशायनम कर के चौंतीस दोहे और चौपाई दिए गए हैं, जो नीति तथा शृगार दोनो के हैं। इस के अनतर 'अथ महाराजि माधो स्यघ जी कस्य बरनन' नामक पुस्तिका दो पृष्ठो मे है। इस का अत है—'एता प्रतापतो लिख्या है, दिन प्रति राज बधतो है, नए कारषाने चले जाते हैं, शुभ भवतु।' इस से इतना निश्चय होता है कि लेखक राजा माधोसिंह का समकालीन है। इस के बाद भक्तमाल है, जिस में तेरह दोहे हैं और अत में 'इति भक्ति भावनिका सपूर्ण' लिखा है।

उक्त भक्ति-भावना के बाद २८ वे पृष्ठ में हिंदुस्तान की 'पातस्याही' का विस्तार-प्रमाण दिया है और बडासल से गजनी तक के बीच के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरो की दूरी दी गई है। २९वा पृष्ठ गायब है और ३०वें मे मोदीखाना, रिकाबखाना आदि खानो की सूची दी है। डेढ पृष्ठो में अमीन, करोडी आदि के काम लिखे गए हैं। इस के अनतर ढाई पृष्ठ मे दो, तीन तथा चार आवश्यक पदार्थो के उल्लेख है। फिर डेढ पष्ठ मे सस्कृत में दिनचर्या वर्णित है। इस के बाद डेढ पृष्ठो मे 'अथ साल का भेद' दिया है। इस मे ऊनी, जरी आदि वस्त्रो के नाम, रग आदि दिए गए है। इस के अनतर अत तक वार्ता है अर्थात् तैमूर के समय से औरगजेब के समय तक की बहुत सी कहानी, चुटकुले आदि कहे गए हैं, जिन की सख्या ६४ हैं, ६५ वी अपूर्ण रह गई है।

इतना तो हस्तलिखित पुस्तक के विषय में लिखा जा सका, पर रचयिता तथा प्रतिलिपि कर्त्ता और रचनाकाल तथा प्रतिलिपि-काल के बारे में कही कुछ उल्लेख नही हुआ है। समय के विषय में कुछ अनुमान भी लगाया जा सकता है पर नाम के लिए तो वह भी सभव नही। रचना काल के विषय में निम्नलिखित बाते विचारणीय है —

१—मुगलवश का सक्षिप्त इतिहास अकबर के ३७ वे जल्सी वर्ष सन् १५९२ ई० मे जयपुराधीश राजा मानसिंह के उडीसा विजय से आरभ किया जा कर स० १८०५ (सन् १७४८ ई०) में मुहम्मदशाह की मृत्यु पर अहमदशाह के गद्दी पर बैठने तक समाप्त

हुआ है। 'इति एक भेद' दे देने पर भी लेखक पुनः दिल्ली की अशान्तिमय स्थिति को देख-कर मानों लिखता है कि मनसूर अली वज़ीर से प्रबंध ठीक न हो सका और बादशाह से उस की मर्ज़ी नहीं मिली। इस वज़ीर के समय सूरजमल जाट का प्रताप बढ़ा और सं० १८२१ तक बढ़ता रहा। इतिहास से ज्ञात होता है कि सूरजमल इसी वर्ष युद्ध में मारे गए थे। इन वाक्यों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि लेखक उन्नीसवीं विक्रमीय शताब्दि के आरंभ में मौजूद था, और यह इतिहास सं० १८०५ के बाद तथा सं० १८२१ के पहले लिखा जा चुका था। इति के बाद का अंश पीछे से सूरजमल की मृत्यु पर जोड़ा गया मालूम होता है। नजीब खाँ रुहेला से युद्ध करते हुए सूरजमल मारे गए थे, जिन के पुत्र जवाहिर सिंह ने गद्दी पर बैठते ही बदला लेने के लिए दिल्ली पर आक्रमण कर वहाँ बहुत उपद्रव मचाया था। पर इस घटना का इस में उल्लेख नहीं हुआ है।

२—जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह की मृत्यु सं० १८०० में हुई तब उन के पुत्र ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठे। इन की मृत्यु पर इन के छोटे भाई माधोसिंह जी सं० १८०८ ई० में गद्दी पर बैठे और उन्हों ने सत्रह वर्ष राज्य किया। इन की मृत्यु सन् १७६८ ई० (सं० १८२५) में हुई थी। इन्हीं माधोसिंह जी का जो वर्णन लिखा गया है वह सब वर्तमान क्रिया में है। लिखते हैं कि 'सं० १८०७ तेइस वर्ष की अवस्था में जयपुर तैं पधारि आंबेरि का राज्य पाया दिन प्रति राज वधतो है।' इस से यह निश्चय हो जाता है कि यह रचना सं १८२५ के पहले ही की है।

३—हस्तलिखित प्रति के कागज़, लिखावट तथा उस की दशा से भी यह निश्चय रूप से ज्ञात होता है कि यह प्रति डो पौने दो सौ वर्ष से कम प्राचीन नहीं है। हो सकता है कि प्रति लेखक की निज की हो और इसी से उस का नाम आदि न आया हो।

उपर्युक्त विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त इतिहास सं० १८२०–१ की या उस के कुछ पहिले की रचना है।

रचयिता के विषय में इतना ठीक कहा जा सकता है कि वह ब्रजभाषा-भाषी था क्योंकि इस प्रति में मुख्यतः गद्य ही है और गद्य के लिए ब्रजमंडल के बाहर के साहित्यिकों ने ब्रजभाषा नहीं अपनाया था। वह जयपुर के दरबार का आश्रित अवश्य था, जैसा कि माधोसिंह जी की दिनचर्या के विवरण से ज्ञात होता है और उसने इतिहास का आरम्भ भी इस ने राजा मानसिंह के विजय के उल्लेख ही से किया है। भरतपुर-नरेश सूरजमल की

भी प्रशसा की है, इस से उस दरबार में भी इस का आश्रय पाना जाना जाता है।

अब यह देखना चाहिए कि इस इतिहास मे जो कुछ विवरण दिया गया है, वह कहा तक विश्वसनीय हो सकता है। पहली बात तो यह है कि लेखक ने जिस वर्ष से अपना इतिहास आरभ किया है और जिस वर्ष तक उसे समाप्त किया है उस के बीच की जितनी घटनाओ का विवरण दिया है, उन मे एक भी विश्रृखल नही है अर्थात् लेखक ने बाद की घटना को पहले और पहले की घटना को बाद मे नही लिखा है। उस ने कुल घटनाक्रम को सिलसिलेवार दिया है। लेखक हिजरी सन् से कदाचित परिचित न था इस लिए उस ने उस का उल्लेख न कर बराबर विक्रमी सवत का प्रयोग किया है। कही-कही जलूसी सन् भी दिए है और वे, जैसा टिप्पणी मे दिखलाया गया है बिल्कुल शुद्ध है। यद्यपि लेखक एक फारसी शेर उद्धृत करने के कारण फारसी का कुछ ज्ञाता मालूम होता है, पर उस ने मुसलमानो के सभी नाम तथा फारसी शब्दो को व्रजभाषा का रूप दे दिया है, जैसे मुलाजमति, पातस्याह, फत्ते, फरक्सेर आदि।

पाद टिप्पणिया पूर्ण रूप से नही दी गई है, केवल खास-खास स्थलो पर इस लिए लगा दी गई है कि यदि पाठक-गण इस पुस्तक की जाँच करना चाहे तो यत्र-तत्र उन विशद ग्रथो से मिलान कर सकें। अब वह इतिहास पूरा यहा उद्धृत कर दिया जाता है—

"राजा मानसिंघ उडीसा का सुबा मैं पातस्यह कौ सिक्कौ पुतबो चलायो। तहा के पठाणन के पेसक्स हजुरी ल्याये।[1] कधार कौ पातस्याह ईरान की पतस्याह की फोज सु भाजि हजुरि आयो, पच हजारी भयो, मुल्तान के सुबा जागिर मैं पायो। पातस्याही फौज जाय कधार लीनी। वा दिन तैं कधार हिंदुस्थान की पातस्याही मैं ठहरी।[2] पाछैं ठट्ठा हू लयो। पातस्याह की सन् ३४ मै तानसैन कलावन,[3] सन् ४० मैं सेष अबुल् फैज फैंजी मरचो।[4] साहजादा सुलतान मुराद की दषिन पठयौ। सौ वरार कौ सुबा वा अहमद-

---

[1] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) भा० १, पृ० २६७, इलि० डा० जि० ६ पृ० ८६-७

[2] पारसीक दुर्गाध्यक्ष मुजफ्फर हुसेन मिर्ज़ा ने सन् १५९५ ई० में कधार अकबर को सौंप दिया। (स्मिथ, 'अकबर' पृ० २४८)

[3] यह सन् १५८९ ई० (सन् ९९७ हि०) के अप्रैल में मरा था, जो अकबर का ३४वा जलूसी वर्ष था।

[4] अबुल फैज फैजी की मृत्यु सन् १००४ हि० के १० सफर (१५०९५-९८) को हुई थी, जो ४० वा जलूसी वर्ष था। ('मआसिरुल् उमरा' फारसी, भा० २)

नगर फत्ते करी। बदयस हुयो, तब पातस्याह सेष अबुल फजल कौं राह भेज्यो। दैवान् साहिजादो परलोक भयो, सब काम सेष उठाये। पातस्याह दानीयाल साहिजादे कु दषिन भेज्या, पाछे तें आपहु लाहौर तें कूच कीयौ। बटाले आयो तब सुणी मुसल्मान फकीर वा सन्यासी को परसपर जुध भयो। मुसलमान प्रबल रहे। कई देवालये ढाये, या अनीति सुणि पातिस्याह कितनें फकीरन कौ कैद कीया, देवालये नये बणाय दये। ऊहा तें आगरे में कोई दिन रहा। सेष अबुल फजल की अरज दामनी पर दषिण कु कूच कीयौ। राह में चंबल की नदी उतरतें एक हाथी का पाव की जंजीर लोह की हती सो सुवर्ण भई। पातस्याह वाही घाट करिकें कैऊ हाथी जंजीर सहीत ऊतारे, पाषाण बटोरे परतु पारस पायो नही। बुरहानपुर पहुचें। सेष अबुल फजल आमेर घाट घेरयो, बहुचिर बित्यो तब सेष कांगुरा परी तनाव लगाये। आप कैयू लोगनि संगि लैं कील्ला में कुदयो गढ फत्ते भयो।[1] अहमदनगर तिलगानू हू लयो। पातस्याह अबुल फजल कौ हजुरी आगरे बुलायौ। वा दिन तें पातस्याजादो जहांगीर यलाहबाद में बागी भयो हतो सो अबुल फजल सो दुष पायो हतो सो या ते मालवा की राह तें आवतें मरायो। या बात तें पातस्याह बडो सोच कीयो, जो वै बडो विद्यावान, अरबी, फारसी, तुरकी, संस्कृत स्वमत परमत निपुण, राज कारज में दछ, सूरवीर मुनसी ग्रथ करता हतो।[2] जदि पातस्याह दषिन की महीम गये हते तब जहांगीर कौ राजा मानसिंघ कौं साथ दे राणा उदैसिंघ पर पठायो हतो सो वा काम को लगे हते, जैसे में बगाला को उपद्रव कुवर महासिंघ को भजिनो सुण्यो। यातें जहांगीर इलाहाबास[3] जाय तहा पातस्याही अमल जागीर उठाय आप अमल कीयो। तीस लाख रुपये प्रजनो पटणा कौ आवत हैं सो छीन लीनो। तीस हजार असवार संग पातस्याह सो मिलवे को आगरा की वोर चल्यो। एक बार तो पातस्याह के लिषे तें हटि गयो, वैहन बेगम समुझाई, राणा परि विदा भयो तहा तें यागी होय फीरी इलाहाबास गयो। पातस्याह की माता मरी। पातस्याह भद्र भये, रयी बाधे लई, जहांगीर मानिम को हजुरी

[1] स्मिथ, 'अक्बर' पृ० २७१-३
[2] 'मआसिरुल् उमरा' (फा०) भा० २ पृ० ६१६-१८
[3] स० १८२० तक, इस से ज्ञात होता हैं कि, इलाहाबाद इसी नाम से पुकारा जाता था।

आयौ। साहजादो दानीयाल दषिण म पदातपय सौ मर्यौ।[1] पाछै पातस्याह हू रोग स मरे। बरस पातस्याही करी।[2] आगरा म मक्बरा भयो। सवत १६५७ अबुल फजल पर। नूरदी जहागीर जाकौ पुर नाम सलीम सो सतीस बरस को आगरे म तषत बठ्यो।[3] जमाना बग कौ महावत खा कीयौ।[4] राजा मानसिंघ बगाला की सूबदारी पाई। बडो बटा सुल्तान पुसरो यागी होय चन्हाड नदी ल्यौ गयो ऊहा त लाहौर म पातस्याह पासि पकड्यौ आयौ।[5] निदान बंदिषाना म मर्यौ। पातस्याह काबुल गय। नूरजहा बगम सेर अफगन की स्त्री ईनायती बगम एतमादद्दौला की बटी आसफ खा की छोटी बहन हुता। प्रथम तो अलि कुली खा ईरान के पातस्याह को सफरची अरथात परोसिबो वारो हता सो हिंदुस्थान म आइ सेर अफगन षा को षिताब बगाला म जागीर पाय तहाई को तई नात भयो। सुभाव को दुस्ट हतो या त बगाला कौ सुबादार सौ मिल्ब गयो तह ल्रा म जुध भयो दोउ मारे गय। वाको माल भराय हजुरी आई। तेके पट की एक बटी हती सो साहिजादे सहिरयार सौ ब्याह करी दीनी। नूरजहा अति सुदरि चतुरी विद्या म निपुण, कवित्ता दछ इगताप उदर राज कारज म सुबधि स्वधरम सावधान हावभाव लीला विलास धुरधुर नृत्यगीत म पबरदारी सौरय धरय सपन हती। तापर पातस्याह अति मोहित होई मुष्य बगम कीनी। जाको छणमात्र बिरह पातस्याह कौ दुसह हतो। सब पातस्याही कौ काम नूरजहा क आधीन भय।[6] पातस्याह को नाम मात्र रह्यो ओर हुकुम सब नरजहा को ठहरयो। कागद फरमान उगर बगम के नाम क चले। सिक्का म पातस्याह वा बगम को नाम दोउन कौ नाम हतो। पातस्याह कहते हुवे मो कौं एक सीसौ मदिरा कौ वा आधसेर मास चहिय और सरब बगम कौ हुकम हासिल।[7] षान आलम एल्ची ईरान

---

[1] सन १६०४ ई० के अप्रल में मद्यपान से मत्यु हुई।

[2] १७ अक्तूबर १६०५ ई० को मत्यु हुई। इस का जन्म २३ नवबर सन १५४२ ई० को हुआ था इस लिए वह तिरसठ वष की अवस्था में मरा।

[3] वेणीप्रसाद जहागीर पृ० १२६–३०

[4] वेणीप्रसाद 'जहांगीर पृ० १३५ [5] वही पृ० १३६–४७

[6] 'मआसिरुल उमरा' भा० १ एतमादुद्दौला की जीवनी पृ० १२७–३४ उस में नूरजहां की माता का नाम नहीं दिया ह। पर डॉ० वेणीप्रसाद असमत बीबी लिखते ह।

[7] वेणीप्रसाद 'जहागीर', पृ० १७–८५

गयो हतो सो आयो। ईरान को पातस्याह वासौं निपट राजी रह्यौ। जान आलमैं नाम दियो हतो। बडो चतुर दूतकरम मै सावधान हतो। ईरान को पातस्याह सनेह बस वाके घर आवतो।[1] पातस्याहजादो सुल्तान षुर्रम के तीन बेटा भये दारासीकोह, मुराद बकस। दो[2] पहले भये हते। गुजरात के सूबा दोह्दगाव मै औरंगजेब भयौ।[3] आगरा तै लगाय लाहौर ताईं पौणा दो दो कोस.. .।[4]

"पातस्याह कौ अपनै काबू मै काबिल लै गयौ। राह मै अटक्तै आसफ षा कौ बेटा समेत बंद करचौ। काबिल ते हिंदुस्थान की वोर फिरे तब नूरजहा गुपतषो वी नीगैदास्ती कीनी जबै रहतासगढ आये। तब पातस्याह षुस होय कोप पुरबक महाबत षा कौ ठठै साह महम रुषसत कीनी। आसफ षा उगैरे कौ कैद सौ छुडायो। महाबत षा यागी होय दषिन मै साहजिहा सौ जाय मिलौ।[5] पातस्याह बटाले आवत ६० साठी वरस की उमरी मै मरे।[6] लाहौर मै मकबरा भयो। विचि मै साहिजहा कौ दूर जाणि आसफ षा यद्यपि अंतहकरण सौ मिल्यौ हतौ तथापि सलाह के लिये दावर बषस बेटा सुलतान षुर्रम कौ कैद तै निकासि पातस्याह कीनौ। लाहौर मै दानी-याल पातस्याहजादे के बेटा पकडे। निदान साहिजहा के लिये तै मारि डारे। स० १६६६ मै अबुल मुजफ्फर सहबुद्दीन साहजहा तीसरो बेटा जहागीर कौ ३७ वरस की ऊमरी मै दषिन मै पातस्याह भये। लाहौर मै सिक्का षुतबा पातस्याह को भयो। षानजहा लोदी वो दषिन के सूबा सु आये, आप हिंदुस्थान कौ चले। षानजहा यागी होय मालवा मै पाल-

---

[1] बेणीप्रसाद, 'जहाँगीर', पृ० ३३६

[2] शुजाअ का नाम नहीं दिया गया है, पर वही औरंगजेब से बडा था। बाद में नाम आ गया है।

[3] यदुनाथ सरकार के 'औरंगज़ेब' में इसी दोहद गाँव में सन् १६१८ ई० में जन्म लिखा है। (पृ० स०१) 'तुज़ुक' (पृ० २५०–१)

[4] एस.के. बाद हो.का.एक.पृष्ठ गुम. हुआ. है।. शाहजहां.के.पूरे.विद्रोह का, और महाबत खां के विद्रोह के आरंभ का उसी पृष्ठ में विवरण रहा होगा।

[5] बेणीप्रसाद, 'जहाँगीर', पृ० ३६२–४१०

[6] जहाँगीर छुटकारे के बाद लाहौर की गर्मी के कारण काश्मीर गए और वहा से लौटते समय रावी नदी के किनारे राजपुरी (राजौर) से एक पड़ाव आगे बढ़ने हो मार्ग में २८ अक्टूबर सन् १६२७ ई० को ५८ सौर वर्ष और ६० चान्द्र वर्ष की अवस्था में मरे।

८

स्याह कौ मारग रोकी रह्यौ। पातस्याह मालवा की राह छोडि दई, गुजरात होई आगरा आय[1]। राह मैं राणा कर्ण मिल्यो। अजमेरि कौ सूवा महावत खा कू दयो। राजा जै सिंघ कछवाहौ आय मुलाजमनि कीनी। आसफ खा उकील मुतलक भयो। यन की पातस्याही मे दौलताबाद कौ किला फत्ते भयौ। कधार कौ किला भयौ, अलीमरदा पा ईरान सौ आई चाकर रह्यौ। साहजहानाबाद वसायो। बलप तूरान की पात्तिस्याही लई। अल्पकावस्था मैं पातस्याही को वटवारो वेटानि कौ विचारि या रीति कीनी। प्रथम वेटा दारा सिकोह कौ वल अह्द अरयात युवराज कीनौ, हजूरि मै राख्यौ। दूसरो वेटा मुहमद सुजायत (मुहम्मद शुजाअ) कौ वगाल दियो। औरगजेब कौं दषिन, मुरादवषस कौ गुजरात दई। निदान दिली मे पातस्याह दीरघ रोगी भये। सब अपतयार दारा सिकोह कौ भयौ। सर्वत्र उपद्रव उठ्यौ। मुरादवकस गुजरात मे तषत वैठे। अैसैं वगाल मैं मुहम्मद सुजाय कीनी, बनारस लौं आयौ। या बात तैं दारा सिकोह बाय के रोग ही मं आगरे नाव की राह जमुना के मारग ल्यायो। तहा तैं सुलैमान सिकोह वाके वेटा कौं राजा जयसिंघ कौं वडी फौज तोपपानौ दै सुजाय पर विदा कीयो। सुजा लडाई मैं भाजि लुटि वगालैं गयो। राजा जसवत सिंघ राठोड कौं मालवा भेज्यो, दषिन की राह मैं आडो रहै। दारा सिकोह के हाथ मैं सिगरी पातस्याही हती, तऊ औरगजेब तैं डरतो रहत हो। सुजा की मुहिम के मिस दषिन तं औरगजेब के तईनाती उमराव बुलाये। या वात तें औरगजेब दषिन तैं वाप पासि चल्यो। मालवा मैं वडे जुध पुरवक राजा जसवत कौं भजाय आगरा की दस कोसी दारा सिकोह सामुनै आयो। महाजुध भयो। निदान वह भाजि एक राति आगरे मैं रहि लाज करि पातस्याह कौं बिना मिलै ही दिल्ली गयो। औरगजेब फत्ते पाई, आगरा मैं आय वाप कू कैद करि दिल्ली चल्यो। राह मैं मथुरा जी के डेरा मुरादवक्स कौं कैद कीनौं। दारा सिकोह दिली तैं भाजि लाहौर गयो। स० १७१८ उमर ४० मैं अबुजफर मुहीयुदिन पातस्याह गाजी आलमगीर औरगजेब दिली आय तषत वैठि लाहौर चले। दारासिकोह लाहौर तै षजाना पातस्याही लै मुल्तान गये। पातस्याह मुल्तान की ओर मुरे। राजा जयस्यंघ

---

[1] बनारसीप्रसाद, 'शाहजहा' पृ० ५६–६३,६९

लाहोर तें आय मिले। या खबरि सौं दारा सिकोह २२ लाप रुपये लै मुलतान सौं भषर कौं भाजें। पातस्याह वाके पीछे फौज बिदा करि मुहमद सुजा बंगाला सौं उपद्रव कै लियें आवत हो ताके सामुंहे चले। लाहोर सहर कौं सिरे सवारी देषत गये। षलीलुल्ला षा कौं लाहोर की सूबेदारी वाके बेटा कूं मीर षा कौ षिताब दयौ। दिल्ली आये। राजा जसवन्तसिंघ दिल्ली में हुकम सौं रह्यौ हतो तानें आय मुलाजमति कीनी। मकनपुर षेत्र सहर में तहा पीर की दरगाह है इलाहाबाद के सुबा में तहा एक ओर तें सुजा एक ओर तें पातस्याह आये संग्राम भारी भयो। पातस्याह की फौज अति बिह्वल भई। ता औसर में राजा जसवन्त स्यघ यागी होय पातस्याही लस्कर बजार कारखाना लूटि ल्ये। बडा उपद्रव भयो। पातस्याह धीरज धरी लोगन की दिलासा करी। सुजा की लडाई कौं चले। प्रथम तो सुजा की फौज गालिब भई, निदान भज्यो। पातस्याह वाके पाछे फौज भेजि आपुनैं आगरे आयो। दारा सिकोह गुजरात आयो सुनि वा राजा जसवन्त स्यघ के षतिकार लियें कूच कीनौ। रायसिंह वाके भतीजा कौं (जोधपुर के राजा का) षिताब, चारि हजारी मनसब दया। दारा सिकोह राजा जसवन्त स्यघ के लियें तें अजमेरि आयो। पातस्याह भी अजमेरि आये तब राजा जयसिंघ कछवाहे की अरज सौं राजा जसवन्त स्यघ की तकसीर माफ भई। यह ठहरी जो दारा सिकोह के सामिलि न होय। दारा सिकोह नैं जसवन्त कौ कंऊ प्रकारे के लोभ लालच दीये, वाकौ बुलायो, बेटा हू कु ल्यायन कूं पठायो तऊ वह न आयो। अजमेरि की घाटी पर परस्पर महा जुध भयो, निदान दारा सिकोह भाजि गुजरात गयो, तहा हू दषल न पायो तब कछ दम की राह भषर में होय बकार की जात मलिक जिवन जमींदार दावर के नें पकड्यो। पाछे नें राजा जयसिंघ पातस्याही फौजें लै गये हते। सौ वाकौं मलिक जिवन पास तें लै कै हजूरि ल्यायो।[1] पातस्याह आगरे के किला कौ परकोटा बनायो, ताके कौ हामिद गहदारि की मवेस माफ करयौ। पातस्याह जादौ मुहमद सुल्तान सुजा कैं पाछें पातस्याही फौज लै बंगाल गयो हतो सो यागी होय पातस्याही फौज में तें उठि सुजा पासि गयो। बाकानन्द में सुजा का निरभाग देषि पातिस्याही फौज में आयो। पातस्याह वाकूं बुलाय दिल्ली में सलीमगढ चढायो। दिल्ली के किला में मसीत

[1] यदुनाथ सरकार, 'औरंगजेब' भाग २ में इस भ्रातृयुद्ध का विस्तृत विवरण है। इस पुस्तक में दिया हुआ घटनाक्रम बिल्कुल ठीक उस से मिलता है।

बनाई। अमीर षा बिकानेरि राव करण परि बिदा भयौ। वाहि हजूरि ल्याय तकसीर माफ कराई। प्रथम सुलेमान सिकोह बडा बेटा दारा सिकोह कौ बाप कौ बुलायो बंगाला तैं आय बाप की तबाई सुनि पातस्याह के भय सौं श्रीनगर के पास पासि रह्यौ हतो ताकौ राजा नैं बदर रामस्यघ कछवाहि कौं बुलाई सौंपि दयौ। पातस्याह वाकौं और मुहम्मद सुलतान अपुने बेटा कौं और मुरादबक्स भया कौं गुवालेर गढ चढाई दयौ। ईरान कौ पातस्याह छ्यासठि घोडा इराकी, मोती कौ दाणो सैंतिस रति कौ साठी हजार कौ और च्यारि लाष कौ माल भेज्यो हतो सो गुदरचो। ऐलची कौ लाष रुपये रोक, हाथी, जवाहीर सिवाई बषसिस हुई। बुषारा कै पातस्याह चालीस हजार को लालरो एक और तुरकी घोडा और बुखारी ऊंट, तोहफा अनेक अनेक भेज्ये सो गुजरे। बीस हजार रुपया और जवाहिर उगैरै एलची कौ इनाम भये। ऐसैं तूरान सूं नजरि आई। पातस्याहजादा मुहमद मोजम कौं ब्याह राजा रूपसिंह राठौड की बेटी सौं भयौ। यह राजा जसवंत स्यघ के बेनका के बडा हतो। महाबत षा कौ तगीरी काबुल की सूबेदारी अमीर षा कौं भई। बंगाला में षानषाना आसाम कामरुप गाम नामरुप में अमल कीयो।[१] जाकी गैल में ब्रह्मावरत महनद बाकैंऊ अगम्य नदी वा दुरगम अटवी वृछ झाडी अत्युनत्त पहाड ता परि किला पहाडन में दरे बडी बडी भीतैं मेह में जहा सर्वत्र जलमग होत है तहा रेत मैं तै सुवर्ण निकसत है। वै ही और कजलीवन हाथीन की उतपति भूमि है। ब्रह्मावरत नदी कौ ऊतर मैं उतर कू दषिन मैं दषिण क कूलह कहावतु है। आसाम की राजधानी करगाव है। ए सरहद श्रीनगर कै पहाड जाई लागी है। आसाम कै देस ३५० कोस लबाई मे ८ दिन की राह नीच कौ देस है। आसाम बहुधा धान्य है, चावल, उडद बहोत है, कहू कहू मसुर होत है। कपडानि मैं मुसबर, मषमल, टाटबषी, बफ्ता तहा होत है। लौंण वा देस मैं दुरलभ। अगर तहा ही तै आवत है। वाही देश मे कईक कोसनि मे पहाडन मे ऐसे लोग बसत है ज नगन सरीर हैं, सरबभछी हैं। स्वान, बिलाव, सरप, चूहा,

---

[१] मीर जुमला खानखाना ने सन् १६६१ ई० में आसाम पर चढाई की और दो वर्ष में उस पर अस्थायी अधिकार कर लिया था पर वहा से लौटने में देश के जलमग्न होने के कारण इस की सेना नष्ट हो गई और यह भी बीमार हो कर सन् १६६३ ई० में मर गया।

टीट, चीटा, कीडा जो पावें सो पावें। तहा किस्तूरीया मृग होन है। असाम के लोग हिंदू मुसलमान मनुष्य विना सरव को मास पात हें। परदा तही नहीं। राजा की स्त्री वरग पुले केस, मुप पुले मुसवकें पुले पुले केस ही फिरतु हें। भारज्या को क्रय विक्रय होन है। स्त्री पुरुष सुदर सरूप निरदय ढग कपटी लडर्कनि जडाल पुरुष डाढी मुछ मुडायें रहत हें। बोली तिन की बगाला की बोली ते न्यारी। एक वस्त्र कमर में बंधतु हें, एक चादरि कधा पें रापत हें। सहर के दरवाजा ताप का और सब वसती के घर लकडी फूस के। राजा तो सिघासन चढे फिरें और सब धनवत डोली परि बेंठे फिरें, ऊट, गधा, घोडा नहीं, कहू तें आवें तो लोगन को चमत्कार होवें। घोडा तें अति डरपतु हें। हथयार में बदूक तरवारि तीर कमठा किला मं, नवाडा[1] में तोप, रहकला, लमलड, राम चंगी ये सामान रपें। राजा वा धनवत की प्रथम जीवतें ही दाह स्थान बणावें। मं कपडा धन जवार भोज्य सब जमीन मं गाडें। मृत्यु हूवें तहा जलावें, साथि, सब अस्त्री पवास हू जलावें। सहर में तबोली बिना काहू काहू की दुकान नहीं। जोपें सब लोग एक बरष को समा रापें। करगाव सिहर साढा दस कोस लबो चौरो है। घर घर प्रति पेनी बाग है। सहर के बीच दघवा नाम नदी चली जात है ता किनारे मध्य मं राजाकौ घर है। सबन के घर चबूतरा परि है। सरब देसही में चबूतरा है। चबूतरा को नाम आलय कहतु है। वरषा रितु में सरव भूमि जलमई होत हें ताके बचाव को आलय है।[2] दषिण में सेवा की मुहिम राजा जसवत सिघ हृतो, तासों काम पातस्याह की मरजी माफिक बणी आयो नहीं याते राजा जै सिंघ को जडाऊ तरवारि, घोडा १०० इराकी-अरबी, सोना रुपा की साथ- पनि सरजाम ते साथी उमराव तोपपाना द विदा कीयो। राजा जसवन स्यघ कू हजूरि बुलाये। राजा जयस्यघ औरगाबाद मं मुहमद मोजम पातस्याहजादे की मुलाजमति कीनी। राजा स्वसनि होय आगें गयो, सेवा सों लडाई कीनी, सेवा भाजि पुरि के किला में गया तापर कबर कीरति स्यघ पठायो। निदान सेवा सरणी आयो, राजा ताजीम दई। बिना हथियार सेवा जयस्यघ जी के डेरा आयो, गलें लगायो, ढिग बैठायो, सेवा सु पातिस्याही

---

[1] एक प्रकार की नाव।

[2] आसाम का यह भौगोलिक वर्णन मानो स्वय देख कर लिखा है। यह बहुत ठीक हैं। युद्ध का विवरण अत्यत संक्षिप्त हैं।

चाकरी ठहराई। किला छाडि देण कह्यो, सब कही सो अंगीकार कीयो। सभा आपुनैं बेटा को चाकरी के लिए राजा जयस्यध पासि रास्यो। राजा वाको पाचहजारी करी। आपुनी ओर तैं सिरपाव हाथी दीनौ। आदिल पा बीजापुर को पातस्याह दोय हाथी, जवार जड़ाउ बासण राजा की नजरि भेज्या। सेवा तरवारि न बाधत हो ताही राजा जय स्यध जु तरवारि वधाई।[1] पतस्याह की अजुरि कवर राम स्यघ हतो ताकौ पातस्याह हाथी सिरपाव दीयो। राजा जैंस्यघ(ह)फ्त हजारी हफ्त हजार सवार दु अस्पै सि अस्पैं भयो। राजा की मारफति आदिल खा की पेसकस आई। दल्दन जिमिंदार तिब्बति को पातस्याह को हुकम मानि देस मैं पातस्याही सिक्को पुतवो चलायो। मारफति सैंफपा कासमीर के सूबेदार की मारफति। तिव्वति को देस लवाई मैं छह महीना की राह है, चौडाई मैं दोय महीना की राह। दषिन पातस्याहजादो महमद मोजम वा ताको बेटा मोजुद्दीन हुकम सु हजुरि आय। पातस्याह के सन् ८ में साहिजहा आगरे मैं मरे। सेवा वा सभा दषिन तैं आय कवर रामस्यघ जी की मारफति मुलाजमति कीनी। फिरि भाजि गये या बात तैं कवर रामस्यघ बेमनसिव मुजरातैं मेट भयो। इरान के पातस्याह विरोध बिचारचो या तैं पातस्याहजादा मुहमद मोजम वा राजा जसवत स्यघ कौ काबुल बिदा कीयो। दैवात् ईरान को पातस्याह राह मैं आवत मरचो, वाको वेटा तपत बैठचो।[2] या षबरि तै पातस्याहजादा कौं हुकम पहोंच्यौ। लाहौर मैं ठहरी, निदान हजुरि आयो। जसवत स्यघ राठिवर का काल वसि हुवा की षवरी आई[3]। तदि पातस्याह नै प्रथम ही कालीका का देहरा फोडि मसजद बणाई। आलमगीर अजमेरि जाय मारवाडि मैं थाणा भेज्या। दुरगदास राठौड नैं फिसाद कीयो तब पातस्याह नें अकबर साहजादे कू फौज लार दे दुरगदास परि बिदा कीयो। साहिजादा दुरगदास तैं मिलि गया तब पातस्याह अजमेरि तैं कूच कीया।

---

[1] शिवाजी के विषय में जो कुछ लिखा है वह इतिहास से ठीक है। देखिए सरकार कृत 'शिवाजी'।

[2] शाह अब्बास द्वितीय ने शाहजहा की मृत्यु पर भारत पर चढाई करने की तैयारी की पर शीघ्र ही उस की सन् १६६६ ई० में मृत्यु हो गई। 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० १७४

[3] पौष ब० १० स० १७३५ को इन की मृत्यु हुई। गहलौत, 'मारवाड का इतिहास'।

साहिजादे कू फरमान भेज्या जो तुम कु दुरगदास कौं काबू में ले कैद करणा विचारया सो अछा काम कीया। यह फरमान दुरगदास पास पहुच्या। दुरगदास साहिजादा का कागद जाणी कूच किया, फेरि साहिजादा मिलारैं गया। जोधपुर मेडता वगैरे सव मारवाडि में पातस्याही अमल होय गया।[1] पातस्याह दषिण गये। सूवा च्यारि नय लिए। वडा स्याहजादा सुलतान महमूद कैद राष्या सो कैद ही मुये। वहादुर स्याह कु वरस वाहरैं कैद राषी छोडि दीया। वरस ५१ पातस्याही करी। स० १७६६ मैं दषिण ही में कालवसि हुवा[2]। तव राजा अजीत स्यघ जी राठौड नै पातस्याही थाणा उठाया, मारवाडि में अमल कीयो। दषिण तै आजम स्याह सव फौज ले हिंदुस्थान में आया। दिली मैं वहादुर स्याह वडा साहिजादा तषत वैठ्या। फेरी आजम स्याह वा भादुर स्याह के धौलपुर में लडाई भई। आजम स्याह के गोला लागि मारचा गया। महाराजि सवाई जयस्यघ जी आजम स्याह की लार हुते तीन के तीर लगा। वहादुर स्याह फत्ते पाई, अजमेरि आये, आवैरि जोधपुर में थाणा राष्या। सवाई जयस्यघ वा अजीतस्यघ जी राठोड कू लार ले दषिण कू चाल्या। सो नरवदा के घाट तैं पातस्याह तो दषिण गये। दोनू राजा उदेपुर आये। आवेरि वा जोधपुर में पातस्याही थाणा उठाय अमल कीयो।[3] दोनू राजा सभरी आये। लडाई करि असन पर मारयो गयो। वहादुर स्याह बीजापुर की फत्ते करि नरवदा आय। ये ताही मैं षवरि आई, जो सिघ नी लाहौर में अमल करी नानिक गुरु का सिक्का चलाया। अजमते नानिक गुरु हम जाहरो हम वातिनस्त। वादस्याहे दीनो दुनिया आप सच्चा साहिबस्त।[4] व वहादुर स्याह सिषू की तवीह वास्तै पजाव गये। सो हजार सिष मारि मुदारे

---

[1] 'मआसिरल् उमरा' (हिंदी) पृ० ५५-६; गहलौत, 'मारवाड का इतिहास' पृ० १५६-६०

[2] २१ फरवरी सन् १७०७ ई० को औरंगजेब की मृत्यु हुई।

[3] मुअज्जम, आजम, और कामबख्श तीन पुत्र थे। प्रथम काबुल में और अन्तिम दो दक्षिण में थे। सभी ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। आगरे के दक्षिण जाजऊ के युद्ध में आजम मारा गया, जो १० जून को हुआ था। सवाई जयसिंह आजम के साथ थे, इस से सैयद हुसन खाँ बारह आमेर का फौजदार नियत हुआ। कामबख्श से युद्ध करने जब बहादुरशाह दक्षिण चला तब जयसिंह और अजीतसिंह साथ गए पर मार्ग से लौट कर सैयद हुसन खाँ को मार कर आमेर पर अधिकार कर लिया। ('मआसिरल् उमरा' हिंदी पृ० १६४-५)

[4] यह फारसी का शेर यों है—

चूणाय दीये। लाहोर का वदोबस्त करि दिली आवत हूते, सो राह में सवत् १७७१ में काल वसि भया।[1] बरस ५ महीना ५ दिन २८ पातिस्याही करी। फिरी वहादुर स्याह का वेटा मोजुदीन[2] तपत बैंठा अरु फरक्सेर बहादुर स्याह का पोता पटणा का सूबादार था। सैंद अबदुलह षा वा हुसन अलीषा तनाइ हुते, सो फरक्सेर फौज में पातस्याही दावा करि दिली की तरफ चल्यो। मोजुदिन दिली तैं कूच कीयो, धौल्पुर जाय चबल का घाट वध किया। तोपपाना किनारे पर लगाय दीया। नावडे सव पैंचि लियें अरु दया वहादुर अवध का सूवादार सवार हजार आठ वपनर पोस्याप तें आय मोजुदीन सामिल भया। मोजुदिन नैं वासु पेसक्स मागी। तव दया वहादुर आजरद होय कूच करि फरक्सेर सामिल जा हुवा।[3] फरक्सेर कोस चालीस ऊपरि होय पगार उतरि धौल्पुर आय लडाई करी। सो मोजुदीन को कैंद करि लीया। मोजुदीन मास ७ पातस्याही करी। फरक्सेर तपत बैठा अरु सैंद हुसन अली षा की लार वाईसी दे महाराजा अजीत स्यघ जी राठोड परि विदा कीये। सो मडते आया तव अजीत स्यघ जी ऊकील भेजि पेस-क्स दई। फरक्सेर कों वेटी का टोला भेज्या। पाछैं अजीत स्यघ जी पातस्याह कीं हजूरि आये।[4] अरु चूडामनि जट[5], भीव सीघ हाडा कोटे का, अजीत स्यघ राठोड, सैंद हुसन अली षा, अबु(दु)ल्षा एक होय गया तव दगा कीया, फरक्सेर कू कैंद कीया। आप्यू में सलाई फेरी। सवाई जयस्यघ जी इन कीं हरामषोरी सामिल भई नहीं अर पहली पात-स्याह सु अरजी करी हुती। जो हजरति आप परदेस गहै हम हजुरी ही रहेंगे। तापरि पात-

---

अजमतें नानक गुरू हम जाहिरो हम बातिनस्त।
बादशाहे दीनो दुनिया आप सच्चा साहिबस्त॥

अर्थात् गुरु नानक का बडप्पन प्रकट तथा गुप्त (वाह्य तथा आंतरिक) दोनो है। वह लोक-परलोक का सच्चा स्वामी तथा सम्राट् है।

[1] स्मिथ, 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इंडिया', पृ० ४५५

[2] मुईजुद्दीन जहाँदारशाह।

[3] दयाराम का भाई छबीलेराम नागर आया था। दयाराम को दयाबहादुर भी कहते थे। इस का पुत्र गिरिधर बहादुर अवध का सूबेदार हुआ। देखिए 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० १४०–२, इलियट डाउसन, जि० ७, पृ० ४३५

[4] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० ५७–८

[5] फर्रुखसियर ने जयसिंह के अधीन इस पर सेना भेजी थी पर अब्दुला सैयद ने हठ कर इसे क्षमा दिला कर अपने पक्ष में मिला लिया था। (मआ० हिंदी, पृ० १२४–५)

स्याह नैं सौंप दई तब आर्वैरि उठि आये, ता पीछें पातस्याह परि दगा भया।[1] फरक्सेर बरस ७ पातस्याही करी। पीछें स० १७७८ में महमद स्याह तषत बैठे तब षबरी आई, जो निजामुलमुल्क नें हूसन अली षा सैद के भतीजा आलम अली षा दषिण में मारयौ, सो हूसन अली षा कु लार ले अबदुल षा कु दिली राषी दषीण का ईरादा करी, करोरी के घाट पहुचे तहा सारा हुकम हूसन अलीषा का हुता। पातस्याह महमद स्याह महमद अली षा मुगल सो हूसन अलीषा के मारनें की मसलती करी, सो हैदरबेग मुगल नें अरजी के बहानै सवारी में नजीक जाई पालकी में पेसकबज तैं मारचा। तब अबदुल षा नीको सियर स्याहजादा कु सलेमगढ तैं उतारी तषत बैठाय सवान लाष ड्योढ तैं आप लडाई करी, सो महमदस्याह की फत्ते भई। नीको सियर वा अबदुला षा कू कैद करि लीया।[2] फेरि महाराजि सवाई जयस्यघ जी की लार सवार हजार ४० तईनात करी, चूडामणि जाट की मुहिम परि थुण भेज्ये। सो थुण तोडि गरधवक हल चलाये। बदन स्यघ जाट कू सवाई जयस्यघ जी छजी राज दीयो बडी बरदयास करी।[3] हैदर कुलीषा गुजरात का सूबादार बागी भयो। तब निजामुलमुल्क कु गुजरात को सूबा दयो। सो वानें जाई गुजरात षाली कराई। अरु होमिद षा जगीलौ माहजादे कु गुजरात में राषी निजामुल्मुल्क दषिण गये। हैदर कुलीषा दिली आये। महाराजि अजीत स्यघ जी राठोड बागी भयो, साभरि में अमल कीयो अर ववर अभै स्यघ जी कू भेजी नारनोल स्याहजहापुर लूट्या। पातस्याह मारिवाडि परि हैदर कुलीषा की लार बाईसी दे बिदा कीयो। सो अजीत स्यघ जी साभर तैं कूच करी त्रवेणी ताईं ल्डाई वास्ते साम्हा गये। सो महाराजि सवाई जै स्यघ जी की सल्लाह तैं बिना लडाई कूच करि अजमेरि गये। हैदर कुलीषा भी अजमेरि आए। अजीत स्यघ जोधपुर गये। गढ बीटली (पुनलीगढ) में महीने दोय लडाई भई, किल्ला षाली भयो, हैदर कुली षा मारवाडि में गयो। तदि अजीत स्यघ जी के ऊकील आये, तस्मीर माफ

---

[1] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० १६५–६, इर्विन, भाग २, पृ० ८०४–५।

[2] 'मआसिरुल् उमरा' (फारसी) भा० ३, पृ० १३५–६ में कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्ला ख़ां की जीवनी में पूरा विवरण दिया है।

[3] चूडामणि की मृत्यु पर राजा जयसिंह जाटों पर भेजे गए थे, ऐसा भी इतिहासों में लिखा है। इस के विवरण के लिए सूदन का 'सुजानचरित्र', 'मआसिरुल उमरा' (हिंदी) में चूडामणि जाट और धिराज जयसिंह शीर्षक जीवनियां, इर्विन आदि देखिए।

कराई। कवर अभै स्यघ जी दिली जाय पातस्याह की हजूरि मुलाजमति करी।[1] फेरि हामिद षा की तगीरी सरविलद षा कू गुजरात को सूबा दयो। हामिद खा दषिण जाय दषिणीनि की फौज ल्याय गुजरात षराव करी। हामिद षा मारचा गया। सरबिलद षा नैं अमल कीयो और दयाबहादुर कु मालवा का सुवा हूता सो दषिण थाकी फौज सवार हजार सतरी मालवा मे आय दयावहादुर तें लडाई करी, सो दयावहादुर मारचा गया। तब वाके वेटा नै उजिणी (उज्जैन) मे बदोबस्त करी, दषिण्य की फोज तें लडाई कीनी सो फत्ते पाई।[2] पाछै मालवा का सूवा महमद षा बगस कु दीया, ताकी तगीरी महाराजि सवाई जयस्यघ जी कु दीया। ता की तगीरी भई फेरि दषिण्या की फौज आगरा दिली की तलहटी ताई आय लूटि करि अरु फिरि गई अर गुजरात का सूबा महाराज अभैसिघ जी राठौड कु हूवा। सो सिरबिलद षा अमल दीया नही तब लडाई भई फिरि सलाह भई। सिर विलद षा दिली गये। अभैंसिघ जी नै गुजरात मै अमल करचा अरु सुबा मै नाईब राषि आप पातस्याह की हजूरि गया। फेरि दषिण की फोज गुजरात होइ[3] मेडता लूटि अजमरि आई। अर बाजेराव पुस्कर स्नान वास्तैं पुस्कर आया, तहा महाराजा सवाई जयस्यघ जी मिले। बाजेराव दषिण गये। षानदौरा षा, सवाई जयस्यघ जी, अभै स्यघ जी राठोड कु साथि ले वडी फोज ले मालवै गया अर दषिण्या की फोज मुकदरैं होय साभरि आई तब जयस्यघ जी साभरि आये। षानदौरा षा दिली गये।[4] दषिण्या की फौज दिली पीछै गई। स० १७६४ मे बाजेराव फौज ले दिली आय कालीका को मेला

---

[1] 'तारीखे–मुजफ्फरी' में लिखा है कि चौथे वर्ष अशरफुद्दौला इरादतमंद खा बाईस सर्दारो के साथ अजीतसिह पर भेजा गया था। आषाढ शु० १३ स० १६८१ ई० को अजीतसिह का शरीरांत हुआ। इस के बाद अभयसिह राजा हुए।

[2] राजा गिरिधर बहादुर आसफ्जाह के स्थान पर मालवा का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ था। यह सन् १७२६ ई० में मारा गया तब इस का चचेरा भाई दयाबहादुर सूबेदार हुआ। यह भी दो वर्ष बाद मल्हारराव होलकर से युद्ध कर के मारा गया। तब मुहम्मद खा बंगश सूबेदार नियत हुआ। (पारसनिस-किनकेड, 'मराठों का इतिहास', भा० २, पृ० २११–५)

[3] पारसनीस–किनकेड, 'मराठो का इतिहास', भा० ३, पृ० २१२–२०

[4] सं० १७६२ वि० में मालवा बाजीराव को दे दिया गया। 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी), पृ० १६७

मरे।[1] कमुरीदी षा (कमरुद्दीन खां) सादत षा (सआदत खां) आगरा तैं फौज ले दिली आये। बाजेराव दषिण पाछा उठि गय। सो हिंदुस्थान की बदअमली की षबरि सुणि नादरस्याह सं० १७९५ में हिंदुस्थान मैं आया। काबुल का वा लाहौर का सुबादार निजामुल्मुल्क कमुरदी षा कासदू सू मिलि गय अर पातस्याह महमद साह करनाल गया। तहा लडाई भई। षानदौरा षा कामि आय। दूसरै दिन निजामुल्मुल्क सुल्ह वासतैं नादरस्याह पासि गये। नादिरस्याह नै वाकूं कैद किया तब निजामुल्मुल्क नै महमद स्याह कूं बुलाये। महमद स्याह थोड गतै नादर स्याह पास गय सो चौकी बैठाई दइ, सो नादर स्याह महमद स्याह दिली आय किला में षाली भय। नादर स्याह नैं दिली कतल करी। दिली मैं महीना दोय रह्या। सब पातस्याही का माल लूटि महमद स्याह कु पातस्याही द नादरस्याह ईरान गया।[2] ता पीछै अहमद षा पठाण कंधार तैं फौज ले सतलज आय तब पातस्याह नें अहमद साहिजाद की लार कमुरदि षा वा महाराजि ईसरी स्यघ जी कछवाहा लारं द बिदा किय। सतलज मैं पहुंच तहा नवाब कमरदि षा डेरा मैं बैठ हुत तहा गोला लागि मारचा गया। महाराजि ईसरी स्यघ जी भाज। ल्यौं जमली की राह हाइ दल मैं आय अर अहमद साहि साहिजाद वा मीर मन्नु कमरुदी षा का बेटा वा मनसुर अली षा नें सरब अपनी फौज ले लडाई करी सो फत पाइ। अहमद षा भाज।[3] मीर मन्नू कूं लाहौर का सूबादार कीया। साहीजादा दिली आवै था सो महमद स्याह का काल करी हुवा की षबरी आई, सो अहमद साहि दिली आया। सं० १८०५ मैं तषत बैठ। नवाब बहादुर षोजा का अषतियार भया। मनसूर अली षा कु वजीरात दइ। इति एक भद । परन्तु दिली का नान्हुद मनसूर अली षा[4] मैं भया नहीं। मीर उमरावन की बदहमी मैं सल्तनत सरजाम आया नहीं। नवाब मनसूर क अहद मैं सूरजिमल जाट का बोल प्रबल रह्या। ताहि तर कैं जोर मैं प्रजी भय मानत हीं। दिली का रियासतैं का मनसुबा ना सवाई नय

[1] मुग़ल-सेना, को. राल्फ़ मे. होल्ड, मर. पत्तीरस, दिल्ली, एडवर्ड गाड़, एच. डॉसन, के आगरेशाह की चढ़ाई का समाचार सुन कर बिना युद्ध लौट गए।

[2] 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग ५, सं० १

[3] यह अहमद खां अब्दाली की प्रथम चढ़ाई थी।

[4] अवध के द्वितीय नवाब सफ़दर जंग का नाम मन्सूर अली खां था।

सिंघ जी कीया अर सुरजि मल राजा नैं तुरकौं का इरादा ही मेट्या। दिली का सलतत सामन दुरि कीया। चकत्ते का नाव मात्र तैं जाट नैं पोये। स० १८२१[1] की साल तक सूरजिमल जाट का ए सूरज वधता रह्या।"

[1] इसी वर्ष इन की मृत्यु हुई।

स्वर्गीय सर जगदीशचंद्र बोस और उन का कार्य

[लेखक—डाक्टर पंचानन माहेश्वरी, डी॰ एस-सी॰]

हुए और यद्यपि इसी समय से भौतिक विज्ञान के प्रति उन की रुचि अकुरित हो गई थी तथापि आन वाली विशेष योग्यता का इस समय आभास न मिला। जगदीशचद्र का प्रथम विचार इडियन सिविल सर्विस म प्रवेश करना था परतु उन के पिता न इस विचार का तुरत प्रतिवाद किया। बाबू भगवानचद्र स्वय एक सफल अधिकारी होते हुए भी यही चाहते थ कि बालक जगदीशचद्र दूसरो के बदले अपन ऊपर अधिकार प्राप्त करना सीख और ज्ञानोपार्जन पर विशेष ध्यान दे।

इस के बाद जगदीशचद्र न भैषज्य म निपुणता प्राप्त करन की सोची और इस निमित्त से वह लदन जाना चाहते थ। परतु मार्ग म कठिनाइया थी। उन के कुटुब की आर्थिक परिस्थिति बहुत अच्छी न थी। इस के अतिरिक्त उन के छोटे भाई की मृत्यु १० वर्ष की अवस्था म हो गई थी और उन की माता जो इस शोक से बहुत आकुल थी अपने एकमात्र जीवित पुत्र को अपन से पृथक नहा करना चाहती थी। सब न बैठ कर सलाह की और जगदीशचद्र को अपन विचार का त्याग करना पडा। परतु जिस समय जगदीशचद्र विलायत जान का विचार त्याग कर के हिंदुस्तान म ही किसी धधे म लगने का विचार कर रहे थ उस समय सहसा माता के चरित्र का बल प्रकट हुआ। पुत्र के निकट आ कर उन्हो न कहा बेटा तुम्हारा आगे पढन का विचार बहुत ठीक ह म तुम्हारे मार्ग की बाधा न बनगी। मेरे पास आभूषण ह और कुछ रुपए भी ह। इन्ह ले कर तुम विलायत-यात्रा की तयारी करो।

इस बीच म बाबू भगवानचद्र की तरक्की हो गई थी और आभूषण आगामी आवश्यकता के लिए सुरक्षित रह सके।

इस प्रकार सन १८८० म जगदीशचद्र न इगलिस्तान के लिए प्रस्थान किया। लदन म उन्हें दुर्भाग्यवश ज्वर होन लगा और चीर फाड के कमरे की दुर्गंध के कारण इस का पुन -पुन आघात होता। एक बार उन की अवस्था इतनी नाजुक हो गई कि उन के अध्यापको न उन्ह डाक्टरी की शिक्षा छोड कर किसी दूसरे रुचि-पूर्ण विषय के अध्ययन की सलाह दी। इस प्रकार किंकर्तव्य विमूढ हो कर जगदीशचद्र न लदन म पढाई छोड कर कैंब्रिज म विज्ञान का अध्ययन आरभ किया। यहा पर उन के शिक्षको म कई विख्यात वैज्ञानिक थ जिन म भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ लार्ड रले ने इन्ह सब से अधिक प्रभावित किया। कैंब्रिज से प्रकृति विज्ञान म इन्हो न १८८४ म ट्राइपास' परीक्षा पास की और

लगभग उसी समय बिना विशेष अतिरिक्त परिश्रम के लदन की बी० एस्-सी० की परीक्षा भी पास कर ली।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ अध्यापक फासेट ने उसी समय इन्हे हिंदुस्तान के बडे लाट लार्ड रिपन के नाम परिचय-पत्र दिया। कलकत्ता लौटने पर जगदीशचद्र बोस उन से शिमला जा कर मिले और उन्हो ने जगदीशचद्र को इडियन एडूकेशनल सर्विस मे पद देने का वचन दिया। कलकत्ता लौटने पर जगदीशचद्र शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर से मिले। इसी बीच मे बडे लाट ने बगाल सरकार की मारफत डाइरेक्टर को जगदीशचद्र की नियुक्ति का आदेश भी दे दिया। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को नियुक्ति का यह क्रम रुचिकर न हुआ और वह बोल पडे—"नीचे से प्रार्थनाए सुनने के लिए मैं अभ्यस्त हू, ऊपर से आदेश पाने के लिए नही। इडियन एडूकेशनल सर्विस (भारतीय शिक्षा महकमे) मे कोई स्थान रिक्त नही है। यदि तुम चाहो तो तुम्हे प्रातीय शिक्षा महकमे मे जगह मिल सकती है।" जगदीश बोस ने इसे अस्वीकार कर दिया। बडे लाट के यहा से जोर पडने पर शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर जगदीश बोस को प्रेसीडेसी कालिज मे भौतिक विज्ञान के स्थानापन्न प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्त करने के लिए विवश हुए। यह बात मनोरजन से शून्य नही है कि इस स्थानापन्न-नियुक्ति का भी प्रिंसिपल ने उस समय विरोध किया था, क्योकि उस समय यह समझा जाता था कि हिंदुस्तानियो मे विज्ञान-विषयक योग्यता का अभाव होता है।

नौकरी मिल जाने पर भी अध्यापक बोस का मार्ग सुगम न था। अपने यूरोपीय साथियो की अपेक्षा इन्हे केवल तिहाई वेतन दिया जाता। भावुक होने के कारण जगदीशचद्र के लिए यह अपमान असह्य था और इस का उन्हो ने दृढ प्रतिवाद किया परन्तु उस की सुनवाई न हुई। पुन जगदीशचद्र ने अपनी दृढता और चरित्र का परिचय दिया। अपने मासिक वेतन की चेक वह तीन वर्ष तक निरतर वापस करते रहे, इस अवधि के अत मे डाइरेक्टर तथा प्रिंसिपल दोनो ने अपनी भूल का अनुभव किया, और सरकार की ओर विशेष आज्ञा द्वारा अध्यापक बोस को पूरी तनख्वाह मिलने लगी और पिछला वेतन भी उसी परिमाण मे मिला। इस तीन वर्षों मे अध्यापक बोस और उन की पत्नी को जिन आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडा होगा उन का हम सहज मे अनुमान कर सकते है, परन्तु इस बीच मे जो उन्हो ने अपने चरित्र-बल का परिचय दिया वह अत्यत सराहनीय है।

यद्यपि अध्यापक बोस बडे प्रभावशाली और सफल शिक्षक थे, फिर भी वह अपना कार्य अध्यापन तक नही सीमित रखना चाहते थे। वह आरभ से ही शोध द्वारा ज्ञान के क्षेत्र के विस्तार के लिए उद्योगशील थे। पहले की ही भाँति सरकार ने उन की आकाक्षाओ और उत्साह की ओर ध्यान न दिया। सरकार ने मूर्खतावश यह समझा कि अध्यापक का कार्य विद्यार्थियो को शिक्षा दे कर और मामूली नियमित कार्य कर देने से ही पूरा हो जाता है। शोध के कार्य से इस नियमित कार्य मे बाधा पडती है अतएव इसे अग्रसर करना उचित नही। परतु अध्यापक बोस हतोत्साह होना नही जानते थे, और वह सध्या-समय तथा रात्रि मे शोध का कार्य किया करते थे, और चूकि इस कार्य के लिए सरकार की ओर से कोई अतिरिक्त सहायता नही मिलती थी, इस लिए आवश्यकतानुसार अपनी जेब से प्रयोग-सबधी यत्रो आदि के लिए रुपए व्यय किया करते थे।

सन् १८८७ म, प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हेल्म होल्त्ज के शिष्य हर्त्ज़ ने विद्युत्-चुबकीय लहरो का उत्पादन किया जो कि प्रकाश की लहरो की भाँति परतु लबाई मे अधिक थी। इस उपलब्धि ने वैज्ञानिक जगत मे बडा कुतूहल उत्पन्न किया। अध्यापक बोस ने इन प्रयोगो को स्वय दुहराया और १८९४ में बगाल की एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष एक निबध पढा। हर्त्ज़ के कार्य द्वारा इटली के युवक मार्कोनी (जिन की भी हाल ही म मृत्यु हुई है) को बडी प्ररणा मिली और इन्हो ने इस के द्वारा ही बे-तार-के-तार का आविष्कार किया। अध्यापक बोस ने स्वतत्र-रूप से इसी का विचार किया था परतु सुविधाओ के अभाव म वह अपने कार्य को अग्रसर न कर सके। कलकत्ते के एक सार्वजनिक व्याख्यान में १८९५ म, इन्हो ने अपने एक प्रयोग द्वारा यह स्थापित किया था कि विद्युत्-किरणें व्याख्यान देने के कमरे से एक कमरा तथा गलियारा भेद कर तीसरे कमरे मे पहुँच सकती है। यह तीसरा कमरा उत्पादक-यत्र से ७५ फीट की दूरी पर था और तीन ठोस दीवालो को तथा सभापति के शरीर के अवरोध को पार कर के भी, इस तीसरे कमरे मे ग्राहक-यत्र मे इतनी शक्ति शेष थी कि वह एक घटी बजा सके, एक पिस्तौल छुडा सके और एक छोटी सी सुरग मे बारूद का धडाका कर सके। सभापति महोदय जिन के शरीर को विद्युत्-तरगो ने भेदा था स्वय छोटे लाट थे।

इस विषय पर अध्यापक बोस ने लदन की रायल सोसाइटी के कार्यवाही-पत्र मे कई निबध प्रकाशित कराए और उन के अन्वीक्षणो का परिचय भौतिक विज्ञान की

प्रामाणिक पुस्तको में दिया जाने लगा। उन के कार्य से प्रभावित हो कर सरकार ने उन्हे इगलैंड भेजा, जहा पर उन्हो ने अपने कार्य के सबध मे विभिन्न सभाओ मे व्याख्यान दिए। रायल सोसाइटी के सदस्य एक हिदुस्तानी को इस प्रकार प्रयोगो सहित अपने विचारो को दृढता-पूर्वक प्रकट करता देख विस्मित हुए। उन के कार्य का मूल्य देखते हुए लदन विश्वविद्यालय ने उन्हे डी०एस्-सी० की उपाधि से विभूषित किया। लार्ड केल्विन ने उन की अत्यत प्रशसा करते हुए भारत-सचिव को एक पत्र लिखा जिस में कि यह सिफारिश की कि कलकत्ता के प्रेसीडेसी कालेज मे एक सुव्यवस्थित तथा पूर्ण प्रयोगशाला का प्रबध होना चाहिए, जिस से अध्यापक बोस अपने उपयोगी कार्य को सुविधा-पूर्वक आगे बढा सके। दुर्भाग्य से यह प्रस्ताव सरकारी दफ्तरो के लाल फीते का शिकार हुआ और लार्ड केल्विन द्वारा प्रस्तावित भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला सन् १९१४ तक अस्तित्व मे न आई, और उस समय तक डाक्टर बोस के अवकाश ग्रहण करने का समय निकट आ गया था। फिर भी उन्हे इस बात का सतोष तो रहा ही कि प्रेसीडेसी कालिज की प्रयोगशाला की समुचित उन्नति कर के ही उन्हो ने अवकाश ग्रहण किया।

यदि डाक्टर बोस ने अपने आविष्कार की पेटेट करा लिया होता तो उस से इन्हो ने बहुत धन कमाया होता। उन के कई मित्रो ने इस बात की सलाह भी उन्हे दी, परतु वह विज्ञान के सच्चे भक्त की भाँति ऐसे प्रस्ताव से दृढता-पूर्वक असहमत ही रहे।

रायल सोसाइटी ने पार्लामेंट द्वारा प्राप्त धन से, जो उसे विज्ञान की उन्नति के लिए मिलता है, जगदीशचद्र बोस की कुछ सहायता की। यह स्वय एक बडी बात थी। हिंदुस्तान लौटने से पहले वह यूरोप की कई यूनिवर्सिटियो मे घूमे। बर्लिन, पेरिस, हाइडेलबर्ग, और कील मे इन्हो ने व्याख्यान दिए और सर्वत्र इन का अच्छा स्वागत हुआ।

लगभग १९०० के डाक्टर बोस ने अपना ध्यान एक ऐसे कार्य की ओर दिया जिस ने इन्हे अन्तर्जातीय ख्याति दिलाई। उन्हो ने यह देखा कि पौदे और पशुओं की, आहत और और उद्दीप्त होने पर, समान प्रतिक्रिया होती है। क्लोरोफार्म के वाष्प देने पर जिस प्रकार पशुओं मे प्रतिक्रिया का लोप हो जाता है उसी प्रकार पौदो मे भी। और जब निद्रा-जनक वाष्पो का असर दूर हो जाता है और वह स्वच्छ वायु पा जाते है तो जिस प्रकार पशुओ में जाग्रति आती है उसी प्रकार पौदे भी अपनी निश्चेष्टता छोड़ कर फिर प्रतिक्रिया अकित करने लगते है। बहुत अधिक मात्रा में इस विष के ग्रहण कर लेने पर पशु और पौदे समान

रूप से निश्चेष्ट हो जाते है। अनेक विषाक्त द्रव्य अति स्वल्प मात्रा में दिए जाने पर उत्तेजक का कार्य करते हुए पाए गए।

अध्यापक बोस ने इसी प्रकार के प्रयोग धातुओ पर भी किए। टीन, जस्ता, पीतल, यहा तक कि प्लैटिनम भी भिन्न 'विषो' द्वारा मूर्छित किए गए और उन से जो नक्शे (ग्राफ) प्राप्त हुए वह भी पौदो और पशुओ से प्राप्त किए गए नक्शो जैसे थे। यह परिणाम इतने आश्चर्यजनक थे कि बगाल के लाट साहब ने डाक्टर बोस के इगलैंड जाने की पुन व्यवस्था कर दी, जिस में अध्यापक महोदय अन्य वैज्ञानिको से विचार-विनिमय कर सकें और अपने कार्य के सबध मे परामर्श तथा आलोचनाए प्राप्त कर सकें।

६ जून १९०१ को डाक्टर बोस ने लदन की रायल सोसाइटी के सामने अपना निबध पढा और सागोपाग प्रयोग दिखाया। परतु जिस प्रकार उन के कुछ वर्ष पीछे पढे गए पहले निबध का स्वागत हुआ था उस प्रकार इस का न हुआ। जो प्राणिशास्त्री इस अवसर पर उपस्थित थे उन्हों ने डाक्टर बोस द्वारा अपने क्षेत्र पर आक्रमण होते देख कर प्रसन्नता न प्रकट की वरन् इसे बोस की अनधिकार चेष्टा माना। उन्हो ने बोस को यह परामर्श भी दिया कि वह अपने कार्य को भौतिक विज्ञान तक सीमित रक्खें, प्राणिशास्त्र के क्षेत्र को बाहर रहने दे। उन के निबध का सोसाइटी की कार्यवाही के साथ प्रकाशित करना भी उचित न समझा गया।

डाक्टर बोस इस से प्रतिहत अवश्य हुए परतु उन के साहस ने उन का साथ न छोड़ा। उन्हो ने कुछ समय और ठहर कर, इस सबध में लडाई कर के अपने परिणामो को सिद्ध करने का ही निश्चय किया। वह रायल सोसाइटी की प्रयोगशाला में, सभापति की आज्ञा से एक स्थान प्राप्त कर के, अपने प्रयोगो को दुहराने लगे। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्वर्गीय प्रोफेसर वाइन्स ने इन्हे पत्र द्वारा प्रोत्साहित किया और बाद में अपने दो अन्य मित्रो को ले कर इन से मिलने के लिए लदन मे आए। अध्यापक बोस के प्रयोगो को देख कर वह तीनो व्यक्ति इतने प्रभावित हुए कि उन्हो ने अध्यापक बोस को लिनियन सोसाइटी की अवधानता मे व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया, और सभी प्रमुख प्राणिशास्त्रियो को, विशेषतया अध्यापक बोस के विरोधियो को आमन्त्रित करने का प्रस्ताव किया।

यह प्रयोग २१ फरवरी १९०२ को प्रदर्शित किए गए। और सभी ओर से अध्यापक बोस को सहज समर्थन प्राप्त हुआ। कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने, जो वहा पर उपस्थित थे अध्यापक बोस की भूरि भूरि प्रशसा की, और सोसाइटी के सभापति ने एक प्रोत्साहक पत्र लिखा। पिछले वर्ष की दुराशा-जनक घटना का एक प्रकार से प्रतिकार हुआ और लिनियन सोसाइटी ने इन के निबंध को संपूर्णतया प्रकाशित किया।

हिंदुस्तान लौटने पर अध्यापक बोस अपना शोध-संबंधी कार्य और भी उत्साह के साथ करते रहे। और इस के परिणाम-स्वरूप सन १९०२ में उन्हो ने अपनी पहली पुस्तक 'जीवित और निर्जीव में प्रतिक्रिया' (रिस्पान्स इन दि लिविंग एंड दि नान लिविंग) प्रकाशित की। इस तिथि से आगे उन की जिज्ञासा का क्षेत्र जीविता की दिशा में रहा है और १९०६ में जो उन की दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई उस का नाम था 'वनस्पति प्रतिक्रिया' (प्लांट रिस्पान्स)। अब वह वनस्पति प्राणिशास्त्र में अधिकाधिक गहरे प्रवेश करते रहे और उन के निबंध और ग्रंथ लागमैन्स ग्रीन एंड कंपनी ने कई वृहत जिल्दों में प्रकाशित किए, जिन से इन की ख्याति अंतर्जातीय हो गई। ब्रिटिश सरकार ने १९१७ में इन्हें नाइट बना कर सर की पदवी से सम्मानित किया लंदन की रायल सोसाइटी ने १९२० में इन्हे अपना सदस्य (फलो) निर्वाचित किया और इंडियन साइंस काग्रेस ने १९२७ में इन्हें अपना जनरल प्रेसिडेंट चुन कर इन का आदर किया। कई बार उन्हो ने पश्चिमी देशो की यात्राए की और संसार के भिन्न भिन्न भागों में एकेडमियो तथा विद्वत्समाजो के सामने इन्हो ने अपने सिद्धातो का प्रतिपादन किया। अनेक परिषदो ने इन्हें अपना सदस्य चुन कर इन्हें तथा अपने को सम्मानित किया। जहा-जहा भी यह गए अपनी योग्यता द्वारा इन्हों ने अपने देश के गौरव को बढाया और इस मिथ्या भावना का निराकरण किया कि हिंदुस्तान के निवासी विज्ञान विषयक योग्यता नहीं रखते। अध्यापक सर जगदीशचंद्र बोस के संपूर्ण कार्यों का विवरण एक छोटे से निबंध में प्रस्तुत करने का उद्योग मखना होगी। हम यहा पर उन के एक ऐसे शोध-कार्य के विषय में कुछ कह कर संतोष करेंगे जिस ने पिछले वर्षों में वैज्ञानिकों का बहुत कुछ ध्यान आकर्षित किया है और जिस के संबंध में अकसर विवाद हुए है।

यह बात प्राय सभी जानते है कि पौदे अपनी जडो की नोक से लगे हुए रोमो द्वारा पानी खीचते है। इस पानी को पौदे की सब से ऊँची शाखाओ तक पहुँचना होता है

अन्यथा नन्ही-नन्ही टहनिया मुरझा कर गिर पडें। वह कौन सी शक्ति है जिस के द्वारा पानी जडो से खिच कर पत्तियो तक पहुँचता है? यह ऐसा प्रश्न है जिस ने कि वनस्पति-वैज्ञानिको तथा पदार्थ-विज्ञान के शास्त्रियो को समान-रूप से विस्मित किया है।

पुराने वनस्पति-शास्त्रियो ने इस दृग्विषय की समीक्षा इस प्रकार की। उन का कहना है कि यदि हम एक ऐसा थैला ले लें जिस में कि पानी किंचित् प्रवेश कर सकता हो, और उस मे शक्कर का गहरा घोल भरें, और फिर उसे पानी में लटकावें तो ज्यो-ज्यो पानी उस में समायँगा त्यो-त्यो घोल की सतह ऊपर उठती रहेगी। जिस सिद्धात के अतर्गत ऐसी क्रिया घटित होती है उसे रध्र-शोषण सिद्धात (थ्योरी अव् आस्मोटिक ऐक्शन) कह सकते हैं। पौदो के रध्र-कोषो की उपमा वह घोल भरे छोटे छोटे थैलो से देते है, जो पानी को धरती से ग्रहण कर के धीरे-धीरे ऊपर पहुँचाते रहते है।

यदि इस प्रकार रध्र-कोषो का क्रमागत सबध ऊपर के सारतत्व से, जड से ले कर पत्तियो तक, मान भी लिया जाय तो यह क्रिया अत्यत धीमी और समय लेने वाली होगी। सिक्वोया या यूकेलिप्टस् के ३०० फीट ऊचे वृक्ष की चोटियो तक पहुँचने में इस घोल को वर्ष भर लग जायँगे।

एक दूसरा सिद्धात इस विषय में यह कहता है कि पत्तियो का ज्यो वाष्प शोषण होता है त्यो उन में एक प्रकार की खीचने की शक्ति आती है, और नीचे से जडो के दबाव द्वारा उस खिचाव में सहायता मिल जाती है। यह सिद्धात भी (यद्यपि आज भी इस के मानने वाले अनेक वनस्पति विज्ञान के शास्त्री मिलेंगे) मान्य नही है, क्योकि कई पौदो की जडो में दबाव होता ही नही, इस के अतिरिक्त जडो और पत्तियो को बिल्कुल निकाल कर अलग कर देने पर भी यह गति बनी रहती है।

भौतिक विज्ञान के सिद्धातो को सतोष-जनक न देख कर अध्यापक बोस ने अपना ध्यान दूसरी दिशाओ में फेरा। क्रिसेन्थेमम की एक मुरझाती हुई टहनी ऐसे जल से सीची गई जिस में मादक वस्तु मिली हुई थी। इस के परिणाम-स्वरूप उस में आश्चर्यजनक अतर उपस्थित हुआ। पद्रह मिनटो के भीतर मुरझाई हुई टहनी का तना उठा और खडा हो गया, और उस की पत्तिया ताजी हो कर फैल गईं। इसी प्रकार की एक दूसरी टहनी फारमेल-डि-हाइड के घोल में डाली गई। वह कभी न उठी, वरन् बिल्कुल मुरझा कर मृतवत्

हो गई। इसी प्रकार के प्रयोग अन्य कई पौदो पर किए गए और उन के परिणाम भी इसी प्रकार के हुए। अध्यापक बोस इस नतीजे पर पहुँचे कि सारवस्तु का सचार जीवित जालो के द्वारा होता हैं, जो किन्ही द्रव्यो से स्फूर्त तथा अन्य द्रव्यो से मृत हो जाते है।

इस के बाद जिज्ञासा का दूसरा विषय यह हुआ कि जड अथवा तने के किस भाग मे यह जाल स्थित है। इस का निर्धारण एक विशेष प्रकार से बनाई गई बिजली की सुई (एलेक्ट्रिक प्रोब) द्वारा किया गया। यह सुई चिह्न अकित करने वाले यत्र गैल्वनोमीटर से जोड दी गई और इसे धीरे-धीरे एक पौदे मे घुसाया गया। छाल के भीतरी अग से सपर्क मे आने पर गैल्वनोमीटर की सुई बडे वेग से यकायक आदोलित हुई। जब वह और भीतर धसाई गई तो उस का आदोलन फिर बद हो गया। प्रत्यक्षत वह जीवित रध्र जो कि पानी को अपनी मधुर गति द्वारा ऊपर उठाते है छाल के अदर के तहो मे स्थित होते हैं और इन्हे ही सर जगदीशचद्र पौदे का "हृदय" कहते हैं। अतर यह है कि जिस प्रकार कि मनुष्य का हृदय एक स्थान पर रहता है उस प्रकार पौदो का 'हृदय' एक ही स्थान पर नही रहता है। तब भी इस की क्रिया मनुष्य के हृदय की क्रिया से बहुत कुछ मिलती है। कुछ मादक द्रव्यो द्वारा पौदे तथा पशु के हृदय तीव्र गति से चल कर रक्त अथवा जल का सचार करते है। इस के विपरीत द्रव्य उलटा असर रखते हैं। गर्मी के साथ इस की गति एक मर्यादित रूप मे बढती है, और ठड से वही गति मद पड जाती हैं।

सर जगदीशचद्र ने अपने इन प्रयोगो को यूरोप तथा अमरीका की एक यात्रा मे प्रदर्शित किया। यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि उन के परिणामो से सर्वत्र वैज्ञानिक सहमत हुए है, फिर भी ऐसे बनस्पति-शास्त्रियो की सख्या वृद्धि पर है जो यह समझते है कि सारवस्तु के ऊपर उठने की क्रिया का रहस्य जड अथवा भौतिक विज्ञान के सिद्धातो द्वारा नही उद्घाटित होता वरन् उस के लिए हमे प्राणि-शास्त्र के सिद्धातो का आश्रय लेना आवश्यक है।

फिर भी समस्त वैज्ञानिक इस बात मे सहमत है कि सर जगदीशचद्र बोस ने अपने प्रयोगो में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है और जितने बारीक और सूक्ष्म यत्र जीवन-गति के माप के लिए उन्हो ने तैयार किए है वैसे इस समय तक नहीं हुए है। इस लिए यह बात आश्चर्य-जनक नही कि यूरोप और अमरीका के वैज्ञानिक, जिन्हो ने वैसे ही सूक्ष्म यत्रो का आश्रय नही लिया, वे उन्ही प्रयोगो को दुहरा नही सके है, तथा वही फल नही प्राप्त कर

सके हैं। क्या यह कहना अत्युक्ति होगी कि वह भारतीय नेता अपने समय से आगे हैं? फिर भी भविष्य ही इस बात का निर्णय कर सकता है।

अपने सम्पस्त लेखों और व्याख्यानों में सर जगदीशचंद्र अपने शोध प्रेम तथा देश प्रेम का परिचय देते हैं। शिक्षण और शोध के परस्पर-संबंध के विषय में उन की निश्चित सम्मति है। अपने एक व्याख्यान में जो कई वर्ष पहले दिया गया था, आप ने कहा था— यदि शिक्षण का शोध कार्य से संबंध न हो तो शिक्षण की मर्यादा गिरने लगती है। दूसरे और तीसरे पक्ष से ग्रहण किया हुआ ज्ञान शिक्षार्थियों में नकल का भाव उत्पन्न करता है तथा वास्तविकता की प्रदीप्त ज्वाला मंद पड़ जाती है। जब उन से यह पूछा गया कि आप को स्वयं ऐसी ज़बरदस्त प्रेरणा और शक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है? तो आप ने कहा— मेरा कार्य ही मेरा सब से बड़ा शिक्षक रहा है। निरंतर आए हुए दुर्दिन ही मुझे अपने जीवन में सदा प्रोत्साह दिलाते रहे हैं। उन्हें हिंदुस्तानी विद्यार्थियों का बराबर विदेशों में जाते रहना पसंद नहीं था। वह कहते रहते थे कि— इस प्रकार हिंदुस्तान एक करोड़ रुपए से अधिक का अपने ऊपर अर्थ-कर लगा कर विदेशों में प्रति वर्ष भेजता रहता है। यह एक ऐसा क्षय है जिस की हम शिकायत भी नहीं करते। क्या यह अधिक अच्छा न हो कि यह धन हिंदुस्तान ही में सदुपयोग के साथ व्यय किया जाय? एक ही मार्ग इस निरर्थक और लज्जाजनक स्थिति के अंत करने का है—वह यह कि हम अपनी शिक्षा तथा उद्योग के विषयों में विदेशी सहायता की आवश्यकता से धीरे धीरे मुक्त हो जायँ। नार्वे स्वीडन डेनमार्क स्विट्ज़रलैंड जैसे थोड़ी संपत्ति वाले देशों ने ऐसा किया है। फिर हम लोग भी ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

एक बार उन्हों ने कहा था— किसी भी विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा तीन प्रश्नों के उत्तर पर अवलंबित है—(१) आप ने हमारे ज्ञान की सीमा को कहाँ तक अग्रसर किया? (२) क्या-क्या शोध और आविष्कार आप के निरीक्षण में हुए? (३) क्या आप का विश्वविद्यालय विदेशी विश्वविद्यालयों के लिए एक प्रकार का प्रारंभिक क्षेत्र ही बना रहेगा अथवा आप विदेशी विद्वानों को उस प्रकार आकर्षित करेंगे जिस प्रकार कि हमारे नालंद और तक्षशिला के विद्यापीठ किया करते थे?

सर जगदीशचंद्र के मार्ग में युवावस्था में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं उन्हों ने

इन्हे अन्य शिक्षार्थियो के लिए मार्ग सुलभ और प्रशस्त करने के लिए प्रेरित किया। ३० नवबर सन् १९१७ को, प्रेसीडेसी कालिज कलकत्ता से अवकाश ग्रहण करने के दो वर्ष बाद, इन्हो ने कलकत्ते में बोस रिसर्च इस्टीटयूट की स्थापना की। यह सस्था स्वर्गीय बोस की अमर कृति रहेगी। इस के सस्थापन के अवसर पर जो व्याख्यान सर जगदीशचद्र ने दिया था वह चिरस्मरणीय है। उन्हो ने कहा था—"मै खाली हाथ आया हू, और वैसा ही चला जाऊँगा। यदि इस बीच म कुछ भी कर सकने में मै समर्थ हुआ तो यह मेरा सौभाग्य होगा। मेरे पास जो कुछ भी है उसे मै भेट करूँगा, और मेरी पत्नी ने भी, जिस ने आजन्म मेरे साथ कठिनाइयो का सामना किया है, अपना सर्वस्व इसी निमित्त अर्पित कर दिया है।"

इस लेख को हम बिना श्रीमती बोस को स्मरण किए हुए नही समाप्त कर सकते। वह अपने पति की ५० वर्ष तक घनिष्ट सगिनी रही। उन्हो ने अपने पति के वैज्ञानिक कार्य के महत्त्व को सदा समझने का प्रयत्न किया, उन की चिन्ताओ और कठिनाइयो मे उन का साथ दिया, और एसे अवसरो पर अपने पति को प्रोत्साहित किया जब कि उन्हे निराशाओ का अनुभव हुआ। गृहस्थी को मितव्ययिता के साथ सँभाल कर उन्हो ने अपने पति को उन की आय का अधिकाश विज्ञान की सेवा मे समर्पण करने दिया और पति की यात्राओ मे उन की सगिनी रही। उन का शात और आशावादी स्वभाव उन के पति का सदा सहायक रहा। उन के इस महान् विछोह मे सभी देश-वासियो की सहानुभूति उन के साथ है।

सर जगदीशचद्र के मित्रो मे प्रथम स्थान कविवर डाक्टर रवीद्रनाथ ठाकुर का है। सन् १८९७ से उन से कवि की जान-पहचान थी जब कि रवीद्रनाथ ने यूरोप से लौटने पर उन का स्वागत किया था। तब से वे सदा परस्पर घनिष्ट मित्र रह। विज्ञान के क्षेत्र मे उन के घनिष्ट मित्र सर प्रफुल्लचद्र राय रहे, जिन का एडिनबरा से वापस आने पर बोस के यहा स्वागत हुआ था। सर नीलरतन सरकार, जो कि बगाल के प्रमुख डाक्टर है, जगदीशचद्र के घनिष्टो म रहे। बोस के विद्यार्थी आज सारे हिंदुस्तान में फैले हुए है। उन मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मेघनाद साहा भी है, जिन्हो ने भौतिक विज्ञान मे के क्षेत्र में बडी प्रतिष्ठा लाभ की है।

सर जगदीशचद्र बोस की मृत्यु विगत २२ नवबर को गिरिडीह मे स्नान करते

समय हृद्गति बंद हो जाने से हुई। यह देश के लिए एक महान शोकप्रद घटना है। यह बात कभी भुलाई नहीं जा सकती कि बोस महोदय उन व्यक्तियो में थे जिन्हो ने हमारे देश के गौरव को वैज्ञानिक जगत मे बढाया और भारतवर्ष का मुख विदेशियो के समक्ष उज्ज्वल किया।

आंधी

[रचयिता—श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह]

क्या सोच रहो है बाले !
बैठी तू शून्य सदन में ?
किस की सुध से आकुल-सी
तू हो उठती है मन में ?
कर बंद दृगों को सत्वर
है कौन तपस्या करती ?
किस मंजु अदेखी छवि का
तू ध्यान सदा है धरती ?

करके अनयन प्रिय-दर्शन
तू है न कदापि अघाती।
प्रेमोपचार कर मन में
फूली है नहीं समाती ॥
निज मुंदे लोचनों में तू
है कौन रहस्य छिपाये ?
किन भाव-प्रसूनों से तू
है उर-उद्यान सजाये ?

अंधी के लिए अँधेरी
रहती है दुनिया सारी।

किस भाँति देखती है तू
जग की छवि न्यारी न्यारी ?
तू नयन बिना ही कैसे
प्रिय-छवि-दर्शन कर लेती ?
क्या प्रीति हृदय की तेरे
है खोल दृगों को देती ?

संपुटित नयन-सरसिज में
प्रिय-भृंग छिपा कर बाले !
अर्पण करती रहती है
निज उर के रत्न निराले ॥
प्रिय की अनुपम छवि तुझ को
देती है नहीं दिखाई।
पर शीतल कर देती है
उस की मुख-चंद्र-जुन्हाई ॥

विकसित मुख-पंकज प्रिय का
तू देख नहीं है पाती।
पर तू उस के सौरभ से
है आमोदित हो जाती ॥
मृदु मुकुलित कंज-कली-सी
तू है छविमयी निराली।
है मूर्तिमती सुंदरता
तू सुंदरि ! भोली भाली ॥

निज छवि से भी तू बाले !
रहती है सदा अपरिचित।

तू क्या जाने, वह किस को
कर लेतो है आकर्षित॥
कमनीय कुसुम का रस है
अयी समीर ले जाती।
प्रिय-रूप-सुधा को पी कर
तू भी है नहीं अघाती॥

प्रेमी चकोर की चितवन
जिस को है दृष्टि न आती।
उस चन्द्र-कला-सी तू भी
मन ही मन है अकुलाती॥
मधु के वियोग में जैसे
है वनस्थली मुरझाती।
प्रिय विरह-व्यथा से तू भी
वैसे ही है कुम्हलाती॥

जिस को न कभी पहचाना
जिस को न कभी है देखा।
उर उसे दे दिया तू ने—
मिट सकी न विधि की रेखा॥
अपने एकान्त सदन में
तू है सदैव घबराती।
प्रिय प्रेम-गीत गा-गा कर
अपना मन है बहलाती॥

संगीत-सुधा-सरिता में
रहती है सदा समाई।

रह कर ध्यानावस्थित तू
कहती है कृष्ण कन्हाई ॥
ले नया जन्म जग में क्या
आई है मीराबाई ?
या सूरदास की आत्मा
है तुझ में शुभे ! समाई ?

स्वामिनी अभाव-जगत की,
जागृत स्वप्नों की रानी।
कल्पित-सुख-मादकता से
तू रहती है दीवानी ॥
निज उर में ही प्रियतम की
है तू ने सेज बिछाई।
बस अंध-भक्ति में तू ने
जीवन-सुख-सीमा पाई ॥

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के पचास वर्ष

[लेखक—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०]

विगत दिसंबर मास में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की स्वर्णजयंती बड़े समारोह के साथ मनाई गई थी। यह अवसर न केवल हमारे प्रांत के वरन् सारे भारतवर्ष के शिक्षा-संबंधी इतिहास में एक विशेष महत्त्व रखता है। इन पंक्तियों के लेखक ने इस अवसर के लिए यूनिवर्सिटी के संस्थापन तथा विकास का एक संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया था। प्रस्तुत लेख उसी के आधार पर लिखा गया है।

स्थापना-संबंधी योजना

२६ जनवरी, १८६९ को, ड्यूक अव् एडिनबरा के सम्मान में आमंत्रित एक दरबार में भाषण करते हुए प्रांतीय छोटे लाट ने 'प्रस्तावित इलाहाबाद यूनिवर्सिटी' की चर्चा की थी। ६ मई १८६९ को पत्र नं० २२४५ द्वारा प्रांतीय सरकार ने भारतीय सरकार के गृह-विभाग को सूचित किया कि वह समय निकट आ रहा है, जब कि उत्तरी भारत में एक नई यूनिवर्सिटी के संस्थापन का (जो कि १८५४ के सरकारी पत्र के अनुसार चौथी यूनिवर्सिटी होगी) प्रश्न ध्यान आकर्षित करेगा। सन् १८७० में, मिस्टर डब्ल्यू० ट्विग्ल महोदय ने म्योर कालेज की इमारत के नक़्शे के लिए विज्ञापन निकाला और अपने को 'इलाहाबाद कालिज और यूनिवर्सिटी की कमिटी का सक्रेटरी' प्रकाशित किया। परंतु १२ जनवरी, १८७१ को, भारतीय सरकार के स्थानापन्न सेक्रेटरी मिस्टर ए० ओ० ह्यूम ने (जो बाद में इंडियन नेशनल कांग्रेस के संस्थापकों में हुए) नार्थ-वेस्टर्न (पश्चिमोत्तरी) सूबे की सरकार को लिखा —

"अपनी कौंसिल सहित गवर्नर-जनरल को इलाहाबाद के लिए एक केंद्रीय कालिज की मंजूरी देने में बड़ा संतोष होता है और जैसे ही माननीय छोटे लाट आवश्यक प्रबंध कर लें यह अस्तित्व में आ सकती है। परंतु इस बात को समझ लेना चाहिए

कि भारतीय सरकार पश्चिमोत्तरी सूबे में एक यूनिवर्सिटी की स्थापना की आवश्यकता पर कोई सम्मति नही दे रही है, न इसी बात से सहमत है कि यह नया कालिज कलकत्ता यूनिवर्सिटी के प्रभाव-क्षेत्र से तुरत अलग हो जाय।"

इलाहाबाद में सेंट्रल (केंद्रीय) कालिज की स्थापना की योजना के साथ एक यूनिवर्सिटी की स्थापना का विचार बराबर सबद्ध रहा है। १० मई, १८७० को पश्चिमोत्तरी सूबे की सरकार के सेक्रेटरी ने भारतीय सरकार को लिखा —

"यह प्रकट होगा कि इलाहाबाद मे ऐसे सेंट्रल कालिज की स्थापना उद्दिष्ट है जो कि वहा निवास कर के पढने वाले विद्यार्थियो वाली यूनिवर्सिटी का आधार बन सके। इमारत के लिए निर्धारित रुपयो का अधिकाश निवास करने वाले विद्यार्थियो के आवास तैयार करने मे व्यय होना चाहिए।"

इस बीच में सर विलियम म्योर की सरकार ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी के अधिकारियो से इस आशय का पत्रव्यवहार किया कि वह कलकत्ता यूनिवर्सिटी के सिनेट की एक शाखा इलाहाबाद में स्थापित करे। इस पत्रव्यवहार का कोई परिणाम नही निकला, परतु इलाहाबाद में सेंट्रल कालिज की स्थापना की योजना सफल हुई और ९ दिसबर १८७३ को, वाइसराय महोदय लार्ड नार्थब्रुक के हाथो से उस का शिला-न्यास हुआ। उस अवसर पर वाइसराय महोदय को जो सम्मानपत्र भेट किया गया था उस में लिखा था —

"अभी तक किसी भी कालिज मे यूनिवर्सिटी की कक्षाए बद नही हुई हैं, परतु यह विचार करने की बात होगी कि जब पर्याप्त धन गरीब विद्यार्थियो की छात्रवृत्ति के लिए एकत्र कर दिया जाय तब, यातायात के सुलभ साधनो को देखते हुए, सरकार यदि सब कालिजो की नही तो कम से कम कुछ कालिजो की यूनिवर्सिटी कक्षाए सेंट्रल कालिज इलाहाबाद में केंद्रित करे।"

इस प्रकार यह विचार कि प्रात के अन्य कालिज यूनिवर्सिटी की कक्षाओ मे शिक्षण न प्रदान करें, वरन् यह कार्य केंद्रित रूप में इलाहाबाद मे हो, सरकार के सामने सन् १८७३ में भी था।

जब कि ८ अप्रैल सन् १८८६ को म्योर कालिज की इमारत का उद्घाटन वाइसराय महोदय लार्ड डफरिन द्वारा हुआ उस समय मिस्टर जस्टिस टिरेल महोदय ने सम्मान पत्र में यह पढा था —

"हम लोगो मे से जो १६ वर्ष पूर्व कालिज की स्थापना सबधी परामर्श में सम्मिलित थे यह जान कर विशेष रूप से सतुष्ट हुए हैं कि अत मे इस बात की सभावना उपस्थित हो गई है कि इस प्रात मे एक स्वतत्र यूनिवर्सिटी स्थापित हो जाय। कालिज के प्रसिद्ध सस्थापक ने यह कहा था कि विकास प्राप्त करते हुए इस कालिज के उपाधि-वितरण सस्था हो जाने की सदा आशा करता रहा हू।"

लार्ड डफरिन ने अपने उत्तर में कहा था —

"छोटे लाट (सर अल्फ्रेड लायल) ने यह विचार सामने रक्खा है कि इस कालिज का और अधिक विस्तार हो सकता है और इस की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हो सकती है। अभी वह समय नही आया है कि वाइसराय इस सबध मे अपनी निर्धारित राय प्रस्तुत कर सके। परतु मुझे यह कहने में सकोच नही है कि कोई भी सिफारिश जिस के साथ सर अल्फ्रेड लायल का प्रतिष्ठित नाम सबद्ध रहेगा ऐसी नही हो सकती जिस पर मै और मेरे साथी आदर-पूर्वक ध्यान न दें।"

अतत पश्चिमोत्तरी सूबे की सरकार का १८६६ का किया हुआ प्रस्ताव सन् १८८७ की २३ सितबर को ऐक्ट न० १८ पास होने पर पूरा हुआ। इस ऐक्ट में एक विशेष बात यह थी कि वह धाराए जिन से कि यह समझा जाता था कि पुरानी यूनिवर्सिटिया केवल परीक्षण सस्थाए हैं, दुहराया नही गया। १९०२ के इडियन यूनिवर्सिटीज़ कमिशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"अतएव अब कोई सदेह इस बात का नही रह जाता कि यूनिवर्सिटी को शिक्षण के कानूनी अधिकार भी प्राप्त हो गए।"

पहला दीक्षा-समारोह

पहले दीक्षा-समारोह के लिए सिनेट की बैठक नववर १५, १८८७ को हुई। और पहली सिडिकेट की बैठक ३० जूलाई १८८७ को। बी० ए० तथा एल्-एल० बी० की पहली परीक्षाए यूनिवर्सिटी द्वारा १८८६ मे ली गई। पहली इट्रैंस परीक्षा भी इसी वर्ष ली गई।

ऐक्ट १८८७ के अनुसार सिनेट केवल 'आर्ट्स' और कानून विषयो मे उपाधिया दे सकती थी। विशेष रूप से कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल द्वारा अधिकार पाने पर विज्ञान, भैषज्य तथा इजीनियरिंग में भी उपाधिया दी जा सकती थी। सम्मानार्थ कानून के डाक्टर की उपाधि भी यूनिवर्सिटी प्रदान कर सकती थी। सन् १८९४ में

कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल ने विज्ञान विभाग की संस्थापना मंजूर करके सिनेट को विज्ञान की उपाधियां प्रदान करने का भी अधिकार दिया।

यूनिवर्सिटी का भौगोलिक सीमा निर्धारित नहीं थी सिंडिकेट के इस विषय के नियमों में यह लिखा था कि पश्चिमोत्तरी तथा अवध सूबों के बाहर की संस्थाओं को संबद्ध होने के लिए प्रार्थना पत्र देते हुए अपने प्रांत की सरकार के सेक्रेटरी का अथवा यदि कालिज देशी राज्य में हो तो वहां स्थित गवर्नर जनरल के एजंट का अनुमोदन प्राप्त करना चाहिए।

विकास क्रम

यूनिवर्सिटी के विकास में दूसरी प्रमुख तिथि १९०४ है जब कि उस वर्ष का एक्ट नं० ८ पास हुआ जो इंडियन यूनिवर्सिटीज़ एक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस की कुछ विशेषताएं हैं। एक्ट की तीसरी धारा यूनिवर्सिटी को विद्यार्थियों की शिक्षा अध्यापकों की नियुक्ति पुस्तकालय प्रयोगशाला अजायबघर आदि के संस्थापन और प्रबंध आदि के साथ ज्ञान के विस्तार और शोध के लिए आवश्यक उपायों के करने का अधिकार देती है। यह एक्ट कालिजों के यूनिवर्सिटी से संबद्ध होने तथा निरीक्षण के विषय में भी नियम निर्धारित करता है। इसी की २७वीं धारा के अनुसार कौंसिल-सहित गवर्नर जनरल को विशेष विज्ञप्ति द्वारा यूनिवर्सिटी की भौगोलिक सीमाएं निर्धारित करने का भी अधिकार प्राप्त है।

२० अगस्त सन १९०४ की नं० ७१७ की विज्ञप्ति द्वारा कौंसिल-सहित गवर्नर जनरल ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का भौगोलिक क्षेत्र आगरा तथा अवध के सूबे मध्यभारत (जिस में बरार सम्मिलित था) अजमेर-मेरवाड़ा और राजपूताना तथा सेंट्रल इंडिया एजंसी निर्धारित किया।

इस प्रकार ४ ५२ ८३० वर्गमील के विस्तार की भूमि की तथा ८ ०६ ४४ ४३२ जनसंख्या की शिक्षा-संबंधी आवश्यकताओं की इलाहाबाद यूनिवर्सिटी द्वारा पूर्ति होती रही। प्रत्येक संबद्ध कालिज के साथ-साथ छात्रावासों की वृद्धि होती रही और शिक्षकों की शिक्षा के लिए स्थापित कालिजों को भी यूनिवर्सिटी स्वीकृति प्रदान करती रही।

सन १९०६ म सरकार न यूनिवर्सिटी से शिक्षा विषय के एक प्रोफसर की नियक्ति की योजना पर स्वीकृति चाही। यह योजना कार्यरूप म न आ पाई।

सन १९०७ म यनिवर्सिटी से डाक्टर अव लेटस की उपाधि प्रदान करन की व्यवस्था हुई और इसी वर्ष अर्थशास्त्र म एम्० ए० की उपाधि की व्यवस्था भी हुई। सन १८८८ म सब कालिजो म विद्यार्थियो की सख्या ६५० थी वही बढ कर १९०५ ६ म २९७० तक पहुच गई थी।

सन १९०८ म प्राणिशास्त्र की शिक्षा का प्रवध हुआ।

सन १९१० म भषज्य के शिक्षण के प्रबध के लिए समिति बनी और सम्राज्ञी विक्टोरिया रीडरशिप की स्थापना द्वारा वैज्ञानिक शोध को प्रोत्साहन मिला।

सन १९११ म व्यापार विषय पर प्रमाणपत्र देन के लिए एक परीक्षा का आयोजन हुआ।

सन १९१२ म यूनिवर्सिटी न स्नातको का रजिस्टर खोलन का प्रश्न उठाया। उसी वर्ष भारत सरकार से ४५००० वार्षिक तथा तीन लाख का एकमुश्त प्रदान प्राप्त हुआ। यूनिवर्सिटी न भारत सरकार से यह प्रस्ताव किया कि यह सपूर्ण प्रदान इतिहास अर्थशास्त्र तथा भाषाशास्त्र के प्रोफसरो तथा रीडरो की नियक्ति तथा ९ छात्रवत्तियो म व्यय किया जाय और उस का उद्देश्य शोधकार्य को अग्रसर करना हो। यनिवर्सिटी के शिक्षण के अग की पूर्ति म सब धन लगाया जाय। सरकार न इस प्रस्ताव को स्वीकार किया परतु यह कहा कि इस समय केवल दो प्रोफसरो की नियुक्ति हो अर्थात इतिहास और अर्थशास्त्र म और इस नियुक्ति के लिए चासलर की मजरी होनी चाहिए।

सन १९१३ म भारतीय सरकार न तीसर प्रोफसर की नियुक्ति भी मजूर कर ली यह सस्कृत क प्रोफसर के लिए थी और जसा प्रातीय सरकार न स्पष्ट किया डाक्टर वेनिस के मूल्यवान कार्य को जारी रखन के लिए की गई थी। इसी वर्ष कामस (व्यापार) का विभाग भी स्थापित हुआ।

जून सन १९१५ म यनिवर्सिटी न हिंदू यूनिवर्सिटी की स्थापना सबधी बिल पर विचार किया और कुछ अपन प्रस्ताव भी किए।

सन १९१७ म भषज्य म एम० डी० की उपाधि दना स्वीकृत हुआ। सन् १९१८

मे वाइस-चासलर ने अपने विशेष तथा, अतिरिक्त मत-प्रदान द्वारा बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी की परीक्षाओ को स्वीकार किया। इसी वर्ष सरकार ने भूगोल के लिए एक प्रोफेसर की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव किया, तथा धन देने का वचन दिया परतु वह पद अभी तक नहीं स्थापित हुआ है।

सन् १९१९ में एम० एस० (मास्टर अव् सर्जरी) की उपाधि अस्तित्व में आई।

सन् १९२० मे पटना यूनिवर्सिटी की परीक्षाए मान्य हुईं।

इसी वर्ष सरकार ने राजनीतिशास्त्र तथा नागरिकशास्त्र के लिए एक प्रोफेसर का पद स्थापित किया।

३१ जनवरी १९२० को सिंडिकेट ने चासलर के एक पत्र पर विचार किया जिस मे कि यूनिवर्सिटी से दस नाम ऐसे व्यक्तियो के निर्वाचित करने के लिए कहा गया था जो यूनिवर्सिटी की पुनर्संगठन-समिति के सदस्य हो सकें। यूनिवर्सिटी ने नाम निर्वाचित किए। जून १३, १९२० को प्रान्तीय सरकार ने यूनिवर्सिटी के पास अपनी बोर्ड अव् हाई स्कूल ऐंड इटरमिडिएट एडूकेशन के सगठन के सबध की योजना भेजी जो कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमिशन की सिफारिशो को ध्यान में रख कर तैयार की गई थी। इस के साथ सरकार ने लिखा कि उस की राय में "यूनिवर्सिटी के पुनर्संगठन की योजना के लिए माध्यमिक शिक्षा पर विशेषकर निरीक्षण की आवश्यकता है।" यूनिवर्सिटी ने प्रस्तावो से सहमत होते हुए इस बात की आवश्यकता प्रगट की कि निरीक्षण म यूनिवर्सिटी का विशेष प्रतिनिधित्व होना चाहिए। ७ अगस्त १९२० को सर हार्कोर्ट बटलर चासलर महोदय ने अभूत-पूर्व कार्य यह किया कि स्वय सिनेट की बैठक का सभापतित्व किया। उन्हो ने कहा—

"हम लोग साधारणत यह स्वीकार करते है कि हमारी नीति का उद्देश्य इन प्रातो में ऐसी कई केंद्रीय यूनिवर्सिटियो की स्थापना होना चाहिए जो शिक्षण प्रदान करने के साथ छात्रो के आवास का प्रबध करे। इस उद्देश्य को ले कर हम लोग—मैं समझता हू—तीन विषयो पर सहमत है। पहला यह कि लखनऊ में एक केंद्रीय, शिक्षण और आवास का प्रबध करने वाली, यूनिवर्सिटी होनी चाहिए। दूसरे यह कि यूनिवर्सिटी और स्कूल के बीच की सीमा इटरमिडिएट दर्जो को होना चाहिए। तीसरे यह कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के दो भाग होने चाहिए—अतर्विभाग जो पूर्ण-रूप से केंद्रीय हो तथा आवास और

शिक्षण का प्रबंध रक्खे और बहिर्विभाग जो कि बाहर के कालिजों को अपने से सबद्ध रक्खे। यहा तक हम लोग एक मत हैं।"

डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के प्रस्ताव पर सिनेट ने यह स्वीकार किया कि लखनऊ में केंद्रीय, शिक्षा देने वाली, यूनिवर्सिटी की स्थापना हो। परंतु लखनऊ यूनिवर्सिटी बिल की विस्तार की बातो पर कोई मत नहीं प्रकट किया गया।

जनवरी २४, १९२१ को सिनेट ने बोर्ड अव् हाई स्कूल एंड इंटरमिडिएट एडूकेशन के संस्थापना की बिल पर विचार किया, उसी समय यूनिवर्सिटी पुनर्संगठन की सब-कमिटी की रिपोर्ट पर भी सिनेट ने बहुमत से इस बात का विरोध किया कि वाइस-चांसलर तथा खजांची कोर्ट द्वारा नियुक्त हो। परंतु बाद में इसे धारा-सभा ने स्वीकार किया।

मार्च १९२१ मे आर्ट्स-विभाग ने हिंदी तथा उर्दू में एम्० ए० कक्षाए खोलने की स्वीकृति दी। इसी साल सिनेट ने इस की मंजूरी भी दी कि विद्यार्थी 'कंपार्टमेंट' मे परीक्षा दे सकते हैं।

१० सितंबर १९२१ को सिनेट ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी बिल पर विचार किया। १८ नवंबर को सिनेट ने कानपूर कृषि-कालिज तथा रुड़की इंजिनियरिंग कालिज का यूनिवर्सिटी से सबद्ध होना स्वीकार किया।

सन् १८८८ मे यूनिवर्सिटी से १३ कालिज सबद्ध थे, १९०७ में इन की संख्या ३८ थी, १९२१ में ३६। स्वीकृत स्कूल १९०६ मे १६१ थे, १९२१ मे २३०। १८८६ में १८३६ परीक्षार्थी थे, १९२१ मे ८३५७। परीक्षा-संबंधी व्यय १९२१ में १,५४,९८४ था, सन् १८८६ में यही केवल ११,१३६ था।

नई यूनिवर्सिटियों का संस्थापन

बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी की स्थापना के साथ, सन् १९१५ मे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का अगभग आरंभ हुआ। इस के बाद सन् १९२० मे लखनऊ यूनिवर्सिटी अस्तित्व में आई। इसी वर्ष अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी भी संगठित हुई। १९२३ में नागपूर यूनिवर्सिटी स्थापित हुई, और १९२७ मे आगरा यूनिवर्सिटी। यह पाँच यूनिवर्सिटिया इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से ही अंकुरित हुई और तीन अर्थात् म्योर सेंट्रल, ईविंग क्रिश्चियन और कायस्थ पाठशाला कालिजो को छोड़ कर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से संबद्ध सभी कालिज इन में

बँट गए। सन् १९२७ के अनंतर उपर्युक्त तीन कालिज ही इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से संबद्ध रहे।

पुनर्संगठन

संयुक्त प्रांतीय सरकार ने ६ फरवरी १९२० को एक विज्ञप्ति निकाली थी जिस में कहा गया था कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के चांसलर महोदय सर हार्कोर्ट बटलर ने एक कमिटी को आमंत्रित किया है जो कि इलाहाबाद के गवर्नमेंट हाउस में १३ फरवरी को १०½ बजे यह विचार करने के लिए बैठेगी कि सैडलर (कलकत्ता यूनिवर्सिटी) कमिशन की शिक्षा-संबंधी सिफारिशों के आधार पर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का किस प्रकार पुनर्संगठन हो सकता है। कमिटी में चांसलर, वाइस-चांसलर और शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के अतिरिक्त चांसलर महोदय, मध्यप्रदेश के चीफ कमिश्नर तथा यूनिवर्सिटी की सिंडिकेट द्वारा निर्वाचित तथा संयुक्तप्रांतीय धारा-सभा द्वारा चुने हुए सदस्य थे।

सर हार्कोर्ट बटलर ने कमिटी की कार्यवाही का उद्घाटन करते हुए यह कहा था—

"मैं सभी प्रकार की शिक्षा की उन्नति तथा व्यापक सुधार चाहता हूं। शिक्षा के क्षेत्र के सभी कार्यकर्ताओं को मैं प्रोत्साहन देना चाहता हूं। अपनी यूनिवर्सिटी के प्रति जो हमारे गर्व के भाव हैं उन की विस्तृत विवेचना करने की मुझे आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का हम पर जो आभार है उस के संबंध में अतिशयोक्ति संभव नहीं। इस ने प्रांत की शिक्षा-व्यवस्था को समुचित पथ पर अग्रसर किया है, और यह सब प्रायः सरकार के हस्तक्षेप के बिना ही संपादित हुआ है। हमें अपनी यूनिवर्सिटी के प्रति न केवल गर्व है वरन् प्रेमपूर्ण श्रद्धा है।

"फिर भी यह भावना साधारणतः फैली हुई है कि हमें अन्य स्थलों में प्राप्त अनुभव के आधार पर जो कि हाल में प्रकाश में आए हैं यूनिवर्सिटी के पुनर्संगठन के विषय में विचार करना चाहिए। ऐसा अवसर आ गया है कि हम एक लंबा पग आगे बढ़ावें। इलाहाबाद में एक ऐसी केंद्रित और शिक्षा तथा निवास का प्रबंध करने वाली, यूनिवर्सिटी के बीज मौजूद हैं, कि इसे हिंदुस्तान में किसी दूसरी यूनिवर्सिटी से घट कर न होना चाहिए और यह इलाहाबाद की प्रतिष्ठा के अनुरूप हो सकती है।"

विचार-विनिमय तथा किंचित् वाद-विवाद के अनंतर इस सम्मेलन में कुछ अन्य

प्रस्तावो के साथ निम्न-लिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए —

(क) इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का वह भाग जो कि शिक्षा-प्रदान से सबध रखता है एक केंद्रित रूप धारण करे और इस केंद्र से सबद्ध हो कर कालिज, हाल और छात्रावास रहे जिन का कि सचालन यूनिवर्सिटी अथवा अन्य निजी सस्थाओ द्वारा हो।

(ख) यूनिवर्सिटी को अपने प्रबध के विषय मे आर्थिक स्वतत्रता रहनी चाहिए, परतु सरकार चाहे तो निर्दिष्ट उद्देश्यो की पूर्ति के लिए द्रव्य प्रदान और निर्धारित कर सके।

(ग) यूनिवर्सिटी का एक वहिर्विभाग हो, जिस का काम यूनिवर्सिटी से सबध रखने वाले मुफस्सिल के कालिजो का प्रबध हो। वहिर्विभाग की कार्यकारिणी-समिति में मुफस्सिल कालिजो का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व रहे परतु उस मे केंद्रीय अथवा अतर्विभाग के प्रतिनिधि भी हो, जिन की सख्या समस्त सख्या की तिहाई से कम और आधी से अधिक न होनी चाहिए। सम्मेलन ने कुछ विशिष्ठ समितिया इस उद्देश्य से नियुक्त की कि सरकार के सामने विस्तार-पूर्वक सिफारिशे प्रस्तुत करे।

१९२१ का ऐक्ट

इन कमिटियो की सिफारिशो के परिणाम-स्वरूप सन् १९२१ मे धारा-सभा द्वारा नया यूनिवर्सिटी ऐक्ट स्वीकृत हुआ। जो परिवर्तन हुए उन के लिए कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा नियुक्त सर माइकेल सैंडलर के सभापतित्व में जो कमिशन बैठा था उस की रिपोर्ट से प्रेरणा मिली। लखनऊ यूनिवर्सिटी ऐक्ट को भी इसी रिपोर्ट से प्रेरणा मिली थी और वह सन् १९२० में ही अतिम मिंटो-मार्ले काउसिल में पास हो गया था। परतु यह विचार किया गया कि चूकि इस धारासभा की अवधि समाप्त होने पर आ रही है अतएव इतने बड़े सुधार की जिम्मेदारी नई धारासभा पर ही छोड़ना उचित होगा। १९१९ के माटेग्यू ऐक्ट ने शिक्षा-विभाग को धारासभा के प्रति उत्तरदायी मिनिस्टरो के हाथ में कर दिया था मिनिस्टरो ने सपूर्ण स्थिति पर विचार किया और यह निश्चित किया कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को केंद्रित रूप धारण करना चाहिए, यहा विद्यार्थियो की शिक्षा और आवास का प्रबध रहना चाहिए, और विशेष कर जब कि प्रात में तीन अन्य केंद्रित यूनिवर्सिटिया —बनारस, अलीगढ़, लखनऊ—स्थापित हो चुकी थी, इसे केवल परीक्षा लेने वाली यूनिवर्सिटी न रहनी चाहिए। सुधार के सभी पहलुओ पर विचार करने के अनतर इलाहाबाद

यूनिवर्सिटी बिल का मसविदा तैयार हुआ और शिक्षा-सचिव द्वारा धारा-सभा मे पेश किया गया। इसी के साथ ही इटरमिडिएट एडूकेशन बिल का मसविदा भी पेश किया गया। सैडलर कमिशन की सिफारिश थी कि इटरमिडिएट दर्जों को हाई स्कूल से मिला दिया जाय और हाई स्कूल तथा इटरमिडिएट का प्रबध अलग महकमे द्वारा हो, जिस का भार यूनिवर्सिटी पर न हो। दोनो बिलो पर विचार हुआ और धारासभा में खूब विवाद भी हुए। अत मे बिल ने ऐक्ट का रूप ग्रहण किया। सन् १९२१ तक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का सगठन लार्ड कर्जन के १९०४ वाले ऐक्ट के अनुसार था जिस से कि यूनिवर्सिटी के ८० फी सदी 'फेलो' सरकार द्वारा निर्वाचित होते थे। इस एक्ट द्वारा यूनिवर्सिटी का सगठन जनमत पर अधिक अवलबित हुआ और यूनिवर्सिटी के कोर्ट को वाइस चासलर के चुनने का भी अधिकार मिला।

वहिर्विभाग का पृथक्करण

सन् १९२२ और १९२७ के बीच यूनिवर्सिटी के दो विभाग रहे—वहिर्विभाग और अतर्विभाग। मार्च १९२२ में सरकार ने यूनिवर्सिटी को ७ लाख रुपये प्रदान किए। पिछले सगठन के अतर्गत सिंडिकेट की अतिम बैठक ८ अप्रैल १९२२ को हुई। सन् १९२२ के दीक्षा-समारोह के अवसर पर सर हार्कोर्ट बटलर ने अपने भाषण मे इस बात पर जोर दिया कि अब प्रथम बार यूनिवर्सिटी को इस बात का अवसर मिला है कि यह उचित दिशा में उन्नति कर सके और वास्तविक रूप मे यूनिवर्सिटी के उपयुक्त कार्य मे सलग्न हो सके। कोर्ट की पहली बैठक २३ जनवरी १९२३ को हुई, जब कि सर क्लाड फ्रेजर डेला फोस, वाइस-चासलर सभापति के आसन पर थे, उपस्थित सदस्यो की सख्या १३० थी। यूनिवर्सिटी के प्रथम कई मास नई परिस्थिति के अनुकूल व्यवस्था करने में व्यतीत हुए। विद्यार्थियो के निवास, यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, भिन्न-भिन्न विभागो की लाइब्रेरियो, विज्ञान-विभागो के प्रयोगगृहो, यूनिवर्सिटी से सबद्ध सभाओ, परिषदो आदि के प्रबध मे गए। इस बीच में यूनिवर्सिटी के प्रति सरकार का रुख किंचित बदल गया। म्योर सेंट्रल कालिज के शिक्षको ने अपने को किंचित् अप्रिय वातावरण मे पाया। विद्यार्थियो मे भी अपनी शिक्षा-सस्था के प्रति वह उत्साह तथा प्रेम न पाया गया। इटरमिडिएट के विद्यार्थियो के पृथक् हो जाने के कारण विद्यार्थी ऐसा वय प्राप्त होने पर यूनिवर्सिटी में आने लगे जब

कि उन का सहज अनुराग वास्तव मे अन्य सस्थाओ के प्रति प्रदान किया जा चुका होता था। इन सब कारणो से नई सगठित यूनिवर्सिटी के प्रारंभिक वर्ष बहुत शुभ-सूचक न थे।

इसी बीच मे यूनिवर्सिटी के अतर्विभाग तथा बहिर्विभाग के बीच कुछ खिचाव और परस्पर सदेह का वातावरण आ गया। इन मे पहला यह समझता कि उस को अतरग बातो मे हस्तक्षेप किया जा रहा है, दूसरा यह अनुभव करता कि उसे नई व्यवस्था के अतर्गत जो स्थान प्राप्त हुआ है वह अपेक्षाकृत कम प्रतिष्ठित है। अप्रैल सन् १९२३ तक इस प्रकार की अप्रिय धारणाए दूर हुई। यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी कौंसिल में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि उस को विश्वास है कि वाइस-चासलर ने जो कुछ किया यूनिवर्सिटी के हित को ध्यान मे रख कर किया। जुलाई १९२३ मे कार्यकारिणी ने एकमत से यह स्वीकार किया कि वाइस-चासलर के छुट्टी पर होने के कारण डाक्टर गगानाथ झा स्थानापन्न रीति से उस पद पर कार्य करे।

सन् १९२३ के नवबर मे मिस्टर टी० सी० जोन्स ने (काउंसिल अव् असोसिएटेड कालिजेज़) सबद्ध कालिजो की समिति मे निम्न प्रस्ताव पेश किया —

"इस कौंसिल की राय में इलाहाबाद की तथा प्रात के इतर स्थानो की यूनिवर्सिटी शिक्षा के लिए यह हितकर होगा कि वह बाहरी कालिज जो इस समय इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से सबद्ध है, यूनिवर्सिटी से पूर्णतया अलग हो जावे, और यूनिवर्सिटी एकमात्र शिक्षाप्रदान करने वाली और आवास का प्रबध करने वाली सस्था रह जाय और जो कालिज इस प्रकार पृथक् किए जायें उन की एक अन्य यूनिवर्सिटी बने जिस का प्रधान केंद्र आगरा हो और कौंसिल सरकार से अनुरोध करती है कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ऐक्ट (१९२१) में ऐसे परिवर्तन करे तथा ऐसा नया कानून पास करे जिस में इन सुधारो पर अमल हो सके।"

कौंसिल में यह प्रस्ताव पास हो गया। इस के पक्ष में २८ और विपक्ष में २३ मत थे। कार्यकारिणी कौंसिल ने इस प्रस्ताव को सरकार के पास भेजते समय यह टिप्पणी लगा दी कि 'यदि बहिर्विभाग पृथक् किया जाय तो उसे इस रूप में पृथक् होना चाहिए कि शिक्षा-प्रदायिनी यूनिवर्सिटी की आर्थिक स्थिति तथा विकास पर आघात न पहुचे।' सन् १९२४ की जुलाई में कार्यकारिणी कौंसिल ने आगरा यूनिवर्सिटी बिल के मसविदे पर विचार करने के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की। सबद्ध कालिजो की समिति ने यह विचार प्रकट किया कि प्रस्तावित आगरा यूनिवर्सिटी को केवल परीक्षक और कालिजो को स्वीकृति

के घरेलू व्यापार में ह्रास आरम्भ हो चुका था, फिर भी जिस साहस, समझदारी और सलग्नता से उन्हो ने अपना काम सँभाला वह प्रशसनीय है। अपने व्यापार की ओर ध्यान देते हुए, किस प्रकार उन्हो ने आत्म शिक्षण प्राप्त किया, और फिर साहित्य-जगत को मूल्यवान् कृतिया प्रदान करते रहे यह देख कर आश्चर्य होता है। हिंदी के शिक्षित वर्ग ने 'प्रसाद' जी की कृतियो को किस प्रकार अपनाया इस का एक प्रमाण इस बात में ही है कि वह स्कूलो की माध्यमिक कक्षाओ से लेकर विविध यूनिवर्सिटियो की उच्चतम कक्षाओ तक के लिए पाठ्य-पुस्तको के रूप मे स्वीकृत हो चुकी है।

'प्रसाद' जी ने साहित्य-क्षेत्र में कवि के रूप में पदार्पण किया, और यद्यपि उन्हो ने नाटको, उपन्यासो, कहानियो तथा निबधो की रचना की, फिर भी 'प्रसाद' जी का कवि के रूप मे ही स्मरण करना उन के अनेक प्रशसको को प्रिय है। १२ वर्ष की अवस्था में ही 'प्रसाद' जी तुकबदी करने लगे थे। २२ वर्ष की अवस्था में तो पद्य रचना में उन्हें पर्याप्त अभ्यास हो चुका था और उन की कविताए तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं मे आदर क साथ प्रकाशित की जाती थी। 'प्रसाद' जी की प्रारभिक कविताए ब्रजभाषा मे है। बाद में उन्हो ने इस बात का अनुभव किया कि समय की गति के साथ रहने के लिए खडी बोली का मार्ग ग्रहण करना ही विशेष उपयुक्त है। फिर वह अ त तक इसी मार्ग पर रहे, और उन के पाठक इस बात को भलीभाँति जानते है कि इस मार्ग को उन्हो ने अपनी कृतियो से कितना प्रशस्त किया।

हिंदी में अतुकात कविता का प्रयोग करने वालो मे 'प्रसाद' जी का विशेष स्थान है। उन की पहले की कृतियो में 'प्रेम-पथिक' तथा 'महाराणा का महत्त्व' सफल अतुकात काव्य है। काशी के 'इदु' नामक पत्र में यह सन् १९१४ में ही अग्रेजी 'सानेट' के ढग की चतुर्दशपदिया लिखा करते थे। इस प्रकार कविता के क्षेत्र में नए प्रयोग करते रहने की ओर इन की आरभ से ही प्रवृत्ति थी। 'प्रसाद' जी की कविताओ का पहला सग्रह 'कानन-कुसुम' जिस समय प्रकाशित हुआ उन की अवस्था २३ वर्ष की थी। उस की कविताए, अब पच्चीस वर्षो के अनन्तर हमें सभवत प्रौढ न जान पडें, परतु उन के पढने से यह स्पष्ट है कि वह अपने लिए एक अलग मार्ग निकाल रहे थे।

'प्रसाद' के प्रारभिक नाटकों में हम सस्कृत नाटयशैली का प्रभाव देखते हैं। इस प्रभाव से वह किसी समय सर्वथा मुक्त नहीं हो सके। 'राज्यश्री' और 'विशाख'

नाटको से इस बात का भी सकेत होने लगा था कि उन की रुचि ऐतिहासिक कथाओ के प्रति विशेष है, सामाजिक विषयो के प्रति नही। ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाए ही उन के बाद के नाटको का भी अधिकाश आधार रही। 'प्रसाद' जी हमारी सस्कृति के इतिहास के विशेष ज्ञाता थे और उन के इस ज्ञान का परिचय हमे उन के नाटको द्वारा तथा कतिपय निबधो द्वारा प्राप्त होता है। 'करुणालय' उन का एक गीतनाट्य है, परतु पद्य का माध्यम नाटको के लिए उपयुक्त न जान कर उन्हो ने इस प्रयोग को दुहराया नही। हा, उन के नाटका मे आए हुए गीत अपना अलग महत्त्व रखते है।

'प्रसाद' जी ने अपने को कविता और नाटको की रचना तक सीमित नही रक्खा। उन के प्रारभिक ग्रथो म 'चित्राधार' विविध गद्य-पद्य रचनाओ का सग्रह है, और 'उर्वशी' एक सुदर चपू है। साथ ही साथ वह कहानिया भी लिखने लगे थे और उन की कहानियो का पहला सग्रह 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ। उन की कहानी-कला का विकास होता रहा और क्रमश उन्हो ने अन्य सग्रह भी प्रकाशित किए जिन में 'प्रतिध्वनि', 'नवपल्लव', 'आकाशदीप', 'आधी' और 'इद्रजाल' प्रसिद्ध है।

नाट्यकार के रूप मे 'प्रसाद' की प्रतिभा उन के बाद के नाटको मे विकसित हुई। 'चद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'स्कदगुप्त', 'जन्मेजय का नागयज्ञ', 'कामना' और 'ध्रुवस्वामिनी' उन के प्रमुख नाटक है। हमारे प्राचीन, विशेष कर बौद्धकालीन इतिहास तथा सस्कृति का 'प्रसाद' जी को अच्छा ज्ञान था, अतएव वह अपने नाटको मे उचित वातावरण प्रस्तुत करने मे सफल हुए है। चरित्रविश्लेषण भी गहरा हुआ है। एक आपत्ति जो उन के नाटको पर कतिपय आलोचको ने की है यह है कि यह नाटक साहित्यिक पाठ की वस्तु हो कर रह गए है, वह नाट्यमच की, विशेषतया आधुनिक, आवश्यकताओ को ध्यान मे रख कर नही रचे गए है। 'प्रसाद' जी के साहित्यिक जीवन का यह नियम-सा था कि वह अपने आलोचको के साथ विवाद में नही पडते थे। फिर भी बिना व्यक्तिगत आक्षेपो की ओर सकेत किए हुए, नाट्यमच की आवश्यकताओ के विषय मे उन्हो ने अपने विचार 'हिंदुस्तानी' (जूलाई, १९३७) में स्पष्ट किए थे। यह स्मरण कर के खेद होता है कि यह लेख उन के जीवन-काल में प्रकाशित उन का अतिम लेख था। इस लेख में उन्हा ने इस बात पर जोर दिया है कि वास्तव में यह अभिनय की योजना करने वालो का कर्तव्य है कि वह नाट्यमच को नाट्यकार की कृति के अनुरूप बनावे।

प्रसाद जी की संस्कृत गर्भित भाषा पर भी कुछ आलोचकों को आपत्ति रही है। परन्तु उन के नाटकों में हमारे पुराने युगों का चित्रण हुआ है और यह देखते हुए संस्कृत गर्भित भाषा ही वह वातावरण उपस्थित करने में सहायक हो सकती है उचित ही है। हम देखते हैं कि प्रसाद जी की भाषा शैली उन के उपन्यासों में बदल गई है और हमारी बोल चाल की भाषा के निकटतर आ गई है। प्रसाद जी के दो उपन्यास कंकाल और तितली हिंदी-संसार में आदर पा चुके हैं। दोनों ही सामाजिक हैं। अतीत के चित्रण के लिए जिस प्रकार प्रसाद जी ने नाटकों का आश्रय लिया था, उसी प्रकार वर्तमान सामाजिक अवस्था के चित्रण के लिए उपन्यासों का। अभी हम उन से इस क्षेत्र में अन्य मूल्यवान कृतियों की आशा रखते थे।

प्रसाद मुख्यतया कवि ही थे और आधुनिक हिंदी कविता के प्रवर्तकों में उन का अत्यंत आदरणीय स्थान था। ऊपर बताए हुए कविता-संग्रहों के अतिरिक्त 'झरना' 'आँसू' और 'लहर' उन की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। बहुत लोगों के विचार में 'आँसू' जैसा करुण-काव्य आधुनिक हिंदी में दूसरा नहीं। 'लहर' कदाचित उन के कविता-संग्रहों में सब से श्रेष्ठ है। परंतु 'कामायनी' महाकाव्य का उन की कृतियों में विशिष्ट स्थान रहेगा। इस में मनु श्रद्धा और इड़ा की प्राचीन कथा एक महान रूपक के रूप में प्रस्तुत की गई है। यह एक सुसंगठित रचना है और बीच-बीच में गीत-काव्य तो अत्यंत सुंदर बन पड़े हैं। 'कामायनी' यह बात स्पष्ट करती है कि हम कवि से भविष्य में और भी ऊँची आशाएँ रख सकते थे। परन्तु काल बली है।

स्वर्गीय कवि जयशंकर प्रसाद हिंदुस्तानी एकेडमी के सम्मानित सदस्यों में थे। हम उन के कुटुंब के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

स्फुट प्रसंग

भारतीय लिपि

[लेखक—श्रीयुत दुर्गादत्त गगाधर ओझा, बी० एस्०-सी०]

[बबई के श्रीयुत दुर्गादत्त गगाधर ओझा, बी० एस्-सी० ने अखिल भारतीय लिपि की आवश्यकता का समर्थन करते हुए लिपि-सबधी कतिपय प्रचलित सुधार-प्रस्तावो की समीक्षा की है। आप ने यह बताया है कि एक आदर्श लिपि में कौन से गुण अपेक्षित है। साथ ही आप ने एक नई लिपि की योजना भी प्रस्तुत की है, और उस की विशेषताओ का स्पष्टीकरण किया है। यहा पर उन के लेख का एक अश किंचित् सक्षेप के साथ प्रकाशित किया जाता है। आशा है इस विषय में दिलचस्पी रखने वालो को इस में विचार की सामग्री प्राप्त होगी। ओझा जी के विचार निजी है। सपादकीय समर्थन का अनुमान लगाना उचित न होगा। —सपादक]

एक आदर्श लिपि में निम्नलिखित गुण होने अनिवार्य है—

१—अक्षरो के नाम तथा उच्चारण समान और अभिन्न हो।

२—लिपि सीखने म सहज हो।

३—लिपि आसानी से लिखी जा सके। प्रत्येक मौलिक उच्चारण-विशेष के लिए अलग अक्षर हो पर मिश्रित उच्चारणो के लिए विशिष्ट अक्षर बना कर वर्णमाला में अनावश्यक वृद्धि न की जाय।

४—सब अक्षरो की ऊँचाई समान हो। मात्राए भी उतनी ही ऊँची होनी चाहिए, एव एक ही लाइन मे लिखी जानी चाहिए। सब मात्राए अक्षर के एक ही बाज अर्थात् बाद में आनी चाहिए, और लिखने में आसान होनी चाहिए। ऐसा होने से छापने एव टाइप करने की बहुत सी कठिनाइया दूर हो जायेंगी।

५—अक्षर सरल होते हुए देखने में सुदर भी होने चाहिए, जिस में पाठको का उन की ओर स्वाभाविक आकर्षण हो।

६—अक्षर देखते ही पहचान लिए जावें, न तो वे एक साथ जोड कर लिखे जावें कि अलग-अलग उन का पहचानना कठिन हो जाय और न वे एक-दूसरे से बहुत ज्यादा मिलते-जुलते ही हो कि एक को दूसरे के स्थान में पढ लिया जाय।

७—अक्षरो में यथा-रुचि मोड देने के लिए पर्याप्त क्षेत्र होना चाहिए। यह केवल वास्तविक सरल वर्णमाला मे ही सभव हो सकता है।

८—वर्णमाला में विभिन्नता होते हुए भी एक विशिष्ट मौलिक एकरूपता का होना अत्युत्तम होगा। वर्णमाला के निर्धारण में विशिष्ट वैज्ञानिक आधार को सामने रखना रचना-कार्य को सरल बना देगा।

९—ऐसी लिपि में यदि अन्य लिपियो के किन्हीं अक्षरो से कुछ समानता हो तो सभी प्रातीय लोग उस की एकता में अपनेपन का आभास देखेंगे, जिस से वह लिपि उन्हे बिल्कुल अपरिचित नही मालूम होगी।

१०—लिपि में यदि ऐसी विशिष्ट सार्वदेशिकता आ सके कि वह अपनी सरलता' एव अन्य गुणो के कारण समय आने पर सर्व-राष्ट्रीय लिपि बनने की उपयुक्तता प्रमाणित कर सके तो यह अत्यन्त वाछनीय होगा।

११—अधिक प्रयुक्त होने वाले अक्षरो का आकार अपेक्षाकृत अधिक सरल होना चाहिए।

१२—वर्णमाला मे अक्षरो का क्रम ऐसा हो कि बालक भी सहज ही मे समझ सके एव स्मरण रख सके। अक्षरो का क्रम उन के आकार के विकास के अनुसार हो। सारी वर्णमाला ऐसी स्वाभाविक एव प्राकृतिक युक्ति के आधार पर निर्मित हो कि सब कुछ बिल्कुल भूल जाने पर भी यदि मनुष्य अपने धुंधले स्मरण के सहारे उसे फिर से सोच निकालने का प्रयत्न करे, तो उस से कुछ मिलती-जुलती ही वर्णमाला बने। इस का तात्पर्य यह नही कि ऐसा करने की भविष्य में कभी आवश्यकता शायद पडे, किंतु यह वर्णमाला की सुगमता एव स्वाभाविकता के साथ ही उस के वैज्ञानिक आधार को स्पष्ट प्रकट करता है।

इन्हीं प्रधान आवश्यक गुणो को ध्यान में रख कर निम्नाकित वर्णमाला को स्वरूप दिया गया है। अक्षरो की सरलता को प्रकट करने के अभिप्राय से उन मे अभी गोलाई नही दी गई है जो कि व्यवहार में आने पर उस में स्वभावत उत्पन्न हो जायगी।


क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल ळ व
श ष स क्ष ह
अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः
क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः
क्म कर्म कृमि कँ ऋ लृ त्र क्व क्य्
क् ड व य(बँगला)व क्न

अक्षरो का ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करने पर स्पष्ट प्रतीत होगा कि उन में विभिन्न प्रकार से मनचाही गोलाई देने के लिए काफी स्थान है। थोडे ही अभ्यास से उन मे और भी अधिक सरलता, सुदरता एव गोलाई लाई जा सकती है।

इस वर्णमाला की कुछ विशेषताए यह है—

(१) पैंतीस अक्षर (व्यजन) पाँच-पाँच की सात लाइनो में रक्खे गए है।

(२) स्वरो म केवल 'अ' के लिए विशेष चिह्न रक्खा गया है। बाकी के स्वर ग्यारह मात्राओ की सहायता से बनाए गए है। यही मात्राए व्यजनो में भी ठीक इसी प्रकार लगती है।

(३) प्रत्येक लाइन का पहला अक्षर यथासभव अत्यत सरल रक्खा गया है—अर्थात् दो सीधी लकीरो से बना हुआ एक चिह्न। इस के बाद के तीन अक्षरो में क्रमश एक सीधी लकीर बढती गई है। इन लकीरो के बढाने मे इस बात का विशेष-रूप से ख़याल रक्खा गया है कि उस लाइन का कोई न कोई अक्षर प्रचलित प्रधान भारतीय लिपियो के उसी लाइन के किसी न किसी अक्षर से बहुत कुछ सादृश्य रक्खे, ताकि लिपि नवीन होते हुए भी परिचित सी मालूम पडे, जिस के कारण अवसर आने पर इसे अपनी पुरानी लिपि के बदले में अपनाने में किसी भी प्रात के निवासी सकोच न करे।

(४) प्रत्येक लाइन में पहले चार अक्षरो का क्रमश विकास एक ही युक्ति के आधार पर हुआ है। यह विकास इतना स्वाभाविक है कि एक बार देख भर लेने पर भूल जाना कठिन हो जाता है। पाँचवा अक्षर तो पहले अक्षर से केवल इस बात मे भिन्न है कि उस में एक उपयुक्त सिरे पर गाँठ (बिंदु) है। इस लिए वर्णमाला में ३५ अक्षर होते हुए भी केवल २८ ही याद करने पडते है। वास्तव में याद तो केवल ७ अक्षर करने पडते हैं—लाइनो के पहले अक्षर—बाकी तो स्वाभाविक क्रम से स्वय आ जाते हैं।

(५) मात्राए व्यजनो एव स्वर के केवल बाद में ही लगती है, वर्तमान लिपियो की भाँति ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, नहीं। मात्राओ के चिह्न अत्यत सुगम है, और विशेष क्रमानुसार है—यह उन्हे ध्यान से देखने पर स्वय स्पष्ट हो जायगा। उदाहरणार्थ—'इ' की 'गाँठ' बाईं तरफ और 'ई' की 'गाँठ' दाईं तरफ है, तो 'उ' की गाँठ" भी बाईं बाजू और 'ऊ' की गाँठ दाईं बाजू है। 'इ' 'ई' की 'गाँठें' नीचे की ओर तथा 'उ' 'ऊ' की 'गाठें' ऊपर की ओर है, तो 'ए' 'ऐ' की 'भुजाए' नीचे एव 'ओ' 'औ' की ऊपर की ओर है। 'ए' और

'ऐ' तथा 'ओ' 'औ' मे केवल एक गाँठ का अतर है। 'अ' का अनुस्वार भी अक्षर के अत मे ऊपर की तरफ बिंदु के रूप मे रक्खा गया है। नुक्ता लगाने के लिए इसी बिंदु को अक्षर के बाद नीचे की तरफ रखना चाहिए। विसर्ग के लिए दोनो बिंदु रखने चाहिए।

(६) क्रम, कर्म, कृमि, ऋ, लृ, त्र, आदि में 'र' के रूपातर को प्रकट करने के लिए उसी 'र' को छोटे आकार मे लिख देना होता है। मात्राओ की भाति यह चिह्न भी अक्षर के बाद लिखा जाता है। क्रम और वर्म के लिखने म केवल यह अतर है कि पहले मे 'र'-कार का छोटा चिह्न नीचे की तरफ रक्खा जाता है, और दूसरे मे ऊपर की तरफ। कृ लिखने के लिए 'र'कार का छोटा चिह्न नीचे ही रक्खा जाता है, उस के सिरे मे एक गाँठ अधिक दे दी जाती है। ऋ, लृ के लिए विशेष शब्द न बनाने के अभिप्राय से उन्हे इसी ढग के अनुसार लिखा गया है, यद्यपि 'ऋ' का रूप कुछ विचित्र प्रतीत होता होगा।

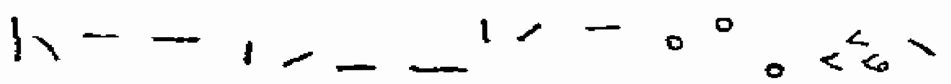
(७) 'क्य' और कय् का उदाहरण यह स्पष्ट कर देगा कि किसी अक्षर का आधा उच्चारण करने के लिए उस के आडे भाग की चौडाई आधी कर देनी चाहिए। यदि यह सभव नही हो तो उस अक्षर विशेष के बाद हलत का चिह्न रख देना चाहिए (देखिए क्)।

(८) फारसी शब्दो के व्यजनो का विशेष उच्चारण करने के लिए नुक्ता अक्षर के बाद मे बिंदु के रूप में नीचे की तरफ लगाया जाता है। यह बिंदु अनुस्वार जैसा ही होता है, और दोनो के लिखने पर विसर्ग का चिह्न बन जाता है।

(९) कुल चिह्न-सख्या ५२ है। छापेखाने की दृष्टि से अनुस्वार, नुक्ता, एव विसर्ग, 'क्रम' एव 'कर्म' मे के दो अर्द्ध 'र'कार के चिह्न, 'ई' और 'उ' तथा 'इ' और 'ऊ' की मात्राओ के चिह्न, 'ए' की मात्रा एव 'श', 'ओ' की मात्रा एव 'प', 'औ' की मात्रा एव 'म', 'ऐ' की मात्रा एव 'ह', 'क' एव 'च', 'ड' एव 'ञ', 'त' एव 'य', आदि जोडी के अक्षरो के लिए क्रमश एक-एक ही टाइप की आवश्यकता पडेगी, कारण उसी चिह्न को उलटा करने पर एक अथवा दूसरा अक्षर बन जायगा। पहले दो उदाहरणो मे अर्थात् बिंदु एव अर्द्ध 'र'कार के चिह्न के टाइप की ऊँचाई अन्य टाइपो की ठीक आधी रखनी पडेगी, दूसरा आधा टुकडा सादा होगा। इन टाइपो में खांचा रखने पर वे एक दूसरे के ऊपर अथवा नीचे की ओर बैठाए जा सकेगे। दोनो टाइप बिंदुओ के जोडने पर विसर्ग बनावेंगे। इस प्रकार १२ चिह्न प्रेस के टाइपो की सख्या में से कम किए जा सकते

है अर्थात् वास्तव में केवल कुल ४० चिह्नो की आवश्यकता पडेगी। 'आ' की मात्रा अंतिम अक्षर से विशेष दूरी पर रखने पर 'पाई' के विराम-चिह्न का काम कर देगी।

(१०) हाथ से टाइप करने की मशीन की दृष्टि से यह लिपि ससार की किसी भी वर्तमान लिपि से अधिक सरल बन सकेगी। रोमन लिपि मे बडे और छोटे टाइपो को मिला कर सख्या ५२ होती है, इस लिपि में भी सख्या अधिक से अधिक ५२ है। पर इन दो मे बहुत अतर है। रोमन लिपि की चिह्न-सख्या इस से कम करने का कोई उपाय नही, कारण ह्रस्व एव दीर्घ दोनो ही अक्षरो का होना अनिवार्य है। इस के विपरीत इस लिपि मे आविष्कर्ता के मस्तिष्क के सफल परिश्रम करने के लिए काफी क्षेत्र है। वर्णमाला को प्रारभ से अत तक एक बार देख जाने पर यह स्वय स्पष्ट हो जायगा कि सारी वर्णमाला की मूल-भित्ति हमारा 'एक' का चिह्न (१) है। यह स्वय दो अशो का बना हुआ है--बिंदु और पाई। ये दो चिह्नाश हमारी लिपि-निर्माण के लिए उतने ही उपयोगी एव महत्वपूर्ण है, जितने कि किसी प्राणी अथवा वृक्ष की रचना करने वाली सेलो का न्यूक्लिअस (मीगी) और प्रोटोप्लाज्म (जीवन-तत्व) अथवा किसी धातु या अन्य तत्व को बनाने वाले एटम (परमाणु) का प्रोटन एव इलेक्ट्रन। विशेष ध्यान से अध्ययन करने पर स्पष्ट होगा कि निम्नाकित कतिपय चिह्नाशो के समुचित सयोग द्वारा इस वर्णमाला का कोई भी चिह्न बनाया जा सकता है जिस से इतने से ही चिह्नाशो का सम्मिश्रण कर के कोई भी पुस्तक छापी अथवा टाइप की जा सकती है। कुल चिह्नाश-सख्या १८ है --



टाइप करने के लिए इन सब चिह्नो का अलग-अलग होना आवश्यक है किंतु छापने के लिए इस सख्या मे से पाँच कम किए जा सकते है अर्थात् केवल एक दर्जन छापे के टाइपो से सब काम निकाला जा सकता है। इस प्रकार के चिह्नाशो की सहायता से छापे हुए अक्षर अवश्य ही सुदर नही होगे पर कामचलाऊ जरूर होगे। यह पद्धति साधारण वर्तमान पद्धति से सुगम एव सस्ती पडेगी यह कथन भी सदेहपूर्ण हो सकता है। पर इस लिपि का यह विश्लेषण कम से कम मनोरजक सिद्ध होगा यह स्पष्ट है।

(११) यह लिपि अन्य किसी भी वर्तमान लिपि की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से छापी एव लिखी जा सकेगी। आधुनिक यत्र-युग में हमें विशेष ध्यान छापे एव टाइप की सुगमता की ओर देना चाहिए। लिखने का महत्त्व इतना नही है। जिस 'थाट' शब्द को रोमन लिपि में लिखने के लिए सात अक्षरो की आवश्यकता पड़ेगी उसी को इस लिपि में केवल तीन पतले आकार वाले अक्षरो से लिखा जा सकता है। इसी प्रकार अधिकतर अन्य शब्दो की तुलना किसी भी लिपि के साथ की जा सकती है। सभी अक्षरो का आकार पतला होने के कारण एक पेज पर अन्य लिपियो की अपेक्षा अधिक शब्द लिखे जा सकेगे। सब चिह्न एक ही ऊँचाई के एव एक लाइन मे होने के कारण लाइनें अधिक पास-पास रक्खी जा सकेंगी। इस से पुस्तक का आकार छोटा किया जा सकेगा।

(१२) बालक-विद्यार्थी के हृदय में लिपि की सरलता एव सादगी सृष्टि के प्रधान वैज्ञानिक तत्व (मूल-रूप सरल निर्माण) का प्रारभ से ही दृढ बीजारोपण करेगी। यह प्रारभिक प्रभाव बाद में जीवन एव जड सृष्टि की जटिलता मे सरलता का स्पष्ट आभास दरसाने मे अत्यत सहायक होगा।

समालोचना

कविता

युगांत—लेखक, श्रीसुमित्रानदन पत । प्रकाशक, इद्र प्रिंटिग वर्क्स, अल्मोडा। मूल्य बारह आना।

श्री सुमित्रानदन पत वर्तमान कवियो में ऊँचा स्थान रखते है। 'पल्लव' सामयिक काव्यसाहित्य में बहुत मान्य है और पत जी की और कृतिया भी प्रशसनीय है। उन के किसी ग्रथ के प्रकाशन की सूचना मिलते ही साहित्य-प्रेमियो में उत्सुकता और आशा उत्पन्न हो जाती है—आशा होती है कि पूर्वपरिचित मधुरता और कोमलता और शब्द-विन्यास फिर भी दृष्टिगोचर होगा, उत्सुकता होती है देखने की कि काव्य के किस अश मे उन्नति हुई है। 'युगात' श्री सुमित्रानदन जी के नए ग्रथ का नाम है। इन में पहले की अपेक्षा विचार-गाभीर्य अधिक है। जीवन का आह्लाद नहीं, स्वप्नो की सुदरता नही, परतु आकाक्षा और आशा के स्वर सुन पडते हैं—आशा मे नैराश्य भी है, आकाक्षा में भय मिला हुआ है। विगत समय के सस्मरण से एक प्रकार का शोकमय सुख उत्पन्न होता है। प्रकृति के वर्णन म तो पहले भी पत जी को पर्याप्त सफलता प्राप्त थी। अब प्रकृति की सुदरता तो पूर्ववत् मनो-हारिणी है, परतु साथ ही उस में कवि के भावो का प्रतिबिंब भी है। यदि मानव-हृदय में मोद है तो प्रकृति भी सुख के राग अलापती है, यदि विषाद है तो प्रकृति भी विषादमयी मालूम होती है। प्रस्तुत ग्रथ के पद्यो में सरसता है, परतु अकृत्रिम तन्मयता नही है। कवि अब अपने को अपनी भावनाओ और विचारो में मग्न होकर भूलता नहीं है। जीवन की जटिल समस्याओ को भूल जाने मे, अथवा गौण स्थान देने में, कवि अब समर्थ नहीं है। सभव है कुछ पाठको को इस से सतोष हो। सभव है, पत नई रीति की कविता लिखने में कालक्रम से सफल हो। परतु अभी तो हमें पूर्व-परिचित लालित्य और मधुरता और अकृत्रिमता के अभाव से खेद है। कुछ पद्यो से स्पष्ट होगा कि भावो को प्रकट करने में पत अब बहुत कुशलहस्त हो गए है।

झर पड़ता जीवन-डाली से
मैं पतझड का-सा जीर्ण-पात !—
केवल, केवल, जग-कानन में
लाने फिर से मधु का प्रभात ! (पृष्ठ ५)

यह भाव बिल्कुल नया है, साथ ही बडा गभीर है। मृत्यु से जीवन, पतझड से वसन—जीर्णता से यौवन, यही ससार की गति है। विश्व में कोई वस्तु नष्ट नही होती, पदार्थमात्र में पुन पुनर्जीवन की शक्ति है। इसी लिए कवि का हृदय विषण्ण नही—जीवन डाली से वह साह्लाद झरने को प्रस्तुत है।

कवि समस्त ससार में केवल एक तत्त्व को पाता है—उस तत्त्व का नाम है "सौंदर्य"। महामरण जलनिधि, तन, मन, सब सौदर्य के बल से एक है—समस्त सृष्टि में सौंदर्य का एक मात्र आधिपत्य है—

भाव रूप में गीत स्वरो में,
गंध कुसुम में, स्मिति अधरो में,
जीवन की तमिस्र-वेणी में
निज प्रकाश-कण बाँधो !
छवि के नव (पृष्ठ ३२)

कादंबिनी—लेखक, ठाकुर गोपालशरण सिह। प्रकाशक, इडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य एक रुपया आठ आना।

नईगढी के ठाकुर साहब का पहला पद्यसग्रह—'माधवी' सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ था। हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि ठाकुर साहब काव्य-सेवा में बहुत दिनो से तत्पर है। कवि-समाज में, विशेषकर खडीबोली की प्रगतिशील कविमडली मे, ठाकुर गोपालशरण सिंह का बडा आदर है। आप ने न स्वय उत्तम कवितायें लिखी है, कवियो को आप से पूर्ण उत्साह और साहाय्य भी मिलता रहता है। लक्ष्मी और सरस्वती का यहा विरोध नही है।

दस वर्ष पूर्व की कविताओ में ठाकुर साहब ने यह व्यक्त कर दिया था कि एक भावना के एक अश को सुदर शब्दो में प्रकट करने की योग्यता उन मे है। परतु 'माधवी'

में कोई लबी कविता नही हैं। 'कादबिनी म प्रधानत लबी कवितायें ही ह। हिंदी के वर्तमान कवियो की—विशेषत नई शैली के कवियो की—छोटी कविताओ के प्रति ही रुचि देख पडती है—दस पक्ति की बीस पक्ति की दो तीन पृष्ठ की ही अधिकतर कविताय होती हैं। और गीतकाव्य छोटा ही होता है। सतोष का विषय है कि ठाकुर साहब लबी कवितायें अब लिखने लग ह। कविताओ के शीर्षक से इन के विषयो का और कवि की अभिरुचि का पता मिलता है— अनत छवि अमर गान अनत यौवन अनत ससार, 'अनत जीवन अनत प्रेम अनत उल्लास —इन पद्यो म प्रसन्नता और आह्लाद के तान सुन पडते ह—कवि जीवन को सुखमय आशामय पाते ह। उन की दृष्टि म जगत म सुखदायी छवि छाई हुई है, जगत का भाडार परिपूर्ण है विस्तृत ह नाना प्रकार से विभूषित है, शशि अपार हृय म सुधा धार बहा देता है लहर प्रसन्नचित्त गाती है, दिगत कोकिलरव से मुखरित है प्रेम जगजीवन सार है कल-कुसुमो के हास म जग के पुण्य प्रयास म, मधुमास म वारिधि-वीचि विलास म कवि अनत उल्लास पाते ह। हमारे विचार म ठाकुर साहब का यह दृष्टि-कोण हिंदी साहित्य म नया और अनूठा है। हमारे साहित्य में—क्या सस्कृत क्या फारसी क्या बगला क्या हिंदी क्या उर्दू—करुण रस का एसा पूर्ण आधिपत्य है कि किसी और रस का समावेश बहुत कठिन हो गया है। प्रत्येक कवि ससार को वदनामय पाता है जीवन को असार कहता ह प्रेम का फल चिर विरह समझता है। पडितराज जगन्नाथ के शब्दो म सारे ससार की यह दशा है कि

भूतिर्नीचगृहेषु विप्रसदने दारिद्र्यकोलाहलो
नाशो हन्त सतामसत्पथजुषामायु शतानां शतम्।

इस प्रकार की धारणा कादबिनी म कम मिलती है।

ठाकुर साहब प्रकृति के सौदय से भी प्रभावित ह। प्रकृति की छवि का वर्णन कई पद्यो म बहुत मनोहर रूप म किया गया है। अनत यौवन कविता से उदाहरण स्वरूप य पक्तिया उद्धृत करने योग्य ह—

पुष्प पराग चढाते तुमको
लता हृदय अर्पण करती,

मधुऋतु लेकर तुम्हे गोद में
तृण-तृण में है छवि भरती।
विधि का अनुपम रुचिर विधान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान!"

अथवा 'प्रभात' के ये पद

भ्रमर छूट कर पकज-दल से
करने लगे विहार।
भानु-करो ने खोल दिया है
कारागृह का द्वार।

अथवा 'चांदनी' से

नभ से अवनी पर आने से
मानो वह भी थक जाती है।
श्रम-स्वेद कणो से ओस-बिन्दु
धरणीतल पर टपकाती है।

कही-कही जीवन के शोक से विह्वल हो कर कवि केवल वेदना के ही स्वर सुन सकता है

सिर धुनने लगती है कोयल
तज कर अपना कल-कूजन।
मुझे घेर करते है मधुकर
गुजन के मिस करुण रुदन।

इन उदाहरणो से पाठको को ज्ञात हो जायगा कि इस ग्रथ में कई विषयो पर और कई प्रकार की कवितायें है जिन से मनोरजन के अतिरिक्त आश्वासन और सारगर्भित तत्वो का दिग्दर्शन भी होता है।

अमरनाथ झा

कहानियां

वीरगाथा—लेखक, श्रीयुत सतराम, बी० ए० प्रकाशक, स्वाध्याय सदन, लाहौर। पृष्ठ २०० । १९३७ । मूल्य १)

श्रीयुत सतराम हिंदी के सुपरिचित लेखक है। उन की शैली मे एक विशेष रोचकता और प्रवाह हैं। प्रस्तुत पुस्तक मे उन्हो ने सात ऐतिहासिक सदर्भों को, जो कि वीरता से सबध रखते हैं साहित्यिक ढग से प्रस्तुत किया है। उन का उद्देश्य इन सदर्भों को विद्यार्थियो के लिए मनोरजक और ग्राह्य बनाना रहा है। इस उद्देश्य मे वह बहुत-कुछ सफल भी हुए हैं। वैभवशाली हिंदूराष्ट्र लेखक के कथनानुसार श्री सावरकर के मराठी प्रबध पर आश्रित है। शेप निबध लेखक के अपने है। लेखक का दावा है कि उस की भाषा साहित्यिक हिंदी है, 'हिंदी याने हिंदुस्तानी' नही। यह बात नही कि फारसी उद्गम के शब्दो का बहिष्कार किया गया हो।

रा० ट०

जीवट की कहानिया—लेखक, श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०। प्रकाशक, हिंदी-ग्रथरत्नाकर कार्यालय, बबई। १९३७। पृष्ठ-सख्या १५२। मूल्य १)

हिंदी मे ऐसी पुस्तको की बडी कमी है जिन से पाठको को साहसी जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा प्राप्त हो। इस कमी की पूर्ति के लिए जो प्रयास हो रहे हैं उन म श्री श्यामनारायण कपूर का प्रयास उल्लेखनीय है। उन्हो ने हिमालय पर्वत के आरोहण, दक्षिण ध्रुव की खोज, ज्वालामुखी के गर्भ में प्रवेश, वैज्ञानिको के साहसी कृत्यो आदि की अनेक घटनाओ का बडा मनोरजक वृत्तात प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक हमारे नवयुवको के लिए प्रोत्साहन का साधन होगी। यह सरल भाषा और रोचक शैली मे लिखी गई है और सचित्र है।

रा० ट०

कोष

उर्दू-हिंदी कोष—सपादक—एम० वि० जबुनाथन, एम० ए०, बी० एस् सी०। प्रकाशक—एम० वि० शेषाद्रि एड कपनी, बलेपेट, बेंगलोर सिटी। पृ० २४४। मूल्य १) सजिल्द।

प० रामनरेश त्रिपाठी का 'हिंदुस्तानी कोष' ऐसा है जिस मे हिंदी में खप जाने वाले विदेशी शब्दो को सम्मिलित कर लिया गया है। यह कोष केवल हिंदी भाषियो के लिए उपयोगी हो सकता है। परतु नए हिंदी (या उर्दू) सीखने वालो के लिए, विशेषतया दक्षिण-भारत वासियो के लिए, ऐसा कोई साधन नहीं था जिस से उन्हे हिंदी, जिस मे अरबी, फारसी तुर्की आदि भाषाओ के शब्द मिल गए है, सीखने में सुविधा हो। और हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के नाते यह काम बडा जरूरी था। साथ ही उर्दू (उस मे अरबी, फारसी, तुर्की आदि शुद्ध विदेशी शब्द) तथा अन्य विदेशी शब्दो से अनभिज्ञ हिंदी भाषा-भाषियो को बडी दिक्कतें उठानी पडती थी। इस अभाव की पूर्ति श्री जबुनाथन जी ने अपने 'उर्दू-हिंदी कोष' से कर दी है। जिस सिद्धात पर यह कोष बना है वह सपादक के ही शब्दो म इस प्रकार है—"इस कोष में ऐसे सभी विदेशी शब्द और उन के अर्थ दिए गए है जो आज कल के उर्दू या हिंदी के ग्रथो मे पाए जायँ, चाहे वे उर्दू लिपि मे लिखे हुए हो या नागरी लिपि मे, चाहे उन का इस्तेमाल समालोचक की दृष्टि से मुनासिब समझा जाय या ना-मुनासिब। साथ-साथ यह भी बतलाया गया है कि हर एक शब्द किस भाषा से लिया गया है। ये लफ्ज़ अरबी, फारसी, इबरानी, यूनानी, तुर्की, पुर्तगाली (पोर्चुगीज) आदि भाषाओ में से उर्दू मे आए है। कुछ अगरेजी शब्द और पजाबी, तामिल आदि भारत की भाषाओ के एक आध शब्द भी उर्दू में आ गए है और वे शब्द इस कोष मे शामिल है। कभी-कभी इन पराई भाषाओ के शब्दो में हिंदी प्रत्ययो के लगने से, अथवा हिंदी शब्दो में इन भाषाओ के प्रत्यय लगाने से कुछ नए शब्द बन गए है। जैसे—अजायबघर, घडीसाज, दफनाना, आजमाना, चहबच्चा, नबरदार। ऐसे वर्णशकर शब्द किसी अन्य भाषा के शब्द नही माने जा सकते, वे सब उर्दू ही के शब्द है। इस कोष मे उन्हे स्थान अवश्य दिया गया है।"

अवतरणिका में सपादक ने हिंदी-उर्दू का भेद समझाया है जिस मे कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। उर्दू शब्दो के उच्चारण प्राय शुद्ध है। अर्थो को साफ-साफ बतलाने के लिए अगरेजी या दक्षिणी शब्दो का भी प्रयोग किया गया है। अरबी व्याकरण के नियम और अरबी-फारसी उपसर्ग, प्रत्यय आदि की सूची दे कर सपादक ने पाठको की ज्ञान-वृद्धि के लिए एक छोटा-सा साधन उपस्थित कर दिया है। साधारणतया कोष अच्छा है। और लेखक का प्रयास प्रशसनीय है।

ल० वा०

हिंदी मुहावरा कोष—संपादक—एम० वि० जम्बुनाथन। प्रकाशक—एम० वि० शेषाद्रि एंड कंपनी, बलेपेट, बेंगलोर सिटी। पृ० २८८। मूल्य १॥)। सजिल्द।

मुहाविरे भाषा की शक्ति हैं। इन के द्वारा हम थोड़े में सार्थकता और प्रभावोत्पादकता के साथ अपना आशय प्रकट कर सकते हैं। हमारे कहने में जान आ जाती है। हिंदी में मुहावरों का कितना बाहुल्य है और उन का क्या मूल्य है, इस ओर शायद हम हिंदी भाषा-भाषियों का ध्यान नहीं गया। वास्तव में अपनी भाषा होने के कारण दिन रात मुहावरों का प्रयोग करते रहने पर भी हम उन के विषय में अधिक नहीं सोचते। इसी कारण अभी तक हमारे यहां मुहावरों का वैज्ञानिक कोष नहीं है।

जंबुनाथन जी का कोष न तो पहला मुहावरा-कोष है और न वैज्ञानिक है। परंतु इस में अन्य कोषों की अपेक्षा मुहावरों की संख्या अधिक है। संपादक ने हिंदी, उर्दू, गल्प, उपन्यास आदि सब जगहों से मुहावरे लिए हैं और कोष को 'पूर्ण' बनाने का प्रयत्न किया है। मुहावरों के उदाहरण बहुत आवश्यक थे। क्योंकि बिना किसी संदर्भ के देखे किसी मुहावरे का ठीक अर्थ समझना दुस्तर होता है। साथ ही एक मुहावरा कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। किंतु ये समस्त अर्थ कहीं-कहीं कोष में नहीं मिलते। उदाहरण के लिए 'हाथ चलाना'—का प्रयोग कोष में दिए हुए अर्थों के अतिरिक्त 'फुर्ती से काम करना' के अर्थ में भी होता है। ऐसे ही कुछ और भी उदाहरण मिलेंगे। कुछ मुहावरे गलत लिखे गए हैं, जैसे 'दंड भरना' (जुर्माना देना) के स्थान पर 'डंड भरना'। इन छोटी छोटी त्रुटियों और अशुद्धियों के रहते हुए भी जिन के लिए विशेषतया यह कोष लिखा गया है (अर्थात् दक्षिण भारतवासियों के लिए) उन की आवश्यकता की पूर्ति बहुत कुछ इस से हो सकेगी। साधारणतया हिंदी-भाषी भी इस कोष से लाभ उठा सकते हैं।

ल० वा०

लेख-परिचय

[इस स्तभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ में विगत तीन मास में प्रकाशित गभीर लेखो के शीर्षक, लेखको के नाम सहित, अकित किए गए है।]

अ की बारहखडी—श्री किशोरलाल घनश्याम मश्रूवाला, हस, दिसबर '३७

अख्तर शेरानी—श्री उपेद्रनाथ 'अश्क', विशाल भारत, अक्तूबर '३७

आदि सभ्यताओ का गहवारा—छोटा नागपुर—श्री शरच्चद्र राय, विशाल भारत, जनवरी '३८

इग्लैड की, उन्नीसवीं शताब्दी में, साहित्य साधना—श्री शशिभूषण, विश्व-मित्र, नवबर, ३७

इस्लाम का प्रचार—श्री पाडेय रामावतार शर्मा, एम्० ए०, बी० एल्०, माधुरी, जनवरी '३८

उर्दू की उत्पत्ति—श्री चद्रबली पाडेय, एम्० ए०, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८–२

एवरेस्ट-शिखर के आदि अन्वेषक बाबू राधानाथ सिकदर—श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०, माधुरी, अक्तूबर '३७

कविराज कल्हण और राजतरगिणी—श्री चद्रधर हस, एम्० ए०, माधुरी, जनवरी '३८

कुमावनी लेखनी का चमत्कार तथा पहाडी भाषा—श्री मथुरादत्त त्रिवेदी, विशाल भारत, अक्तूबर '३७

गढवाली भाषा के 'पखाणा' (कहावतें)—श्री शालिग्राम वैष्णव, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८–२

गदर और बाद की दिल्ली—श्री महेशप्रसाद मौल्वी आलिम फाजिल, सरस्वती, जनवरी '३८

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि—श्री मन्नालाल द्विवेदी, वीणा, जनवरी '३८

तुलसी-कृत रामायण में करुण-रस—श्री राजबहादुर लमगोडा, एम्० ए०, कल्याण, नवबर '३७

दादू की साधना का स्वरूप—श्री क्षितिमोहन सेन, एम्० ए०, वीणा, दिसबर '३७

देवी सरोजिनी नायडू—श्री रामनाथ सुमन, माधुरी, नवबर '३७

नवयुग के साहित्य का रूप—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०, विश्वमित्र, अक्तूबर '३७

नागरी लिपि में सुधार—श्री धर्मदेव शास्त्री, सुधा नवबर '३७

नादानुसधान—स्वामी श्री कृष्णानद जी महाराज, कल्याण, नवबर '३७

पाचाल के सस्मरण—श्री उमेशचद्र देव, सरस्वती, जनवरी '३८

प्राचीन पत्रलेखन—डाक्टर हीरानद शास्त्री, डी० लिट्०, विशाल भारत, जनवरी '३८

प्राचीन भारत में नगर-निर्माण—श्री परमश्वरीलाल गुप्त माधुरी, जनवरी '३८

प्राचीन भारतीय समाज की एक झलक—डाक्टर बाबूराम सक्सेना, डी० लिट्०, चाँद नवबर, '३७

बिहार का साहित्यिक जागरण—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, साहित्य भाग, १–४

भगवान् महावीर और मत्रलिपुत्र गोशाल—मुनिराज श्री विद्याविजय, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १८–२

भरतपुर का राजवश और सूदन कवि—डाक्टर कालिकारजन कानूनगो, पी-एच्० डी०, वीणा, नवबर '३७

भारत की प्राक्-ऐतिहासिक सभ्यता—श्री नगेंद्रनाथ घोप, एम्० ए०, चाँद, नवबर '३७

भारतवर्ष की राष्ट्रीय लिपि—डाक्टर हीरानद शास्त्री डी० लिट्०, वीणा; दिसबर '३७

भारतीय सस्कृति में कला का स्थान—डाक्टर परमात्माशरण, पी-एच्० डी०, वीणा, नवबर '३७

महाकवि अकबर इलाहाबादी—श्री लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, माधुरी, अक्तूबर '३७

महाकवि कालिदास तथा गोस्वामी तुलसीदास का शृंगार वर्णन—श्री व्योहार राजेंद्रसिंह, सुधा, नवंबर '३७

मारवाड़ की सब से प्राचीन जैन मूर्तियाँ—श्री मुनि कल्याणविजय, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८–२

मालवे की भौगोलिक स्थिति का इतिहास पर प्रभाव—श्री विश्वनाथ शर्मा, वाणी, अक्तूबर-दिसंबर '३७

मुस्लिम सम्राटों के सिक्कों पर हिंदू मूर्तियाँ—श्री बहादुर सिंह सिंघी, एम्० ए०, विश्वमित्र, अक्तूबर '३७

मूल गोसाईंचरित की प्रामाणिकता—श्री रामदास गौड़, एम्० ए०, कल्याण, नवंबर, '३७

यज्ञोपवीतरहस्य अथवा ब्रह्मात्मैक्य निरूपण—श्री धर्मराज वेदालंकार, कल्याण, जनवरी '३८

राजस्थान का एक कवि—राजिया—श्री मनोहर शर्मा, हंस, नवंबर '३७

'रामचंद्रोदय' की भाषा—श्री अबोध मिश्र, माधुरी, अक्तूबर '३७

रस के दो अमर कवि—श्री रामेश्वर शर्मा, हंस, अक्तूबर '३७

वर्तमान हिंदी के संबंध में कुछ विचार—श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा, एम्० ए०, विशाल भारत, अक्तूबर ३७

वस्तुजगत और भावजगत—श्री नलिनीमोहन सान्याल, एम्० ए०, सरस्वती, जनवरी '३८

वेदों में भगवन्नाम महिमा—श्री मत्परमहंस स्वामी भागवतानंद महाराज, कल्याण, जनवरी '३८

श्री सियारामशरण गुप्त की 'मृण्मयी'—श्री रामचंद्र तिवारी, हंस, अक्तूबर '३७

साहित्यिक सत्य—श्री धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, साहित्य, भाग १–४

 संसार का महत्तम ग्रंथ—महाभारत—श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, विशाल भारत, अक्तूबर '३७

संस्कृत-साहित्य में गद्य-काव्यों की विरलता—श्री सीताराम शास्त्री मिश्र, साहित्याचार्य, माधुरी, जनवरी '३८

सेनापति विमल के कुटुंब की एक अप्रकट प्रशस्ति—श्री मुनि जयंतविजय, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८–२

स्वामी दयानंद और उर्दू—श्री चंद्रबली पांडेय, सरस्वती, जनवरी '३८

हमारा साहित्य : उस के गुण-दोष—श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, विशाल भारत; जनवरी '३८

हमारी भाषा का रूप कैसा हो?—श्री भवानीप्रसाद, बी० ए०, सरस्वती, दिसंबर '३७

हिंदी-कविता में हास्य-रस—श्री नगेंद्र एम्० ए०, वीणा, नवंबर '३७

हिंदी कहानी की प्रगति—श्री प्रकाशचंद्र गुप्त, हंस, दिसंबर '३७

हिंदी का ऐतिहासिक साहित्य—श्री सतीशचंद्र, एम्० ए०, साहित्य, भाग १–४

हिंदी गद्य का प्रारंभिक युग—श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०, वीणा, अक्तूबर '३७

हिंदी पत्रकार-कला का विकास—श्री विष्णुदत्त शुक्ल, विशाल भारत, जनवरी '३८

हिंदी में दार्शनिक साहित्य—श्री हरिमोहन झा, एम्० ए०; साहित्य, भाग १–४

हिंदी साहित्य की वर्तमान धारा और लोक-रुचि—श्री देवनारायण कुँवर, माधुरी; अक्तूबर '३७

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १॥)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १॥)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १।।); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफज़ल। मूल्य १।)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३।।)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५।।), सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४।।), सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५।।), सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६), कपड़े की जिल्द ६।।)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ।।)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १।।)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १।)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३।।)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल् एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४।।), कपड़े की जिल्द ५)

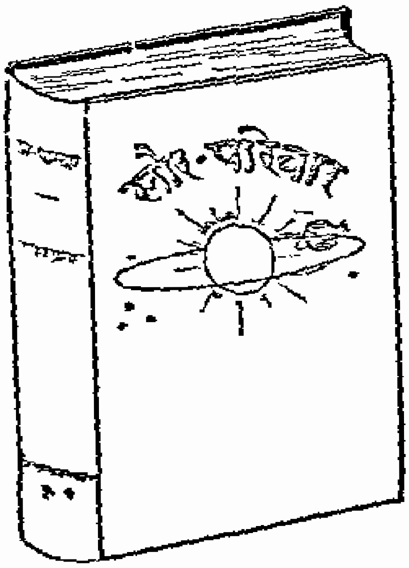
(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ।।)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक



७१६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

(जिन में ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमीं जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय को रोचक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे लोग तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

* * पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरम्भ कर देने पर बिना समाप्त किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I have seen, lacking in precision * * I congratulate you on this excellent work"

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अप्रैल, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, अप्रैल, १९३८

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

१—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फिल्० (ऑक्सन)
२—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०
३—डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)
४—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी० (लंदन)
५—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)
६—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } अप्रैल, १९३८ { अंक २

मीराबाई और वल्लभाचार्य

[लेखक—डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, डी० लिट० (बनारस)]

मीराबाई[1] की साधुसेवा प्रसिद्ध है। सत्संग उसे बहुत प्रिय था। रैदास की परंपरा उस का गुरु मानती है। प्रियादास के अनुसार गौड़ीय संप्रदाय के प्रसिद्ध जीव गोस्वामी को मीरा के लिए स्त्री का मुँह न देखने का अपना व्रत भंग करना पड़ा था। गोसाईं तुलसीदास के साथ मीराबाई के पत्र-व्यवहार की जनश्रुति प्रसिद्ध है। परंतु वल्लभाचार्य जी का नाम भी मीराबाई के साथ आता है इस की चर्चा आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में होते नहीं देखी गई है। ऊपर जिन अन्य महात्माओं के नाम लिए गए हैं मीराबाई से उन का संबंध अनुकूलता का है किंतु वल्लभाचार्य जी का संबंध कुछ भेदभाव-युक्त जान पड़ता है।

उन के इस भेद भाव का पता वल्लभ-संप्रदाय की पुस्तक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से चलता है। इस वार्ता-पुस्तक की इकतालीसवीं वार्ता में लिखा है कि एक बार गोविंद दुबे नामक आचार्य महाप्रभु का एक 'निज सेवक' मीराबाई के घर ठहरा और वहाँ भगवद्वार्ता में रमा रह गया। वल्लभाचार्य जी ने जब इस बात को सुना तो (उन के पुत्र) श्री गुसाईं

---

[1] राजस्थान में नाम मीरांबाई है। हिंदी में 'मीरा' चल पड़ा है। उस के स्थान पर फिर 'मीरां' करना उचित नहीं जान पड़ता।

जी (विट्ठलनाथ) ने, गोविंद दुबे को एक श्लोक लिख भेजा। जिस समय गोविंद दुबे के पास वह पत्र पहुँचा, उस समय वह सध्यावदन कर रहा था। उसे पढते ही गोविंद दुबे वहा से ऐसा चला कि पीछ फिर कर भी न देखा। मीराबाई ने कितना समझाने का प्रयत्न किया पर वह रुका नही।[१]

कृष्णदास अधिकारी की वार्ता से पता चलता है कि आचार्य महाप्रभु के कुछ 'निज सेवक' मीराबाई को नीचा दिखाने का भी प्रयत्न किया करते थे। उस से इस विरोध के कारण का भी कुछ पता चलता है।

कृष्णदास अधिकारी एक बार द्वारिका गया। वहा से रणछोड जी के दर्शन कर के वह मीराबाई के गाँव आया। वहा हरिवश व्यास आदि कई प्रतिष्ठित वैष्णव ठहरे हुए थे। किसी को आए आठ, किसी को दस, किसी को पद्रह दिन हो गए थे। कृष्णदास ने आते ही कहा, 'मै चलता हू'। मीराबाई के बहुत रोकने पर भी वह न रुका तब मीराबाई ने श्रीनाथ जी के लिए कई मुहरें भेट देनी चाही। पर कृष्णदास ने ली नही और कहा कि तू आचार्य महाप्रभु की सेवक नही होती है इस लिए हम तेरी भेंट हाथ से छुएगे भी नही। यह कह कर वह चल दिया।[२]

---

[१] "और एक समय गोविंद दुबे मीराबाई के घर हुते। तहा मीराबाई सो भगवद्वार्ता करत अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविंद दुबे मीराबाई के घर उतरे है सो अटके है। तब श्री गुसाईं जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजबासी चल्यौ सो वहा जाय पहुँचौ, ता समय गोविंद दुबे सध्यावदन करत हुते। तब ब्रजवासी ने आयकें वह पत्र दीनो। सो पत्र बाचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे तब मीराबाई नें बहुत समाधान कीयो परि गोविंद दुबे नें फिरि पाछें न देख्यौ।"—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', (गगाविष्णु श्रीकृष्णदास, मुबई) १६८५, पृ० १६२

[२] "सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गये हुते। सो श्री रणछोरजी के दर्शन करि कें तहा ते चले। सो आपन मीराबाई के गाव आयौ, सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गये, तहा हरिवश व्यास आदि के विशेष सह वैष्णव हुते। सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पद्रह दिन भये हुते। तिन को बिदा न भई हुती और कृष्णदास नें तौ आवत ही कही जो हूँतौ चलूंगौ। तब मीराँबाई ने कही जो बैठो तब कितनेक महोर श्रीनाथ जी को देन लागी। सो कृष्णदास नें न लीनो और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की नाहीं होत ताते तेरी भेंट हाथ ते छूवेंगो नाहीं। सो ऐसे कहि कें कृष्णदास वहा ते उठि चले।"—८४ वार्ता, पृ० ३४३; डाक्टर धीरेंद्र वर्मा सकलित 'अष्टछाप', पृ० १६

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि वल्लभाचार्य जी के अनुयायियों का उस से कुछ सीमा तक अवश्य ही इस कारण विरोध था कि वह भी उन की अनुयायिनी नहीं बनी। आरम्भिक अवस्था में प्रत्येक सम्प्रदाय में स्वभावतया प्रचार और प्रदर्शन का भाव अधिक रहता है। वल्लभ-सम्प्रदाय भी इस बात का अपवाद नहीं था यह स्वयं कृष्णदास अधिकारी के शब्दों से स्पष्ट है। कृष्णदास जब मीराबाई की भेंट फेर कर चला आया तो एक वैष्णव ने उस से कहा, तुम ने श्रीनाथ जी की भेंट नहीं ली। कृष्णदास ने कहा भेंट की क्या पड़ी है। मीराबाई के यहां जितने भक्त बैठे थे उन सब की नाक नीची कर के भेंट फेरी है। इतने एक जगह कहां मिलेंगे। ये भी जानेंगे कि एक समय आचार्य महाप्रभु का सेवक आया था। उस ने भी जब भेंट नहीं ली तो उस के गुरु की तो बात ही क्या होगी।[1]

जान पड़ता है कि मीराबाई को वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित करने के कुछ प्रयत्न हुए थे। बाद को तो वल्लभ-सम्प्रदाय को मेवाड़ में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। २५२ वार्ता के अनुसार मीरा की देवरानी अजबकुँवरबाई को विट्ठलनाथ ने अपनी शिष्या बना लिया[2] और श्रीनाथ का मंदिर बन जाने पर औरंगजेब के समय में तो मेवाड़ वल्लभ-सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र ही हो गया। किंतु स्वयं मीरा को दीक्षित करने का कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। मीराबाई का पुरोहित रामदास भी ८४ वैष्णवन की वार्ता के अनुसार वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया था। पर वह तब भी दीक्षित नहीं हुई। एक दिन रामदास मीराबाई के ठाकुर जी के आगे कीर्तन कर रहा था। उस ने कीर्तन में आचार्य महाप्रभु का पद गाया। उस के समाप्त होने पर मीराबाई ने कहा श्री ठाकुर जी का पद गाओ। इस पर आचार्य महाप्रभु का अपमान समझ कर रामदास बड़ा क्रुद्ध हुआ और मीराबाई को बुरा भला कहता हुआ उस के यहां से अपना कुटुंब ले कर चला गया। मीराबाई के बुलाने पर भी वह उस के यहां न गया। मीराबाई ने घर बैठे ही रामदास को वृत्ति देनी चाही पर उस ने यह कह कर नहीं ली कि आचार्य

---

[1] "तब कृष्णदास ने कह्यो जो भेंट को कहा है परि मीराबाई के यहां जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीची करि के भेंट फेरी है। इतने इक ठौरे कहां मिलेंगे। यहहू जानेंगे जो एक बेर शूद्र श्री आचार्य जी महाप्रभून को सेवक आयो हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके गुरु को कहा बात होयगी।"—'८४ वार्ता', पृ० ३४३, 'अष्टछाप', पृ० १६
[2] '२५२ वार्ता', पृ० १३०

महाप्रभु पर तेरी 'समत्व' दृष्टि नहीं है, तेरी वृत्ति ले कर हमें क्या करना है? हमारे तो सर्वस्व आचार्य महाप्रभु ही हैं।'[१]

ये उद्धरण इतने विस्मयकारक हैं कि सहसा इन पर विश्वास करने का जी नहीं चाहता। इस लिए देखना चाहिए कि 'वार्ता' और उस में दी हुई ये घटनाएं कहां तक प्रामाणिक हैं।

'वार्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को जाँचने का कोई विशेष साधन उपलब्ध नहीं है। उस का रचयिता कौन है, इस का भी निश्चित ज्ञान हमें नहीं है। स्वयं 'वार्ता' में कहीं उस के लेखक का नाम नहीं दिया हुआ है। इधर कुछ लोगों का विश्वास चला आता रहा है कि यह वल्लभाचार्य के पौत्र और विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ की लिखी हुई है जिन का रचना-काल पंडित रामचंद्र जी शुक्ल के अनुसार सं० १६२५ से १६५० तक माना जा सकता है। (हिंदी शब्दसागर, भूमिका, पृ० २०६) सं० १९०९-१९११ की नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में हरिराय के नाम से एक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (सं० ११५-बी) का उल्लेख है। आदि-अंत के अवतरणों से मालूम पड़ता है कि यह भी थोड़े से भेद से गोकुलनाथ की समझी जाने वाली वार्ता ही है। पर रिपोर्ट वाली '८४ वार्ता' के आदि-अंत में भी रचयिता का नाम नहीं दिया हुआ है। रिपोर्ट के अनुसार, हरिराय आचार्य जी का शिष्य और उन के पुत्र विट्ठलनाथ तथा पौत्र गोकुलनाथ दोनों का समकालीन था। '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में दी हुई गंगाबाई क्षत्राणी की वार्ता से पता चलता है कि गंगाबाई की मृत्यु के समय सं० १७३६ में हरिराय विद्यमान था। उस समय

---

[१] "सो एक दिन मीराबाई के श्री ठाकुर जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते तब मीराबाई बोली जो दूसरे पद श्री ठाकुर जी को गावो तब रामदास जी ने कह्यो मीराबाई सो जो अरे दारी रांड यह कोन को पद है यह कहा तेरो खसम को मूड है जो जा आज ते तेरो मुंहडो कबहूं न देखूंगो तब तहां ते सब कुटुम्ब को लेकें रामदास जी उठि चले तब मीराबाई ने बहुतेरे कह्यो परि रामदास जी रहे नाहीं . मीराबाई नें बहुत बुलाये परि वे रामदास जी आये नाहीं तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यो जो राड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हम को तेरी वृत्ति कहा करनी है। हमारे तौ श्री आचार्य जी महाप्रभु सर्वस्व हैं।"—८४ वार्ता, पृ० २०७-२०८; 'पुष्टि दृढाव' नामक निबंध में भी जो '२५२ वैष्णवन की वार्ता' के अंत में छपा है इस प्रसंग का उल्लेख है।—पृ० ५१९-५२०

वह मेवाड़ में श्रीनाथ के मंदिर का महंत था। इस में संदेह नहीं कि हरिराय तथा गोकुलनाथ ने ब्रजभाषा गद्य में अच्छी टीकाएँ लिखी हैं, जिन की भाषा 'वार्ता' ही के समान सुंदर और सजीव है। परंतु हरिराय के 'भावना', 'सन्यास-निर्णय', 'निरोध लक्षण' और 'शिक्षा-पत्री' तथा गोकुलनाथ के 'सर्वोत्तम स्तोत्र टीका' आदि ग्रंथों में लेखकों के नाम स्पष्ट रूप से दिए हुए हैं, जब कि वार्ताओं में किसी का नाम इस प्रकार नहीं दिया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि 'वार्ता' किसी एक व्यक्ति की लिखी हुई नहीं है। संभवतः बहुत सी वार्ताएँ मूल-रूप में स्वयं आचार्य जी के मुख से सुनी गई होंगी। कुछ अन्य लोगों ने अपनी आँखों देखी कही होंगी। फिर परंपरा से कानोंकान चली आती होंगी। गोकुलनाथ या हरिराय इन के लेखक तो क्या संग्रहकर्ता भी थे या नहीं नहीं कहा जा सकता। परंतु इस से मीराबाई-संबंधी इन प्रसंगों की प्रामाणिकता में कोई अंतर नहीं आता। इन प्रसंगों के पीछे यदि ऐतिहासिक आधार न होता तो वे पीछे से वार्ता में न आ पाते। मीरा का महत्त्व सर्वकालीन है। ऐसे व्यक्तियों को सब लोग अपनाने का प्रयत्न करते हैं। समय की दूरी जब तुच्छ कलहों की तात्कालिक तीव्रता को शिथिल कर डालती है तब ऐसे व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने की इच्छा होती है, मतभेद दिखाने की नहीं। इस से जान पड़ता है कि इन बातों के पीछे अवश्य ऐतिहासिक आधार है। और ये उस समय की लिखी या कही हुई हैं जब कि अभी ताजी ही थीं। इन में कोई बनावट भी नहीं जान पड़ती। यदि कोई बनावट हो तो अधिक से अधिक इतनी हो कि रामदास से मीराबाई के लिए जो दुर्वचन कहलाए गए हैं, वे अतिरंजित हों। कृष्णदास वाला प्रसंग तो इतना निर्द्वंद्व है कि इस के सर्वथा सच होने में कोई संदेह ही नहीं जान पड़ता।

ऐतिहासिक दृष्टि से इन घटनाओं में कोई असंभवता भी नहीं। वल्लभाचार्य जी का जन्म सं० १५३५ में हुआ था और गोलोकवास सं० १५८३ में। ये तिथियाँ संप्रदाय में भी मान्य समझी जाती हैं और उस के बाहर भी। मीराबाई पहले महाराणा कुंभा की स्त्री समझी जाती थी। परंतु अब मुंशी देवीप्रसाद, श्री हरविलास सारडा और महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थान के ये तीनों प्रमुख इतिहासविद् उन एकमत हो महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार भोजराज की स्त्री मानते हैं। 'वार्ता' भी समय की दृष्टि से इस को पुष्ट करती है। मीरा के संबंध में अब तक जो कुछ ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं, उन से इतना निश्चित है कि संवत्

के राव वीरमदेव के छोटे भाई रतनसिंह की इस पुत्री का जन्म स० १५५५ के लगभग, विवाह १५७३ के लगभग, वैधव्य १५७५ के लगभग, और निधन १६०३ के लगभग हुआ।[1] इस प्रकार 'वार्ता' में दी हुई ऊपर की घटनाओं के सत्य होने में कोई ऐतिहासिक व्यवधान नहीं है। क्योंकि मीरा और आचार्य जी दोनो समकालीन थे।

'वार्ता' के ऊपर दिए हुए उद्धरणों से मीराबाई के महत्व पर बहुत प्रकाश पड़ता है। वह सब संतो का, सप्रदाय भेद का विचार किए बिना, समान-रूप से आदर करती थी। उस की बड़ी उदार धार्मिक भावना थी। वल्लभ-सप्रदाय की न होने पर भी उस ने उन के मदिर म भेंट भेजनी चाही। उस के विरोधियो ने भी उस से कटु वचन नही कहलाए। वह बड़ी सहिष्णु थी। कृष्णदास ने उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न किया, रामदास ने उसे गालिया तक दी, फिर भी उसे उद्विग्न नही कर सके। रामदास को तो वह घर बैठे वृत्ति देने तक को तैयार थी। उस के महत्त्व को वल्लभाचार्य जी स्वय जानते होंगे। किसी सामान्य व्यक्ति को दीक्षा के लिए तैयार न करा सकने पर उन के भक्तो को उतनी खीझ न होती जितनी 'वार्ता से प्रकट है।

वल्लभाचार्य जी भी उस काल के बहुत बडे महात्मा थे। मीरा के साथ उन के भक्तो के वढगे व्यवहार में उन का हाथ कदापि नही हो सकता, किंतु मीरा से उन का अवश्य ही गहरा तात्विक भेद था, जिस ने शिष्यो में जा कर दूसरा रूप धारण कर लिया। गोविंद दुबे की वार्ता से पता चलता है कि यह भेद इतना गहरा था कि उस के कारण मीराबाई से अपने अनुयायियो का ससर्ग भी वल्लभ-सप्रदाय के कुछ आप्तजन अवाछनीय समझते थे।

मीराबाई ने भी मतभेद को छिपाया नही है। उस की ओर से हमारे सामने दो अर्थ-गर्भित तथ्य है। जब कि सूरदास सरीखे महात्मा जो स्वय दीक्षा देते थे, जिन के स्वय बहुत से भक्त थे, वल्लभाचार्य जी के सेवक हो गए[2] तब भी मीरा ने उन से दीक्षा नहीं ली। दूसरे वल्लभाचार्य जी के पदो को मीरा अपने ठाकुर जी के उपयुक्त

---

[1] ओझा, 'राजपूताने का इतिहास', पृ० ६५०—६५१

[2] "गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतो। सो सूरदास जी स्वामी हैं आप सेवक करते सूरदास जी भगवदीय है। गान बहुत आछौ करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते"—'८४ वार्ता', पृ० २७२

नहीं मानती थी। परिणाम इस से यह निकलता है कि मीराबाई पर पहले ही से कोई गहरा रंग चढ़ा हुआ था, जो वल्लभ-संप्रदाय के रंग से कदापि मंद नहीं जाना था। इस प्रकार '८४ वार्ता' के ये उल्लेख मीरा के मन को समझने में प्रकारांतर से हमारी मदद करते हैं।

वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग में कृष्ण-भक्ति ही सार वस्तु है। इसी लिए वल्लभ-संप्रदायी कवियों ने कृष्णावतार की लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। 'अष्टछाप' के यशस्वी कवियों की रचनाएं जिन्हों ने पढ़ी हैं, वे इस बात को जानते हैं।

इस में संदेह नहीं कि प्रत्यक्षतः मीराबाई भी कृष्णभक्त हैं। उस की वाणी में स्थल-स्थल पर कृष्ण का उल्लेख है। उस का बहुत-सा अंश कृष्ण ही को संबोधित कर कहा गया है। मीरा ने स्वयं कहा है कि 'मोरमुकुटधारी' 'नंदनंदन' ही मेरे पति हैं। गिरिधर गोपाल के अतिरिक्त किसी दूसरे से वह अपना संबंध ही नहीं मानती थी।[1] कृष्ण ही की बाँकी-साँवली छवि, टेढ़ी अलकों और त्रिभंगी मूर्ति पर उस की लुभाई हुई आँख अटकी रहती थी।[2]

अपने आप को गोपी कल्पित कर वह भाग्यशालिनी गोपियों के भाग्य पर ईर्ष्या करती है —

श्याम म्हासूं ऐंडो डोले हो।
औरन सूं खेले धमार म्हासूं मुखहू ना बोले हो।
म्हारी गलियां ना फिरे वाके आंगन डोले हो॥
म्हारी अंगुली ना छुवे वा की बहियां मोरे हो।
म्हारो अचरा ना छुवे वाको घूंघट खोले हो।
मीरा के प्रभु सांवरो रंग रसिया डोले हो।[3]

---

[1] मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरा न कोई।
जा के सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई॥—बानी, पृ० २४

[2] निपट बंकट छवि अटके मेरे नैना, निपट बंकट छवि अटके।
देखत रूप मदनमोहन को पियत पियूख न मटके।
बारिज भँवर अलक टेढ़ी मनो अति सुगंध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी गिरिधर नागर नट के॥

[3] बानी, पृ० ५३

परंतु यदि गहरे पैठ कर देखा जाय तो जान पड़ेगा कि उस का उतना ध्यान अवतार की ओर नहीं है जितना ब्रह्म की ओर। जिस नंद-नंदन गिरिधर गोपाल के विरह में वह 'अँसुअन की माला'[1] पोया करती है, जिस की बाट जोहते उस की 'छमासी' रात बीतती है[2], जिस के रूप पर मुग्ध हो कर उसे लोक परलोक कुछ नहीं सुहाता[3], जिस से वह अपनी बाँह मुड़वाना और घूँघट खुलवाना चाहती है[4], जिस के लिए वह घायल हो कर तड़पती फिरती है[5], जिस को वह 'छप्पन भोग' और 'छत्तीसो व्यंजन' परसती है[6] जिस 'मिठ-बोला' के लिए विकलता ने उस की 'दिल की घुडी' खोली है[7] वह पूर्ण ब्रह्म है।[8] उसी निर्गुण का सुरमा वह अपनी आँखों में लगाती है।[9] वह उसे पूर्ण-रूप से अपने अंदर देखती है।[10] उस निर्गुण ब्रह्म का 'गगन-मंडल' में निवास है।[11] गगन-मंडल में बिछी हुई सेज पर ही प्रिय को मिलने की उत्कंठा वह अपने मन में रखती है।[12] सुरति-निरति का वह दीपक बनाती

---

[1] इक विरहिनि हम देखी अँसुवन की माला पोवै।—बानी, पृ० २३, ५१

[2] एक टकटकी पथ निहारू भई छमासी रैन।—वही, पृ० २३,५३

[3] जब से नंदनंदन दृष्टि पड्यो माई।
तब से लोक परलोक कछू ना सुहाई॥—वही, पृ० २६,६७

[4] म्हारी अँगुली ना छुवै वाकी बहियाँ तोरैं हौं।
म्हारो अँचरा ना छुवै वाको घूँघट खोलैं हौं॥—वही, पृ० ५३,२

[5] घायल फिरू तड़पती पीर नहिं जाने कोइ॥—वही, पृ० ५१–५२

[6] छप्पन भोग छत्तीसो बिंजन सनमुख राखो थाल जो।—वही, पृ० ५२

[7] साजन घर आवो मीठा बोला।.....
तुम देख्या बिन कल न परत है, कर धर रही कपोला।
मीरा दासी जनम जनम की, दिल की घुडी खोला॥—वही, पृ० १७,३२

[8] मात पिता तुम को दियो तुम हीं भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को मन में नहिं आनो हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म पूरन पद दीजै हो।—वही, पृ० ८, १२

[9] सुरत सुहागिन नार.. निरगुन सुरमो सार।—वही, पृ० ३१,७२

[10] मेरे पिया मोहि माहि बसत हैं, कहू न आती जाती।—वही, पृ० १०,१६
औरो के पिय परदेस बसत है लिख लिख भेजें पाती।
मेरे पिया हिरदे में बसत हैं गूँज करूँ दिन राती॥ —वही, पृ० २७,६२

[11] गगन-मंडल में सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।—वही, पृ० ४,३

[12] तेरा कोइ नहिं रोकनहार, मगन होय मीरा चली...।
ऊँची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी...।
सेज सुखमणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी॥—वही, पृ ११,१८

है, जिस में प्रेम के बाजार में बिकने वाला (अर्थात् प्रेम का) तेल भरा रहता है और मनसा (इच्छा) की बत्ती जलती रहती है।[1] उस का प्रेम-मार्ग उसे ज्ञान की गली में ले जाता है।[2] उस का मन सुरत की आसमानी सैर में लगा हुआ है।[3] वह अगम के देश जाना चाहती है, जहां प्रेम की बापी में शुद्ध आत्मा हंस क्रीड़ा किया करते हैं।[4] राणा को डांट कर वह कहती है कि मैं आज की नहीं तब की हूं जब से सृष्टि बनी है।[5] कबीर के मार्ग की भांति उस की भी ऊँची-नीची रपटीली राह है, जिसे वह 'झीना पथ' (सूक्ष्म ज्ञान-मार्ग) कहती है।[6] निर्गुणियों का अभ्यास मीरा के निम्न-लिखित पद में आ गया है—

> नैनन बनज बसाऊं री जो मैं साहिब पाऊं री।
> इन नैनन मोरा साहब बसता डरतो पलक न लाऊं री।
> त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहां से झांकी लगाऊं री॥
> सुन्न महल में सुरति जमाऊं सुख की सेज बिछाऊं री।
> मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊं री॥[7]

इस में त्रिकुटी-ध्यान और भ्रू-मध्य-दृष्टि की ओर स्पष्ट संकेत है। मीरा का ध्येय है 'पूरन पद'।[8] निरंजन का वह ध्यान करती है।[9] अनाहत नाद को सुनती है[10] और

---

[1] सुरत निरत का दिवला संजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल मंगा ले जगा करे दिनराती॥—बानी, पृ० १०,१६

[2] मान अपमान दोउ धर पटके निकली हूं ज्ञान गली।—वही, पृ० ११,१३

[3] मीरा मनमानी सुरति सैल असमानी।—वही, पृ० १६,४१

[4] चलो अगम के देस काल देखत डरैं।
वहां भरा प्रेम का हौज हंस केला करैं॥—वही, पृ० १३

[5] आज काल की मैं नांहि राणा जद यह ब्रह्मांड छायो।—वही, पृ० ६७,३२

[6] ऊंची नीची राह रपटीली, पांव नहीं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूं जतन से बार बार डिग जाइ॥
ऊंचा नीचा महल पिया का हम से चढ़्या न जाइ।
पिया दूर पंथ म्हारा झीणा सुरत झकोला खाइ॥—वही, पृ० २७

[7] वही, पृ० ३०,६८। निर्गुणियों के अभ्यास के लिए देखिए बड़थ्वाल-'निर्गुण स्कूल आव् हिंदी पोयट्री', (इंडियन बुकशाप, बनारस), पृ० १३१-१५२

[8] तुम प्रभु पूरन ब्रह्म, पूरन पद दीजै हो।—बानी, पृ० ८,१२

[9] जा को नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूंगी हो।—वही पृ० २४,५४

[10] बिन करताल पखावज बाजै अनहद की झनकार रे।—वही, पृ० ४२,१

२

'आदि अनादि साहब' को पाकर भवसागर से तर जाती है।[1]

यह कबीर की निर्गुण-भावना के सर्वथा मेल मे है। उसी तात्पर्य के सहित कबीर की प्राय सारी शब्दावली मीरा में मिलती है। कबीर से यदि मीरा में कोई अतर है तो यही कि मीरा को मूर्तियो से चिढ नही। प्रियादास[2] ने तो उसे अपूर्व मूर्ति-पूजक माना है। उस के अनुसार, पिता के घर में ही उस का गिरिधर लाल की मूर्ति से प्रेम हो गया था। जब विवाहोपरात पतिगृह जाने लगी तब उस ने सब वस्त्राभूषण छोड माता-पिता से गिरिधर लाल की मूर्ति माँगी, उसी को अपना पति समझा और अत म उसी मे समा गई।[3] कबीर के साथ इस सादृश्य और भेद का कारण यह है कि उस ने रामानद के शिष्य और कबीर के गुरुभाई रैदास से अथवा उस की वाणी से आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी। मीरा के

---

[1] साहब पाया आदि अनादी नातर भव में जाती।—वही, पृ० १,१

[2] मेरतौ जनम भूमि झूमि हित नैन लगे,
पगे गिरधारीलाल पिताहीं के धाम में।
राना कैं सगाई भई करी ब्याह सामा नई,
गई मति बूडि वा रँगीले घनश्याम में।
भाँवरें परत मन साँवरे रूप माँझ
ताँवरे सी आवै चलिबे कौं पति ग्राम मैं।
पूछें पिता-माता "पट आभरन लीजियै जू"
लोचन भरत नीर कहा काम दान मैं॥
—रूपकला-सपादित "श्रीभक्तमाल" (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १६२६),
पृ० ७२०

[3] देवौ गिरिधरलाल जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखिए उठाय कैं।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रग चढ्यौ भारी,
रोय मिली महतारी, कही "लीजिये लडाय कै॥"
डोला पधराय दृग दृग सो लगाय चलीं,
सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
—वही, पृ० ७२१
सुन बिदा होन गई राय रणछोर जू पै
छाडौं राखी हीन लीन भई नहीं पाइयै।
—वही, पृ० ७२८

नाम से मिलने वाली वाणी में कई स्थान पर रैदास उस का गुरु बनाया गया है।[1] कबीर के समकालीन और उस से पहले के कुछ संत तथा कबीर के अतिरिक्त रामानंद जी के अन्य शिष्यों की यह विशेषता जान पड़ती है कि वे निर्गुण के प्रति अपनी ऊँची से ऊँची अध्यात्म भावना को मूर्तियों के समक्ष प्रकट करने में कोई प्रत्यक्ष विरोध नहीं मानते थे। नामदेव विठोबा की मूर्ति के सामने घुटने टेक कर निर्गुण निराकार की स्तुति करता था।[2] इसी प्रकार रामानंद जी के अन्य शिष्य शालग्राम के प्रति आदर भावना रखते थे। मीरा में भी यही बात थी। उस पर निर्गुण-भावना का रैदासी रंग चढ़ा हुआ था। उस की सगुण भावना निर्गुण-भावना का प्रतीक मात्र थी। वह अवतार भावना की विरोधिनी नहीं है परंतु उधर उस का उतना ध्यान नहीं। वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों की भाँति उस का उद्देश्य कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना नहीं, अपनी अनुभूति का प्रकाशन करना था। वह पर-ब्रह्म-कृष्ण की गोपी थी। कबीर की भाँति वह प्रेम-लक्षणा अर्थात् दसधा भक्ति की मानने वाली थी, जो निर्गुण मार्गियों की विशेषता है। जो कुछ रैदास ने राम का नाम ले कर कहा है वह मीरा ने कृष्ण का नाम ले कर। कदाचित कृष्ण नाम से प्रेम का कारण यह हो कि वह जन्मी भी कृष्ण भक्त परिवार में थी और ब्याही भी कृष्ण-भक्त परिवार में। उस के पति के यशस्वी पूर्वज महाराणा कुंभ ने तो राधामाधव संबंधी

---

[1] रैदास संत मिले मोहि सतगुरु दीन्ही सुरत सहदानी।—बानी, पृ० २०,४१
गुरु रैदास मिले मोहि पूरे धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आके जोत में जोत रली।—वही, पृ० ३६,१४
मीरा ने गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास।—वही, पृ० ३७,१

रैदास का समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। उसे पीपा (लगभग १३५०–१४००स०) का समकालीन और रामानंद का शिष्य मानते हुए इस संबंध में जो कुछ अनुमान लगाया जा सकता है उस से मेरी सम्मति में, उस का मीराबाई का समसामयिक होना भी घटित नहीं होता। इस लिए संभव है कि मीराबाई ने उस के मुख से शिक्षा ग्रहण न कर उस की रची 'बाणी' से शिक्षा ग्रहण की हो। गरीबदास (लगभग सं० १७७४-१८३५) ने कबीर को और चरनदास (जन्म लगभग सं० १७६०) ने 'भागवत' के शुकदेव को अपना गुरु माना है। इन असमसामयिक गुरुओं के स्पष्ट उदाहरणों को हम इसी अर्थ में ठीक समझ सकते हैं। रैदास और मीराबाई के समय पर विचार एक अलग विषय है।

[2] फ़र्कुहर, 'आउटलाइन ऑव् दि रिलिजस लिटरेचर ऑव् इंडिया', पृ० ३००

मधुर काव्य 'गीतगोविंद' पर सुंदर टीका उस समय लिखी थी जब कि वल्लभ-सम्प्रदाय अभी अस्तित्व में नहीं आया था।

यह भी छिपा नहीं है कि वल्लभ-सम्प्रदाय भी प्रेम-मार्ग है परंतु नवधा भक्ति का, जो निर्गुणोपासना का विरोधी है। 'भ्रमरगीत' में सगुण की आराधिका गोपियों के हाथों सूरदास ने निर्गुण-ज्ञानी उद्धव की जो दुर्दशा कराई है उस में निर्गुणोपासना के प्रति वल्लभ-सम्प्रदाय की विरोध-भावना का स्पष्ट प्रतिबिंब है। यहा पर गोपियों के चुटीले तर्क की एकाध बानगी दे देना काफी होगा—

१—सुनिहैं कथा कौन निर्गुण की रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेरु प्रगट देखियतु तुम तृन की ओट दुरावत॥
२—रेख न रूप बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ, दरस ऐसे को तुम कबहूँ हौ पावत॥

वल्लभाचार्य जी और मीरा के बीच गहरे तात्त्विक मतभेद के ही आधार पर हम 'वार्ता' में लिखित उपर्युक्त घटनाओं को उन के उचित रूप में समझ सकते हैं।

आधुनिक उर्दू कविता में गीत

[लेखक—श्रीयुत उपेंद्रनाथ, 'अश्क']

गीतों का युग

इन पंक्तियों के लेखक ने अन्यत्र[1] इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि उर्दू कविता में एक नए युग का आविर्भाव हुआ है। एक नए रंग की कविता लिखी जाने लगी है। जिस प्रकार हिंदी कविता नायिका-भेद और राजा-महाराजाओं की स्तुति तथा विलास भावनाओं के संकुचित युग से निकल कर मुक्ति के महान आकाश में चिड़ियों की भाँति विविध स्वरों में चहकने लगी है उसी प्रकार उर्दू शायरी भी शमा-परवाना,[2] गुलो-बुलबुल[3] महबूबो-माशूक[4] के जाल से निकल कर नवीन भावनाओं के साथ जगत में प्रवेश कर रही है।

एक ही तरह की गजलों का दौर खत्म हुए भी देर हो चुकी। अब तो कवि नज्मों की दुनिया से भी आगे निकल कर कविता के एक नए संसार में आ गए हैं। बड़े-बड़े शायर छोटे-छोटे सीधे और सरल गीतों में हृदय के कोमलतम उद्गारों को व्यक्त कर के साहित्य में नई धारा बहा रहे हैं। यह गीत पंजाब में सर्वसाधारण की जबान पर चढ़ हुए हैं और कुछ तो इतने लोकप्रिय हुए हैं कि गले में अमृत रखने वाले अपने मीठे, मादक स्वरों में गाते हुए इन से पंजाब की महफिलों को गुंजा देते हैं।

सुंदरता के जादू से दिलों को मोह लेने वाले इन गीतों को जन्म देने का श्रेय जालंधर की नररत्न प्रसू भूमि में जन्म लेने वाले मौलाना अबुल असर 'हफीज़' को है। अपने इस रंग के विषय में वह स्वयं ही लिखते हैं—

[1] 'विशाल-भारत', दिसंबर १९३७
[2] दीपक और शलभ।
[3] फूल तथा बुलबुल।
[4] प्रिय-प्रेयसी।

किया पाबंदे नै नाले को मैं ने,
यह तर्ज़े खास है ईजाद मेरी।[1]

और है भी ठीक। उन्हो ने वे गीत लिखे हैं जिन मे नाले गीत बन गए हैं और आहे तानें। "मन है पराए बस मे" शीर्षक से उन का गीत मेरे इस कथन का प्रमाण है।

साहित्य में भी क्रांति का पैगाम लाने वाले की कद्र पहले कठिनाई से ही होती है। उन्हो ने अपना इस प्रकार का पहला गीत 'कान्ह की बसरी' लिख कर जब लाहौर के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक मे भेजा तो उस के सपादक ने, जो 'हफ़ीज़' साहब के घनिष्ट मित्र थे, उन को 'इस बेगार टालने' पर बहुत उलाहना दिया, और गीत को आकर्षक स्थान न देकर एक कोने मे छाप दिया। किंतु जादू वह जो सर पर चढ कर बोले। दूसरे ही दिन जब 'हफ़ीज़' साहब ने अपना वही गीत जादू भरी आवाज मे गा कर सुनाया तो महफ़िल झूम गई। उक्त सपादक महोदय भी वहीं बैठे थे। उन्हो ने अपनी गलती को महसूस किया और जाना कि इस प्रकार के छोटे-छोटे गीतो की ईजाद एकदम फ़ज़ूल नहीं और साहित्य के खज़ाने को और भी समृद्ध करने वाली है। दूसरे अक मे उन्हो ने इस गीत को दोबारा, सपादकीय नोट में उस की विशेष प्रशसा करते हुए छापा, और महीनो वह गीत लोगो की ज़बान पर रहा।

'शाहनामा-इस्लाम' के लेखक, फ़िरदौसिए इस्लाम श्री 'हफ़ीज़' इस रग मे लिखते हैं—

बसरी बजाए जा
कान्ह मुरली वाले नद के लाले
बसरी बजाए जा
प्रीत में बसी हुई अदाओ[2] से
गीत में बसी हुई सदाओ[3] से
ब्रजबासियो के झोपडे बसाए जा
सुनाए जा सुनाए जा
कान्ह मुरली वाले नद के लाले

---

[1] मैं ने नालो को लय में बंद कर दिया है और यह मेरी खास ईजाद है।
[2] भावभगियाँ। [3] आवाजो।

बंसरी बजाए जा
बंसरी की लय नहीं है आग है
और कोई शय नहीं है आग है
प्रेम की यह आग चार सू लगाए जा
सुनाए जा सुनाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले
बंसरी बजाए जा

इस के बाद गीता के तूफ़ान में पंजाब का कवि-समाज बह चला और बरबस बह चला। इस गीत का प्रभाव अभी तक इतना बाक़ी है कि दर्दे ज़िंदगी और हदीसे अदब के रचयिता हज़रत अहसान दानिश ने हाल ही में लिखा है—

ब्रजवासियों में श्याम, बंसरी बजाए जा।
मस्तियां उबल पड़ें
मदभरी सदाओं से,
प्रेमरस बरस पड़े
मनचली हवाओं से।
मुसकरा रही है शाम, श्याम मुसकराए जा।
ब्रजवासियों में श्याम, बंसरी बजाए जा।
गोपियों को सुध नहीं
मस्तियों में जोश है,
रागरंग में है ग़र्क़[1]
रंग मयफ़रोश[2] है।
झूमती है कायनात,[3] झूमकर झुमाए जा।
ब्रजवासियों में श्याम, बंसरी बजाए जा।।

[1] डूब गया है।
[2] मदिरा बेचने वाला।
[3] सृष्टि।

कृष्ण के गीत

'हफीज़' साहब के इस गीत के बाद गोकुल के इस प्रेमावतार ने, कविता के ससार को चिर जाग्रत रखने वाले बसरीवाले ने राग की दुनिया में अगणित गीतों का निर्माण कराया, और साम्प्रदायिकता के गढ पजाब के उर्दू कवियों से कराया। सच है शायरों का कोई मज़हब नहीं, यदि कोई धर्म है तो प्रेम। आज यदि कवियों के हाथ मे विश्व के सचालन का भार और अधिकार हो तो देश और धर्म की तग दीवारे खडी न रह पाए और दुनिया की चप्पा-चप्पा ज़मीन भाई-भाई के खून से तर न हो।

मौलवी मकबूल अहमद हुसैनपुरी, जो उर्दू में अपने मीठे-मीठे गानो के कारण प्रसिद्ध हैं, और जिन की कविता पर ब्रजभाषा का रग गालिब है, 'हुमायू' नाम की उर्दू - पत्रिका में लिखते हैं—

बसीधर महराज हमारे
हृदय-कुज में बसी बजाओ
सब भक्तों के राजा हो तुम
प्रेम-गीत से मन को रिझाओ
तुम सब प्यारों के प्यारे हो
आओ प्रीत की रीत सिखाओ
राधा-स्वामी
अतर्यामी
परमानद की राह सुझाओ
बसीधर महराज हमारे
हृदय-कुज में बसी बजाओ

और 'अदबे-लतीफ' पत्रिका के एक दूसरे गीत मे आप विह्वल हो कर पुकार उठे हैं—

' अब तो श्याम से उलझे नैन
कोई बुलाए हरि के घर से
बसी बजाए प्रेम-नगर से

दिल रूठा अब दुनिया भर से
मन की डोर लगी ईश्वर से
क्या जानूं आई है रैन
अब तो श्याम से उलझे नैन

भक्तों की इस भक्ति से परे, जिस का ऊपर के गीतों में प्रदर्शन किया गया है, भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित कविता का एक और रूप भी है, इस में जुदाई के गीत लिखे गए हैं। जब कृष्ण गोकुल को छोड़ कर मथुरा जा बसे तो उन के विरह में गोपियां जिस प्रकार तड़पती थीं उस का पता केवल इस एक पद से लग जाता है जब ऊधव के आने पर कोई गोपी रो कर, सिहर कर, कह उठती है—

ऊधव ब्रज की दसा निहारो

और इसी विरह की उदासी में—जब मथुरा से कोई संदेसा नहीं आता और तड़प तड़प कर सवेरा करने वाली गोपी फिर सन्ध्या के आने पर विह्वल हो उठती है। उस का चित्र 'नश्तर' जालंधरी ने एक गीत में खींचा है —

तड़प-तड़प कर भोर हुई थी
ना आया पैग़ाम
कन्हैया
उजड़ चला मन-धाम
बादल गरजे बिजली चमके
उठी घटाएं शाम
कन्हैया
उजड़ चला मन-धाम
आंख में आंसू कसक हृदय में
फिर आई है शाम
कन्हैया
उजड़ चला मन धाम

पंजाबी भाषा के प्रख्यात कवि लाला धनीराम जी ने भी 'आह्वान' शीर्षक एक कविता में श्याम का आवाहन करते हुए लिखा है —

३

आजा
शाम बिहारी आजा
शाम घटा लाइया घनघोरा
बाग उठा लये सरते मोरा
हुन ता शामां तेरिया लोड़ा
बुझें दिला विच्च जोत जगाजा
आजा
शाम बिहारी आजा[1]

और हिंदी की भाषा में तो मीराबाई, सूरदास आदि के गीतों में न जाने कितने आवाहन, कितनी मनुहारें और कितने अभिसार भरे पड़े हैं। उर्दू में भी बीसियों ऐसे गीत लिखे गए हैं जिन में घनघोर घटाओं, पुरशोर हवाओं और उन्मत्त मोरों को देख कर कोई गोपी अपने चितचोर श्याम को पुकार उठती है। उन गीतों में से मैं किसी युवक रामप्रसाद 'नसीम' का एक गीत देता हूं। कितना दर्द भरा और मर्म-स्पर्शी है!

घटाएं घिर आईं घनघोर
हवाएं चलती हैं पुरशोर
मस्त पपीहा
बेसुध कोयल
और पागल हैं मोर
घटाएं घिर आईं घनघोर
बिजली चमके
बादल बरसे
आन मिलो चित-चोर
घटाएं घिर आईं घनघोर
हवाएं चलती हैं पुरशोर

---

[1] ऐ मेरे श्याम बिहारी तू आजा।
ऐ श्याम घनघोर घटाएं छाई हैं, मोरों ने अपनी झकार से बागों को सर पर उठा लिया है, ऐ श्याम अब तो तेरी ही कमी है।
आजा और बुझे हुए दिलों में आग लगा दे।

वसंत के गीत

चलने लगा बिल्लूर का सागर किनारे जू,
पत्थर में जान फूंक दी बादे बहार ने।[1]

उस वसन्त ऋतु को आते देख कर, जिस के आगमन पर पत्थरों तक में भी जान आ जाती है, उर्दू का एक कवि अपने ग़म को भूल जाना चाहता है और निश्चिन्त हो कर कहता है—

छलकता हुआ मै[2] का जाम ले कर
नसीमे बहारी[3] का पैग़ाम ले कर
वसंत आ रहा है, वसंत आ रहा है!
जलाएगा अब क्या भला सोज़[4] हम को
भुलाएंगे रंजो मुहन[5] और ग़म को
वसंत आ रहा है, वसंत आ रहा है!

अपने गीत 'पुरानी वसंत' में अबुल असर हफ़ीज़ भी इसी भाव से प्रभावित होकर कहते हैं—

उम्र घट गई तो क्या ?
डोर कट गई तो क्या ?
यह हवाए तुंदो तेज़
रुख़ पलट गई तो क्या ?
आ गई बसन्त रुत[6]
और इक पतंग दे
रंग दे
रंग दे बसंती रंग

[1] बिल्लूर (शीशे) का प्याला नदी के किनारे चलने लगा है—अर्थात् वसन्त के समीरण से मतवाले होकर मद्यपायी नदी के किनारे जाकर मदिरा पान कर रहे हैं और मदिरा का पात्र इस हाथ से उस हाथ में चलने लगा है—कवि कहता है कि वसन्त की बहार में वह जादू है कि पत्थर अर्थात् जड़ पदार्थों में भी इस ने जान फूंक दी है।
[2] मदिरा। [3] वसन्त का समीरण। [4] दर्द। जलन। [5] दुख। [6] ऋतु।

और पडित इद्रजीत शर्मा, जिन्हो ने उर्दू में अपनी पुस्तक 'नैरगे फितरत" लिखने के वाद इस रग को भी अपने गीतो से काफी समृद्ध बनाया है "वसत" शीर्षक गीत में लिखते है—

आओ 'सखी' री चलें कुज में छाई है हरियाली
फूलो की भरमार है ऐसी लदी है डालो-डाली
गेंदा और गुलाब खडे है लिए हाथ में प्याली
आँख खोल कर ताक-झाँक में नरगिस है मतवाली
आओ 'सखी' री चलें कुज में छाई है हरियाली

इसी उल्लास के रग म एक और भी गीत है—

सजनि
आओ बसत मनाए
प्रीत के ही वे रग जमाए
सुदर निर्मल
हो फुलवार
और जहा हो
फूलों की महकार
भँवरों की गुजार
ऐसे में फिर
खुशी मनाएं
सजनि
आओ बसत मनाए

परन्तु दुनिया में सुख ही सुख हो यह बात नहीं। सुख की छाया में दुख है, हर्ष के दामन में व्यथा है, उल्लास की गोदी में विषाद है। वसत में सब ही उल्लास और हर्ष से विभोर हो उठते हो, इस दुखी ससार में यह कहा ? 'ग़ालिब' ही कहते है—

उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब ।
हम बयाबां में है और घर में बहार आई है ॥

अब्दुल असर 'हफ़ीज़' भी जहा सरसो के फूलने का, सखियो के झूलने का, तरुणो के गीत गाने का, मनचलो के पतग उडाने का जिक्र करते है, वहा वह उस युवती को भी नही भूलने, जिस ने वसत के आने पर फूलो के पीले गहने तो पहन लिए है परन्तु प्रियतम परदेश में है इस लिए——

हूँ मगर उदास
नहीं पी के पास
ग़मो रंजो यास
दिल को पडे है सहने

उसी विरहिन के हार्दिक मर्म को पजाब के तरुण कवि, जनाब 'कैस' जिन्हा न उर्दू गजलो से काफी अरसे तक पजाब मे सिक्का जमा कर इस रग मे लिखना आरभ किया है, एक सरल गीत में व्यक्त करते है।

फूली फुलवारी-फुलवारी
फूल-फूल फूले लहराए
झूम-झूम कर भँवरा गाए
महकी क्यारी-क्यारी
फूली फुलवारी-फुलवारी
सखियां झूलें और झुलाए
रल-मिल कर सब मगल गाए
मै पापिन दुखियारी
फूली फुलवारी-फुलवारी

और फिर वसन्त के दिनो मे यौवन-मदमाती दुलहिन किस प्रकार सिहर कर मिलत से अपनी सखी से कहती है——

सजनि
लिख भेजो कोई पाती
आई बसत पिया नहीं आए
किस विध चैन दुखो मन पाए
आग बिरह की जिया जलाए
बात कही नहीं जाती

सजनि
लिख भेजो कोई पाती
और ताना देते हुए लिखो, कि
वा रसिया भूले बिरहन को
खो बैठी मैं जीवन-धन को
चैन नहीं है पापी मन को
नाम जपूं दिन-राती

सजनि
लिख भेजो कोई पाती
लिखो कि
घर को आओ भिखारन के धन
सदके तुम पर जीवन यौवन
लौट आओ परदेसी साजन
फितरत[1] है मदमाती

सजनि
लिख भेजो कोई पाती

और फिर बसंत के दिन मालिन को सरसों के फूल लाते देख कर विरहिन दुखित हो जाती है, और चिढ़ कर उस से कहती है---

ऐ मालिन इन फूलों को तू जा ले जा मेरे सामने से ;
यह लहू रुलाती है मुझको सूरत मतवाली सरसों की ।
यह ज़र्दी इन की लाली है, पीला पन है गहना इन का ;
मैं जन्म जली दुख की मारी लूं छीन न लाली सरसों की ।
जब आए बसंत मेरे मन का तो लाख बसंत मनाऊं मैं ;
सरसों के हार पिरोऊं मैं और गीत बसंत के गाऊं मैं ।

---

[1] प्रकृति ।

होली के गीत

होली और वसंत का चोली-दामन का-सा साथ है। एक की याद आते ही दूसरे का चित्र आँखो के सम्मुख खिंच जाता है। उन दिनो की स्मृति भी जागृत हो उठती है जब वसंतोत्सव मनाए जाते थे, और होली खेली जाती थी। जब भारत खुशहाल था, सपन्न था और देश का कोना-कोना ब्रज बन जाता था, नाचता, गाता और फाग मनाता था। फिर यह कैसे संभव था कि भगवान् कृष्ण और वसंत के गीत तो गाए जाते पर होली को विस्मृति के गर्त में फेंक दिया जता ?

इस रग मे होली के गीत भी गाए गए है, और खूब गाए गए है, परंतु उन मे उल्लास नहीं है, हर्ष नही है। जब ब्रज वह ब्रज नहीं रहा तो होली फिर वह होली कहा रहती ? आज कल जो होली खेली जाती है वह होली कहा है, होली का स्वाँग मात्र है। 'वकार' साहिब ने इसी वर्तमान दशा का चित्र खींचा है। एक दुखिया अपनी सखी से कहती है—

होली खेलें किस के सग आली ?
ब्रज में अब वह बात नहीं है कान्ह वाली घात नहीं है।
जीवन का वह रग नहीं है प्रेम का पहला सग नहीं है॥
नगर-नगर से प्रीत उठी है डगर-डगर से रीत उठी है।
खेल कहा ? इस खेल में चूके सखिया भूको बालक भूके॥
कौन से रग में चोली रगाऊँ कौन से मुह से फाग उडाऊँ ?
बस में नहीं है मन साजन का राग रग रूप है मन का॥
मुरली मूक टूटा मृदग आली।
होली खेलें किस के सग आली ?

एक और कवि ने मजदूर की होली लिखी है। भावो की तीव्रता देखिए—

कष्ट उठाए और दुख झेले
मैंने कितने पापड बेले
मेरे रक्त से होली खेले
सरमाया[1] चालाक

---

[1] पूँजीवाद।

नगा रह कर सर्दी काटी
भूका रह कर खाक भी चाटी
नीचे माटी ऊपर माटी
मेरी होली खाक !

और अपनी दीन दशा से दुखी होकर अछूत पुकार उठा है—

होली आई कैसे खेलू?
मेरा रग है फीका-फीका
कमबख्ती बदहाली सी का
हाल बुरा है मेरे जी का
होली आई कैसे खेलू?
हिंदू कुछ बेरग है मुझ से
आमादाये[1] जग है मुझ से
मेरा भी दिल तग[2] है मुझ से
होली आई कैसे खेलू?

लेकिन फिर भी होली के दिन रग उडाया जाता है। स्वाँग ही सही पर व्यवहार निभाया जाता है। सखी उदास है, वह होली न खेले, अछूत और श्रमी दुखी है वे होली न खले, और कवि भी इन दुखियो के दुख से दुखी हो कर होली न खेले, परतु दूसरे तो खेल्गे। उस सूरत मे शायर का कर्तव्य केवल नसीहत करना रह जाता है यदि होली खेलना ही है तो ऐसी होली खेल जिस से—

बिछडे है जो वह मिल जाए
मन की कलिया फिर खिल जाए
बैरी देखें औ हिल जाएं
तेरे घर का मेल
ऐसी होली खेल

[1] लडने को तैयार। [2] मेरा दिल मुझ से ऊब गया है।

एकता के गीत

कृष्ण के संबध में गीत लिखने के बाद मौलाना 'हफ़ीज़' ने एक प्रीत का गीत लिखा, जिस मे साम्प्रदायिकता को मिटा कर एकता का राज्य स्थापित करने की अपील की। गीत लंबा है, यहा पूरा नही दिया जा सकता फिर भी एक दो बंद देखिए—

अपने मन में प्रीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
मन मंदिर में प्रीत बसा ले ओ मूरख ओ भोले-भाले
दिल की दुनिया कर ले रौशन अपने घर में जोत जगा ले
प्रीत है तेरी रीत पुरानी भूल गया ओ भारत वाले
भूल गया ओ भारत वाले
प्रीत है तेरी रीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
क्रोध कपट का उतरा डेरा छाया चारो कूट अंधेरा
शैख बरहमन दोनो रहज़न एक से बढ कर एक लुटेरा
ज़ाहिरदारों की संगत में कोई नही है संगी तेरा
कोई नहीं है संगी तेरा
मन है तेरा मीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
भारत माता है दुखियारी दुखियारे हैं सब नर-नारी
तू ही उठा ले सुदर मुरली तू ही बन जा श्याम मुरारी
तू जागे तो दुनिया जागे जाग उठें सब प्रेम पुजारी
जाग उठें सब प्रेम पुजारी
गाएँ तेरे गीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत

पंजाब साम्प्रदायिकता के लिए बदनाम है और पंजाब के मुसल्मान साम्प्रदायिकता के कट्टर अनुयायी कहे जाते हैं। उसी पंजाब के मुसल्मान कवि के मुँह से साम्प्रदायिकता के विरुद्ध ऐसी बात निकलना क्या गौरव का विषय नहीं है, और क्या यह नवयुग की प्रतिनिधि हिंदी भाषा के प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण नहीं है?

दूसरा गीत मैं मौल्वी मक्बूल हुसेन अहमदपुरी का देता हूं, जिस के एक-एक शब्द से एकता का भाव टपका पड़ता है। गीत का शीर्षक है—'प्रेमपुजारी'। प्रेम का अर्थ यहां एकता से है—

हम तो प्रेम-पुजारी
धर्म प्रेम का सब से अच्छा प्रेम की शोभा सारी
कोई माने या ना माने हम तो प्रेम-पुजारी
आशा है यह अपने मन की प्रेम कन्हैया आए
साँस-माँस को अपना कर लें हिरदय में रम जाएं
बिपता कटे हमारी
हम तो प्रेम-पुजारी
गाए भजन बसौं वाले के ख्वाजा[१] की जय बोलें
बड़े पीर[२] की आसा ले कर मन की घुंडी खोलें
नाव चले मँझधारी
हम तो प्रेम-पुजारी
दास बनें कमली वाले के रामचंद्र के दरबारी
कहें मगन हों 'अहमदपुरी'[३] सब से हमारी यारी
सब से लाज हमारी
हम तो प्रेम-पुजारी

मौलाना 'वकार' ने भी वर्तमान फूट के विरुद्ध आवाज़ उठाई है और कहा है—

[१] ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती।
[२] ख्वाजा ग़ौस समदानी जिन को भारत में 'बड़ा पीर' भी कहा जाता है।
[३] मौलवी मक्बूल अहमदपुर के रहने वाले हैं।

जगत में घर की फूट बुरी
फूट ने रघवर घर से निकाले पापन फूट बुरी
रावन से बलवान पिछाडे जल गई लकपुरी
जगत में घर की फूट बुरी
फूट पडी तो कर बल जाकर हुए हुसेन[1] शहीद[2]
मान हो जिन का सारे जग में मारे उन्हे यजीद[3]
जगत में घर की फूट बुरी
फूट ने अपना देश बिगाडा खो दी सब की लाज
बना हुआ है देश अखाडा फूट बुरी महराज
जगत में घर की फूट बुरी
तन से कपडा, पेट से रोटी फूट ने ली हथियाय
धन बल मान सभी कुछ अपना हम ने दिया गँवाय
जगत में घर की फूट बुरी

देश के गीत

पजाबी भाषा में तो आप को सहस्रो देश के गीत मिलेगे परतु उर्दू म सब से पहले शायद महाकवि 'इकबाल' न ही देश का गीत लिखा। देश के बच्चे-बच्चे उसे लय से और तन्मयता से गाते है—

सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा
हम बुलबुलें है उस की वह गुलस्ता[4] हमारा
गुरबत[5] में हो अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो हमें वहा ही दिल हो जहा हमारा
परबत वह सब से ऊँचा हमसाया[6] आसमा का
वह सतरी हमारा वह पासबा[7] हमारा

---

[1]हजरत हुसेन। [2]बलिदानी। [3]हजरत हुसैन का घातक। [4]बाग (उपवन)। [5]निर्वासन। [6]पडोसी,। [7]रक्षक।

गोदी में खेलती हैं जिस की हज़ारो नदिया
गुलशन[1] है जिन के दम से रश्के जना[2] हमारा
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी है हम, वतन है हिंदोस्ता हमारा

इसी दौर म उन्हो न भारतीय बच्चो का राष्ट्रीय गीत मरा वतन वही है मरा वतन वही ह और नया शिवाला लिख थ। वह तो अब यह मय पीना छोड चुके ह परतु प्याला आज भी दूसरो के हाथो म घूम रहा है। इसी देश की सुधा से मस्त हो कर कवि अख़तर' शरानी गाते हैं —

भारत, सब की आख का तारा भारत
भारत है जन्नत का नज़ारा भारत
सब से अच्छा सब से प्यारा भारत
दुख-सुख में दुख-सुख का सहारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

शाही शानो शौकत वाली बस्ती
इज़्ज़त वाली अज़मत[3] वाली बस्ती
सदियो की ज़िदा शोहरत[4] वाली बस्ती
तारीखो[5] की आख का तारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

कैसी भीनी भीनी हवाए इस की
कैसी नीली-नीली घटाए इस की
कैसी उजली-उजली फ़िज़ाए इस की
दुनिया में जन्नत का नज़ारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

यह गीत गान के लिए लिखा गया है। सब मिल कर एक साथ इस गीत को

---

[1] उपवन। [2] वह जिस पर स्वर्ग को भी ईर्ष्या हो।
[3] प्रतिष्ठा। [4] ख्याति। [5] इतिहासो।

गाते है। इस के बाद एक व्यक्ति यह पद गाता है 'प्यारा प्यारा देश हमारा भारत' और फिर सब मिल कर अन्य पद गाते है।

भारतवर्ष और महात्मा गाधी एक नाम हो कर रह गए है, जैसे गोकुल और कृष्ण, फिर यह कैसे सभव था कि देश के गीत गाए जाते और महात्मा गाधी का गीत न गाया जाता? इस नए युग म यह गीत भी गाया गया है और इस के गाने वाले है प्रसिद्ध मुसलमान राष्ट्रीय कवि 'सागर निजामी। ''महात्मा गाधी शीर्षक गीत मे वह लिखते है—

कैसा सत हमारा
गाधी
कैसा सत हमारा

दुनिया को थी बैरी उस को दुश्मन था जग सारा
आखिर में जब देखा साधू वह जीता जग हारा
कैसा सत हमारा
गाधी
कैसा सत हमारा

सच्चाई के नूर[1] से इस के मन में है उजियारा
बातिन[2] में शक्ती ही शक्ती, जाहर[3] में बेचारा
कैसा सत हमारा
गाधी
कैसा सत हमारा

बूढा है या नए जन्म में बसी का मतवारा
मोहन नाम सही पर साधू रूप वही है हारा
कैसा सत हमारा
गाधी
कैसा सत हमारा

---

[1]ज्योति। [2]अदर से। [3]प्रकट रूप से।

भारत के आकाश पै है वह एक चमकता तारा
सच मुच ज्ञानी, सच मुच मोहन, सच मुच प्यारा-प्यारा
कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

यह गीत 'कोरस' में गाने वाले हैं। इन की लय और तान भी वैसी ही हैं। इन को पढ़ते समय प्रतीत भी ऐसा ही होता है जैसे देश प्रेमियों का जलूस स्वदेश प्रेम से विभोर हो कर यह गीत गाते-गाते जा रहा है।

वैसे तो देश और उस की विभिन्न समस्याओं के संबंध में इतने गीत लिखे गए हैं कि केवल देश के गीतों से ही एक पुस्तक बन सकती है परंतु मैं मौलवी महम्मद फैज लुधियानवी मुंशी फाजिल के गीत का एक बंद देना चाहता हूं। सोए हुए देश वासियों को गफ़लत की नींद से जगाने के लिए ही यह गीत लिखा गया है—

आन पड़ी है मुश्किल भारी
लेकिन तुम पर नींद है तारी
जाग उठी हैं खलकत सारी
सुन कर बेदारी का राग
ऐ हिंदी तू अब तो जाग

माया के गीत

अतीत काल से संतजन माया को कोसते आए हैं। कबीर ने लिखा है—

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले, बोले मधुरी बानी।
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।

माया के विषय में इस युग के प्रायः सभी कवियों ने गीत लिखे हैं। मैं यहां एक दो गीत दूंगा। माया के संबंध में अधिक लोकप्रिय होने वाला गीत जो बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत होने के बाद जन-साधारण की जबान पर चढ़ गया है वह कवि मनोहर

लाल राहत का गीत है। यह सब से पहले सुदर्शन जी की मासिक-पत्रिका 'चंदन' में निकला था। कवि लिखता है—

बाबा, सुन लो मेरा गीत

दुखिया मन है दुखिया काया
छूट गया है अपना पराया
दुनिया क्या है माया माया
माया के सब मीत हैं लेकिन
माया किस की मीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

माया वाले लोभ के बंदे
तन के उजले मन के गंदे
झूठी दुनिया झूठे धंदे
कोई नहीं है संगी-साथी
सब की झूठी प्रीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

माया ही से प्यार है सारा
झूठा सब संसार है सारा
खोटा कारोबार है सारा
रीत का कोई खरा नहीं है
सब की खोटी रीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

इसी सिलसिले में स्वर्गीय अब्दुल रहमान बिजनौरी का एक गीत 'जोगी की सदा' भी काफ़ी मर्मस्पर्शी है। मैं इस के दो बंद नीचे देता हूं।

यह निथरी-निथरी आँखें
यह लंबी-लंबी पलकें
यह तीखी-तीखी चितवन
यह सुंदर-सुंदर दर्शन
माया है सब माया है

यह गोरे-गोरे गाल
यह लबे-लबे बाल
यह प्यारी-प्यारी गरदन
यह उभरा-उभरा यौवन
माया है सब माया है

माया की मदिरा पी कर गहरी नींद में सोने वालो को जगाने के लिए श्री अमरचद 'कैस' न भी एक सुदर गीत लिखा है —

उठ निद्रा से जाग ऐ प्यारे
उठ आलस को त्याग ऐ प्यारे
तेरे जागे जाग उठेंगे
तेरे सोए भाग ऐ प्यारे
इस धन से क्यों खेल रहा है
यह धन तो है नाग ऐ प्यारे
मन चचल है, थामे रखना
चचल मन की बाग ऐ प्यारे
आशा तृष्णा जाल सुनहरी
इन दोनो से भाग ऐ प्यारे
माया एक मनोहर छल है
इस माया को त्याग ऐ प्यारे

'वक़ार' साहिब का यह गीत भी काफी शिक्षाप्रद है—

रग रूप रस सब माया है
इस माया की चाल से बचना
इस माया के जाल से बचना
इस ने बहुतों का मन भरमाया है
रग-रूप-रस सब माया है
राग की लहरें जाल की तारें
मन-पछी उलझा कर मारें

इन में फँस कर मन पछताया है
रंग-रूप-रस सब माया है

रंग है क्या ? इक नीझ[1] का धोका
रूप है क्या ? इक रोझ[2] का धोका
रस क्या ? ढलती फिरती छाया है

पंडित इंद्रजीत शर्मा के एक-दो चौपदे भी देखिए—

माया आनी जानी है
माया बहता पानी है
माया रूप कहानी है
त्याग रे मूरख माया त्याग

माया को तू मीत न जान
इस बैरन की प्रीत न जान
सीधी इस की रीति न जान
त्याग रे मूरख माया त्याग

जान पाप का मूल इसे
जान दुखों का शूल[2] इसे
याद न कर अब भूल इसे
त्याग रे मूरख माया त्याग

संसार

कवियों ने संसार को कई पहलुओं से देखा है और ऐसा ज्ञात होता है कि उन के हाथ भ्रांति के सिवा कुछ नहीं आया। पंजाब के प्रसिद्ध सूफी कवि साईं बुल्हेशाह ने इसे भीतर से देखने का उपदेश दिया है और लिखा है—

---

[1]दृष्टि। यह शब्द पंजाबी भाषा से लिया गया है।
[2]चोला।

इस दुनिया विच अंधेरा है
एह तिलक न बाज़ी वेहड़ा है
वड अंदर वेखो केहड़ा है
बाहू ख़फ़तन पई दुढें दीऐ[1]

वह सूफी थे, फकीर थे, कदाचित् उन्हो ने ऐसा किया हो, परन्तु जन-साधारण तो ऐसा नही कर सकते और जन-साधारण के दु खो से दुखी कवि इस के भीतरी रूप को देख कर कब शात हो कर सतोष से बैठ सकते है ? अबुल असर 'हफीज़' ससार को दुखी देखते है और एक गीत में कहते है—

दुखिया सब ससार
प्यारे
दुखिया सब ससार
मोह का दरिया, लोभ की नैया, कामी खेवनहार
मौज के बल पर चल निकले थे, आन फँसे मँझधार
प्यारे
दुखिया सब ससार

और इन दुनिया वालो की दुनियादारी से भी कवि दुखी है—

तन के उजले, मन के मैले, धन की धुन असवार
ऊपर-ऊपर राह बतावें, भीतर से बटमार
प्यारे
दुखिया सब ससार

'अहसान' साहब ने भी ससार' पर एक गीत लिखा है और इसे सपना कहा है—

सीस नवा कर झरना रोए, छोड के उत्तम देस
उस की चिंता राम ही जाने, जिस का पी परदेश

[1] साईं बुल्हेशाह कहते है कि इस दुनिया में चहुँदिशि अंधेरा ही अंधेरा है, यह तो एक फिसलने आँगन की नाईं है। जो आता है फिसल जाता है। ऐ बावरी, तू इसे भीतर से देख। पागल, बाहर ही क्यो सर पटक रही है।

सावन आँ फिर काली बदली बूंदनियों के तार
रीत जगत की प्रीत से खाली सपना है ससार

इद्रजीत शर्मा इसे 'झूठ' समझते है। समझते हैं ससार में सत्य कुछ नही, नित्य कुछ नही, सब झूठ है। इस लिए कहते हैं—

झूठी है यह दुनियादारी, झूठा है ब्योहार
प्रेम है झूठा, प्रीत है झूठी, झूठा है सब प्यार
प्यारे झूठा सब ससार
रिश्ते नाते झूठ के बधन, है जी का जजाल
झूठ का चारो ओर जगत में फैल रहा है जाल
प्यारे झूठा सब ससार
झूठे ज्ञानी, झूठी बानी, झूठा दीन उपदेश
झूठी रीत जगत की बाबा, देश हो चाहे विदेश
प्यारे झूठा सब ससार
झूठी नैया, झूठा खेवट, झूठे है पतवार
भवसागर में आन फँसे है, कैसे हो उद्धार
प्यारे झूठा सब ससार

पडित बिहारीलाल 'साबिर' को जग मे प्रेम ही प्रम दिखाई देता है और वह लिखते है—

यह जग प्रेम पुजारी है बाबा
बिरहन का मन प्रेम का मदिर
प्रियतम है इस प्रेम के अदर
ईश्वर प्रेम, प्रेम है ईश्वर
इस की गत न्यारी है बाबा
यह जग प्रेम-पुजारी है बाबा

और इतनी भिन बातो को देख कर कोई क्या निर्णय कर सके। वास्तव म न ससार दुखी है, न सपना, न झूठ है, न प्रम-पुजारी है, कुछ है तो अपने मन का फर है। जैसा किसी का मन होता है वैसा हो उसे ससार लगता है।

जीवन

जीवन माया है अथवा माया ही जीवन है, इस का कोई पता नहीं चलता। वास्तव में माया, ससार और जीवन तीनो ही रहस्य है। जहा कवि माया और ससार की गुत्थी को नहीं सुलझा सके, वहा जीवन की गुत्थी उन से क्या सुलझती ?

उर्दू के इस दौर मे जीवन पर भी गीत लिखे गए हैं। मैं एक गीत देता हू, जिस में जीवन, ससार और माया तीनों पर ही प्रकाश डाला गया है। कवि लिखता हैं—

जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
झूठा है ससार का सपना
झूठा झूठे प्यार का सपना
माया की यह ओट है प्यारे
माया की यह ओट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
जीवन का अभिमान भी झूठा
ख्याति और सम्मान भी झूठा
झूठी इस की चोट ऐ प्यारे
झूठी इस की पोट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
जन्म पे मूरख क्यो मुसकाए
मरन पे क्यो कोई नीर बहाए
काल के मन में खोट ऐ प्यारे
काल के मन में खोट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट

'वकार' साहब ने लिखा है—

मोह चचल की नदिया पर है माया-रूपी घाट
आशा नैया, काम खेवैया, लोभ है इस के पाट
जीवन है इक रैन अँधेरी साँस दुखो की बाट

सम्मुख कजली बन है भयानक, चिंता मन का रोग
टेढ़ा मारग, लगी हुई है बाघ के मुँह को चाट
जीवन है इक रैन अँधेरी साँस दुखो की बाट

माया, ससार और जीवन के गीतो के अतिरिक्त उर्दू में रहस्यवादी गीत भी कम नही लिखे गए है। फिर प्रेम, विरह और स्मृति के गीत है, और उन के बाद प्रकृति-सबधी गीतो की तथा लोरियो की बानगी देखना भी आवश्यक है। इन के सबध म आगामी अक मे निवेदन किया जायगा।

कविवर जटमल नाहर और उन के ग्रंथ

[लेखक—श्रीयुत अगरचंद नाहटा और भँवरलाल नाहटा]

कविवर जटमल और उन की 'गोरा बादल की बात' साहित्य-ससार मे पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी हैं। इस की प्रसिद्धि की कथा भी बडी मनोरजक और आश्चर्यजनक है। साहित्य-महारथी बाबू श्यामसुदरदास जी यदि सन् १६०१ की रिपोर्ट मे इस 'वार्ता' को गद्य की रचना न बताते तो सभव है जटमल की इतनी ख्याति न फैलती, अर्थात् यों कहे कि एक साहित्यिक विद्वान की भूल ने इस की प्रसिद्धि मे बडी भारी सहायता पहुँचाई। उस समय तक हिंदी का, विशेषत खडी बोली का, उतना प्राचीन गद्य-ग्रथ अन्य कोई उपलब्ध नही था, इस से तत्कालीन हिंदी गद्य के उदाहरण-स्वरूप सभी विद्वान अपने ग्रथो मे इस का उल्लेख करते गए। परतु विशेष खोज द्वारा एशियाटिक सोसायटी की प्रति के मिलने पर भ्रम-निवारण के साथ ही गद्यानुवाद उन्नीसवी शताब्दी का प्रमाणित हो गया।

'गोरा बादल की बात' के अतिरिक्त जटमल की अन्य कोई कृति प्रकाश मे नही आई थी। अत हमारी खोज-शोध से प्राप्त अन्य कृतियो के परिचय तथा कवि-परिचय, 'गोरा बादल की बात' के विशेष विवरण के साथ प्रस्तुत निबध मे प्रकाशित किए जाते है।

कविवर की कृतियो के साथ हमारे सबध की कथा भी पठनीय एव मनोरजक होने से सक्षेप में यहा लिखी जाती है।

आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व, जब हम ने साहित्य-ससार मे प्रवेश कर हस्तलिखित ग्रथो का सग्रह करना प्रारभ किया था, तब जो ग्रथ सर्व-प्रथम सग्रह हुए उन में नाहर जटमल कृत 'गोराबादल की बात' की एक प्राचीन प्रति (स० १७५२ की) उपलब्ध हुई। तभी से जटमल के विषय मे हमारा परिचय प्रारभ हुआ। खोज-शोध का कार्य सतत चालू था, इसी बीच हमें बीकानेर के श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्रसूरि जी के सग्रह के अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ। उक्त सग्रह मे गोराबादल की कथा के अतिरिक्त जटमल की अन्य कृतियो मे 'प्रेमलता चौपाई' और 'बावनी' भी मिली। उसी वर्ष उपाध्याय श्री जयचद्र

जी के भडार में 'लाहोर गजल' भी दृष्टिगोचर हुई। हम ने तत्काल उन प्रतियो से यथोचित उद्धरण ले लिए।

एक बार कलकत्ते में सुप्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी बाबू पूरणचद्र जी नाहर से प्रसगवश इस विषय मे वार्त्तालाप हुआ। उन्हे अब तक जटमल के स्वगोत्रीय अर्थात् नाहर होने का ज्ञान न था, अत उन्हे यह जान कर बडी प्रसन्नता हुई और जटमल एव उन के ग्रथो के विषय मे विशेष जानने की उन्हा ने इच्छा प्रकट की। उत्तर में हम से जटमल के ३ ४ ग्रथो का पता पा कर उन की प्रतिया प्राप्त करने के लिए हम एव श्रीपूज्य जी और उपाध्याय जी को बराबर प्रेरित करते रहे।

नाहर जी की प्रेरणावश हम ने अपने सग्रह की 'गोराबादल की कथा' (स० १७५२ लिखित) और उपाध्याय श्री जयचद्र जी के भडार से 'लाहौर गजल' की प्रति भी यथासमय भेज दी, परतु श्रीपूज्य जी के भडार की सूची न होने के कारण अवशेष ग्रथो की प्रतिया कहा और किस बडल मे रक्खी हुई थीं, ज्ञान न होन से भिजवाने में असमर्थ रहे।

सवत् १९८९ मे अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापति हो कर श्री नाहर जी अजमर पधारे। वार्त्तालाप के प्रसग में महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशकर जी ओझा ने बताया कि 'गोराबादल की बात' का सपादन ठाकुर रामसिंह जी तथा स्वामी नरोत्तमदास जी करने वाले है और उन्हे साहाय्य देने को कहा। श्रीयुक्त नाहर जी ने हमारे नाम-निर्देश के साथ, विशेष सहायता उन्हे वहीं मिल सकती है, यह सूचित किया।

ओझा जी की सूचनानुसार ठाकुर रामसिंह जी से इसी प्रसग को ले कर हमारा परिचय हुआ। स० १९९० के श्रावण मे बीकानेर से ठाकुर रामसिंह जी और स्वामी नरोत्तमदास जी कलकत्ता पधारे। उन दोना एव बाबू पूरणचद्र जी नाहर के साथ हम भी रिपोर्ट में उल्लिखित गोराबादल की गद्य 'वार्त्ता के अवलोकनार्थ 'रायल एशियाटिक सोसायटी' मे गए। उस प्रति की प्राप्ति बडी कठिनता से हुई जिस के समाचार यथा-समय श्री नाहर जी ने 'कुए भाग'[1] नामक लेख द्वारा 'विशाल-भारत' (पौष १९९०) में और स्वामी जी ने

[1] इस लेख में मुद्रण-दोष से भँवरलाल नाहटा के स्थान पर भँवरलाल नाहर छप गया है।

'जटमल की गोराबादल री बात' नामक लेख द्वारा 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १४, अंक ४ में साहित्य-संसार में प्रकाशित कर दिए।

इधर श्रीपूज्य जी के संग्रह से उपरोक्त प्रतियों को खोज कर नाहर जी को भेजने के प्रसंग से उन के ज्ञान-भंडार के समस्त (२५००) हस्तलिखित ग्रंथों की विशेष विवरणात्मक सूची तैयार करते समय जटमल-कृत अन्य ग्रंथ-द्वय ('स्त्रीगजल' और 'फुटकर सवैया') भी नवीन उपलब्ध हुए जिन की प्रतियाँ नाहर जी को भेज दी गईं। उन्हों ने उन सब की नक़लें करवा ली क्योंकि उन का उक्त ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाशित करने का विचार था। हम भी जटमल के विषय में कई बार लिखने का विचार कर के इस लिए रह गए कि नाहर जी इस विषय में लिखेंगे ही। किंतु लिखते दुख होता है कि अकस्मात् उन का देहांत हो जाने से ऐसा न हो सका। अतएव हम ने प्रस्तुत निबंध द्वारा जटमल का, उन के ग्रंथों के साथ यथाज्ञात आवश्यक और उपयोगी परिचय लिखने का प्रयत्न किया है। जटमल की कृतियों की उपलब्धि और हमारे उन से संबंध की यह संक्षिप्त आत्म-कथा है।

'गोराबादल की बात' की प्रशस्ति में कविवर जटमल ने अपना परिचय "धरमसी को नंद नाहर जाति जटमल नाव" इन शब्दों में दिया है, जिस से उन का गोत्र नाहर और पिता का नाम धर्मसी होना स्पष्ट है।

जटमल के निवास-स्थान के संबंध में अद्यावधि कोई निश्चित प्रमाण साहित्य-संसार में ज्ञात न था अतः कल्पना के अतिरिक्त निश्चित स्थान बता देना कठिन बात थी। हमारा अनुमान, 'प्रेमलता चौपाई' मिलने से पूर्व ही 'लाहौर गजल' नामक कृति से उन का निवास-स्थान लाहौर होने का ही था। 'प्रेमलता चौपाई' ने उसे स्पष्ट प्रमाणित कर दिया, यद्यपि 'गोराबादल की बात' सिंबुला में और 'प्रेमलता चौपाई' जलालपुर में रची हुई हैं, फिर भी प्रेमलता चौपाई की प्रशस्ति में "तहां वसत जटमल लाहोरी" इन शब्दों से कवि ने अपना मूल निवासस्थान लाहौर होने का उल्लेख किया है। इस चौपाई से अन्य एक महत्त्वपूर्ण बात पर भी प्रकाश पड़ता है, वह यह कि पीछे से वे जलालपुर जा कर निवास करने लगे थे।

नाहर गोत्र ओसवाल जाति की एक शाखा है, अतः साधारणतया उन का जैन धर्मानुयायी होना प्रमाणित ही है, फिर भी हमारे संग्रह की सं० १७५२ में लिखित 'गोरा-

बादल की बात' की पुष्पिका म 'श्रावक जटमल कृता' लिखा है इस से उन के जैन-धर्मानुयायी होने मे कोई सदेह नही रह जाता। 'बावनी' के आदि की ५ गाथाओ का 'ॐ नमो सिद्ध' से प्रारभ भी इस की पुष्टि करता है।

१—गोरा बादल की बात[१]—यह वीररस प्रधान काव्य है जो राजस्थानी मिश्रित खडी बोली में रचा गया है। भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इस का प्रचार राजपूताने मे सविशेष हुआ ज्ञात होता है। केवल बीकानेर में ही हम न इस ग्रथ की बीसो प्रतिया देखी है। इतना ही क्यो, हमारे सग्रह में भी इस की ७ प्रतिया विद्यमान है। लोकप्रिय होने से उन्नीसवी शताब्दी म इस का गद्यानुवाद

---

[१] जटमल के इस 'बात' को रचने का क्या आधार था ? यह विचार करने से ज्ञात होता है कि इस से पूर्व-रचित गोरा-बादल या पद्मिनी के सबध में दो काव्य उपलब्ध है। प्रथम जायसी का 'पद्मावत' व द्वितीय हेमरत्न-कृत 'चौपाई'। परतु जटमल की कथावस्तु इन दोनो से भिन्न अपनी मौलिकता प्रकट करती है। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १३, अक ४ में जटमल-कृत 'वार्ता' का सार और 'पद्मावत' की कथा में जो अतर है उस के विषय में श्री ओझा जी ने 'कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात' नामक लेख लिखा है। हेमरत्न-कृत चौपाई की कथावस्तु उक्त पत्रिका के भाग १५, अक २ में श्री मायाशकर याज्ञिक के लेखानुसार ही है। उस लेख में लब्धोदय अपर नाम लालचद-कृत (लेखक ने भ्रमवश कर्त्ता का नाम लक्षोदय और डुगरसी का पुत्र लालचद लिखा है पर वस्तुत कवि खरतर गच्छीय वाचक ज्ञानराज का शिष्य लब्धोदय था, डुगरसी के भ्राता भागचद के आग्रह से कवि ने प्रस्तुत चरित्र रचा) रास से पद्मावत और जटमल-कृत 'वार्त्ता' में जो अतर है उस का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। लब्धोदय ने यह रास हेमरत्न-कृत चौपाई के अनुसार ही रचा है।

हेमरत्न पूर्णिमा गच्छीय वाचक पद्मराज का शिष्य था। उस ने सवत् १६४५ श्रावण शुक्ला १५, सादडी में सुप्रसिद्ध मेवाडोद्धारक कावेडिया भामाशाह के भ्राता ताराचद के आग्रह से इस रास को गाथा ६१८ में रचा है, इस की तत्कालीन लिखित दो प्रतियां हमारे सग्रह में, और कतिपय वृहद् ज्ञानभडार में भी है। लब्धोदय कृत रास की एक प्रति श्री जिनचारित्र सूरि भडार और दो प्रतिया सेठिया लायब्रेरी में विद्यमान है।

जैन कवि की एक और रचना स० १८३२ आषाढ शुक्ला २ जोधपुर में खरतर यति गिरधारी लाल-विरचित यहा के वृहत् ज्ञानभडार में है।

लब्धोदय-कृत 'पद्मिनी चरित्र चौपाई' जिन भागचद्र के अनुरोध से रची गई है, उन्हीं के कथन से कवि भुवनकीर्ति का 'अजनासुदरी रास' स० १७०६ माघ शुक्ला ३ उदयपुर में रचित उपलब्ध है।

हमारे विचार से जटमल ने प्रस्तुत 'वार्ता' किसी के अनुकरण में न रच कर मौखिक सुनी हुई कथा के आधार पर ही रची होगी।

१२—स० १८५१ श्रा० व० १४	गा० १५७	स० १६८५ फा० सु० १५
१३—स० १८५७ वै० व० १३	गा० १५३	स० १६६५ ,, ,,
१४—स० १८८३ जे० सु० ३	गा० १४७	स० १६८० ,, ,,
१५—स० १८६७ से पूर्व	गा० १६०	स० १६८६ माघ ११
१६—स० १६११	गा० १६६	स० १६८६ माघ ११

उपर्युक्त प्रतियो में न० १, ५, ६, १४, १५ हमारे सग्रह मे, न० २, ८, १० शर्मा जी सपादित आवृत्ति के उल्लेखानुसार बीकानेर स्टेट लायब्रेरी में, न० ६, ११, १२, १३ श्रीपूज्य जी के सग्रह में, न० १६ श्री जिन कृपाचद्र सूरि ज्ञानभडार मे, न० ३ बृहद् ज्ञान-भडार मे, न० ७ बाबू पूरणचद्र जी नाहर के सग्रह मे, और न० ४ स्वामी नरोत्तमदास जी के पास है। इन के अतिरिक्त लेखन-समय के उल्लेख से रहित प्रतिया हमारे सग्रह म एव अन्य ज्ञानभडारो में बहुत सी उपलब्ध है।

पाठभेद

आदि—स० १७५२ लिखित में—

चरण कमल चितु लाय, समरू श्री श्री शारदा।
सुहमति दे मुझ माय, करू कथा सुहि च्याइ कइ ॥१॥
जम्बू दीप मझार, भरत खड सभ खड सिर।
नगर तिहा इकु सार, गढ़ चितौड है बिषम अति ॥२॥
रतन सेन तिहाँ राय, पाय कमल सेवै सुभट।
सूरवीर सुखदाय, राजपूत रज कौ धणी ॥३॥
चतुर पुरुष चहुआण दान मान दोनू दियइ।
मगत जन को प्राण, आवइ मगत दूर तइ ॥४॥

स० १७७५ लिखित म—

चरण कमल चित लाइ कइ समरू श्री श्री शारदा।
मुझ अक्षर दे माइ, कहिस कथा चित लाइ कइ ॥

स० १७८० लिखित मे—

सु (ख संपत्ति) दायक सकल, सिद्धि बुद्धि सहित गणेश।
विघन विडारण विनयसौं पहिलौं तुझ प्रणमेश॥

सं० १७७६ लिखित प्रति में गाथा ८ के पश्चात् कथाप्रारम्भ है। गाथा भेद सविशेष है।

सं० १८८७ से पूर्व लिखित—

चरण कमल चित लाइ कै, समरु सारद माय।
रतनसेन अरु पदमनी, कहिसु कथा बनाय॥१॥
भरत क्षेत्र सोहत अधिक, जम्बूद्वीप मझार।
देश भलो मेवाड तहा, सब जन कु सुखकार॥२॥
नगर भलौ चित्तौड है, तापर दूढ दुरग।
रतनसेन राणउ निपुण, अमली माण अभग॥३॥

इत्यादि ६ गाथा के पश्चात् कथा प्रारंभ।

अंत—सं० १७५२ लिखित—

सु अम्बर वाणी सुणी, प्रिय की पघडी साथ।
सती भई आणन्द सु, सुर पुर दीने हाथ॥३६॥
सूरा सोय सराहियइ, घाउ सनमुख पाय।
सूरा सुर पुर सचरइ, कायर दुर्गति जाय॥४०॥
गोरा बादल की कथा, सूरा अधिक सुहाय।
सुणता जागइ सूरिमा, आणद अग न माय॥४१॥

सालूरछंद—गोरइ जुबादल की कथा, अब भई सम्पूरन जान॥४१॥
सवत सोलइ सय छयासी, भला भाद्रव मास।
एकादशी तिथि बार के, दिन करि घरी उल्लास॥
अब बसइ मोछ अडोल अविचल सुखी रइयत लोक।
आणद घरि घरि होत मगल देखियइ नहीं शोक॥
राजा तिहा अलो खान न्याजी खान नासिर नद।
सिरदार सकल पठाण भीतर जिउ नक्षत्र महिचद॥

तिहा धरमसी कौ नद नाहर जाति जटमल नाउ।
तिण करी कथा बणाय के बिचि सुबला के गाउ ॥४२॥

दोहा—जटमल कीनी जुगत सु, हरखि हियइ उपजाय।
श्रोता सुनहु जु कान दे, चतुर पढउ चितलाय ॥४३॥
पढता नव निधि पाइयइ, सुनता सब सुख होय।
जटमल जपति गुन जनो, विघन न उपजइ कोय ॥४४॥

इति जटमल श्रावक कृता गोरइ बादल की कथा सपूर्ण ॥ सबत् १७५२ वर्षे फागुण सुदि ६ दिने सोमवारे। प० खेता लिखित ॥ कोटा मध्ये लिखित ॥श्री श्री श्री॥

सवत १७७५ लिखित—

नारी इम बाणी सुणी पिय की पगडी साथ।
सती भई आणद सौ, शिवपुर दीनौ हाथ ॥२३॥
गोरइ बादल की कथा, सपूरण भई आम।
गुरु सरसति प्रसाद करि कविजन करि मन ठाम ॥२४॥

कहता तिहा आणद उपजइ, सुण्या सुभ सुख होय।
जटमल पयपै गुन जनो विघन न लागै कोय ॥१२५॥
सवत १७७५ वैशाख सु० ५ लि० प० सुखहेम लूणसर मध्ये ॥

निष्कर्ष और विशेष ज्ञातव्य

१—गाथा-सख्या कम से कम १२५ मध्यम १५० और सर्वाधिक १६६ तक पाई जाती है। गाथाओ की कमी-बेशी के सबध में भिन्न भिन्न प्रतियो को मिलाने पर ज्ञात हुआ कि कथा प्रारभ से पूर्व स० १७५२ लिखित प्रति में जो ४ सोरठे है वे ही मूल ग्रथकार द्वारा रचे हुए हैं, अवशेष दोहो वाला मगलाचरण, जो कि स० १७८० लिखित नाहर जी वाली प्रति के मगलाचरण (प्रथम गाथा) रूप म है वह स० १६४५ रचित हेमरत्न-कृत 'गोरा बादल चौपाई' का है। कथा प्रारभ के पूर्व स० १७७६ लिखित प्रति में ८ गाथाए और स०

१८६७ से पूर्व लिखित प्रति में ६ गाथाए है, जो जटमल की रचित न हो कर[1] किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होती है। शर्मा जी द्वारा सपादित आवृत्ति में कथा-प्रारभ मे ८ गाथाए है, उन में की स० १७७६ लिखित प्रति से गाथाए ४ से ८ मिलती है। तृतीय गाथा स० १८६७ पूर्व लिखित प्रति से मिलती है। सभव है सपादक ने उपलब्ध ५ प्रतियो का पाठ वर्गीकरण न कर के मिश्रित सस्करण प्रकाशित किया हो।

हेमरत्न-कृत चौपाई के अवलोकन से यह भी ज्ञात हुआ कि शर्मा जी वाले सस्करण में गाथाक ४२, ४३, ४४, ४६, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ६५ मे जो छप्पय एव श्लोक छपे है वे हेमरत्न-कृत चौपाई मे गाथाक ६४, ६६, ६५, ६७, ७३, ६६, ७१, ६८, ७४, ७२, ६१, अनुक्रम से पाए जाते है। इस से प्रमाणित है कि लिपि-लेखको ने उन्हे जटमल कृत 'गोराबादल की बात' में प्रक्षिप्त कर दिया है। हमारे ध्यान मे जटमल-रचित मूल गाथाए १२५ के लगभग होगी।

२--पाठातर-भेद के उदाहरण ऊपर केवल दो तीन प्रतियो के आदि-अत से ही दिए गए है। भिन्न-भिन्न प्रतियो मे अनेकानेक पाठातर देखने में आए है, यदि सारे ग्रथ के पाठातर लिखे जाय तो सैकडो की सख्या म पहुचे। जहा तक इस के रचना-काल की समकालीन प्रति न मिले, मूल पाठ को निर्धारित करना कठिन है।

३--रचनाकाल के सबध म ऊपर दी हुई तालिका से स्पष्ट है कि कई प्रतियो मे तो रचना-सवत् का दोहा ही नही मिलता, एव जिन मे मिलता है, उन मे भी (१) स० १६८६ भा० ११, (२) स० १६८० फा० सु० १५, (३) स० १६८५ फा० सु० १५, (४) स० १६८६ माघ ११, (५) स० १६६५ माघ ११, पाच मत पाए जाते है। अत निश्चित नही कहा जा सकता कि कवि ने कृति मे रचना-काल क्या दिया है, जब तक कोई समकालीन प्रति न मिले।

४--'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १३, अक ४ में श्रद्धेय ओझा जी ने प्रस्तुत कथा का साराश प्रकाशित किया है। उस में आप ने 'उस समय तक मनसबदारी[2] की प्रथा भी जारी नही हुई थी' लिख कर आपत्ति दर्शाई है, परतु वह पाठ इस 'वार्ता' की सभी

---

[1] जटमल ने कथा-प्रारभ में सोरठे रचे है, दोहे नहीं।
[2] वार्ता के "कहूँ फेर सुलतान करूं तुझ सात हजारी" के आधार पर।

प्रतियो में नही मिलता, किंतु इस के बदले मे 'गढ न लेहु न लडू, अरज इक सुनी हमारी' पाठ पाया जाता है। सभव है कि लिपि-लेखक ने अपने समय के अनुकूल परिवर्तन कर दिया हो।

५—लेखन-सवत् के उल्लेख वाली प्रतियो मे हमारे सग्रह की स० १७५२ लिखित प्रति सब से प्राचीन है एव सब से कम गाथा की प्रतियो मे भी हमारे ही सग्रह की प्रति प्राचीन है।

ठाकुर रामसिंह जी और स्वामी नरोत्तमदास जी इस का सुसपादित सस्करण प्रकाशित करने वाले है, अत यहा विशेष विचार नही किया जाता।

२—प्रेमविलास प्रेमलता की कथा—यह काव्य 'गोराबादल की बात' से भी बडा है। जिस प्रकार प्रथम काव्य वीररस प्रधान है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य शृगार-रस-प्रधान है। प्रसगवश अन्य सभी रसो का वर्णन होने से इस का नाम "सबरसलता" भी रक्खा गया है, जिस से कवि का सब रसो पर समान अधिकार ज्ञात होता है। इस काव्य की अद्यावधि तीन प्रतिया उपलब्ध है, जिन मे एक तो श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्रसूरि जी के सग्रह में और दूसरी हमारे सग्रह मे है। तीसरी प्रति हाल मे जयपुर मे श्रीपूज्य जी श्रीधरणींद्र सूरि जी के भडार से प्राप्त हुई है। प्रथम प्रति स० १८०६ मे लिखी हुई है, जिस में २८६ गाथाए है, दूसरी प्रति में यद्यपि लेखन-समय नही लिखा है तथापि कागज और लिपि देखते उस से प्राचीन ही ज्ञात होती है। उस में गाथाओ की सख्या, अतिम दोहा न होने के कारण, २८५ है। रचना-काल और स्थान दोनो मे स० १६९३, भाद्रव शुक्ला ४-५ रविवार, जलालपुर में सहबाज खां के राज्यकाल मे, लिखा है। तीसरी प्रति सिंध के भेहरा स्थान में लिखी गई है जहा प्राचीन नगर वीतभयपत्तन था। इस की पुष्पिका से जटमल के जैन होने की पुष्टि 'श्रावक' शब्द द्वारा होती है। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति प्रेमविलास प्रेमलता की सरबरलता नाम कथा नाहर गोत्र श्रावक जटमल कृता समाप्ता ॥ सवत् १७५३ वर्षे ज्येष्ठ वदि ७ दिने पडित दानचद्र लिपि कृत भयहरा मध्ये ॥"

कथा-वस्तु मनोरजक होने से यहा दी जाती है।

पोतनपुर नगर मे प्रेमविजय राजा राज्य करता था, जिस की रानी प्रेमवती की

कुक्षि से उत्पन्न राजकुमारी प्रेमलता सौंदर्य मे अप्सराओ से भी बढ कर थी। राजा के मत्री मदनविलास के प्रेमविलास नामक रूपवान् पुत्र था। राजकुमारी और मत्रिपुत्र दोनो एक गुरु के पास विद्याध्ययन करने लगे। दोनो मे परस्पर प्रेम न हो जाय इस लिए गुरु, राजकुमारी को परदे की ओट मे बैठा कर पढ़ाया करता था। दोनो मे मिथ्या विश्वास जमा दिया कि राजकुमारी जन्माध और मत्रिपुत्र कुष्टि है। एक बार गुरु की अनुपस्थिति में कुमारी के काव्य की मात्रा भूलने पर प्रेमविलास ने उसे अधी शब्द से सबोधित किया उत्तर मे कुमारी ने उसे कुष्टी कहा। इस तरह भेद खुलने पर दोनो का साक्षात्कार होने से प्रेमसागर उमड पडा। उन्हो ने यह प्रतिज्ञा भी कर ली कि दोनो को परस्पर विवाह करना है। अकस्मात् गुरु आ गए, यह वृत्तात देख कर गुरु ने बहुत समझाया, पर उन दोनो ने अपना निश्चय प्रकट कर दिया। इस के पश्चात् कुमार और कुमारी एक दूसरे को देखे बिना बेचैन रहने लगे इसी समय कोई तत्र, मत्र और सगीतकला में प्रवीण सुदर योगिनी वहा आई। राजा ने प्रेमलता को अभ्यास कराने के लिए योगिनी से निवेदन किया, वह हरदम के लिए राजमहल मे रहना अस्वीकार कर ४ घडी आ कर पढाने लगी। मत्रिपुत्र भी उस के मठ मे आता था। उन दोनो की हार्दिक व्यथा ज्ञात कर योगिनी ने दया करके उन्हे (१) आकाशगामिनी, (२) रूपपरावर्त्तनी, (३) अदृश्याजन विद्यात्रय प्रदान की।

अमावस्या की रात को सखी चपकमाला के साथ राजकुमारी प्रेमलता महल से निकल कर महाकाल देवी के मदिर मे आई, जहा प्रेमविलास भी पूर्व सकेतानुसार उपस्थित था। सखी ने मधुरध्वनि से गीत गाते हुए उन दोनो का विवाह कर दिया। महाकाल ने प्रकट हो कर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी जोडी अविचल रहेगी और तुम्हे राज्य मिलेगा।

वहा से वे तीनो आकाश-मार्ग से उड कर रतनपुर नामक नगर के उद्यान मे जा पहुँचे। वह नगरी नृप-विहीन थी अत राजा नियुक्त करने के लिए निकाला हुआ दिव्य हाथी प्रात काल ही लोगो के साथ आ पहुँचा। उस ने प्रेमविलास को राज्याभिषिक्त कर अपनी सूड मे तीनो को अपनी पीठ पर बिठा लिया। मत्री, सामत और नागरिक लोगो ने महदाडबर से राज्याभिषेक किया।

सारा राज्यभार मत्री को सौंप कर राजा प्रेमलता के साथ इतना आसक्त रहने लगा कि घडी भर भी उस के बिना कल नही पडती थी, यही हाल रानी का था।

एक बार चद्रपुरपत्तन के राजा चद्रचूड के बागी होने का हाल मत्री से ज्ञात कर

विस्तृत सेना के साथ चढ़ाई की। दोनो मे घमासान युद्ध हुआ फलत प्रेमविलास की विजय हुई। नगर मे आडबर से प्रवेश कर कुछ दिन वहा रहने के पश्चात् राज्य अमरदत्त मत्री को सौंप कर स्वय रतनपुर आया। नगर-लोक और रानी अत्यधिक प्रसन्न हुई, कवि ने राजा-रानी के विरह और युद्ध का अच्छा वर्णन किया है।

इधर पोतनपुर से चले जाने पर माता-पिता ने चिंतित होकर खोज के लिए आदमी दौडाए, महाकाल के मदिर तक पद चिह्न पाकर राजा ने उपवास-सहित देवी के समक्ष ध्यान लगा दिया। रात्रि मे देवी ने प्रसन्न हो कर प्रेमविलास और प्रेमलता के विवाह और अपने आशीर्वाद व राज्य-प्राप्ति की भविष्यवाणी कह कर सतुष्ट किया।

पाँच वर्ष बाद रतनपुर के एक व्यापारी से पता पा कर राजा ने उन्हे बुलाया। प्रेमविलास अपनी प्रिया के साथ ससैन्य पोतनपुर आया, राजा ने खूब स्वागत कर अपनी पुत्री परणाई, और उन्हे दहेज के साथ विदा किया। रतनपुर का सुखपूर्वक राज्य करते हुए प्रेमलता के प्रेमसिंह नामक सुदर पुत्र जन्मा, योग्यवय मे उसे एक सौ रानिया परणा कर राज्यभार सुपुर्द किया। वे दोनो ईश्वर के भजन में लीन रहने लगे। इस प्रकार राजा रानी दोनो ने अपना अखड प्रेम निभाया।

३—बावनी[1]—जैसा कि नाम से ज्ञात होता है वर्णमाला के बावन वर्णों को ले कर

---

[1]जैन साहित्य में इस के अतिरिक्त और भी बहुत सी बावनिया मिलती हैं। पाठकों की जानकारी के लिए उन को यहा सक्षिप्त सूची दी जाती है।

१ आध्यात्म-बावनी	कान्हसुत हीरानद	गा० ५७	रचनाकाल स० १६६८ पूर्व
२ दुर्जनशाल-बावनी	भौजक कृष्णदास	गा० ५६	स० १६५१ वैशाख लाहोर
३. सार-बावनी	श्री सार	गा० ५६	स० १६८६ आसोज सु० १०
४. उपदेश (किसन) बावनी	कृष्णदास लौंका	गा० ६१	स० १७६८ आ० सु० १०
५ आध्यात्म (प्रबोध) बावनी	जिनरग सूरि		स० १७३१ मि० शु० २ गु०
६. केशव-बावनी	खरतर केशवदास	गा० ६०	स० १७३६ श्रा० कृ० ५ म०
७. जसराज (मातृका) बावनी	जिनहर्ष	गा० ५७	स० १७३८ फा० कृ० ७ गु०
८. सवेगरसायन-बावनी	कान्तिविजय	गा० ५३	सं० १७४०
९. खेतल-बावनी	खेतल कृत	गा० ६५	स० १७४३ मि० शु० १५ शुक्र.

इस की रचना की गई है। छदो के आरभ मे वर्णमाला के वर्ण क्रमश आए है। प्रथम ५ छदो के आरभ मे 'ॐ न मा स ध' ये वर्ण है जो 'ॐ नमो सिद्ध' के सूचक है। इस की भाषा खडी बोली है पर पजाबी, राजस्थानी और ब्रज का काफी मिश्रण है। इस की छद सख्या ५४ है। इस मे पवित्र जीवन, सतोष, ससार की अस्थिरता आदि नीति और वैराग्य विषयो के

१०	धर्म-बावनी	धर्मसिह		स० १७२५ का० कृ० ९ रिणी
११	सुमति-बावनी	सुमतिरग		
१२	हेमराज-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ	गा० ५७	
१३	केशरी गुरु-बावनी	पासचदसूरि	गा० ५२	
१४	दोहा-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ		
१५	कवित्त-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ		
१६.	मान-बावनी	मान	गा० ५७	
१७	क्षेम-बावनी	क्षेम हर्ष		
१८	मोहन-बावनी	मोहन श्रीमाल		
१९	सवैया-बावनी	विनय प्रमोद शिष्य बालचद	गा० ५६	
२०.	नेतू सिह-बावनी	नेतूसिह		
२१	निहाल-बावनी	ज्ञानसार		
२२	कुडलिया-बावनी	धर्मसिह		स० १७३४ भा० २ जोधपुर
२३	छप्पय-बावनी	धर्मसिह		स० १७५३ श्रा० सु० १३ बीकानेर
२४	वैराग्य-बावनी	हीरनन्दन	गा० ५३	स० १६९५ भा० शु० १५
२५	सागर-बावनी	सिहविजय		सं० १६७४
२६	जैनसार-बावनी	रघुपति	गा० ६२	स० १८०२ भा० शु० १५ नापासर
२७	प्रस्ताविक छप्पय-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५८	स० १८२५ ऋषिपचमी लोलियासर
२८	कुडलिया-बावनी	रघुपति	गा० ५७	स० १८४८
२९	सवैया-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५७	
३०	वहा-बावनी	निहालचद		
३१	डुगर-बावनी	पद्मकुल	गा० ५३	स० १५४३ माघ शु० १२
३२	मामा-बावनी	विदुर कवि	गा० ५३	स० १६४६ आ० शु० १०
३३	उदयराज-बावनी	उदयराज		स० १६७६
३४	सवैया-बावनी	चिदानन्द	गा० ५२	
३५	आध्यात्म-बावनी	चिदानद	गा० ५२	

उपदेशात्मक कथन ह। पजाबी भाषा की प्रधानता देखते कवि के पजाब निवासी होने में कोई सदेह नही रह जाता। कवि की अन्य सब रचनाओ से यह अपनी निराली ही विशेषता रखती है। इस की केवल एक ही प्रति सवत् १७३३ सक्की ग्राम म लिखित श्रीपूज्य जी के सग्रह में उपलब्ध है। प्रत्येक छद में कवि ने अपना नाम निर्देश किया है।

४—लाहौर गजल[1]—यह कविता खडी बोली में लाहौर के वर्णन रूप में लिखी हुई है। इस की ५ ७ प्रतिया हमारे अवलोकन में आई है, जिन में तीन हमारे सग्रह में, एक श्री जिनकृपाचद्रसूरि ज्ञानभडार म एक श्री जयचद्र जी के भडार में एव अन्य फुटकर सग्रहो म भी ह। हमारे सग्रह की प्रतियो म गाथा के अक ५८ और ६० और एव श्री जयचद्र जी की प्रति म ५९ ह। अन्य कई प्रतियो म गाथाओ के अक लिखे नही रहने से गाथाओ की हीनाधिक सख्या नही लिखी गई। इस में लाहौर के जैन-मदिर धर्मशाला क अतिरिक्त अनेक एतिहासिक स्थानो का जिक्र आया है।

५—स्त्री गजल—इस म लाहौर गजल की भाति खडी बोली में स्त्रियो के शृगार

---

[1] इस 'गजल' के छद और शैली के अनुकरण में जैन कवियो ने और भी अनेक नगरो की गजलें निर्माण की है जिन में से निम्नोक्त गजलें हमारे सग्रह में है—

१	बीकानेर-गजल	यति उदयचद्र		स० १७६५ चैत्र
२	उदयपुर-गजल	खेतल कवि	गा० ८०	स० १७५७ मार्गशीर्ष,
३	चित्तौड-गजल	खेतल कवि	गा० ६२	स० १७४८ श्रावण
४	मरोट-गजल	दुर्गदास		स० १७६६ पूर्व
५	पाटण-गजल	देवहर्षकृत		स० १८७२ पूर्व
६	दीसा-गजल	देवहर्ष कृत		स० १८७२ पूर्व
७	बडौदा-गजल	दीपविजय कृत		स० १८५२ मिगसर कृष्ण १
८	आगरा-गजल	लक्ष्मी चद्र कृत	गा० ९४	स० १७८० आ० शु० १३
९	बगाल देश-गजल	निहालचद	गा० ६५	
१०	बीकानेर हनुमान-गजल	यति जयचद		स० १८७२

इन के अतिरिक्त दीपविजय कृत (न० ११) 'सूरत गजल' ('जैनयुग' में प्रकाशित) (१२) 'खभात गजल,' (१३) 'जबूसर गजल,' (१४) 'उदयपुर गजल' (१५) 'चित्तौड गजल' आदि स० १८७७ में रचित उपलब्ध है। नगर वर्णनात्मक काव्यों में श्रीमद ज्ञानसार जी कृत 'पूरबदेश वर्णन छद' एव 'सिलहट लावणी', 'कलकत्ता गजल,' 'बबई गजल' 'स्थली वर्णन', 'गुजरात वर्णन', इत्यादि उपलब्ध है। श्री नाहर जी के सग्रह के सचित्र विज्ञप्ति-पत्रो में भी कई गजलें देखी गई है।

एव अग प्रत्यगो का वणन हैं। इस की चार प्रतिया उपलब्ध है जिन म दो हमारे सग्रह मे एक श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्र सूरि जी के भडार म और एक बाब पूरणचद्र जी नाहर के सग्रह म हैं। इन म १ प्रति स० १७७५ लिखित और दूसरी स० १७६५ म लिखी हुई है। अवशष दोनो म प्रतियो का लेखन समय नही दिया है परतु वे भी अठारहवी शताब्दी की ही ज्ञात होती है। एक प्रति म इस का नाम सुदरी गजल भी लिखा हैं। गाथाक प्रतियो म नही लिख हैं पर लगभग २५ है एव भिन्न भिन्न प्रतियो म हीनाधिक्य भी हैं।

६——**फुटकर कविताए**——सवत १७६५ लिखित प्रति म जटमल कुल २८ छद मिले ह। जिन म ४ दोहे ३ छप्पय और २१ सवय ह। कवि का भाषा सौदय पद लालित्य और कवित्व शक्ति का इन म भी अच्छा परिचय मिलता है।

इन के अतिरिक्त कवि की दूसरी दो कविताए (एक स्त्री गजल की प्रति मे दूसरी प्रमलता चौपाई के अत म) मिली है। विशष खोज शोध करन से आशा है कि कवि की और भी कई नवीन कृतिया प्राप्त हो।

उपसंहार

खडी बोली के कवियो म जटमल का स्थान महत्त्वपूण है। हम यथोपलब्ध नवीन काव्यो का इस लेख म वणन कर चुके ह पर हमारे ख़याल स कवि के अन्य काव्य भी उपलब्ध होन की सभावना है। जो काव्य मिले हैं वे सभी खरतर गच्छ के यतियो क प्रयास से मिले है। बीकानर खरतर गच्छ का प्रमुख स्थान हैं। यहा क गद्दीधर श्रीपूज्यो के आज्ञा नुवर्त्ती अनेक यति सवत्र परिभ्रमण कर धमप्रचार करते थ। प्रमलता चौपाई, बावनी एव अन्य कुछ प्रतिया तो सिंध प्रान्त में ही लिखी हुई हैं।

कवि पजाब का निवासी था अत वहा के ज्ञानभडारो की पूरी खोज होन पर कवि के समय की लिखी हुई प्रतिया एव उन के काव्य भी मिलन की विशष आशा है। अद्यावधि कवि की जो कृतिया उपलब्ध हुई ह वे रचना-काल से लगभग ५० ६० वष पश्चात लिखित प्रतिया (प्राचीन से प्राचीन) हैं। समकालीन प्रतियो के उपलब्ध होन से मल पाठ सुनिश्चित हो जायगा। जटमल की रचनाओ से उस के व्यक्तित्व, काव्य प्रतिभा आदि का भली भाति परिचय मिल जाता है।

हिंदी भाषा मे जैन कवियो की सैकडो रचनाए साहित्यिक विद्वानो से अज्ञात जैन ज्ञान-भडारो मे पडी है। बीकानेर मे भी हिंदी के बहुत से अप्रसिद्ध ग्रथो के अवलोकन का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्राचीन वैष्णव-संप्रदाय

[लेखक—डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० (इलाहाबाद)]

(क्रमागत)

४—रुद्रसंप्रदाय

यह पहले कहा गया है कि इस सप्रदाय का विशेष प्रचार वल्लभाचार्य ने किया। इन्हों ने अपने मत को शुद्धाद्वैत के नाम से चलाया। इन के मत में ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व माना गया है। अन्य सभी वस्तुए ब्रह्म से अभिन्न हैं और इसी लिए नित्य भी हैं।[1] यथार्थ में जगत् अक्षय और नित्य है, किंतु विष्णु की माया से इस का आविर्भाव और तिरोभाव या उत्पत्ति और नाश होता है।[2] व्यवहारदशा में भी सभी वस्तुए ब्रह्मस्वरूप मानी जाती हैं। इस सप्रदाय के लोग धर्म और धर्मी में तादात्म्य-सबध मानते हैं, इस लिए घृत के द्रवत्व रूप धर्म के समान आगतुक प्रपचरूप धर्म को ब्रह्मरूप धर्मी से भिन्न नहीं मानते। माया को भगवान् की शक्ति मान कर शक्ति और शक्तिमान् में अभेद मानते हुए, इन के मत में एक मात्र ब्रह्म ही प्रमेय रह जाता है।[3] निराकार, सच्चिदानद तथा सर्वभवनसमर्थ (सभी होने के योग्य) ब्रह्म बिना किसी निमित्त के अपने अश से धर्मरूप से क्रियारूप से तथा प्रपच रूप से देख पडता है। ब्रह्म धर्मरूप से पहले ज्ञान, आनद, काल, इच्छा, क्रिया माया तथा प्रकृति के रूप में रहता है। किंतु ऐसा सर्वदा नहीं रहता। आपादक हेतुस्वरूप काल पहले नहीं रहता और उस के आविर्भाव होने पर वही काल इस का नियामक बन जाता है इसी लिए उक्त अवस्था सर्वदा एक सी नहीं रहती है। काल के साथ-साथ उत्पन्न इच्छा आदि शक्तियों का सदा एक-सा रहना भगवान् ने ही किया, अतएव ये भी नित्य हैं। इस में

---

[1] 'पुरुषोत्तम प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५४ [2] स्मृतिप्रमाण।
[3] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५४

काल ही क्रियाशक्तिरूप है। 'इच्छा' तो 'अभिध्यान-स्वरूपा' अर्थात् सकल्पात्मिका है। इसी को 'काम' भी कहते है, जैसा कि श्रुति म कहा है—'सोऽकामयत'। भगवान् तदाकार ही है। सकल्प के दो भेद है—'बहुस्या' (मैं बहुत हो जाऊ) और 'प्रजायय'[1] (उत्पन्न हो जाऊ)।

इन दोनो सकल्पो में पहला तो भेद बतलाता है, इस लिए काल से अतिरिक्त क्रिया, ज्ञान तथा आनद रूप सत्, चित् और आनद रूप ब्रह्म का धर्म अपने में भेद दिखलाते हुए अपने आश्रय ब्रह्म को भी भिन्न करता है अर्थात् उसे भी क्रियावान्, ज्ञानी तथा आनदवान् बनाता है। इस प्रकार सत् चित्-आनद-रूप ब्रह्म भी हाथ पैर वाला हो कर साकार रूप धारण कर लेता है। परतु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार भिन्न होने पर भी अपनी इच्छा से अभिन्न रह कर अखड ही ब्रह्म है।

माया

ब्रह्म की शक्ति उस के सत्-अश की क्रियारूपा तथा चित्-अश की व्यामोहरूपा 'माया' है। यह त्रिगुणा है। यह ससार की कर्तृरूपा माया का अश है और जगत् की उत्पत्ति मे आनदरूप का कारण भी है।[2] किंतु जगत् का कर्तृत्व भी माया में भगवान् की इच्छा ही से है, वास्तव में मूलकर्तृत्व माया म नही है।[3] ज्ञान और क्रिया य दोनो भगवान् की शक्तिया है। आनद ज्ञानशक्तिमान् तथा क्रियाशक्ति वाला हो जाता है, क्योकि आनद तो ब्रह्म ही है। ऐसी स्थिति म चिदश की शक्ति जो व्यामोहिका माया है (जिसे हम अविद्या भी कहते है) वह चिदश से जब ज्ञानरूप धर्म पृथक् हो जाता है तब उसे अज्ञान म डाल देती है।

जीव

यद्यपि भगवान् बोधरूप है तथापि ज्ञान के अभाव से मुग्ध हो जाते है और यह समझ कर कि आनद तो अलग है उस के सबध से आनद हो जायगा इस लिए माया के साथ मिल जाते है। तब व्याकुल हो कर आनद से किए हुए सृष्टि में जो 'सूत्रात्मा' था, जो दशविध प्राणभूत था उस का अवलबन ले कर रहते है। इस प्रकार प्राण धारण का प्रयत्न करते हुए चिदश को 'जीव' कहते है। सत्-अश क्रियाशक्ति के अलग हो जाने पर अव्यक्त और जड हो जाता है। पश्चात् मूलभूत जो क्रिया उस के अश से 'जीव' शरीरादि रूप से अभिव्यक्त

---

[1]'तैत्तिरीय उपनिषद्' २–६ [2]'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५५ [3]वही।

हो जाता है। और जब वह क्रिया बाद को उस के धर्म में लीन हो जाता है तब वह भी तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार चित्-रूप भी ज्ञान-शक्ति के धर्म-रूप ज्ञान के द्वारा अभिव्यक्त तथा तिरोहित होता है। इसी तरह आनंद-रूप का भी विनाश होता है।

भगवान में संसार के पालन तथा नाश इन दोनों की इच्छा रहती है। इन दोनों इच्छाओं से सत् चित् तथा आनंद रूप से क्रमशः सत्-अंश से जीव के बंधन सम्बन्धित प्राण आदि जड़ चित्-अंश से जीव आनंद अंश से जीव का नियामक तथा अन्तर्यामियों के स्फुलिङ्ग की तरह आविर्भाव होता है। बद्ध जीवों का जिन्हें भगवान उन पर अपनी शक्ति को देते हैं व उस मोहिका माया को तथा प्रबल को छोड़ देते हैं केवल अपने स्वरूप चित् रूप में स्थित रहते हैं और अपराधीन भी हो जाते हैं। किंतु उस जीव में आनंद-चैतन्य नहीं होता। माया शक्ति उस में नहीं रहती। उस जीव में आनंद ही के उत्कृष्ट होने के कारण और दूसरा कोई उत्कर्ष नहीं रहता। फिर भी होनता उस में रहती है। आनंद के साथ मिल जाने से आनंद तो वह होता ही है। इस ही वल्लभमत में सृष्टि प्रकार कहा है।[1]

'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इस श्रुति के अनुसार 'नामसृष्टि' और 'रूपसृष्टि'—दो प्रकार की सृष्टि कही गई है। 'रूपसृष्टि' का कारण पंचात्मक भगवान है। अर्थात् तत्त्व तो एकमात्र ईश्वर है किंतु उन के पांच अंश हैं जैसा कि भागवत में कहा है—

> द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
>
> वासुदेवात् परो ब्रह्मन् चाऽन्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥[2]

'द्रव्य' से माया समझना चाहिए। पश्चात् इसी से महाभूत आदि भी लिए जाते हैं। 'कर्म' जीव का निमित्त-कारण तथा भक्तों का भक्त्यारम्भ भी है। 'काल' गुणों का क्षोभक अर्थात् साम्यावस्था को नाश करने वाला तथा निमित्तरूप भी है। यहां 'काल' आधार रूप में सभी जगह दिखाई पड़ता है। 'स्वभाव' परिणाम का कारण है। 'जीव' भगवान का अंश-स्वरूप माना है।

अवान्तर सृष्टि में 'अधिष्ठान' अर्थात् शरीर 'कर्ता' जीव, 'इंद्रिय' नाना प्रकार की

---

[1] प्रस्थानरत्नाकर, पृ० ५५

[2] सुबोधिनी, पृ० ६६

चेष्टा' अर्थात् प्राण के धर्म, 'दैव' अर्थात् भगवान् की इच्छा ये माने जाते हैं। ये सब तत्व 'रूपसृष्टि' में कहे गए हैं। 'नामसृष्टि' में एकमात्र सूत्ररूप भगवान् सुषुम्ना के मार्ग से शब्द-ब्रह्मरूप में प्रकाशित होते हैं। पश्चात् यही शब्द-ब्रह्म नाद, वर्ण आदि रूप में प्रतीत होते हैं।

प्रमेयनिरूपण

प्रमेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु एकमात्र ब्रह्म ही है यह पहले कहा गया है किंतु संसार दशा में जब ब्रह्म साकार हो जाता है तब उसी के अनेक रूप हो जाते हैं। परंतु यह सब ब्रह्म से सभी दशा में अभिन्न रहते हैं। अस्तु, इन प्रमेयों को वल्लभाचार्य ने तीन भागों में विभक्त किया है—स्वरूपकोटि, कारणकोटि तथा कार्यकोटि। इन का क्रमश: यहाँ संक्षेप में विवरण दिया जाता है।

स्वरूपकोटि

इस में कर्म, काल, स्वभाव तथा अक्षर ये चार तत्त्व हैं। यथार्थ में कर्म, काल और स्वभाव ये तीनों अक्षर ही के रूपांतर हैं।[1] इस लिए सब से पहले 'अक्षर' का विचार किया जाना आवश्यक है।

१—**अक्षर**—अक्षर का लक्षण बताते हुए कहा है—

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ परमात्माऽभवत् पुरा।
यद्रूपं समधिष्ठाय तदक्षरमुदीर्यते॥

'अक्षर वही रूप है जिसे अधिष्ठान रूप में स्वीकार कर परमात्मा ने प्रकृति और पुरुष रूप धारण किया। अर्थात् अक्षर-ब्रह्म प्रकृति और पुरुष का भी कारण है।[2] यही अक्षर ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा इन दोनों से विशिष्ट तीनों स्वरूपों का मूलभूत, ज्ञान-प्रधान, गणितानंद, ब्रह्म, कूटस्थ, अव्यक्त, असत्, सत् तथा तम इत्यादि शब्दों से कहा जाता है। इसी को 'वैकुंठ' भी कहते हैं।[3]

२—**काल**—अक्षर का स्वरूपांतर 'काल' है। वस्तुतः सच्चिदानंद काल का स्वरूप है, किंतु व्यवहार में किंचित् सत्त्व के अंश से प्रकट 'काल' स्वरूप कहलाता है। यह अतींद्रिय

---

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५७
[2] वही, पृ० ५६ [3] वही।

हैं। लौकिक कार्य के अनुसार 'काल' का लक्षण मिला तथा सब का आश्रय और सब का उदभव' है। इसी काल से चिर शीघ्र तथा अतीत अनागत आदि व्यवहारों की उत्पत्ति होती है। इस का प्रथम कार्य सत्त्व रजस तथा तमस इन गुणों का क्षोभ करना है। सूर्य आदि इस काल के आधिभौतिक रूप है परमाणु[१] से ले कर चतुर्मुख के आयु-पर्यन्त आध्यात्मिक रूप हैं तथा भगवान स्वयं इस का आधिदैविक रूप है जैसा कि भगवान ने कहा है— 'कालोऽस्मि' (मैं काल हूँ)।

३—कर्म— 'कर्म' भी अक्षर' ही का रूपान्तर है। विधि और निषेध रूप से लौकिक-क्रिया के द्वारा प्रदत्त अभिव्यञ्जन के योग्य व्यापक क्रिया ही 'कर्म' का लक्षण है। इसी को अपूर्व अदृष्ट तथा धर्माधर्म भी कहते हैं। अदृष्ट आत्मा का गुण नहीं है यह भी इसी से सिद्ध होता है। कर्म नाना नहीं है। कर्म की अभिव्यक्ति के अनन्तर तथा फल समाप्ति पर्यन्त इस का प्राकट्य (अर्थात स्थिति) रहता है और फलभोग की लौकिक क्रिया के द्वारा क्रमशः यह तिरोभूत होने लगता है। इस का प्रधान कार्य है जैसा कहा है—

कर्मणा जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत।

४—स्वभाव—यह परिणाम का हेतु है। भगवान की इच्छा का योग्य इस का स्वरूप है। भगवान की इच्छा से यह भिन्न है। यह व्यापक होने के कारण सभी को अपने नीचे दबा कर स्वयं प्रकट होता है। कभी-कभी परिणामरूप कार्य में इस का अनुमान भी होता है।

प्रमेय का दूसरा नाम 'कारणकोटि' है। इस के भीतर २८ तत्त्वों का विचार है। ये भगवान के अविकल्प होने के कारण ही तत्त्व कहलाते हैं। भगवान की जो कारणता है वे उस के ... प्रकार से प्रकट होता है। सत्त्व रजस तथा तमस ये तीन गुण पुरुष प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार

कारणकोटि

मन श्रोत्र त्वक चक्षु जिह्वा घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय आकाश वायु तेजस जल तथा पृथिवी ये पांच भूत पांच तन्मात्रा और पांच कर्मेन्द्रिय और मन—'कारणकोटि' के अन्तर्गत ये २८ तत्त्व वल्लभ ने माने हैं। संक्षेप में इन का वर्णन यहां दिया जाता है।

[१] 'परमाणु' उस काल को कहते हैं जिस में सूर्य का रथचक्र परमाणुमात्र प्रदेश को व्याप्त करे।

१—सत्त्व—सुख का अनावरक (अर्थात् आवरण न करने वाला), प्रकाशक तथा सुखात्मक, और सुख तथा ज्ञान की आसक्ति से जीवो की देहादि के प्रति आसक्ति का कारण 'सत्त्व' गुण है। यह स्फटिक की तरह निर्मल है।[1]

२—रजस्—यह रागस्वरूप है। तृष्णा और प्रीति का जनक है, कर्म की आसक्ति स जीवो की देहादि के प्रति अत्यत आसक्ति का जनक है।[2]

३—तमस—यह अज्ञान की आवरण शक्ति से उत्पन्न है। सब प्राणियो को मोह म डालने वाला है, और असावधानता, आलस्य तथा निद्रा से जीवो मे अपने देह के प्रति आसक्ति उत्पन्न कर उन्हे बधन मे डालता है।[3]

य गुण जब भगवान् ही से उत्पन्न होते हैं तब इन्हे माया, चित्-शक्तिरूप या आनदशक्तिरूप समझना चाहिए। स्थिति अवस्था म जब रजस् और तमस् सत्त्व को दबा कर उन्नत होते हैं तब सत्त्व स्वय दुर्बल हो जाता है और कार्य-रूप में वर्त्तमान रजस् एव तमस् को दबाने के लिए भगवान् की प्रार्थना कर उन्ह अवतार-रूप मे ससार में प्रगट करता है। भगवान् तब सत्त्व ही को प्रधान बना कर नाना स्वरूप धारण करते हैं। सत्त्व के अवयव भी पृथक्-पृथक् रूप धारण करते हैं। इस प्रकार सभी युग में अपने अशभूत धर्म की स्थापना करन के निमित्त तथा सत्त्व की सहायता करने के उद्देश्य से भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं।[4]

जब तन्मायाफलरूपण' इत्यादि 'भागवत' के वचन के अनुसार माया उभयात्मिका चित्-शक्तिरूपा गुणमयी हो जाती है तब ये तीनो गुण पुरुष की अनुमति से माया के द्वारा वैषम्य को पाकर प्रकृति के धर्म हो जाते है, और इन से हिरण्मय महत्तत्त्व आदि की उत्पत्ति होती है। भगवान् स्वय निर्गुण होते हुए भी सत्-अश से सत्त्व को, चित्-अश ने रजस् को, तथा आनद-अश से तमस् को उत्पन्न करते हैं। द्वितीय कल्प में सच्चिदानदात्मक ब्रह्म से माया उत्पन्न होती है और उस के बाद गुणो का वैषम्यरूप तथा महत्तत्त्वादि की उत्पत्ति आदि होती है।

४—पुरुष—'पुरुष' को ही 'आत्मा' भी कहते है। देह, इद्रिय आदि को दूसरे के

---

[1]'गीता' १४–६ [2]वही, १४–७ [3]वही, १४–८
[4]'भागवत', १–१०–२४; 'गीता', ४–७

निमित्त जो 'अतति'—'व्याप्नोति'—'अधितिष्ठति' अर्थात् धारण करता है वही 'आत्मा' है। यह अनादि, निर्गुण तथा प्रकृति का नियामक है। अहं-रूप ज्ञान से यह जाना जाता है। यह स्वयं-प्रकाश है। संसार के गुण तथा दोषो से मुक्त रहते हुए भी यह सभी वस्तुओं से संसर्ग रखता है। मुक्ति का यह उपकारक है। यह देह, इंद्रिय, प्राण, मन तथा अहंकार से अतिरिक्त है।

इस निर्गुण आत्मा में भी कर्तृत्व आदि गुण जो कहा जाता है वह सृष्टि के अनुकूल भगवान् की इच्छा से तथा प्रकृति आदि के अविवेक से है। अर्थात् यह सगुणत्व आत्मा में आगन्तुक धर्म है, स्वाभाविक नहीं है। अन्यथा इस में मुक्ति-योग्यता ही नहीं हो सकती थी और तब मोक्ष प्रतिपादक सभी श्रुतियां व्यर्थ हो जातीं।

यह पुरुष अनेक नहीं है किंतु एक ही है।[१] शास्त्र में कहा है कि कालचक्र के कारण प्रकृतिरूपा गुणमयी माया में शक्तिमान्-भगवान् आत्मस्वरूप-पुरुष के द्वारा अपनी शक्ति (वीर्य) को रखते हैं। इस प्रकार करण-रूप में इस 'पुरुष' की अपेक्षा होती है।[२] इसी पुरुष को सांख्यांतर में (अर्थात् योग में) 'ईश्वर' कहते हैं। और इसी बात को आचार्य ने 'भागवत' की टीका 'सुबोधिनी' में भी कहा है—"पुरुष एक ही है। पुरुष और ईश्वर में कुछ भी विलक्षणता नहीं है, इस लिए इन्हें दो मानना व्यर्थ है।" अतएव जीव और ईश्वर में भी स्वाभाविक भेद नहीं है, वे तो केवल अवस्था के भेद से दो मालूम होते हैं। अतः जीव, ईश्वर और पुरुष ये शब्द एक ही तत्त्व के नाम हैं। यह तो तत्त्वकथन है, किंतु व्यावहारिक दशा में (प्रकृते तु)—'पुरुष' द्वारभूत भगवान् का अंश है और 'ईश्वर' भगवान् स्वयं हैं। 'जीव' पुरुष-तत्त्व से भिन्न है। परंतु चित्-रूप होने के कारण एक ही जाति के दोनों हैं। अथवा पुरुष ही का अंश 'जीव' है। किंतु 'त्वं आत्मना आत्मानं अवेहि' इस स्थल में अक्षरांश और पुरुषांश के भेद होने के कारण 'जीव' भी दो प्रकार का माना जाता है।[३] लौकिक दशा में जीव से भिन्न ईश्वर तो मानना ही पड़ेगा, अन्यथा भोग का नियम ठीक से नहीं हो सकता है। 'कर्म' इसी ईश्वर के अधीन है। जैसा श्रुति में भी कहा है—"एष उ एव साधु कर्म कारयति"। प्रकृति और पुरुष का संयोग भी ईश्वर के बिना नहीं हो सकता। यह संयोग अनादि नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसा होने से मोक्ष की चर्चा भी नहीं हो

---

[१] 'गीता', १०-२० [२] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६० [३] वही।

सकती है। इस लिए ईश्वर ही इस संयोग का अधिष्ठाता माना जाता है।

५—प्रकृति—इसे 'प्रधान' भी कहते हैं। यह भगवान् का मुख्य रूप है। इसे जगत् के उपादानरूप में भगवान् ने बनाया। यह साम्यावस्था में प्राप्त तीनों गुणों का स्वरूप-भूत तत्त्व है। जिस प्रकार सच्चिदानंदरूप ब्रह्म में क्रिया, ज्ञान और आनंदरूप धर्म रहते हैं, उसी प्रकार यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका होती हुई भी इस में असत उद्गत तीनों गुण भी रहते हैं। अतएव इस मत में प्रकृति और गुणों में 'धर्म-धर्मिभाव' भी है। तीन प्रकार की सृष्टि करने के लिए भगवान् ने प्रकृति को ये तीन ऐश्वर्य दिए हैं। ये सत्, चित् तथा आनंद के अंश माया-रूपा प्रकृति में रहते हुए प्रकृति को 'प्रधान' बनाते हैं।

किसी प्रकार काल आदि के द्वारा यह अभिव्यक्त नहीं हो सकता है अतएव यह 'अव्यक्त' है। और इसी लिए यह नित्य भी है, क्योंकि अभिव्यक्त होने ही से अनित्य हो जाता और पुनः इस से सृष्टि न हो सकती थी। प्रकृति के साथ-साथ काल आदि भी उत्पन्न होते हैं और इसी के साथ इन की स्थिति तथा लय भी होता है।

यह सत् और असत् स्वरूपा है। कार्य और कारण में यह भी भेद नहीं मानते। यह ज्ञान का हेतु भी है, अन्यथा संसारी लोग विवेक नहीं कर पाते और फिर न मुक्त हो सकते थे। यह वैराग्य का भी कारण है, क्योंकि यह सभी विशेषों को आत्मा को दिखा कर फिर निवृत्त हो जाती है। प्रकृति और पुरुष में यद्यपि अन्यत्र स्वस्वामिभाव संबंध है, किंतु यहां तिरोधान के कारण उन में संयोग-संबंध भी है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही साकार हैं, यह भगवान् के साकार होने ही से सिद्ध होता है। इस लिए इन में भी शरीर, इंद्रियादि होते हैं।[1]

प्रकृति के भी दो भेद माने गए हैं—व्यामोहिका माया और मूलप्रकृति। अन्यथा संसार में अवस्था का भेद नहीं हो सकता था। भगवान् की इच्छा से जब मायारूप प्रबल रहता है तब तो पुरुष बद्धावस्था में प्राप्त हो कर 'जीव' कहलाता है, और जब मूलप्रकृति की अवस्था आती है तब स्वरूप ही में स्थित होकर आत्मा जगत् का कारण होता है।[2]

६—महत्—यह क्षुब्ध गुणों से उत्पन्न होता है। क्रियाशक्तिमान् प्रथम विकार

---

[1]'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६३ [2]वही, पृ० ६०

तो 'अर्थ' हैं और ज्ञानशक्तिमान् 'महान्' हैं किंतु एक सूत्र में बँधे होने के कारण अर्थात् सर्वथा एक में मिल जाने से ये दोनो एक ही तत्त्व माने गए है। ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति के कारण एक ही तत्त्व दो मालूम होता है। इस महत्तत्त्व का शरीर हिरण्मय है। कूटस्थ मे रह कर अपने आधारभूत-विश्व का यह व्यजक है और सात्त्विक है। जगत् का यह अकुर कहलाता है। और यह अत्यत घन तमस् का नाशक है। यह भगवान् के आविर्भाव का स्थान है। इसी को 'शुद्धसत्त्व' कहते है। इसी को 'चित्तत्त्व' भी कहते है।[१] इन के मत मे बुद्धि और महान् ये दो पृथक् पदार्थ हैं।

७—अहकार—यह 'महत्' से उत्पन्न होता है। इसे विमोहन, वैकारिक, तैजस्, तामस्, अह, तन्मात्रा—इद्रिय एव मनस् इन तीनो का कारण तथा चित्-अचित्-मय कहते है। यह चित् का आभास होने से चित् और अचित् इन दोनो का ग्रथिरूप है। दिग्, वात, अर्क, प्रचेतस्, अश्विनीकुमार, वह्नि, इद्र, उपेद्र, मित्र, तथा चद्र इन का भी जनक 'अहकार' है। 'सकर्षण' रूप का यह अधिष्ठान है। कर्तृत्व, करणत्व तथा कार्यत्व भी इस म है। फिर शात, घोर और मूढ स्वरूप वाला भी यह है। प्राण और बुद्धि इसी के रूपातर है, जैसा कि कहा है—

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्ति बुद्धि प्राणस्तु तैजस ।

इन्ही रूपातरो के होने से 'अहकार' मे सब इद्रियो को बल देने की शक्ति, द्रव्यस्फुरणविज्ञान, इद्रियानुग्राहकत्व, तथा सशय आदि पाच वृत्तिया है।

८—तन्मात्रा—भूतो की सूक्ष्म अवस्था को 'तन्मात्रा' कहते हैं। इस मे 'विशेष' नही रहता। अहकार से यह उत्पन्न होता है और अन्य तत्त्वो को उत्पन्न करता है। इस के पाच भेद है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गध। ये योगियो को ही दृष्टिगोचर होते है। विशेष अवस्था मे ही ये हम लोगो के दृष्टिगोचर होते है, जैसा कि साख्य मे कहा गया है—

बुद्धीन्द्रियाणि तेषा पच विशेषाविशेषविषयाणि ।[२]

इस विषय मे वल्लभ और साख्यमत मे कोई भेद नही है। क्रम से इन पाच 'तन्मात्राओ' के विशेष लक्षण यहा दिए जाते है —

---

[१] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६४

[२] 'साख्यकारिका', ३४

क—शब्द—श्रोत्रेंद्रिय से ग्रहण करने के योग्य तथा धर्मवान् 'शब्द' है। शब्द को नभस्त-मात्र' अर्थात् आकाश का तन्मात्र[1] तथा द्रष्टा और दृश्य का लिंग[2] भी कहा है। जैसे शब्द सुन कर उस के उच्चारण करने वाले का ज्ञान होता है तथा टकार आदि शब्द सुन कर टकार शब्द उत्पन्न करने वाले वस्तु का ज्ञान होता है।[3] कार्य-अवस्था में शब्द सविशेष हो जाता है और यह पाँचों भूतों का गुण है अर्थात् शब्द सभी भूत में रहता है।[3] इस लिए भेरी से उत्पन्न शब्द पृथ्वी का गुण है क्योंकि भेरी पार्थिव वस्तु है। और कार्यभूतवस्तु में वर्तमान शब्द विसरणशील तथा सावयव भी है। कार्यवस्तु में रहने वाला शब्द उदात्त आदि वैदिक तथा षड्ज आदि लौकिक स्वर के भेद से अनंत प्रकार का है। शब्द स्पर्शवान भी है। जैसे किसी वाद्य से उत्पन्न शब्द गत स्पर्श का तथा मर्म को छूने वाले शब्द से उत्पन्न स्पर्श का हृदय में त्वचा के द्वारा अनुभव होता है अतएव वल्लभ ने शब्द में स्पर्शरूप गुण को माना है। इस के बिना 'न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत' (किसी को मर्मस्थान में न छूना चाहिए) इस प्रकार की स्मृति व्यर्थ हो जायगी। 'गुणे गुणानंगीकारात' (एक गुण में दूसरा गुण नहीं माना जाता है) नैयायिकों के इस कथन को ये लोक प्रत्यक्ष विरुद्ध मान कर टाल देते हैं।[4]

शब्द के नित्य होने के संबंध में वल्लभाचार्य का कथन है कि वेद को नित्य मानते हुए उसी का अंशभूत वर्ण यथार्थ में नित्य है ही। फिर भी लोक में उस का सुनाई देना या न देना यह तो शब्द के आविर्भाव और तिरोभाव रूप धर्म के कारण होता है। हृदयाकाश में प्रथम भगवान या ब्रह्म 'नाद'-रूप में अभिव्यक्त होते हैं। शब्द पहले तो अव्यक्त रहता है पश्चात् नानावर्णादि-संकल्पक-मनोमय सूक्ष्मरूप को प्राप्त कर भगवान के मुख से प्रकट होता हुआ मात्रा स्वर वर्ण रूप में स्थूल भाव से ब्रह्मात्मक वेद रूप में वही सूक्ष्म शब्द प्रकाशित होता है। वह नाद-व्यापक होने के कारण हम लोगों के अंदर भी प्राणघोष रूप में रहता है। श्रोत्र (कान) की वृत्ति को निरोध करने पर भगवान् के ही द्वारा जीव उसे सुनता है अन्यथा द्वार के बंद होने के

---

[1] 'भागवत'—तृतीयस्कंध।
[2] 'वही'—द्वितीयस्कंध, २५ [3] 'सुबोधिनी', २ २५
[3] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६५
[4] वही, पृ० ६५

कारण वह सुनाई नही देता। इसी नाद को 'स्फोट' भी कहते हैं। अतएव यही नाद सुषुम्ना-नाडी के द्वारा, मूलाधार, हृदय, कठ तथा मुख मे परा, पश्यती, मध्यमा तथा वैखरी रूप में प्रकट होता हैं। जिस प्रकार ब्रह्म के सत्, चित् और आनद नाम हैं उसी प्रकार शब्द-रूप ब्रह्म के वर्ण, पद और वाक्य नाम हैं। वास्तविक भेद इन मे नहीं है, किंतु काल्पनिक है। शब्द सर्वगत हैं अतएव नानादेश मे स्थित वक्ता के प्रयत्न से उन-उन देशो मे शब्द सहज मे अभिव्यक्त होता है। इस के सर्वगतत्व होने मे अबाधित प्रत्यभिज्ञा ही प्रमाण हैं। और इसी लिए सूर्य के समान एक ही समय म अनेक स्थलो से शब्द की स्थिति दिखाई पडती है।[1]

'शब्द' की उत्पत्ति मे अदर और बाहर वायु ही निमित्त कारण है। इस के समवायी तो पाँचो भूत हैं। विशेष कर आकाश और अन्यभूत सामान्यरूप से। जहा पर ध्वनि अभिव्यक्त होती है, वहा से कुछ दूर तक चारो ओर तो वह स्वभाव ही से स्वय जाता है, क्यो कि यह 'विसारी' हैं। बाद को वायु इसे दूर-दूर ले जाता हैं। इस तरह स्थानातर मे जाता हुआ शब्द अपना थोडा-थोडा अश भिन्न-भिन्न कानो में लीन करता (रखता) जाता हैं। जब इस के सभी अश लीन हो जाते हैं तब वह आगे को लोगो को सुनाई नहीं देता। अत में स्वभाव ही से या काल आदि के द्वारा उस का नाश हो जाता हैं। शब्द का अग-प्रत्यग कर के नाश होते हुए देख कर इसे निरवयव कहना ठीक नहीं है।[2]

ख—स्पर्श—त्वगिद्रिय से ग्रहण करने योग्य 'स्पर्श' है। 'वायुतन्मात्रत्व' इस का लक्षण है। कार्यवस्तु मे वर्तमान यह 'सविशेष' हो कर चार भूतो का गुण है। मात्रा-रूप म मृदु, कठिन, शीत तथा उष्ण—ये चार इस के भेद हैं।[3] गुणस्वरूप मे मृदु, पिच्छिल (फिसलना) जैसे रेशमी कपडे मे, कठिन, शीत, ऊष्ण, अनुष्णाशीत, शीत, लघु, गुरु, सयोग आदि इस के अनेक भेद होते है। मृदु आदि शब्द वस्तुत धर्मवाचक होने पर भी अधिक प्रयोग होने के कारण धर्मी के निमित्त भी प्रयोग होते हैं। लघुस्पर्श वायु, तेजस्, जल तथा भूमि मे रहता हैं। जैसे सूक्ष्म वायु का स्पर्श, ज्वाला का स्पर्श, तूल (रुई) का स्पर्श। लघुस्पर्श होने ही के कारण तेजस् ऊपर को आता है। जल का लघुस्पर्श गगा, यमुना, कूप और नदी के जल को पीने से मुख में स्पष्ट मालूम होता है। इसी प्रकार गुरुस्पर्श भी जल,

[1]'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० २०-२१ [2]वही, पृ० २३, ६५ [3]वही, पृ० ६५

वायु और भूमि म है। अन्य शास्त्र में गुरुत्व' स्पर्श से अतिरिक्त गुण माना गया है किंतु यहा स्पश ही का भद गुरुत्व' भी है जो स्पर्श होन ही के कारण तौलन पर मालूम किया जाता है। स्पर्श के बिना जहा गुरुत्व का ज्ञान होता है वहा अनुमान से होता है, न कि प्रत्यक्ष से। सयोग' स्पर्श से अतिरिक्त गुण वल्लभ के मत में नही माना जाता है। सयोगज-सयोग यह नही मानते। सयोग चक्षु से जाना जाता है और स्पश' त्वगिंद्रिय से—इस लिए य दो गुण है एसा समझना ठीक नही है क्योंकि चक्षु म भी त्वगिंद्रिय तो है ही इस लिए चक्षु से देखी गई वस्तु त्वगिंद्रिय से भी देखी जाती है यह स्वीकार करना चाहिए। चक्षुरिंद्रिय में वत्तमान जो वायु है उस का गुण स्पर्श है न कि चक्षु का। अतएव मन म भी स्पर्श है।[१] श्लेष विभाग का अभावरूप है। 'स्नह भी स्पर्श ही का भद है क्योंकि यह भी त्वचा ही से जाना जाता है।

ग—रूप—चक्षु से ग्रहण करने के योग्य गुण को रूप कहते ह। तेजस्तन्मात्रत्व' इस का लक्षण कहा है। जिस द्रव्य म यह रहता है उसी की आकृति के तुल्य इस की आकृति होती ह।[२] तन्मात्र-स्वरूप म यह एक ही है। कायस्वरूप म भास्वर शुक्ल, नील, पीत, हरित, लोहित आदि 'रूप के अनत भद है। चित्ररूप भी एक अतिरिक्त रूप है। भास्वर-रूप दूसरे का भी प्रकाश करता है, इस लिए अपन आश्रय से अधिक देश म रहन वाला होता है। यह विसरणशील होता है।

घ—रस—रसनद्रिय से ग्राह्य गुण रस है। जलतन्मात्रत्व इस का लक्षण है। तन्मात्रारूप म वह अव्यक्त मधुर है। कायवस्तु म होन से कसैला, मधुर तिक्त, कडुआ, खट्टा, क्षार, (नोना) और मिश्र य सात इस के भद है। जल म अव्यक्त मधुर 'रस' है। आधारभत वस्तु के धम के सबध से रस म भद उत्पन्न होता है।[३]

ङ—गध—घ्राणद्रिय से ग्राह्य गुण गध है। यह पृथिवी-तन्मात्र कहलाता है। व्यक्त और अव्यक्त के भद से यह दो प्रकार का है। कायरूप में करभ (दही मिश्रित सत्तू का गध,[४] या तरकारी आदि का मिश्र गध), पूति (कुगध), सौरभ्य (सुगधि), शात और उग्र (य पूति और सौरभ्य ही के भद हैं, कमल का गध शात है और चपा या लहसुन का गध उग्र

[१]'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६७ [२]वही, पृ० ६७
[३]वही, पृ० ६८ [४]करभो दधिसक्तव —'अमरकोश', ६-४८

है) तथा 'अम्ल', जैसे नीबू का गध और वासी कढी आदि का गध—ये छ प्रकार के गध है। इन के अतिरिक्त आवातर भेद तो अनत है, जैसे धूप, धूम आदि के गध। 'गध' अपने आश्रय से अधिक देश मे रहने वाला होता है। अर्थात् इस का आश्रय-द्रव्य जहा नही रहता वहा भी उस द्रव्य मे रहने वाला गध रहता है। नैयायिक आदि के मत मे जब किसी फूल का गध कही दूर तक फैलता है तो यह समझा जाता है कि वायु के द्वारा उस फूल का भाग दूर तक चला जाता है और उसी के साथ-साथ उस की सुगधि भी जाती है। अर्थात् द्रव्यरूप आश्रय के बिना उस का गुण कही नही जा सकता है। किंतु वल्लभाचार्य के अनुसार द्रव्य को छोड कर भी उस का गुण अन्यत्र चला जाता है।[१]

६—**भूत**—जिन मे सविशेष शब्द आदि गुण हो उन्हे 'भूत' कहते है। आकाश, वायु, तेजस्, जल तथा पृथ्वी ये पाच भूत हैं। क्रमश इन का वर्णन यहा किया जाता है —

क—आकाश—'अवकाशदातृत्व' (अवकाश देने वाला), या 'बहिरतरव्यवहारविषयत्व', या 'प्राणेद्रियात करणाधारत्व 'आकाश' के लक्षण कहे गए है। पहला लक्षण आधिदैविक है। दूसरा आधिभौतिक स्वरूप लक्षण है। यही लक्षण व्यवहार मे उपयोगी भी है। आकाश जन्य है, नित्य नही, क्योकि इस मे विकारित्व सिद्ध होता है, जैसे 'आत्मन आकाश सभूत' इस श्रुति मे भी कहा है। आकाश मे रूप नही है। परममहत् परिमाण वाला होने ही के कारण यह नीरूप भी है। आकाश म नील आदि की प्रतीति भ्रममात्र है। चक्षु अपने सामर्थ्य से आकाश का ग्राहक नही है, किंतु आकाश ही अपने सामर्थ्य से गधर्वनगर अथवा पिशाच के समान अपने स्वरूप को प्रगट करता है। इस का विशेष-गुण[२] शब्द है।

ख—वायु—इस का लक्षण इन के मत मे 'अरूपित्वे सति चालन-व्यूहन-द्रव्यशब्द-गन्धनयनसर्वेन्द्रियबलदानाख्यकार्यत्वम्' है। अर्थात् जिस मे रूप न हो और जो डाल आदि को हिलावे, गिरे हुए पत्तो को एक जगह मिलावे, द्रव्य, शब्द, और गध को ले जाने वाला, सभी इद्रियो को बल (सामर्थ्य) देने वाला आदि कार्य करे वही 'वायु' है। यही प्राणरूप है। स्पर्श इस का विशेषगुण है। शब्द भी इस मे कारण से आता है। इस प्रकार इस मे दो गुण है। मीमासक के मतानुसार इस का त्वगिंद्रिय से प्रत्यक्ष होता है।

---

[१] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६८ [२] वही, पृ० ७१

ग—तेजस— तेजस में पाचन, प्रकाशन पान जैसे जल आदि का अदन (भोजन) जैसे अन्न का हिम (पाला या शीत) का मर्दन (नाश करना) शोषण (सुखाना) य छ काय होते हैं। यथार्थ म पान और अदन य दोनो काय जठराग्नि से ही होते ह अतएव पाच ही कम तेजस के ह। क्षुधा और तृष्णा भी तेजोरूप ह। रूप इस का विशेष गुण है। शब्द और स्पश इस म कारण से आते ह। इस प्रकार तीन गुण इस म ह।[1]

घ—जल— क्लेदन (भिगोना) पिंडन (इकट्ठा करना) तृप्ति (क्षुधा आदि की निवृत्ति करना—भोजन करने पर भी बिना जल की तृप्ति नहीं होती) प्राणन (जीवन) आप्यायन (प्राण को सतोष देना) प्ररण (बहा ले जाना) ताप को दूर करना तथा एक स्थान म अधिक ही होकर रहना य आठ काय जिस म हो वही जल है। बफ आदि में दूसरे भूत के कारण कठोरपन ह। जब बहुत ठडी हवा चलती है तब जल एकत्रित हो कर ओला बन जाता ह। रस इसका विशेषगुण है। शब्द स्पश तथा रूप इस म दूसरे से आए हुए गुण ह। इस प्रकार इस म चार गुण ह।

ङ—पृथ्वी— साक्षात समस्त जगत को धारण करने वाला द्रव्य पृथ्वी ह। वल्लभ सत्कायवाद ही को स्वीकार करते ह। गध इस का विशेषगुण ह। और चार गुण इस म अन्यत्र से आते ह। इस प्रकार पाच गुण इस म ह।

१०—इंद्रिय— तजसाहङ्कारोपादेयत्वे सति (तैजसरूप अहकार से इंद्रिय की उत्पत्ति होती ह) ज्ञानक्रियान्यतरकरण इंद्रिय का लक्षण है। देह से सयुक्त रह कर अपने फल से आत्मा का जो ज्ञान करावे वही इंद्रिय है। ज्ञानेंद्रिय और कमेंद्रिय के भेद से इंद्रिय दो प्रकार के ह। श्रोत्र आदि पाच ज्ञानेंद्रिय ह और वाक आदि पाच कमेंद्रिय ह। य सभी अभौतिक ह। भगवान की इच्छा से गुणो के परिणाम के भेद से तथा शरीर के अगो के सन्निवेश के भेद से एक ही तैजस-अहकार से भिन्न भिन्न इंद्रियों की उत्पत्ति म कोई बाधा नही है। य इंद्रिया अणु-परिमाण की और अनित्य भी ह।

इन म चक्षु उदभूत रूप और उदभूत रूपवान् तथा सख्या परिमाण पृथक्त्व, सयोग विभाग परत्व अपरत्व और वेग तथा कम और इनकी जाति तथा समवाय का ग्राहक है। इसी लिए परमाणु पिशाच आदि का चक्षु से ग्रहण नहीं होता। रूप द्वारा ही

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ७१

'चक्षु' द्रव्य का भी ग्राहक है। त्वगिंद्रिय से उक्त सख्या आदि सभी गुण, उद्भूतस्पर्श तथा उद्भूतस्पर्श वालो का, उक्त गुणो की जाति और समवाय इन सब का ग्रहण होता है। इसी प्रकार घ्राणेंद्रिय से ग्रहण योग्य उद्भूतगध, और उद्भूतगध वाला, उन की जाति और समवाय है। इसी तरह रसनेंद्रिय और श्रवणेंद्रिय को भी जानना चाहिए।

ये दश इद्रिया राजस है, क्योकि राजस बुद्धि और प्राण से इन का ग्रहण होता है। इन मे से चक्षु, घ्राण, हाथ और पैर इन के दो-दो रूप है, किंतु ये प्रत्येक एक ही एक इद्रिय है। ज्ञानेद्रिया अपने वस्तुओ के साथ मिल कर ही ज्ञानजनक होती है।

११—मन—'मन' सकल्प और विकल्पात्मक है। इसे उभयात्मक कहते है, क्योकि यह दोनो प्रकार के कार्यों को करता है। इच्छा (काम) की उत्पत्ति इसी के अधीन है। यह भी एक इद्रिय है। सुख, दु ख, प्रयत्न, द्वेष, अदृष्ट, स्नेह आदि इसी 'मन' के गुण है, न कि आत्मा के। यह भी जन्य है, जैसा कि 'तन्मनोऽसृजत्' इस श्रुति में भी कहा है। अणु इस का परिमाण है। इस के दो प्रकार के कार्य होते है—आतर और बाह्य।

सामान्य-का 'आकृति' और 'व्यक्ति' म सन्निवेश किया गया है।

'ज्ञान' ब्रह्मस्वरूप ही है, जैसा श्रुति में भी कहा है—'सत्य ज्ञानमनत ब्रह्म'।

ज्ञान

जब-जब भगवान् सृष्टि की इच्छा करते है तब-तब उन का आविर्भाव होता है, इस लिए 'ज्ञान' का अनत भेद होने पर भी यहा केवल दश प्रकार का 'ज्ञान' माना गया है। इन मे चार प्रकार का 'ज्ञान' नित्य है। पहला-सब का आत्मस्वरूप, सब का उपास्य, मुख्य, विकार-रहित आत्मा का अपना ही स्वरूप है, जिसे गीता (१०-२०) मे कहा है—'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित'। स्वरूपत यह नित्य है।

यही 'ज्ञान' जब प्रकाश रूप मे आविर्भूत होता है, तब वह भगवान् का गुणस्वरूप कहलाता है, जैसा कहा है—"ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणे"। ऐश्वर्य सपन्न मे वह नित्य है और जीव तथा भगवान् के पार्षद आदि मे उन के देने से प्राप्त होता है।[१] यही 'ज्ञान' अर्थात् धर्मरूप सर्व-विषयक ज्ञान जब सृष्टि के निमित्त भगवान् के मनोमय आदि

---

[१] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० १

नाडी के द्वारा 'वेदरूपशरीर' धारण करता है तब वह 'तीसरा ज्ञान' कहलाता है, जैसा कि श्रुति में है—"स एप जीवो विवरप्रसूति" इत्यादि। वेदशरीर में भी वह ज्ञान विराट् रूप के समान अनत है, जैसा 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' मे इद्र और भरद्वाज के सवाद मे स्पष्ट कहा गया है —"अनता वै वेदा" इत्यादि। यही बाद मे विशिष्ट शक्ति वाला हो कर ससार का 'बीज' हो जाता है और इसी से सभी विकृत शब्द सृष्टि के आदि मे होते हैं। यही भगवान् के आश्रित होने से 'चतुर्थ प्रकार का नित्य ज्ञान' है।

यही वेदरूप शरीर विशिष्ट-ज्ञान समवाय-सबध से प्रमाता में तथा निमित्तरूप से प्रमेय में रहता है। पश्यतीरूप शब्द तो प्रमाता का आश्रयण करता है, जैसा कि 'वाक्यपदीय' मे भर्तृहरि ने कहा है

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञान सर्वं शब्देन भासते॥[1]

अर्थात इस लोक में (व्यवहार की अवस्था में) ऐसा कोई भी ज्ञान नही है जो शब्द से अनुविद्ध न हो। प्रमेय के अनत होने से उस का आश्रयण करने वाला शब्द शरीर-विशिष्ट-ज्ञान भी अनत है। किंतु वास्तव में ब्रह्म ही एक मात्र प्रमेय वल्लभ के मत मे है, इस विचार से यह ज्ञान एक ही है। शब्द और अर्थ तथा शब्द और ज्ञान मे नित्य सबध होन के कारण शब्दविशिष्ट ही ज्ञान प्रमेय को आश्रयण करता है। यही पचम ज्ञान है। इस अवस्था मे शब्द और अर्थ ज्ञान से अभिभूत है, किंतु पहले उलटा था।

प्रमाता में अत करण और इद्रिय को आश्रयण करने वाला 'ज्ञान' पाच प्रकार का है। इद्रिय में एक प्रकार का और अत करण में चार प्रकार का। मन म सकल्प और विकल्प रूप से ज्ञान आश्रित है। विपर्यास, निश्चय, स्मृति आदि रूप म ज्ञान बुद्धि का आश्रित है। 'स्वप्नज्ञान' अहकार का आश्रित है और 'निर्विपय ज्ञान' चित्त का आश्रित है। इस प्रकार ज्ञान दशविध है।

कार्यरूप छ प्रकार के ज्ञान मन के धर्म है, आत्मा के नही, जैसा श्रुति कहती है—

काम सकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति
ह्री धी॰ भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति।

---

[1] काड १

ज्ञान स्थिर होता है न कि केवल तीन ही क्षण रहता है। उत्पन्न हुए ज्ञान के उद्दीपक शब्द और विषय हैं। बुद्धि, चेतन आदि इसी ज्ञान के पर्याय हैं। ज्ञान पुन सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक होता हैं। 'सात्त्विक-ज्ञान' यथार्थ ज्ञान है और यही 'प्रमा' कहलाता है। 'राजसिक ज्ञान' राजस-सामग्री से उत्पन्न होता है और नाना प्रकार का होता है। यही व्यवहार का उपयोगी ज्ञान है। अतएव परमार्थ दृष्टि से राजस ज्ञान मे प्रामाण्य नही है। 'तामस ज्ञान' भी अप्रमाण ही है। पामर तथा नास्तिको का ज्ञान तामस हैं। अच्छे लोग इस की निंदा करते हैं। अतएव वह हेय हैं।

'राजस ज्ञान' सविकल्पक ही होता हैं, क्योकि इसी से लोक मे व्यवहार चल सकता है। ज्ञान यद्यपि पहले निर्विकल्पक ही होता है किंतु उस से लौकिक कार्य नही चलता है, और यह सात्विक रूप मे एक ही प्रकार का है। वल्लभ दोनो प्रकार के ज्ञान—निर्विकल्पक और सविकल्पक—स्वीकार करते हैं। पहला तो इंद्रियाश्रित है। है तो यथार्थ मे वह सात्त्विक किंतु राजस मे ही परिगणित होता हैं।

संशय, विपर्यास, निश्चय, स्मृति तथा स्वाप ये पाँच 'सविकल्पक ज्ञान' के भेद हैं।[1] 'सुषुप्ति' भी स्वप्न का ही अवांतर भेद है। आत्मस्फुरण वहा स्वयं हो जाता है।[2] 'चिंता' स्मरण के अतर्गत है। 'प्रत्यभिज्ञा' तो निश्चयज्ञान ही है।

वल्लभ के मत म 'कारण' दो ही प्रकार के हैं—समवायि और निमित्त। समवाय और तादात्म्य एक वस्तु हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द ये ही तीन 'प्रमाण' इन्हो ने माना है।

कारण

आकाश और 'काल' के समान दिक् को भी इन्हो ने स्वीकार किया हैं। इस का ग्रहण साक्षात् नही होता किंतु ग्राह्य-अर्थ के विशेषण रूप से।[3]

इस प्रकार संक्षेप में उक्त चारो प्राचीन वैष्णव-सम्प्रदायो का वर्णन यहा किया गया है। इन म स रामानुजाचार्य तथा वल्लभाचार्य का मत विशेष रूप से आजकल भी प्रचलित है। इन की अपेक्षा अन्य दोनो सम्प्रदाय गौणभूत मालूम होते है। ये सब भक्तिमार्ग के उपासक होते हुए भी अपने-अपने उपास्य देवता के भेद के कारण परस्पर भिन्न मालूम

---

[1] 'भागवत', तृतीयस्कंध [2] 'प्रस्थानरत्नाकर' पृ० ६
[3] वही, पृ० ३७

होते हैं। इन सबो के उपर्युक्त तत्वो का विचार करने से बहुत कुछ समान बातें मिलती है। फिर भी भेद तो स्पष्ट ही है। तत्त्वदृष्टि से भी व्यवहारावस्था में ऐसा भेद रखना ही पडता है। ये भेद न केवल शास्त्रीय बातो ही में देख पडते है, किंतु उन के रहन-सहन तथा आचार और विचारो मे तो और भी स्पष्ट है। पहले इन मतो के अनुयायिया में परस्पर विद्वेष नहीं था। सभी मत को सब कोई आदर-दृष्टि से देखते थे, और अपने मत का भी पालन सुचारु रूप से करते थे। किंतु बाद में दुराग्रह, आवेश, तथा बुद्धि में कलुषता और सकोच इतना अधिक हो गया कि इन म से एक के अनुयायी दूसरे मतवाले के शत्रु बन गए और उन के प्रति निंदा आदि कुत्सित व्यवहार करने मे भी अपने वैष्णवत्व की ही रक्षा समझने लगे। इस से यह स्पष्ट है कि इन लोगो मे पश्चात् भक्ति के उच्च आदर्श का ज्ञान भी नही रहा और मुझे तो यही अनुमान होता है कि ये सभी वैष्णव बहिरग तत्त्वो ही में लिप्त हो गए है, और वैष्णव-सप्रदाय की अतरग बातो की ओर न तो इन का ध्यान है और न ये लोग उसे समझने की चेष्टा ही करते है। इसी कारण कही-कही इन के व्यवहार भी लौकिक दृष्टि स निंदनीय समझे जाते है। इन का आदर्श कितना उच्च था और किस प्रकार इन के दिव्य-दृष्टि वाले आचार्यों ने भक्ति की पराकाष्ठा का स्वय अनुभव कर सासारिको के लिए भी दयावश सप्रदाय को चलाया और योग्य भक्तो को सन्मार्ग दिखाया! किंतु कैसा अध पतन अब है! इस के यथार्थ तत्त्वो से लोग इस प्रकार अनभिज्ञ हो गए है कि भक्ति को 'मुक्तिप्रद' न समझकर 'भुक्तिप्रद' समझते हैं, और 'अन्धा अधेनैव नीयमाना' इस कहावत को प्रत्यह चरितार्थ कर रहे हैं। यही एक मात्र हेतु है कि ज्ञानमार्ग को ही अभी भी लोग निरुपद्रव, कल्याणप्रद तथा मुक्ति देन वाला समझते है और ज्ञानपूर्वक नामधारी इन वैष्णव मतो से दूर रहना अच्छा समझते है।

(समाप्त)

अनारकली

[रचयिता—श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह]

कमनीय अनारकली जो थी राजमहल की दासी।
वह बनी कुमार-हृदय की स्वामिनी प्रेम की प्यासी॥

दिव में दिवांगनाएं भी थीं उसे देख कर लज्जित।
छवि के प्रकाश से उस ने नृप-सदन किया आलोकित॥

सुकुमार कुमार-हृदय की स्वर्गीय प्रेम की प्रतिमा।
ली छीन अनारकली ने नव-कुसुम-कली की सुषमा॥

अपने इस भाग्योदय पर वह फूली नहीं समाई।
पर निठुर नियति ने आकर काटों की सेज बिछाई॥

प्रिय से मिलने को सरिता थी बहती उछल-उछल कर।
पर मिल न सकी सागर से था खड़ा बीच में भूधर॥

कामना-कुसुम तो फूले पर कभी बहार न आई।
प्रिय-प्रेम-वारि-सिंचित भी वह हेम-लता मुरझाई॥

बंदी बन गई अभागी रह सकी न सुख के घर में।
स्वप्नों का स्वर्ण-निकेतन हो गया नष्ट पल भर में॥

युवती की यौवन-सरिता मिल गई दुख-सागर में।
जीवन की मधुर उमंगें हो गईं बंद गागर में॥

दुर्लभ आकाश-सुमन-सा था उसे मिलन प्रियतम का।
पर किया प्रेम से पालन जीवन के प्रेम-नियम का॥

पल-पल प्रियतम की झाँकी देखा करती थी मन में।
बस एक यही सुख पाया उस ने बंदी-जीवन में॥

थे छिपे प्रेम-दुख दोनो उस के भीगे आँचल में।
रहती थी सदा निमज्जित वह निज अथाह दृग-जल में॥

छिप गए मनोरथ-तारे उर-नभ के दुख-बादल में।
केवल कुमार-स्मृति चपला अंकित थी अंतस्तल में॥

दुख-दलित प्राण अबला के थे नहीं निकल भी जाते।
बस प्रेम-पयोनिधि में थे डूबते और उतराते॥

कारागृह से तो छूटी पर गई अकेली बन में।
ले गई साथ स्मृति कोमल केवल कुमार की मन में॥

प्रासाद-वासिनी भावी भारत-भूपति की प्यारी।
दुखिया अनार गिरि-वन में घूमी विपत्ति की मारी॥

थी जहा-जहा वह जाती रँगती थी भूमि विपिन में।
पैरो के छाले आसू थे बहा रहे दुर्दिन में॥

लतिकाओ से वह लिपटी फूलो को व्यथा सुनाई।
पर कहीं अनारकली ने थोडी भी शांति न पाई॥

सरिता के शीतल-जल में दिन भर रह गई समाई।
पर शीतलता न तनिक भी उस के जीवन में आई॥

सपने में भी प्रिय-दर्शन वह कभी नहीं थी पाती।
करने पर भी चेष्टाए उस को थी नींद न आती॥

खाना-पीना सब छोड़ा ईश्वर में ध्यान लगाया।
तो भी सलीम तरुणी से जा सका न हाय भुलाया॥

दे सकी न जिस को जीवन वह बनी न उस की दासी।
पर हँसी-खुशी से तरुणी चढ़ गई प्रेम की फाँसी॥

पी गई गरल का प्याला प्रिय-अधर-सुधा की प्यासी।
छिप गई शीघ्र सन्ध्या की वह करुण अरुण आभा-सी॥

———

तीन कविताएं

[रचयिता—श्रीयुत सुमित्रानन्दन पंत]

(१)

गंगा का प्रभात

गलित ताम्र भव · भृकुटि-मात्र रवि रहा क्षितिज से देख,
गंगा के नभ-नील निकष पर पड़ी स्वर्ण की रेख।
आर-पार फैले जल में घुल, कोमल नव आलोक
कोमलतम बन निखर रहा, लगता जग अखिल अशोक।

नव किरणों ने विश्वप्राण में किया पुलक संचार,
ज्योति-जड़ित बालुका-पुलिन हो उठा सजीव अपार।
सिहर अमर जीवन-कंपन से कँप-कँप अपने आप,
केवल लहराने को लहराता मृदु लहर-कलाप।

सृजन-तत्व की सृजन-शीलता से हो अवश अकाम
निरुद्देश जीवन-धारा बहती जाती अविराम।
देख रहा अनिमेष—हो गया स्थिर, निश्चल सरिता-जल,
बहता हूँ मैं, बहते तट, बहते तरु, क्षितिज, अवनितल।

यह विराट् भूतों का भव, चिर-जीवन से अनुप्राणित,
विविध विरोधी तत्वों के संघर्षण से संचालित।
निज जीवन के हित असंख्य प्राणी हैं इस के आश्रित,
मानव इस का शासक, आतप, अनिल, अन्न, जल शासित।

मानव-जीवन प्रकृति-संचलन में विरोध है निश्चित,
विजित प्रकृति को कर उस ने की विश्व-सभ्यता स्थापित।
देश, काल, स्थिति से मानवता रही सदा ही बाधित,
देश, काल, स्थिति को करगत कर करना है परिचालित।

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो बनना है अब जन-मानव,
सामूहिक मानव को निर्मित करनी है संस्कृति नव।
मानवता के युग-प्रभात में मानव-जीवनधारा
मुक्त अबाध बहे, मानव-जग सुख-स्वर्णिम हो सारा।

(२)

गंगा की साँझ

अभी गिरा रवि ताम्र-कलश-सा गंगा के उस पार—
क्लांत पांथ जिह्वा विलोल जल में रक्ताभ प्रसार।
धूमिल जलदों से धूसर नभ विहग-छदों से बिखरे
धेनु-त्वचा से सिहर रहे जल में रोओं से छितरे।

दूर, क्षितिज में चित्रित-सी उस तरुमाला के ऊपर,
उड़ती काली विहग-पाँति रेखा-सी लहरा सुंदर।
संध्या का ईषत् उज्वल कोमल तम धीरे घिर कर
दृश्यपटी को बना रहा गंभीर, गाढ़ रँग भर-भर।

शांत, स्निग्ध संध्या सलज्ज मुख देख रही जल-तल में
नीलारुण अंगों की आभा छहरी लहरी-दल में।
झलक रहे जल के अंचल से कचु जलद स्वर्णप्रभ,
चूर्ण कुंतलों-सा लहरों पर तिरता घन ऊर्मिल नभ।

उड़ी आ रही हलकी खेवा दो आरोही लेकर,
नीचे ठीक तिर रहा जल में छाया चित्र मनोहर।

मधुर प्राकृतिक सुषमा यह भरती विषाद है मन में,
मानव की सजीव सुंदरता नहीं प्रकृति-दर्शन में।

पूर्ण हुई मानव अंगो में सुंदरता नैसर्गिक,
शत ऊषा-संध्या से निर्मित नारी-प्रतिमा स्वर्गिक।
भिन्न भिन्न बह रही आज नर-नारी जीवनधारा—
युग-युग के संकत कर्दम से रुद्ध—छिन्न सुख सारा।

(३)

कुसुम के प्रति

भाव, वाणी या रूप ?
तुम क्या हो, चिर-मूक सुमन !
किस के प्रतिरूप ?
मौन सुमन !
सुंदरता से अपलक चितवन
छू कोमल मर्मस्थल,
मूक सत्व के भेद सकल
कह देती (खुल दल पर दल),
सहज समझ लेता मन !

विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर निर्भर !
मैं अवाक् हूं तुम्हें देख कर
मौन रूपधर !
रूप नहीं है नश्वर,
सत्ता का वह पूर्ण प्रकृत स्वर
सुंदर है वह . . . . अमर !

की पहुँच तथा भावना की गति के अनुसार उस में एक ऐसी विशेषता पाई जो उन्हें अपूर्व तथा अनिर्वचनीय सी लगी। साधारणत जनता को वही रचनाए अधिक प्रियकर लगती है जिन में या तो लोमहर्षक घटनाओ का वर्णन हो, या स्त्री-पुरुष सबधी अनाचारो की उच्छृखल क्रीडा का लोल-लीला-लास्य नग्नरूप में चित्रित किया गया हो। पर शरत्चद्र की लोकप्रियता की नीव जिन दो प्राथमिक छोटी-छोटी रचनाओ ('रामेर सुमति' तथा 'बिदुर छेले') द्वारा प्रतिष्ठित हुई है उन में ये दोनो बातें लेश-परिमाण में भी वर्तमान नही है। इन दोनो कहानियो मे शरत्चद्र ने नारी-हृदय की अत्यन्त सुकुमार तथा सकरुण मातृ-वेदना को जीवन के नाना आघात-प्रतिघात, तथा सघर्ष-विघर्ष के बीच और नाना प्रति-क्रियाओ के वैपरीत्य तथा वैमनस्य के ऊपर ऐसे अदृश्य तथा अजानित रूप में विजय प्राप्त करते हुए दिखाया है कि पाषाण-प्राण भी इस मायावी कलाकार की लेखनी के मर्मस्पर्श से शत-शत अश्रुधाराओ के रूप मे उच्छ्वसित हो कर फूट न पडे, यह सभव नहीं। केवल इन्ही दो कहानियो म नहीं, इस के बाद लिखी गई 'मेजदिदि,' 'बडदिदि', 'निष्कृति' आदि कहानियो मे भी हम शरत्चद्र की अनुभूति-प्रवणता की वही अत स्पर्शी सहृदयता, वही सूक्ष्मतम सवेदन-शीलता तथा वही विचक्षण मर्मज्ञता पाते है। इन सब कहानियो में शरत्-चद्र ने कठोर वास्तविकता से ताडित जिस कमनीय आदर्श के पावन आलोक की करुण-किरणा का विकीरण किया है उस का जन-समाज मे सहजप्रिय तथा आदरणीय बन जाना कोई साधारण बात नहीं है।

अग्रेजी मे जिसे 'रियलिस्टिक आर्ट' कहते है शरत्चद्र ने उस के महत्व को स्वी-कार किया है। पर उसी को कला का चरम रूप नहीं माना है। जीवन की कठोर वास्त-विकता की अवज्ञा उन्हो ने कभी नहीं की है और स्वाभाविकता के वह सदा कट्टर अनुयायी रहे है, पर "कला केवल कला के लिए है", इस गहन तत्वयुक्त नीति के बहु-प्रचलित विकृत अर्थ का अनुसरण उन्हो ने कभी नहीं किया है। उन्हो ने पूर्वोक्त रचनाओ मे वास्तविकता की नीव पर सहज स्वाभाविक और साथ ही अज्ञात रूप से जिन कोमल-कमनीय तथा स्निग्ध-मधुर आदर्शों की स्थापना की है वे चिर-कल्याणोन्मुख शाश्वत मानव-मन को अदृश्य चुबक-शक्ति से बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते है। शरत्चद्र की पूर्वोल्लिखित कहानियो के नायक-नायिकाओ में आत्म-विरोधी प्रवृत्तियो का द्वद्व अत्यत उत्कट रूप से चलता है और वे अपने मन के उलटे-सीधे चक्रो के जटिल जाल में बडी बुरी तरह जकडे

रहते है। तथापि उन सब की द्वद्वात्मक जटिलता के भीतर तरल स्नेह की एक सहज सरलता परिपूर्ण सामजस्य के साथ विराजमान रहती हैं। उदाहरण के लिए 'रामेर सुमति' के राम में बाहर से अत्यत दुष्ट-प्रकृति और उजड्ड स्वभाव दिखाई देने पर भी उस के अतस्तल मे निष्कलुष स्नेह की ऐसी अत -सलिलधारा छिपी हुई हैं जिसे या तो नारायणी अपनी सहज सहृदयता की अतर्प्रेरणा से देख सकती है या स्वय कहानीकार अपनी मार्मिक अनुभूति से। 'बिदुर छेले' के नायक-नायिकाओ के बीच इन्ही आत्म विरोधी प्रवृत्तियो के पारस्परिक सघर्ष से वैमनस्य की पकिलता मथित होते रहने पर भी उन के अतर्प्रदेश में छिपे हुए पुण्य प्रेम की पावन धारा उस पकिलता को क्षालित कर देती है। 'मेजदीदी' (मँझली बहन) म पितृ-मातृ-हीन मरभुखा लडका केष्टो जब अनाथावस्था मे अपनी सगी बहन के पास जाने पर बहन द्वारा अत्यत कटु शब्दो में विताडित किया जाता है तो बहन की देवरानी का सहृदय स्नेह पा कर, उसे मातृस्थानीया मान कर, 'मँझली दीदी' कह कर पुकारने लगता है। मँझली दीदी इस अनाथ बालक को सच्चे हृदय से प्यार करने पर भी अपने पति, जेठ और जेठानी (केष्टो की सगी बहन) के निरतर विरोध से उस के प्रति अवज्ञा का भाव दिखाने लगती है और केष्टो को अपने यहा आने से मना कर देती है। पर जब देखती है कि उस निरीह बालक के प्रति ससार और समाज का अत्याचार बढता चला जाता है तो वह रह नही सकती और अत म सारे परिवार के प्रति विद्रोह घोषित कर के केष्टो को साथ ले कर अपने मायके चले जाने को तैयार होती हैं। उस का दृढ निश्चय देख कर पति गिडगिडा कर उस से क्षमा-याचना करके दोनो को अपने घर वापस ले जाता है। 'बड दिदि' मे सासारिक व्यवहार से निपट अनभिज्ञ, अन्यमनस्क स्वभाव, छल-कपट-रहित एक ग्रेजुएट जतु का एक युवती विधवा के प्रति विचित्र रहस्यमय स्नेह दिखाया गया है। विधवा माधवी पर्दे की आड म रह कर इस जतु को (जो उस की आठ-नौ साल की बहन को पढाया करता है) एक नादान शिशु की तरह मान कर उस के प्रति स्नेह का वही भाव रखती है जो अपनी छोटी बहन के प्रति। पर एक बार जब वह जतु सामाजिक आचार-विचार के प्रति अपनी निरी अज्ञानता के कारण पर्दे की कुछ परवा न कर भीतर जा कर 'बडी बहन!' कह कर माधवी को पुकारता है तो माधवी सकुचित और त्रस्त हो कर कडे शब्दो में अपनी छोटी बहन से कहती है कि अपने मास्टर को बाहर ले जाये। इस के बाद वह 'जतु' उस घर को छोड कर किस प्रकार कलकत्ते की सडको में भट-

११

कता है और गाडी से दब कर अस्पताल में किस प्रकार 'बडी बहन!' 'बडी बहन!' कह कर विकारग्रस्त अवस्था में कराहता है और माधवी के मन में उस के प्रति कैसी सकरुण और सुकुमार समवेदना उमड पडती है और अत में किस प्रकार अत्यन्त मार्मिक परिस्थिति में दोनो का पुर्नमिलन होता है, इन सब घटनाओं का वर्णन जिस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा सहृदय सवेदन के साथ लेखक ने किया है वह वर्णनातीत है। 'वैकुठेर उइल' में दो भाइयो के विचित्र मनोभावो का चित्रण करते हुए दिखाया गया है कि बडे भाई के बाहर से अत्यत रुक्ष-प्रकृति, कठोर-स्वभाव तथा लठ मालूम पडने पर भी भीतर ही भीतर विह्वल भावोद्वेग से उस का हृदय सदा तरगित रहता है, बाहर से वह अत्यत स्वार्थी, और अपने छोटे भाई के प्रति अत्यत अत्याचार-परायण मालूम पडने पर भी जी-जान से उसे चाहता है और उस के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए तत्पर रहता है। 'निष्कृति' में दिखाया गया है कि एक सम्मिलित परिवार मे सब भाई कमाते है, पर सब से छोटा भाई निकम्मा है। मँझले भाई के सिखाने से ज्येष्ठ भ्राता इस निकम्मे भाई को सब अधिकारो से वचित करने के उद्देश्य से घर जाता है, पर अपनी सहज अत करणा तथा स्वाभाविक स्नेहभाव के कारण अपनी अज्ञात चेतना की प्रेरणा से उस को सब से अधिक उपकृत कर आता है। इसी ज्यष्ठ भ्राता की पत्नी, निकम्मे भाई की पत्नी को सब समय निरस्कृत करती रहती है पर उस का अनर-चेतन उस पर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहता है।

मै ने शरत्चद्र से एक बार चेखोव की कला का विश्लेपण करते हुए कहा था कि ऐसा सच्चा कलाकार मै ने अपने जीवन में कोई नहीं पाया। शरत्चद्र ने मेरी बात का पूर्ण समर्थन किया, पर साथ ही कहा—"भारतीय सभ्यता का आदर्श कुछ दूसरा ही है। निरर्थक सत्य को हमारे यहा कभी विशेष महत्व नहीं दिया गया। हमारे यहा कल्याण और मगल की भावना को सर्वदा उच्च स्थान दिया गया है, इस लिए जिस सत्य की पृष्ठभूमि में यह भावना न हो उस के प्रति मेरे मन मे कभी आदर का भाव नहीं रहा है। मै ने कला को कभी क्रीडा-कौतुक के रूप मे नही देखा है। मै उसे मनुष्य के जीवन की चरम साधना के रूप में मानता आया हू।"

पूर्व-र्वाणत रचनाओ द्वारा शरत्चद्र साहित्य-क्षेत्र मे यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे, सदेह नहीं। पर जिन रचनाओ द्वारा उन का जयघोप दुन्दुभि-निनाद के साथ देश के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रतिध्वनित हो उठा वे बाद मे प्रकाशित हुई थीं। वे

रचनाएँ हैं—'देवदास', 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत'। इन रचनाओं में शरत्चंद्र ने अपनी प्रदीप्त प्रतिभा के ज्वलंत आलोक से सामाजिक विधि-निषेधों से विजडित वैयक्तिक आत्मा के भीतर स्वतंत्रता तथा विद्रोह की वह आग भड़का दी जिस की लपटें दावाग्नि की तरह थोड़े ही समय में सर्वत्र फैल गईं। समाज के कुटिल चक्र के प्रति असंतोष तथा आत्म-स्वातंत्र्य की आकांक्षा का अस्पष्ट भाव समाज के प्रत्येक वैयक्तिक प्राणी के भीतर वर्तमान था, शरत्चंद्र ने अपनी उद्दाम आवेगमयी, अप्रतिहत गतिमयी, मर्म-प्रवेशिनी प्राणशक्ति की विस्फूर्जना से उस भाव को वैप्लविक रूप से उद्वेलित कर दिया। समाज के बद्ध वातावरण के विषमय आक्रोश द्वारा पीडित प्रत्येक आत्मा उन्मुक्त विचार-धारा के इस परिप्लावित तरंग-प्रवाह में बह कर अपने को निर्मुक्त और निर्बंध समझ कर तरंगायमान हो उठी।

'देवदास' ने जन-साधारण में जितना आदर पाया है, कला-पारखियों की विवेचना में भी वह उसी परिमाण में खरा उतरा है। 'नाविक के तीरों' की तरह गंभीर घाव करने वाली इस विशिष्ट रचना का जो स्थायी प्रभाव पाठकों के मन पर पड़ता है, उस के अंतर्गत कारण का अन्वेषण करने पर जब हम उस के नायक और नायिका के मूल चरित्रों का विश्लेषण करते हैं तो पार्वती के चरित्र के गंभीर जलधि के ऊपर देवदास का चरित्र एक वेगशील तरंग की तरह द्रुतगति से प्रवाहमान मालूम पड़ता है। किसी दार्शनिक ने कहा है कि नारी-प्रकृति सदा केंद्रानुग (सेंट्रीपेटल) चिर-स्थिर तथा चिर-संरक्षणशील (कन्सरवेटिव) होती है और पुरुष-प्रकृति सदा केंद्रातिग (सेंट्रीफ्यूगल) चिर-चंचल तथा चिर-परिवर्तनशील होती है। शरत्चंद्र की तीनों श्रेष्ठ रचनाओं ('देवदास', 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत') के नायक-नायिकाओं के चरित्र-चित्रण में हम नारी-प्रकृति तथा पुरुष-प्रकृति की इन दोनों विशेषताओं को चरम रूप में प्रस्फुटित पाते हैं। यदि शरत्चंद्र के स्त्री-चरित्रों में वह अतलव्यापी गांभीर्य, वह चिर-संरक्षणशील स्थैर्य, वह अनंत-कालीन मूक, मौन, अटल, धैर्य न होता जैसा कि हम उन में पाते हैं, तो उन के सब पुरुष-चरित्र हवाई बुद्बुदों की तरह अथवा वात-विताडित मेघ-खंडों की तरह छिन्नाधार हो कर शून्य में विलीन होते हुए दिखाई देते। देवदास एक पतित, दुर्बल और क्षीण इच्छाशक्ति-संपन्न सहृदय प्राणी है, शरत् के प्रायः सभी प्रधान-चरित्रों के संबंध में यही बात कही जा सकती है। इस में संदेह नहीं कि उस की आत्मा के अनेक बाह्य स्तरों को लंघित कर के उस के अंतरतम प्रदेश में यदि कोई प्रवेश

कर सके तो वहाँ अवश्य ही महत् प्रेम का एक अव्यक्त बीज पाया जायगा, और यही उस के भ्रष्ट चरित्र का उन्नायक तत्त्व है, जिसे अग्रेजी में 'रिडीमिंग फीचर' कहते हैं। इस से अधिक उस में हम कुछ नही पाते। पर पार्वती के सबध में यह बात नही कही जा सकती। उस के चरित्र-विश्लेषण से ऐसा मालूम होने लगता है जैसे वह जन्म से ही जीवन की गहरी अनुभूतियो से चिर-परिचित हो कर आई हो और अपने अतल-व्यापी प्रेम की सुदृढ शक्ति के बल से अपने सारे जीवन में मृत्यु के साथ एक सहेली की तरह क्रीडा करती चली गई हो। उस का स्वभाव आवेग-प्रवण और भाव-विभोर अवश्य है, पर वह आवेग उस की आत्मा के निगूढ स्थैर्य और अनत धैर्य द्वारा सुसयत है। यही कारण है कि देवदास पार्वती के महत् प्रेम की मर्मव्यथा का बृहत् भार न सह सकने के कारण उच्छृखल हो कर विलीन हो गया, और पार्वती देवदास के प्रेम की स्वर्गीय पीडा को वज्रमणि की तरह अपने अतस्तल में धारण करके अटल धैर्य के साथ अपने वृद्ध स्वामी तथा सौतेले लडके-लडकियो की सेवा द्वारा अपना सासारिक कर्तव्य पूर्ण-रूप से निबाहती चली गई।

पहले ही कहा जा चुका है कि शरत् के पुरुष-चरित्र अत्यत दुर्बल इच्छाशक्ति-सपन्न उच्छृखल प्राणी है, जो गेटे के शब्दो में ऐसे जीव है "जिन के हृदयो में भावो का तूफान मचा रहता है, पर जिन की अस्थियो में सारतत्त्व नाम को भी नही पाया जाता।" शरत् के 'चरित्र-हीन' का नायक सतीश भी देवदास की ही तरह इसी प्रकार का दुर्बल प्राणी है। गेटे के 'वेर्टेर' की आलोचना करते हुए फ्रेंच आलोचक गिज़ो ने कहा था कि "वर्तमान युग के पुरुष की आकाक्षा अत्यत प्रबल होती है, पर उस की इच्छाशक्ति अत्यत दुर्बल होती है।" देवदास और सतीश के सबध में यह बात पूरी तरह से लागू है। सतीश के जीवन के असतोष का भी यही कारण है कि वह अपने भीतर भावो का तूफान मचा हुआ पाता है और उस के भीतर हृदयहीन समाज के मृत्यु-कठिन बधनो को न मान कर चलने की एक महत् आकाक्षा भी वर्तमान रहती है, इसी कारण वह कुलत्यागिनी तथापि सदाचरणशीला सावित्री को आतरिक प्रेम से वरण करने के लिए अधीर हो उठता है। पर सावित्री जानती है कि सतीश का उस के प्रति सहृदय प्रेम होने पर भी उस में दैहिक आकाक्षा के भाव की प्रधानता है, इस लिए यद्यपि वह उसे अपने प्राणो से भी अधिक चाहती है, तथापि उस के प्रेम को बडे ढग से तिरस्कृत करती चली जाती है। फल यह होता है कि सतीश सावित्री की अवज्ञा का भार न सह सकने के कारण शराबखोरी में अधिकाधिक डूबता चला

जाता है। सावित्री नाना घटना-चक्रो द्वारा विताडित होने पर भी सतीश को नही भूलती और उस की परम-मगल-कामना के भाव मे प्रेरित हो कर अत मे उस के दुर्बल मन मे यह सजल भाव भरने में समर्थ होती है कि त्याग के भाव में ही उन दोनो के प्रेम की महत्ता है, न कि वैवाहिक तथा शारीरिक मिलन में। इस प्रकार 'चरित्रहीन' मे अनत प्रेमपूर्ण तथा चिर-विरागिनी सावित्री के महत् चरित्र के अतर्गत महान् त्याग, असीम करुणा तथा अपरिमित आत्म-बल के भाव अत्यत सुदर रूप से अकित पाए जाते है।

शरत्चद्र पर सब से बडा कलक यह लगाया जाता है कि उन्हो ने अपनी रचनाओ मे असती नारियो तथा वेश्याओ के चरित्र की महत्ता प्रदर्शित की है। शरत् की सब से बडी विशेषता इस बात पर रही है कि किसी भी स्त्री अथवा पुरुष के व्यक्तित्व का विचार उन्हो ने उस के बाह्य आचरण से नही किया है। सब बाह्याचारो के जटिल जाल के भीतर मनुष्य के अतरतम प्रदेश मे सहृदय वेदना का जो अज्ञात स्रोत बहता है उसे उन्मुक्त करके शरत् ने पीडित मानवता के आत्मगौरव की घोषणा की है। पाप को उन्हो ने कभी प्रश्रय नहीं दिया है, पर पापी के प्रति उन के हृदय में सदा करुणा का अजस्र स्रोत बहता रहा है।

मैं ने एक बार शरत्चद्र से प्रश्न किया था—"भारतीय नारी के सतीधर्म के आदर्श के सबध में आप के क्या विचार है?"

उन्हो ने जो उत्तर दिया था उस का भाव इस प्रकार है—"मैं मानव-धर्म को सती-धर्म के बहुत ऊपर स्थान देता हूँ। सतीत्व और नारीत्व, ये दोनो आदर्श समान नहीं है। नारी-हृदय की निखिल-कल्याणकारी करुणा, उस की मातृवेदना उस के सतीत्व से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। बहुत सी स्त्रिया एसी देखी गई है जिन का किसी दूसरे पुरुष से कभी किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक सबध नही रहा है, तथापि उन के स्वभाव मे अत्यत नीचता, घोर सकीर्णता, परद्रोह तथा चौरवृत्ति पाई गई है। इस के विपरीत ऐसी पतिताओ से मेरा परिचय रहा है जिन के भीतर मैं ने मातृवेदना और नारी-हृदय की यथार्थ करुणा का अथाह सागर उमडता हुआ पाया है।"

मैं ने फिर प्रश्न किया—"यदि यही बात है तो आप ने 'श्रीकात' मे अन्नदा दीदी के सतीत्व की महिमा ऐसे जोरदार शब्दो में क्यो घोषित की है कि उस की प्रदीप्त ज्योति के आगे आप के अन्यान्य नारी-चरित्र म्लान पड गए है?"

इस बात पर शरत्चद्र मद-मद मुसकराए और बोले—"तुम्हारी यह बात मैं

मानता हूँ। अनदा दीदी के प्रति वास्तव मे मेरी भी आतरिक श्रद्धा है। मेरे जन्मगत सस्कार आखिर भारतीय ही है। फिर भी तुम्हें मैं यह बात बता देना चाहता हूँ कि उस के एकनिष्ठ पातिव्रत धर्म ने मेरी श्रद्धा उतनी नही उभाडी है जितनी उस की प्रेम-प्लावित आत्मा के मुक्त प्रवाह ने।"

शरत् की रचनाओ में वास्तविक जीवन के सबध मे उन की गहन अनुभूति के प्रमाण घनीभूत हो उठे हैं। स्पष्ट ही पता चलता है कि मानव-समाज, तथा मानव-स्वभाव के नीच, सकीर्ण जघन्य तथा वीभत्स रूप से वह भली-भाँति परिचित थे। तथापि उन्हो ने इस पहलू को अधिक महत्व न दे कर सहस्रो बुराइयो के भीतर दबी हुई महत् प्रवृत्तियो को मानव मन की गहनतम गुहा-कदराओ से बाहर निकाल कर दलित मानवता को अमर महिमा का गौरव मुकुट पहनाया है।

बाद मलिक मुहम्मद जायसी का समय आता है, जिन्हो ने प्रसिद्ध 'पद्मावत' को सन् ९४७ हि० (स० १५९६-७ वि०) में आरम्भ किया था। उस समय "शेरशाह दिल्ली सुलतानू। चारिहु ओर तपै जस भानू" था। सन् का दूसरा पाठ ९२७ हि० भी मिलता है पर शेरशाह केवल सन् १५४०-५ (स० १५९७-१६०२ वि०) तक दिल्ली का बादशाह था, इस लिए यह पाठ ठीक नहीं है। जायसी ने 'पद्मावत'[१] मे कुछ प्रेमियो का हाल उस समय लिखा है, जब शिव-मदिर में रत्नसेन के मूर्च्छित हो जाने पर पद्मिनी आ कर लौट गई और रत्नसेन के जागने पर सूए द्वारा सदेश भेजने पर उस ने एक पत्र उत्तर मे लिखा था। वह लिखती है कि —

हौं जो गई सिव-मडप भोरी। तहँवाँ कस न गाँठि लै जोरी।
. . . .
अब जौं सूर होइ चढै अकासा। जौं जिउ देइ त आवै पासा।।
बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी कित आहि अकेला।।
विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा।।
मधूपाछ मुग्धावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी।।
राजकुँवर कचन पुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भएऊ।।
साध कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू।।
प्रेमावति कहँ सुरसर साधा। ऊषा लगि अनिरुध बर बाँधा।।
हौं रानी पदमावती, सात सरग पर बास।
हाथ चढौं मैं तेहि के, प्रथम करै अपनास।।
. . . .
ऐहुबेधि अरजुन होइ, जीतु दुरपदी ब्याहु।

पद्मावती के पत्र में इन सब प्रेमियो का उल्लेख इसी कारण हुआ है कि इन सब ने बडे कष्ट उठा कर तथा शौर्य और वीरता दिखला कर अपनी प्रेयसियो को प्राप्त किया था और उस ने रत्नसेन को उत्साहित करने के लिए ही यह सब लिखा था। आचार्यवर पडित

[१] काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'जायसी-ग्रथावली', प्रथम सस्करण, पृ० १०७-८

रामचद्र शुक्ल लिखते है[1] कि "इन पद्यो में जायसी के पहले के चार काव्यो का उल्लेख है— 'मुग्धावती', 'मृगावती,' 'मधुमालती' और 'प्रेमावती'। इन में से 'मृगावती' और 'मधुमालती' का पता चल गया है, शेष दो अभी नही मिले है। जिस क्रम से ये नाम आए है वह यदि रचनाकाल के क्रम के अनुसार माना जाय तो 'मधुमालती' की रचना कुतबन की 'मृगावती' के पीछे की ठहरती है"। पर आप ने उसी वजन पर 'सपनावती' पर कुछ राय नही दी है। 'जायसी-ग्रथावली' का 'सुरसर' इतिहास में 'सुरपुर' हो गया है, इसी से स्यात् ऐसा हो गया है। जायसी ने उक्त सब ग्रथो को देखा था या उन सब के विषय में निश्चयपूर्वक सुना था, ऐसा कहना कहा तक ठीक माना जाय यह नही कहा जा सकता, पर यह अवश्य निश्चय है कि वह इन आख्यानो को जानते थे। वे काव्य-रूप में जायसी के पहले या उन के समय मौजूद थे, इस का निश्चय केवल उक्त उद्धरण से नही हो सकता। जायसी के पूर्ववर्ती कवि कुतबन की 'मृगावती' का उल्लेख हो चुका है। 'मधुमालती' की एक अपूर्ण प्रति फारसी लिपि म मिली है, अब उसी पर विचार किया जायगा।

'मधुमालती' की प्राप्त प्रति का आरभ इस प्रकार है—

यह खोनो कुल नागिन कारो। त्रिभुवन मोहिनि वृद्ध कुँआरो।।
प्रथमहि जन्म जहाँ लहि आई। ते सब मोह भरी की खाई।।
यह कुल बारी बहुतन्ह चाही। बरबर किए न काहूँ व्याही।।
इन पापिन ससार भुरावा। लोभ-बकुची लाभ न पावा।।
अस चचल जन चाहै कोई। लाभ मोल स्यो जाव न कोई।।

कवि ने पाँच-पाँच चौपाई पर एक-एक दोहे दिए है, और इस प्रकार तीन दोहो तक माया के विषय में लिख कर कथा आरभ कर देते है।

कथा एक चित · ··। सुनहु कान दै कहौं बखानो।।
अमो रसिक रस कहे जो कोई। गुन औ दोस विचारहि सोई।।

इस प्रति का अत यो है—

कैसहि पलक ना लागहि, सहिर सिखान सरीर।
बिन जिव परा धरनि महँ लोटै, आन न जा कछु पीर।।

[1] नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ० १०१

सुनतहि गइ मधुमालति धाई। बीर बीर कै रोवत आई॥
सिर उँचाय कै किय तस कोरे। बिधना स्यो बिनवै कर जोरे॥
बहु बिलाप कै रोवै रानी। पीवै वारि वारि सिर पानी॥

इस काव्य की कहानी यह है कि कनेसर के राजा सूरजभान तथा कमला के पुत्र मनोहर को कुछ अप्सराए सोते हुए उठा कर महारस नगर के राजा विक्रमराय तथा रूप-मजरी की पुत्री मधुमालती की चित्रसारी मे ले जा कर उस के पास सुला देती है। जागने पर दोनो में मिलाप होता है और पुन सो जाने पर वे उसे उस के घर पहुँचा देती है। दोनो प्रेम-व्यथा पाते है। मनोहर खोज मे निकलता है। जहाज के टूटने से वह एक द्वीप मे जा लगता है और चित्तबिसरामपुर के राजा चित्रसेन तथा मधुरा की पुत्री प्रेमा का, उस राक्षस को, जो उसे वहा उठा ले गया था, मार कर उद्धार करता है। उसी के साथ वह उस के नगर मे आता है और जब प्रेमा का पिता मनोहर से उस का विवाह करना चाहता है तब वह अस्वीकार कर देती है। यही मधुमालती अपनी माता के साथ आती है और मनोहर से मिलन होता है। मधुमालती की माता इस मिलाप से क्रुद्ध हो मत्रबल से पुत्री को पक्षी बना देती है,जो उडते हुए पीपानेर मानगढ के राजकुमार ताराचद द्वारा पकडी जाती है। मधु-मालती से कुलवृत्त जान कर वह उसे ले कर महारस नगर आता है। वह पुन उसी प्रकार अपना रूप पाती है। ताराचद मधुमालती से अपने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तब योगी मनोहर बुलाया जाता है और उस से विवाह होता है। एक दिन प्रेमा को झूलते हुए देख कर ताराचद बेसुध हो जाता है। यहा तक पहुँच कर प्रति खडित हो जाती है पर कथा-प्रवाह से ज्ञात होता है कि अत मे दोनो का विवाह हो गया होगा।

इस प्रति के खडित होने तथा पुष्पिका के अभाव में इस के रचयिता तथा रचना-काल का पता नही चलता। केवल बीच में एक जगह एक दोहे मे रचयिता का नाम आया है—

बाँकी अधर सबहि को, अकुलानी बर नारि।
आगे मधुकर खेलहीं, 'मझन' कहै बिचारि॥

इस कवि की कोई अन्य रचना भी नही मिलती और न इस रचना ही से कोई सहायता मिलती है कि इस का रचना-काल या कवि का कुछ पता लगे। केवल जायसी

के उक्त उद्धरण के निर्बल सूत्र पर उसे कुतबन का परवर्ती तथा जायसी का पूर्ववर्ती मान लेने का उचटता-सा प्रयास मात्र किया गया है।

जौनपुर-निवासी जैन कवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित स्वरचित 'अर्द्ध-कथा' मे स० १६६८ तक का अपना जीवनवृत्त किया है। इस का जन्म स० १६४३ में हुआ था। उक्त पुस्तक के पृ० ३० पर वह लिखता है कि—

तब घर में बैठे रहे, नाहिन हाट बजार।
मधुमालति मृगावती, पोथी दोय उचार॥

यह घटना स० १६६० के लगभग की है, जब वह व्यापार मे घाटा उठा कर घर बैठ रहे थे। इस उद्धरण से 'मधुमालती' तथा 'मृगावती' नामक दो पुस्तको का उस समय तक कवि-समाज में प्रचार हो जाना निश्चित हो जाता है तथा वे उस के पहले की रचनाए थी, यह भी निश्चयपूर्वक माना जा सकता है।[१]

कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हाल मे सख्या ७४५ पर खानखाना के पुत्र दाराब खा का एक चित्र प्रदर्शित है, जिस के नीचे नागरी लिपि में एक कवित्त दिया हुआ है और दोनो ओर के किनारो पर फारसी मे कुछ शेर लिखे हुए हैं। कवित्त इस प्रकार है—

दर्प दरबार आयो औचक ही हरबर
अबर अनोक बर बरबर कर कैं।
तरपि तुरकमान साहसी दराब खान
कीनो कतलान घमसान उप्र परि कैं॥
'मझन' सुकवि कहै यहै चाह पाई जहा
जीत को नगारो बज्यौ बीतत समर कैं।
जौं लौं हिमाचल तौ लौं डमरु बजावैं सभु
तौलौं डाक चौको डाकि मान्यौ हर हर कैं॥

इस कवित्त में सुकवि 'मझन अपने आश्रयदाता तुर्कमान दाराब खा के अबर की

---

[१] 'हिंदुस्तानी', सन् १९३५, पृ० ३४५–७३

सेना पर विजय पाने का वर्णन करता है। सम्राट् अकबर का अभिभावक बैराम खा तुर्कमान था। उसी के पुत्र नवाब अब्दुर्रहीम खा खानखाना का द्वितीय पुत्र दाराब खा था। जहाँगीर के राज्यकाल मे शाहजहा के दक्षिण जाने पर जब मलिक अबर ने सधि कर ली, तब दाराब खा बरार तथा अहमदनगर का सूबेदार नियत हुआ था। सन् १६२० ई० में अबर ने सधि तोड कर चढाई की तब दाराब खा ने उसे कई युद्धो मे परास्त किया था और सन् १६२१ ई० मे शाहजहा के द्वितीय बार दक्षिण जाने पर पुन सधि हुई थी। इस के अनतर शाहजहा ने विद्रोह किया और जब वह बगाल पहुँचा तब दाराब खा को वहा का प्रांताध्यक्ष नियत किया। शाहजहा के पर्वेज तथा महाबत खा से परास्त हो कर लौट आने पर सन् १६२५ ई० में दाराब खा जहागीर की आज्ञा से विद्रोह पक्ष लेने के कारण मारा गया।

इस कवित्त से 'मझन' के एक आश्रयदाता दाराब खा का पता लगता है और यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सन् १६२१ ई० (स० १६७८ वि०) में जीवित थे। यदि यह इस समय वृद्ध भी माने जायँ तब भी इन का रचना-काल विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का पूर्वांश हो सकता है। 'मझन' हिंदू थे अत उन्हो ने मुसलमानी प्रथानुसार अपने काव्य के आरभ मे अपने समय के सम्राट् का उल्लेख नही किया है और न ग्रथ निर्माण का समय दिया है। 'मधुमालती' के मगलाचरण से यह निर्गुण निराकार के मानने वाले ज्ञात होते हैं। इस प्रकार 'मधुमालती' का रचनाकाल स० १६५० वि० के लगभग आता है और इन्हे जायसी का पूववर्त्ती मानना भ्रामक है और उस के लिए कोई दृढ आधार भी नही है। यह सवत् मानने मे बनारसी दास का 'मधुमालती' का उल्लेख पोषक ही होता है, अत यही रचनाकाल ठीक जान पडता है। अब तक किसी अन्य 'मझन' का पता भी नहीं चला है, इस लिए उक्त निष्कर्ष ही समीचीन है।

स्फुट प्रसंग

हिंदुस्तानी

[लेखक—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फिल्०, (आक्सन)]

'हिंदुस्तानी' शब्द का व्यवहार उस भाषा के लिए जो हिंदुस्तान के रहने वाले मध्य-काल में बोलते थे और जिस के द्वारा आपस में विचारों का परिवर्तन करते थे, कब से आरंभ हुआ, अभी तक निश्चित ढंग से मालूम नहीं। आज कल कुछ लोगों का ख़याल है कि 'हिंदुस्तानी' 'उर्दू' का दूसरा नाम है, लेकिन यह ठीक नहीं जान पड़ता। उर्दू और हिंदी दोनों ही के अर्थ में 'हिंदुस्तानी' व्यवहार में आता था। 'हिंदुस्तानी' से उस भाषा का तात्पर्य था जो अरबी और फ़ारसी के अतिरिक्त व्यवहार में आती थी और जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों समझते थे।

इस प्रश्न पर यूरोपीयों के पत्र-व्यवहार कुछ प्रकाश डालते हैं। उन में सब से पहले पुर्तगीज़ हिंदुस्तान में आए और उन्हों ने पश्चिमी तट पर कोठियां बनाईं तथा भूमि पर अधिकार प्राप्त किया। गोआ उन का केंद्र था, जहां पुर्तगीज़ गवर्नर रहता था। हुकूमत के क्रम के साथ धार्मिक और प्रचार-संबंधी कार्यवाही भी आरंभ हुई और रोमन कैथलिक पादरी और 'सोसाइटी अव जीसस' के सदस्य भी आने लगे। सोलहवीं सदी में अकबर ने सत्य की खोज में भिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को निमंत्रण दिया और उन के दरबार में ईसाई पादरी और प्रचारक गोआ से आ कर उपस्थित हुए। उन की चिट्ठियां और लेख पुर्तगाल के पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं। हिंदुस्तान के इतिहास के संबंध की उन में बहुत सी आवश्यक बातें ज्ञात होती हैं। अतएव हिंदुस्तानी भाषा की चर्चा अक्सर पत्रों में की गई है। इन के अतिरिक्त यूरोप के देशों से हिंदुस्तान में यात्री, व्यापारी, पर्यटक आदि इसी समय में आने लगे थे और उन्हों ने भी यहां की बातों की चर्चा की है।

उन के वर्णनों से जो उद्धरण नीचे दिए जाते हैं वह मनोरंजन से शून्य नहीं हैं।

सन् १५८२ ई० में पादरी एक्वा वीवा ने एक पत्र पादरी रुई विन्सेंट के नाम भेजा था। रुई विन्सेंट गोआ में रहता था, और उस सूबे का प्रधान (प्राविंशल) था। इस पत्र में एक्वा वीवा ने यह प्रस्ताव किया कि गोआ में एक मदरसा स्थापित होना चाहिए जिस में मुसलमानों के लिए फारसी और अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए हिंदुस्तानी की शिक्षा दी जाय। स्पष्ट है कि 'हिंदुस्तानी' से तात्पर्य उस भाषा से है जो हिंदू बोलते थे। एक्वा वीवा के विषय में यह भी वर्णन है कि जब वह अपने दुभाषिए डोमिंगो पीरीज़ का एक हिंदुस्तानी औरत के साथ निकाह पढ़ा रहा था तो उसे फारसी भाषा का व्यवहार करना पड़ा और अकबर बादशाह जो वहां मौजूद था फारसी के वाक्यों का 'हिंदुस्तानी' में अनुवाद करता जाता था।

सन् १५९८ ई० में जेरोम ज़ेवियर ने लाहौर से एक पत्र 'सोसाइटी अव् जीसस' के प्रधान (जनरल) के नाम भेजा जिस में यह वाक्य मिलता है—"कुछ नौजवानों ने फारसी भाषा में जिस में कहीं-कहीं हिंदुस्तानी कहावतें खपाई गई हैं एक प्रबंध प्रभु ईसा के जन्म के संबंध में तैयार किया है।"

सन् १६०४ ई० में इसी जेरोम ने आगरे से एक पत्र में पादरी कोर्सी के बारे में लिखा कि— 'उस ने फारसी भाषा सीख ली है और हिंदुस्तानी का सीखना आरंभ कर दिया है जो इस देश की भाषा है। उस की ज्ञान-पिपासा और योग्यता ऐसी है कि वह शीघ्र ही अरबी पर भी अधिकार प्राप्त कर लेगा।"

अकबर की मृत्यु के कुछ ही काल बाद पादरी ऐन्टनी बॉटेलहो जो सूबे का प्रधान था, बीजापुर के आदिलशाही सुल्तान के साथ अपनी बातचीत का वर्णन लिखता है और सुल्तान का यह प्रश्न उसी की भाषा में अंकित करता है—"सच है कि बड़ा बादशाह अकबर फिरस्ता मुआ कि ना?"

सन् १६१५ ई० के १० वीं अप्रैल के पत्र में दे कास्ट्रो लिखता है कि आगरे के पादरी ईसाइयों से हिंदुस्तानी भाषा में पापों की स्वीकृति कराते हैं।

टेरी ने सन् १६१६ ई० की घटनाओं की चर्चा करते हुए लिखा है—"टॉम कोरयाट ने इस के बाद हिंदुस्तानी पर अर्थात् जनता की भाषा पर बड़ा अधिकार प्राप्त कर लिया। एक स्त्री जो राजदूत के यहां धोबिन (लाँड्रेस) थी इतनी स्वतंत्र और जीभ की पैनी थी कि सवेरे से शाम तक लोगों को झिड़कती, फटकारती और बनाती रहती थी।

एक दिन कोरयाट न उस की भाषा में उसे आड हाथो लिया और आठ बज तक उस की एसी खबर ली कि बचारी चुप हो गइ और फिर एक शब्द मुंह से न निकाल सकी। टरी इस भाषा के विषय म यह भी सूचना देता है कि यह बाए से दाहिन तरफ लिखी जाती थी।

सन १६३२ ई० म यह वाक्य मिलता है— पादरी साइमन दे फिग्यारेडो हिंदुस्तानी भाषा जानता ह। यह वाक्य पादरी बसे की उस सूची से लिया गया है जो उस न मलाबार सूब क पादरिया की पुस्तको से तैयार की है।

सन १६५० ई० म पान्री कसी सूचित करता है कि उस न कठिन हिंदुस्तानी भाषा को सीखा है।

सन १६७३ ई० म फ्रायर लिखता है कि— दरबार की भाषा फारसी है और जनाना म जो भाषा प्रचलित है वह हिंदुस्तानी है।

सन १६७७ ई० म एक पत्र इगलिस्तान से कपनी के डायरेक्टरो न फोर्ट सट जाज भजा था। उस म यह विज्ञप्ति अकित है— जो व्यक्ति हिंदुओ (जेंन्ट) की भाषा अथात हिंदुस्तानी म योग्यता दिखाएगा उसे २० पाउड पुरस्कार दिया जायगा।

हेजज अपनी दिनचर्या म ६ माच सन १६८५ की तिथि म लिखता है— 'मन एक पुर्तगीज मल्लाह क साथ जो हिंदुस्तानी बोलता था अर्थात वह भाषा जो इन टापुओ की बोली है अभ्यास किया।

वालेंटीन सन १६६७ ई० म हिंदुस्तानी भाषा (हिंदोएस्तान्शी ताल) की चर्चा करता है और लिखता है कि हब्श (अबीसीनिया) का राजदूत इस भाषा म बातचीत करता था और टिव्यूआ के गवनर का मत्री उस का मतलब समझाता था।

यही वालेन्टीन सन १७२६ ई० में लिखता है कि— यहा की भाषा हिंदुस्तानी अर्थात मूर है यद्यपि जो अरबी फारसी से अभिन ह वह महामूख समझ जाते ह।

हैमिल्टन सन १७२७ ई० की घटनाओ के बारे म बयान करता है— यह ईरानी और म अपन सबध का बाला म हिंदुस्तानी भाषा बोल रह थे। यह मुगल के विस्तृत राज्य की प्रचलित भाषा ह।

गासा द तासी न आतमचरित म बजामिन शुल्ज के हिंदुस्तानी व्याकरण (ग्राम टिका हिंदोस्तानिका) का चचा का है जो सन १७४५ इ० म तयार हुआ था।

आम जो अगारहवा सदी क ब्रिटिश युद्धा और विजया का इतिहासकार है सन्

१८६३ ई० में लिखता है—"पाडीचेरी के दो कौंसिली कैंप में गए। उन में से एक अच्छी तरह हिंदुस्तानी और फारसी जानता है, क्यो कि मुसल्मान सुल्तानो के दरबारो में यही दो भाषाए व्यवहार में आती है।"

१७७८ ई० में इटली की राजधानी रोम मे हिंदुस्तानी व्याकरण (ग्रामेटिका इडोस्ताना) के प्रकाशित होने का हाल मिलता है।

ज़ाकमू के पत्रो में जो सन् १८३० ई० के लिखे हुए है, यह लेख मिलता है—"यह जनता की बोली हिंदुस्तानी जो यूरोप जाने पर मेरे किसी काम मे न आएगी कठिन है।"

सर चार्ल्स नेपियर १२ फरवरी सन् १८४४ ई० में कराची से लिखते है—"खेद है कि गवर्नर न हिंदुस्तानी न फारसी न मरहटी और न किसी और पूर्वी भाषा से परिचित है, इस लिए वह कलेक्टरो, उन के नायबो, उन अफसरो से जो फौजी अदालतों की कारवाइयो को लिखते है और अन्य फौजी अमलो से अनुरोध करता है कि वह अपने पत्र अंग्रेजी भाषा में इस तरह लिखे कि उन में अजनबी भाषाओ के शब्द जहा तक सभव हो कम हो बजाय इस के कि वह अपने अभ्यास के अनुसार उस भाषा का व्यवहार करे जो इस तरह की हिंदुस्तानी है जिस मे कहीं-कहीं अंग्रेज़ी शब्द भी आ गए है।"

('जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बगाल' सन् १८६६, हाब्सन जाब्सन से उद्धृत।)

———

हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा साहित्य-सम्मेलन

हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा वार्षिक साहित्य-सम्मेलन शनिवार १९ तथा रविवार २० मार्च, १९३८ को विजयानगरम् हाल, म्योर कालिज भवन, इलाहाबाद में हुआ। नगर की विषम साम्प्रदायिक परिस्थिति के कारण सम्मेलन में भाग लेने वाले स्थानीय तथा बाहरी सज्जनों की संख्या पर प्रभाव पड़ा, फिर भी हाल एकेडेमी के सदस्यों, संस्थाओं के प्रतिनिधियों और सम्मानित दर्शकों से भरा हुआ था।

उपस्थित सज्जनों में प्रमुख निम्न-लिखित थे—महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, सर लियाक़त अली, पंडित इक़बालनारायण गुर्टू, पंडित कन्हैयालाल, रावराजा डाक्टर श्याम बिहारी मिश्र, अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी, डाक्टर ईश्वरी प्रसाद, प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, मौलवी अब्दुल हक़, पंडित अमरनाथ झा, डाक्टर अब्दुस्सत्तार सिद्दीक़ी, डाक्टर बाबूराम सक्सेना, डाक्टर बनारसीप्रसाद, ठाकुर गोपालशरण सिंह, मौलवी अब्दुस्सलाम नदवी, पंडित ब्रजनारायण गुर्टू, श्री सूर्यनारायण माथुर, श्री सदायतन पांडेय, पंडित मनोहरलाल जुत्शी मौलवी अब्दुल माजिद दरयाबादी, डाक्टर बेनीप्रसाद, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, डाक्टर प्रसन्नकुमार आचार्य, मिस्टर रशीद अहमद सिद्दीक़ी, डाक्टर मुहम्मद हफ़ीज़ सैयद।

इस अवसर के लिए इलाहाबाद, लखनऊ, पटना, आगरा, बनारस और अलीगढ़ यूनिवर्सिटियों ने अपने प्रतिनिधि निर्वाचित किए थ और कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने सम्मेलन की सफलता के लिए संदेश भेजा था। प्रतिनिधियों की नामावली निम्न है—

इलाहाबाद—महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल्-एल्० डी०, दि आनरेबुल डाक्टर हृदयनाथ कुंज़रू, डी० लिट्०

लखनऊ—मिस्टर यूसुफ़ हुसैन मोसवी, एम्० ए०, श्रीयुत दीनदयाल गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

पटना—श्रीयुत डाक्टर सच्चिदानद सिनहा, डी० लिट०

आगरा—डाक्टर ईश्वरी प्रसाद एम० ए० डी० लिट०

बनारस—मौलवी महेशप्रसाद

अलीगढ़—जनाब आल अहमद सरूर

इन के अतिरिक्त ईविंग क्रिश्चियन कालिज इलाहाबाद डी० ए० वी० कालिज कानपूर डी० ए० वी० कालिज देहरादून सनातनधर्म कालिज कानपूर क्रिश्चियन कालिज लखनऊ उदयप्रताप कालिज बनारस तथा ऐंग्लो-बगाली कालिज इलाहाबाद ने भी अपने-अपने प्रतिनिधि सम्मेलन में भाग लेने के लिए निर्वाचित किए थे।

हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद तथा श्री वीरेन्द्र-केशव साहित्य-परिषद ओरछा राज्य ने भी इस अवसर के लिए अपने प्रतिनिधि निर्वाचित किए थे।

एकेडमी के सभापति राइट आनरेबुल डाक्टर सर तेज बहादुर सप्रू के० सी० एस० आई० पी० सी० ने कान्फ्रेंस का उदघाटन किया तथा सभापति का आसन ग्रहण किया।

सभापति महोदय ने यह बताया कि हिंदुस्तानी एकेडमी को स्थापित हुए ग्यारह वर्ष हो चुके हैं। इस बीच में उस ने उर्दू तथा हिंदी की बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन किया है। एकेडमी का व्यय सरकार के प्रदान से चलता है परंतु इस की रकम में बराबर कमी होती रही है और वह अब पहले से आधी हो गई है। इस के कारण एकेडमी को अपने निर्दिष्ट आयोजन में बराबर काट छाँट करनी पड़ी है। यदि आर्थिक कठिनाइयों का निरंतर सामना न करना पड़ता तो निस्संदेह एकेडमी और अधिक परिमाण में काम प्रस्तुत करती। एकेडमी ने अब तक दो लक्ष्य अपने सामने रक्खे हैं। एक तो यह कि वह केवल ऐसे ग्रंथ जनता के सामने उपस्थित करे जो कि एक एकेडमी जैसी संस्था की प्रतिष्ठा के उपयुक्त हों। एकेडमी ने केवल बाजार की माँग की पूर्ति अथवा आर्थिक लाभ मात्र के उद्देश्य से प्रकाशन नहीं प्रस्तुत किए हैं। इस के अतिरिक्त एकेडमी ने हिंदी और उर्दू के प्रति समान भाव रखते हुए पुस्तक प्रकाशन की योजना की है। किसी एक भाषा के प्रति पक्षपात नहीं दिखाया है। अनुपाततः किसी भाषा की कम या अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हों—इस का एकेडमी की नीति पर प्रभाव नहीं पड़ा है। सभापति महोदय ने यह भी आशा प्रकट की कि इस नीति का भविष्य में भी पालन होता रहेगा।

भाषा के विषय में सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि इसे वह स्वीकार करते हैं कि वह सरल होनी चाहिए। फिर भी उन्हो ने कहा कि यह बात छिपी नहीं है कि हिंदी और उर्दू भाषाए अलग-अलग मार्ग ग्रहण करती जा रही हैं और इस प्रकार एक दूसरे से पृथक् होती जा रही हैं। उन्हो ने गगा और जमुना की भाति दोनों के मिलने की आशा छोड दी। पचास वर्ष पहले जो भी सभव रहा हो, वर्तमान प्रवृत्तिया ऐसी हैं कि यह बहुत कम सभव जान पडता है कि हिंदी और उर्दू एक भाषा हो जायेंगी। उन्हो ने बताया कि वह हिंदी तथा उर्दू के कई पत्रो के ग्राहक रहे है और इस बात को वह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि दोनो ही भाषाओ के लेखक अपनी-अपनी भाषा को कठिन बनाते जा रहे हैं, यहा तक कि साधारण जनता को एक-दूसरे की भाषा के ७५ फी सदी शब्द अपरिचित जान पडते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने की बडी आवश्यकता है, यदि हम चाहते है कि हिंदी और उर्दू बोलने वालो के बीच दुभाषिये की आवश्यकता न आ पडे। उन्हो ने कहा कि बनारस और कानपुर की हिंदी का मेरठ और दिल्ली मे समझना कठिन होगा, इसी प्रकार पजाब की उर्दू आसानी से लखनऊ और दिल्ली में न समझी जायेगी। सभापति महोदय ने कहा कि स्वय उन की रुचि की उर्दू वह है जो कि मौलवी अब्दुल हक के 'उर्दू' नाम के दफ्तर से प्रकाशित होने वाले रिसाले मे लिखी जाती है।

सर तेज बहादुर सप्रू ने बताया कि यह बहुत समय से उन की निश्चित धारणा रही है कि किसी भी जाति की उच्च शिक्षा समुचित रूप से एक विदेशी भाषा द्वारा होना सभव नही है। इसी से वह हैदराबाद की उस्मानिया यूनिवर्सिटी के आयोजन को पसद करते रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा केवल हिंदी-उर्दू अथवा प्रातीय भाषाओ के द्वारा सभव है, इस लिए इन के साहित्यो को परिपूर्ण करने का कार्य महत्तर है। उन्हो ने कहा कि वह अग्रेजी भाषा के विरोधी नही हैं, अथवा किसी भी विदेशी भाषा से उन्हें विरोध नही। सच तो यह है कि उन की दृष्टि मे इस देश के नवयुवक जैसा विदेशी भाषाओ को सीखना चाहिए नही सीखते। अग्रेजी से देश ने बहुत सीखा है। पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी आकाक्षाओ को जागृत किया है, फिर भी राष्ट्रीय शिक्षा का माध्यम देश की भाषा ही हो सकती है।

सभापति महोदय ने कहा कि हिंदुस्तानी एकेडेमी की तुलना अक्सर पाश्चात्य एकेडेमियो से करने का प्रयत्न होता है। ऐसा करना अनुचित है। हिंदुस्तानी एकेडेमी ने अपने जीवन के केवल ग्यारह वर्ष पूरे किए हैं। और एकेडमियो के पीछे सैकडा वर्षो का

1938-01 -Hindusthani Magazine -Hindusthani Acedamy Ki Timahi Patrika -Bhag 8 (1336)

इतिहास है। सर तेज बहादुर सप्रू ने इस बात की चर्चा की कि केवल तीन वर्ष पूर्व वह फ्रांसीसी एकेडमी के एक समारोह के अवसर पर पेरिस में आमंत्रित थे। उस अवसर के लिए एक लाख टिकट बिके थे। उस संस्था की उन्नति तथा पोषण में अरबों धन लगा है। उस के कतार के कतार विशाल भवन हैं पुस्तकालय में लाखों छपी और हस्तलिखित पुस्तकें हैं हजारों दर्शक नित्य वहाँ आते हैं। बड़े से बड़े लेखकों को उस की सदस्यता के लिए वर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अनातोल फ्रांस जैसे यशस्वी लेखक को उस की सदस्यता के लिए ४० वर्षों की चिर प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

इस के विपरीत हिंदुस्तानी एकेडमी के पास बहुत परिमित धन है अपनी इमारत तक नहीं है केवल कुछ हजार पुस्तकें इस के पुस्तकालय में हैं नए ग्रेजुएट इस की सदस्यता के आकांक्षी हैं। ऐसी परिस्थिति में पश्चिम की गौरवान्वित एकेडमियों से इस की तुलना नितान्त अनुचित होगी। फिर भी सभापति महोदय ने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि सीमित साधनों द्वारा एकेडमी ने बहुत उपयोगी काम किया है और यदि सरकार इस के प्रति सहानुभूति दिखाती रही और जनता इस के साथ सहयोग करती रही तो यह अमूल्य राष्ट्रीय सेवा कर सकती है।

अन्त में सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि वह चाहे इस संस्था के सभापति रहें चाहे न रहें इस की मंगल कामना सदा उन के हृदय में रहेगी और जब भी आवश्यकता होगी वह इस की सेवा के लिए तत्पर रहेंगे।

सभापति के भाषण के अनन्तर हिंदी विभाग के सभापति रावराजा रायबहादुर डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र डा० लिट्० का मौखिक भाषण हुआ।

डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र ने यह बताया कि हिंदी और उर्दू भाषाएं वास्तव में एक हैं अर्थात् उन का व्याकरण प्रायः समान है। जो भेद दिखाई पड़ता है वह शब्दकोष के कारण। उर्दू और हिंदी के बढ़ते हुए भेद भाव का कारण साहित्य से उतना संबंध नहीं रखता जितना कि राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों से। उन्हों ने इस बात पर जोर दिया कि दोनों के बीच के पार्थक्य को कम करने का पूर्णरूप से प्रयत्न होना चाहिए और यह भी बताया कि इस दिशा में हिंदुस्तानी एकेडमी ने स्तुत्य कार्य किया है। उन्हों ने कहा कि यदि हिंदू और मुसलमान साम्प्रदायिक भावनाओं को छोड़ कर आपस में विशेष मेल दिखाएं तो भाषा और साहित्य का प्रश्न भी सहज में हल हो जायगा। वास्तव में यह बात नहीं

कि हिंदी केवल हिंदुओं की भाषा हो और उर्दू केवल मुसल्मानों की। वक्ता ने कहा कि यह बात इतनी स्पष्ट है कि इस के समर्थन में उन्हें साहित्यिकों तथा लेखकों के नाम न गिनाने पड़ेंगे। डाक्टर मिश्र ने हिंदुस्तानी एकेडेमी के इस निश्चय की सूचना देते हुए कि आम भाषा के लिए दो पुरस्कार दिए जायँगे, इसे शुभ-सूचक बताया।

उर्दू-विभाग के सभापति सैयद सज्जाद हैदर साहब का भाषण विस्तृत और लिखित था। आप ने न केवल भाषा के प्रश्न पर प्रकाश डाला वरन् लिपि-संबंधी प्रश्न पर भी अपना वक्तव्य दिया। आप का भाषण 'हिंदुस्तानी' (उर्दू) अप्रैल में प्रकाशित हुआ है और उस का एक अंश इस पत्रिका के आगामी अंक में उद्धृत किया जायगा।

उपर्युक्त तीनों भाषणों के अनंतर हिंदुस्तानी एकेडेमी के जेनरल सेक्रेटरी महोदय डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फिल्०, ने धन्यवाद देते हुए एक भाषण दिया जिस में कि उन्हों ने एकेडेमी के दस ग्यारह वर्ष के कार्यों का संक्षेप में ब्यौरा दिया और भाषा तथा लिपि के प्रश्नों पर भी प्रकाश डाला। आप का भाषण इसी अंक में अन्यत्र दिया जा रहा है।

दूसरे दिन, २० मार्च को ९ बजे प्रातःकाल हिंदी तथा उर्दू विभागों की अलग-अलग बैठकें हुईं। हिंदी विभाग के सभापति के आसन पर रावराजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र थे।

इस अवसर के लिए प्राप्त निबंधों की सूची इस प्रकार है—

१—पारिभाषिक शब्द और शिक्षा का माध्यम—श्री कालिदास कपूर, एम्० ए० (लखनऊ)

२—साहित्यिकों की स्मृतिरक्षा का प्रश्न—श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए० (इटावा)

३—हिंदी में शब्दों के लिंग भेद—श्री किशोरीदास बाजपेयी (हरिद्वार)

४—हिंदी लिपि और भाषा में सुधार का आयोजन—श्री रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल० बी० (कासगंज)

५—वर्तमान हिंदी साहित्य में प्रवृत्तियाँ—ठाकुर मार्तंडेय सिंह एम० ए०, साहित्यरत्न (बनारस)

६—मनु वैवस्वत से पूर्व का भारत—श्री गुरुदेव बिहारी मिश्र (लखनऊ)

७—हिंदी साहित्य में शृंगार आदर्श—श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम्० ए०

८—चित्रकार मोलाराम—श्री मुकंदीलाल, बी० ए० (आक्सन) (लैंसडाउन)

९—हिंदी में गीति काव्य—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी (बनारस)

सब से प्रथम श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का निबंध पढ़ा गया और इस के संबंध में वाद विवाद भी अच्छा हुआ। वाद विवाद में भाग लेने वाले सज्जनों में डाक्टर बाबूराम सक्सेना, ठाकुर जयदेव सिंह, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, पंडित देवीप्रसाद शुक्ल तथा स्वयं सभापति महोदय थे।

दूसरा निबंध श्रीयुत शांतिप्रिय द्विवेदी का 'हिंदी में गीति काव्य' शीर्षक पढ़ा गया। इस के संबंध में वाद विवाद में भाग लेने वाले सज्जनों में प्रमुख ठाकुर जयदेव सिंह, श्रीयुत ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' तथा श्रीयुत नरेंद्र शर्मा एम० ए० थे।

तीसरा निबंध काशी के उदय प्रताप कालिज के प्रतिनिधि ठाकुर मार्कंडेय सिंह ने 'वर्तमान हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां' शीर्षक पढ़ा।

सभी निबंध गंभीर थे और सुविधानुसार प्रकाशित किए जायँगे।

चूंकि सांप्रदायिक दंगों के कारण नगर की शांति भंग हो गई थी इस लिए दूसरे समय की बैठक स्थगित कर दी गई और शेष अनपढ़े निबंध पठित स्वीकार कर लिए गए।

उर्दू विभाग में पढ़े गए अथवा प्राप्त निबंधों की सूची इस प्रकार है—

१—बाज़ पुराने लफ़्ज़ों की नई तहक़ीक़—अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी।

२—उर्दू के क़दीम कुतुब—मौलवी अब्दुल हक़।

३—उर्दू नस्र के एक मुंतख़ब मजमूए की ज़रूरत—मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी।

४—इक़बाल और इबलीस—जनाब आले अहमद सरूर

५—उर्दू शायरी पर हिंदू तहज़ीब व माशरत और हिंदुस्तान के जुग़राफ़ियाई असरात—मौलवी शाह मुईनुद्दीन अहमद नदवी।

६—नज़ीर अकबराबादी की ग़ज़लगोई—जनाब लतीफ़ुद्दीन अहमद अकबराबादी।

७—तारीख़ अवध—जनाब मुहम्मद तक़ी अहमद, एम० ए०

———

डाक्टर ताराचंद का वक्तव्य

इस साल हिंदुस्तानी एकेडमी के जीवन के दस बरस पूरे होते हैं। इन बरसो मे एकेडमी ने कहा तक अपने मकसदो को पूरा किया, किस हद तक हिंदी और उर्दू भाषा की सेवा की, पुराने साहित्य की रक्षा और नए साहित्य की रचना के लिए क्या-क्या जतन किए, यहा इन सब बातो का थोडा वर्नन साहित्य के गाहको के जानने के लिए जरूरी है।

एकेडमी के सामने जो काम है उस की कठिनाई वही लोग भली-भाति जान सकते है जिन्हे इस तरह के काम का कुछ तजरुबा है। साहित्य ऐसी चीज तो है नही कि उसे मशीन मे ढाल कर तुरत तैयार कर लिया जाय। साहित्य न रुपये के जोर से न नाम के लालच से बन सकता है। न यह मुमकिन है कि मदरसो और पाठशालाओ में साहित्य के रचने वाले कारीगरो की तरह सिखा-पढ़ा लिए जायँ। साहित्य की रूह अपनी इच्छा से जहा चाहती है विचरती है, मनमाने आती और जाती है। न उसे कोई ताकत पकड सकती है न कोई बधन बाँध सकता है। किस देश मे किस समय क्यो साहित्य के बादशाह पैदा होते है, इस का न कोई कायदा मालूम होता है न कानून। चौदहवी पद्रहवी सदी में इटली के समाज की हालत बहुत गिरी हुई थी लेकिन साहित्य आसमान की चोटियो से बाते करता था, डाटे, पीट्रार्क, एरीऔस्टो, बोकाचीयो ने इतालवी भाषा का माथा ऊँचा किया था। अठारहवी सदी के आखीर और उन्नीसवी के शुरू मे हिंदुस्तान की हालत कहने लायक न थी लेकिन इसी अँधेरे जमाने में मीर और गालिब सरीखे कवि फले फूले। अठारहवी सदी इगलिस्तान की तारीख म वह जमाना है जिस मे समदरो और महाद्वीपो पर उस का साम्राज्य कायम हुआ लेकिन इसी सदी का अग्रेजी साहित्य बिल्कुल ही रूखा और फीका है।

इस मे यह नतीजा निकालना कि एकेडमी एक व्यर्थ सस्था है ठीक नहीं। क्योकि अगर कवि, नाटककार, नावेल लिखने वाले, बनाए से नही बनते, कुदरत की अपनी मर्जी

से पैदा होते हैं तो इस का अर्थ यह नहीं कि फल्सफा (दर्शन), इतिहास (तारीख), समाज-विज्ञान (मदनियात और सियासियात), ज्योतिष (नजूम), गणित (रियाजीयात), जैसे अनेक शास्त्रो पर किताबे लिखने वाले मुहैया नहीं हो सकते। यह जरूर है कि इन विषयों पर अच्छे लेखक आसानी से नहीं मिल सकते क्योंकि अभी तक हमारे देश में अपनी भाषा में ऊँचे दर्जे की शिक्षा नहीं होती और इल्म की किताबो के पढने वालो की बहुत कमी है। लेकिन ऐसी किताबो को तैयार कराना और इस तरफ लोगो की रुचि मोडना एकेडमी जैसी सस्थाओ का काम है।

यह किताबे कई तरह की हो सकती हैं। कुछ तो अग्रेजी या दूसरी भाषाओ से तरजुमा कर के, कुछ अग्रेजी किताबो के सहारे लिख कर और कुछ नए सिरे से और मौलिक ढग पर तैयार की जा सकती हैं।

हिंदुस्तानी एकेडमी ने पिछले दस बरस मे इन्ही तरीको पर काम किया है और साहित्य यानी अदब की छै, जीवन-चरित (अदबी सवानिह-उम्री) की पाच, पुराने साहित्य की नौ, इतिहास (तारीख) की तेरह, इतिहास के नेताओ (तारीखी रहनुमाओ) पर पाँच, विज्ञान की छै, कारीगरी की तीन, दर्शन (फल्सफे) पर चार, समाज-विज्ञान पर आठ, चित्रकला (मुसव्विरी) पर दो, हिंदी और उर्दू की किताबो की जाँच पर दो, कुल जोड कर इक्यासी किताबे छपवाई है। साहित्य या अदब की आठ और विज्ञान की दो किताबो का तर्जुमा इस के अलावा है।

साहित्य की तरफ लिखने वालो का ध्यान दिलाने के लिये २३ इनाम पाँच-पाँच सौ रुपये के और आठ सौ-सौ रुपये के बाँटे है। अपने विषय के पडितो और आलिमो से लेक्चर दिलवाए हैं। कान्फ्रेंसो मे हिंदी और उर्दू से दिलचस्पी रखने वालो को इकट्ठा करने की कोशिश की है और इन जलसो मे भाषा (जबान) और साहित्य (अदब) के बडे-बडे सवालो पर विचार हुआ है। हिंदुस्तान भर में अपनी भाषा और अपने साहित्य की उन्नति के लिए बडे जोर की कोशिश हो रही हैं। इस मे हिंदुस्तानी एकेडमी ने जो भाग लिया है वह सराहने योग्य है। एकेडमी ने न केवल ज्ञान के भडार में अच्छा इजाफा किया है, इस ने उन रुकावटो की तरफ ध्यान दिलाया है जो हमारे आगे बढने के रास्ते मे बाधा डाल रही हैं।

इन मे से दो तीन का जिक्र कर देना अनुचित नहीं होगा। पहली कठिनाई जिस

का सामना करना है वह हिंदी और उर्दू लिपि या रस्मुल ख़त से संबंध रखती है। यह विचार दिन पर दिन फैलता जाता है कि हिंदी और उर्दू एक ही तरह लिखी जायँ तो इस से देश की बहुत भलाई होगी। इस के अलावा में कई ने यह ख़याल ज़ाहिर किया है कि नागरी और अरबी ख़तों की जगह रोमन ख़त इख़्तियार कर लेना चाहिए। इस में फ़ायदे बहुत से हैं, लिखने और छापने के लिए रोमन लिपि औरों से कहीं अच्छी है। इस में वर्ण थोड़े हैं इस लिए बच्चों को सीखने में आसानी है। दुनिया की सभी अगुआ क़ौमें रोमन का इस्तैमाल करती हैं, एशिया में तुर्कों ने इसे अपनाया है और जापान में जतन हो रहा है कि रोमन लिपि जापानी की जगह ले ले। हिंदुस्तान में रोमन के २६ वर्णों से आसानी से काम नहीं चल सकता। इस लिए इस में काट-छांट करनी पड़ेगी और वर्ण बढ़ाने होंगे। इस पर भी बहुत से लोग अपनी पुरानी जानी बूझी लिपियों को छोड़ना पसंद नहीं करेंगे। इन में बहुत से तो लकीर के फ़क़ीर हैं लेकिन बहुत से सचमुच नागरी को और लिपियों के मुक़ाबले में ज़ियादा वैज्ञानिक समझते हैं।

यदि हम अभी इस बात के लिए तैयार न हों कि बिल्कुल नई लिपि को स्वीकार कर लें तो भी हम नागरी और उर्दू के सुधार की कोशिश करनी चाहिए। नागरी के लिखने का ढंग ऐसा है कि समय अधिक लगता है और इस के छापने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। इस में कई वर्ण हमारी बोली के लिए फ़िज़ूल हैं जैसे ङ, ञ, ष, ऋ, लृ और कई ज़रूरी स्वर और व्यंजन नहीं हैं जैसे ऑ, ऑ, ए, क़, ख़, ग़, वग़ैरा।

उर्दू रस्मुल ख़त में और भी ज़ियादा दोष हैं। ث, س और ص के लिए हमारे गले से एक ही आवाज़ निकलती है, इसी तरह ز, ذ, ظ और ض के लिए और ت और ط के लिए। वर्णों की बहुतायत सीखने वालों की दिक़्क़तों को बढ़ाती है। उर्दू का इमला जैसा कठिन और बेक़ायदा है उसे सभी जानते हैं। लिपि ऐसी होनी चाहिए जिस में एक वर्ण एक आवाज़ के लिए नियत हो। न कई आवाज़ों के लिए एक वर्ण और न एक आवाज़ के लिए कई वर्ण हों। नागरी और उर्दू दोनों को ही इस तरफ़ ध्यान देना उचित है।

उर्दू लिपि की बड़ी ख़राबी यह है कि लिखी तो जाती है नस्तालीक़ ख़त में और अब तक ज़ियादातर हर्फ़ों में छपती है तो नस्ख़ के तर्ज़ में। बहुत से लोग जिन की आँखें नस्तालीक़ की आदी हैं नस्ख़ को पसंद नहीं करते। इसी वजह से पुरानी पत्थर की छपाई अभी तक जारी है और उर्दू को न टाइपराइटर नसीब है और न और छापे की सुविधाएँ। नतीजा

यह है कि बड़ी तादाद मे उर्दू की चीज़ो का छापना और उन्हे सस्ते दामो मे बेचना असभव सा है। इस हालत पर गौर करने की ज़रूरत है।

दूसरा प्रश्न इमला का है। हिंदी और उर्दू दोनो में हर्फो के जोडने और इस्तेमाल करने के बारे में मतभेद है। सस्कृत से जो शब्द आए है उन्हे ज्यो का त्यो रखा जाय या उस तरह जैसे वे अब बोले जाते है। नाक से निकलने वाली आवाज़ के लिए सस्कृत में पाँच-छै हर्फ है। हिंदी में उन सब की ज़रूरत नही। राम लिखना हो तो आ की मात्रा र के पीछे लगती है रिम लिखना हो तो इ की मात्रा र से पहले आती है। रेफ का भी झगडा है भ्रम मे भ के नीचे और मर्म्म मे म के ऊपर। यह ऐसी गुत्थिया है जिन के सुलझाने की ज़रूरत है।

उर्दू के इमला का हाल और भी बेढब है। अरबी के शब्द अरबी के तरीके पर फारसी के फारसी के मुताबिक और हिंदुस्तानी हिंदी ढग पर लिखे जाते है। लेकिन तलफ्फुज़ (उच्चारण) सब का हिंदुस्तानी है और इस कारण अरबी फारसी से अनजान लोगो के लिए इन के हिज्जे करने मे बडी कठिनाई होती है। बहुत से हिंदी शब्द भी फारसी ढग पर लिखे जाते है। उर्दू के फैलाव के लिए यह बडी रुकावट है। सब जानते है कि अमरीका में अग्रेज़ी के इमला के सुधार की कोशिश हो रही है। कितना अच्छा होता कि हम भी इस तरफ तवज्जह देते।

तीसरा सवाल ज़बान का है। कई साल से इस पर बहस जारी है। थोडे दिन हुए बिहार की सरकार ने एक कमेटी इस पर गौर करने के लिए नियत की है। सवाल बडे महत्व का है क्योंकि इस के ठीक-ठीक हल होने पर हमारी शिक्षा का भविष्य मुनहसिर है। इस सवाल के कई पहलू है इन मे से एक इस्तलाहो (पारिभाषिक) का है। हिंदी और उर्दू की विज्ञान की पुस्तको के लिए अलग-अलग पारिभाषिक शब्द (इस्तलाहे) गढे जायँ या एक समान। प्रश्न कठिन है लेकिन नया नही। दुनिया की और ज़बानो के सामने भी यह उठ चुका है। जिन मुल्को में सजीव और बलवान जातिया है उन्हो ने दूसरी ज़बानो से इस्तलाहो के लिए माद्दे लिए और उन्हे स्वदेशी साँचो मे ढाला। मिसाल के तौर पर अग्रेज़ी है। इस की इस्तलाहो का सोता लातीनी और यूनानी भाषाए है। मगर इन ज़बानो के लफ़्ज़ो को ठोक-पीट कर अग्रेज़ी बना लिया है। यही हाल यूरोप की दूसरी भाषाओ का है।

एक हो। उन्हो ने इन किताबो के आरभ में केवल २४ या २५ शब्दा की फेहरिस्त लगा दी जो उर्दू और हिंदी मे अलग अलग थे।

मिर्ज़ा कतील ने मतिक (तर्क) की इस्तलाहें बनाईं। उन का नमूना यह है—

ज्यू का त्यू	तस्दीक	Judgment
भरपूर	महमूल	Object
पूरा तोड	सालिबा	Negative
इकहरी ऊँच नीच	उमूमो खसूस मुतलक	Absolute—general and particular
असल असल	हद	Term
ठिकाना	मौज़ू इल्म	Subject
अपना अपना काम	खास्सा	Property
बोल	मौज़ू	Subject
पूरा जोड	मूजिबा	Affirmative proposition
अचूती	जुज़ई	Particular
मुराद का घर	मानी	Import
वह और वह और	तबायन	Difference

इस तरह की और भी कोशिशें हुईं लकिन सफल नही हुईं। नतीजा यह हुआ कि बजाय अपनी भाषा के शिक्षा अग्रेज़ी के ज़रिए होने लगी। बीसवीं सदी के शुरू से स्वदेशी आदोलन ने इस तरफ फिर ज़ोर से ध्यान दिलाया है। इस समय राष्ट्रीयता की लहर वेग के साथ बढ रही है और हिंदुस्तानी भाषाओ को ऊँची से ऊँची शिक्षा का ज़रिया बनाने का जतन हो रहा है। एसे अवसर पर हम फैसला करना चाहिए कि बुद्ध, कबीर और मिर्ज़ा क़तील के रास्ते पर चलें या मज़हबी और समाजी कांटो मे उलझ कर रह जायें और साहित्य, दर्शन और विज्ञान के उमडते दरिया को दो अलग-अलग धाराओ मे बाँट कर धीमा और कमज़ोर कर दें। इन और ऐसे ही और प्रश्नो पर विचार करने के लिए यह कान्फ्रेंस हो रही है। मुझे आशा है कि राइट आनरेबल सर तेज बहादुर सप्रू, जिन के ज्ञान, अनुभव और विवेक के लिए हमारे दिलो म बडी श्रद्धा है हमारे विचारो को अच्छे रास्ते पर डालग।

हम सब उन के आभारी हैं कि उन्हों ने कामों में व्यस्त होने पर भी कान्फ़्रेंस के लिए समय निकाला। मैं आप सब की तरफ़ से उन को धन्यवाद कहता हूँ। रावराजा पंडित श्यामबिहारी मिश्र सदा ही हिंदुस्तानी एकेडमी की तन मन से सहायता करते रहते हैं। बहुत थोड़ी सूचना होते हुए भी आप ने सभापति का पद स्वीकार कर हमें बाधित किया।

मिस्टर सज्जाद हैदर से एकेडमी के सब मेंबर और उर्दू से प्रेम रखने वाले सज्जन ख़ूब परिचित हैं। आप का उर्दू के लेखकों में बड़ा नाम है। हमारी दावत, क़बूल कर के आप ने हम पर जो एहसान किया है उसे हम नहीं भूल सकते। आप की सदारत में उमेद है हमारा जलसा कामयाब होगा।

समालोचना

रागतरंगिणी—कवि लोचन कृत (दर्भंगा राज प्रेस, दर्भंगा)

संगीत के विषय पर पुरानी पुस्तकें संस्कृत में तो मिलती हैं, परन्तु भाषा में बहुत कम। और पुराने गाने भी बहुत कम मिलते हैं। परन्तु पुराने कवियों को संगीत का पूर्ण ज्ञान था, और पद्य-रचना में सदा इस का ध्यान रखते थे कि पद्य किस राग में गाए जा सकते हैं। संगीत-शास्त्र पर फिर भी भाषा में पुस्तकें कम मिलती हैं। मिथिला में उजान ग्राम में, एक लोचन कवि रहते थे। इन के वंशज अब भी उसी गांव में रहते हैं। लोचन कवि का जीवन-काल लगभग १५८० शाके था। अर्थात् लगभग १६६० ईस्वी। उस समय राजा महिनाथ ठाकुर मिथिला के राजा थे। लोचन कहते हैं—

"वीर श्रीमहिनाथभूपतिरयं शास्त्यधुना मैथिलान्

उन के छोटे भाई नरपति ठाकुर की आज्ञा से कवि ने रागतरंगिणी की रचना की। इस पुस्तक में पांच तरंग हैं। पहले में रागस्वरूपकथन, दूसरे में रागिनीस्वरूपकथन, तीसरे में उत्पत्ति और नाद निरूपण, चौथे में निरहुतदेशीय संकीर्ण रागविवरण और पांचवें में स्वरप्रकरण, वीणावाद्य विषय, रागगान-समय इत्यादि का वर्णन है।

ग्रंथकार ने राग और रागिणियों का यों विभाग किया है—

(१) राग—भैरव

रागिणी—बंगाली, मधुमाधवी, वराडी, भैरवी, सिंधु

(२) राग—कौशिक

रागिणी—तोड़ी, खंभावती, गौरी, कुकुभ, गुणकरी

(३) राग—हिंदोल

रागिणी—वेलावली, देशाख, रामकरी, ललित, पटमंजरी

(४) राग—दीपक

रागिणी—केदारा, कानरा, देश, कामोद, नाट

(५) राग—श्रीराग

रागिणी—वसत, मालव, मालश्री, धनाश्री, असावरी

(६) राग—मेघराग

रागिणी—मलारी, देशिका, भूपाली, टक, दक्षिण गुर्जरी

विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि इस पुस्तक में संस्कृत, व्रजभाषा, और मैथिली, तीनो भाषाओ का प्रयोग किया गया है। और उदाहरण मे जिन मैथिली कवियो के पद्य दिए गए है, उन की सख्या २९ है। उन मे से प्रधान कवियो के ये नाम है—विद्यापति, लोचन, गदाधर, हरिदास, धरणीधर, गोविंद, जीवनाथ, गगाधर, प्रीतिनाथ, भवानीनाथ, पूरनमल्ल, जयदेव। एक विलक्षण कवि ग्यासदेव सुलतान मुसलमान भी मैथिली मे कविता करते थे।

ग्रथ के आरभ में कवि लिखता है कि सकल-साधारण के समझने के लिए कही-कही "मध्यदेश भाषा"—अर्थात् व्रजभाषा—मे उदाहरण दिए जाएगे। इस से स्पष्ट है कि व्रजभाषा का आधिपत्य उस समय भी—लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व भी—प्राय समस्त उत्तरीय भारत पर था। इस से यह भी स्पष्ट है कि मैथिली मे काव्य रचना उस युग मे भी अनेक कवि करते थे, और कई तो बहुत ही ललित पद्य इस ग्रथ मे है।

पहले कुछ हिंदी कविता के उदाहरण लीजिए। हिंदोल का स्वरूप वर्णन—

रूप गर्वयुत खर्व पर्व हिमधाम समानन,
गन्धर्वाधिक सर्वकला विद्या कुल कानन।
नटवर कलित सुवेश विमल पारावत सुन्दर,
कुण्डल ललित कपोल लोल हिन्दोल पुरन्दर।
करें पकरि नारि उर आनि मुख निरखि मुसकाय पुनि,
रास करत लघु लोल गति सो कह्यो वीर हनुमन्त मुनि।
खर्वरूप गुनगर्व गहत सर्वाधिक सुन्दर,
तन कपोत सम परन करन कुण्डल कामुक वर।
नवल नितम्बिनि अङ्क अङ्क भरि निरखि निरखि मुख।
थोर थोर हिन्दोल चलत करत केलि सुख॥

सब राग राग राजत रमन गावत जेहि गन्धर्व जन,
लघु लोल गमन बहु मोल मह कह हिन्दोल जेहि जति अजन ।।

मैथिली के पद अनेक कवियों के रचित हैं, और भिन्न-भिन्न श्रेणी के हैं। एक सुंदर पद यह है—

की पर वचनें कन्त देल कान।
की पर कामिनि हरल गेयान ।।
की तन्हि विसरल पुर्वक नेह,
की जीवन आबे पडल सँदेह।
की परिनत भेल पूर्वक पाप,
की अपराधे कयल विहिँ साप।
की सखि कौन करब परकार,
की अविनय दहुँ परल हमार।
की हमें काम कला एक घाटि,
की दहुँ समयक यंह परिपाटि।
मधुसूदन भन मने अवधारि,
की धैरजें नहि मिलल मुरारि ।।

अमरनाथ झा

लाला देवराज—लेखक सत्यदेव विद्यालंकार। प्रकाशक, मंत्री मुख्यसभा कन्या महाविद्यालय, जालंधर। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक पंजाब के कवि स्वर्गीय लाला देवराज की जीवनी है। पंजाब में स्त्री शिक्षा तथा उस के द्वारा हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचार का श्रेय जालंधर के कन्या-महाविद्यालय को है और उस के संस्थापक लाला देवराज थे। इस तरह स्वर्गीय लाला जी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे। उन के काम का क्षेत्र ऐसा था कि उन की ख्याति राजनीति आदि अन्य क्षेत्रों में काम करने वालों के समान नहीं हो सकती। जीवनी सुंदर और आकर्षक ढंग से लिखी गई है और हिंदी के सीमित जीवनी-साहित्य को परिपुष्ट करेगी।

धीरेन्द्र वर्मा

हिंदी गद्य-निर्माण—संपादक, श्रीयुत पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी। प्रकाशक, *हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।*

संपादक महोदय हिंदी के सुपरिचित साहित्य-सेवी हैं और एक ऐसा संग्रह निकाल-कर आप ने शिक्षा-कार्य में अच्छा सहयोग किया है। हिंदी गद्य-निर्माण का कार्य (यदि व्रजभाषा-गद्य को हिंदी-गद्य में न गिनें) तब भी लल्लूलाल, इशा आदि के समय में ही आरंभ हो चुका था और उन्हें भी इस संग्रह में स्थान मिलना चाहिए था। हां, यदि पुस्तक का शीर्षक वर्तमान या आधुनिक शब्द-संयुक्त होता तब कदाचित् इस की आवश्यकता न होती। संपादक महोदय ने राजा शिवप्रसाद को हिंदी-उर्दू-संबंधी झगड़े को सुलझानेवाला लिखा है, पर वास्तव में उन्हें कितनी सफलता मिली इस का निर्देश भी उचित होता।

इस संग्रह में संपादक महोदय को ले कर तेईस ग्रंथकारों की रचनाओं से उद्धरण *लिए गए हैं। भूमिका में अपने को छोड़ कर सभी का संक्षिप्त परिचय संग्रहकार ने दिया* है, जिस से इस की उपादेयता और भी बढ़ गई है। लेखों के संग्रह भी विद्यार्थियों की आव-श्यकता को दृष्टि में रख कर किए गए हैं और विविध विषयों पर हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

कवितावली—(गोस्वामी तुलसीदास कृत) संपादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, *हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।*

यद्यपि गोस्वामी जी ने कवितावली में श्रीराम कथा ही कही है पर इस का अधि-*कांश श्री हनुमान जी की वीरता-वर्णन तथा उन के प्रति विनय-निवेदन में ही लग गया है।* यह समग्र ग्रंथ कवित्त तथा सवैयों ही में है और प्रथम ही अधिक हैं, इसी से ऐसा नामकरण हुआ है। उक्त छंद के कारण इस ग्रंथ में ओज की मात्रा पूरी है और वास्तव में यह ग्रंथ गोस्वामी जी की रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। गुप्त जी ने भूमिका में इस ग्रंथरत्न की विशिष्टता अच्छी प्रकार दिखलाई है और अंत में टिप्पणी दे कर इस संस्करण की उपादेयता बढ़ा दी है।

पार्वतीमंगल—संपादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

गोस्वामी तुलसीदास जी की यह एक छोटी-सी रचना है, जिस में शिव-पार्वती-विवाह सोहर छंद में वर्णित है, बीच-बीच में कुल मिला कर १६ छंद हरिगीति के हैं। यह संस्करण विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है, अतः अंत में प्रायः सौ पदों के अनुवाद

दिए गए हैं और पाद टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। इस प्रकार यह विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हो गया है।

अलंकार-प्रकाश और पिंगल-कौमुदी—लेखक, आर्येन्द्र शर्मा। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

इस रचना के दो भाग हैं। प्रथम में मुख्य-मुख्य शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों की सरल भाषा में विवेचना की गई और द्वितीय में गुरु लघु, मात्रा आदि तथा वर्णवृत्त और मात्रिक मुख्य छंदों को समझाया गया है। पुस्तक नए विद्यार्थियों के काम की है।

सती कण्णकी—लेखक डाक्टर गोपालनाथ दया। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यह तामिल भाषा के एक काव्य के कथानक का उसी प्रांत के एक विद्वान् द्वारा किया हुआ हिंदी रूपांतर है। राष्ट्रभाषा हिंदी में भारत की सभी भाषाओं के ग्रंथरत्नों का रूपांतर होना वांछनीय है। इस काव्य तथा कथानक के निजी गुणों और सरल अनुवाद होने से यह रचना सभा के संग्रह योग्य हो गई है। इस से सतीत्व के प्रताप की गाथाओं के साथ-साथ दक्षिण के अनेक रस्म रिवाज आदि का भी परिचय मिलता है।

हिंदी पर फ़ारसी का प्रभाव—लेखक पंडित अंबिकाप्रसाद जी वाजपेयी। प्रकाशक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यद्यपि विद्वान् लेखक ने इतना लंबा निबंध लिख कर हिंदी पर (उर्दू द्वारा) फ़ारसी का प्रभाव दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया है पर वह इस कार्य में विशेष सफल नहीं हो सके हैं। अधिकांश निबंध तो संस्कृत फ़ारसी आदि भाषाओं ही की विवेचना में खर्च हो गया है और अकारण ही लंबे-लंबे उद्धरण दे कर उस की कायवृद्धि की गई है। सूफ़ी-मत और इश्क पर सोलह पृष्ठ लिख कर यही निष्कर्ष निकाला कि 'हिंदी पर सूफ़ियों के साहित्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।' रेख्ता और रेख्ती का कई पृष्ठों में अर्थ लगा कर उसी को हिंदी की जननी मान लिया है क्यों कि वह 'नागर अपभ्रंश प्राकृत से उत्पन्न हुई है।' हिंदी (खड़ी बोली) उर्दू से उत्पन्न हुई है, ऐसा कुछ लोग कुछ दिनों तक कहते रहे थे, पर उर्दू किस से उत्पन्न हुई है, इसे इन निबंधकार ने अब बतलाया है। इस निबंध की यही विशेषता है। पुस्तक लेखक के अध्यवसाय की परिचायिका मात्र है।

सृष्टि की कथा—(सचित्र) लेखक डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सरल भाषा तथा रोचक शैली में विद्वान् लेखक ने इस छोटे से ग्रंथ में सृष्टि की बहुत-सी बातें लिख डाली हैं, जिसे पढ़ कर साधारण पाठक भी बहुत-सा तद्विषयक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पृथ्वी के जल-स्थल भाग तथा आकाश के सूर्य से ले कर उल्का और धूमकेतु तक सभी का विवरण दिया है और इस पृथ्वी पर जीवन का आरंभ किस प्रकार हुआ है, इसे भी दिखलाया है। पुस्तक सभी के पढ़ने योग्य है।

ब्रजरत्न दास

शिक्षा-मनोविज्ञान—लेखक श्रीयुत हंसराज भाटिया, एम्० ए०, प्रकाशक, दि न्यू ईरा पब्लिशर्स, लाहौर। मूल्य २।।)

शिक्षण के क्षेत्र मे पाश्चात्य मे बहुतायत से मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं और उन के परिणाम-स्वरूप वहा की शिक्षा-पद्धति में बराबर उन्नति होती रहती है। यह बात नही इस विषय में विवादास्पद मत न हो, फिर भी यदि सतर्कता से काम लिया जाय तो विवादो से अलग रहते हुए अनेक तथ्यो पर प्रकाश डाला जा सकता है। सुयोग्य लेखक ने इसी बात का प्रयत्न प्रस्तुत पुस्तक में किया है। हिंदी मे शिक्षण सिद्धात तथा मनोविज्ञान दोनो ही विषयो पर पुस्तके इनी गिनी है अतएव इस पुस्तक का सहर्ष स्वागत होना चाहिए।

यह बात पुस्तक को पढ़ते ही स्पष्ट हो जाती है कि लेखक अपने विषय पर अधिकार रखता है और पढ़ी-पढाई पुस्तको का रूपातर मात्र नही प्रस्तुत करता है। लेखक ने अपने विषय के स्पष्टीकरण मे भारतीय छात्रो की मनोवृत्ति का ध्यान रक्खा है। पुस्तक व्यावहारिक ढग से लिखी गई है और इस से न केवल शिक्षको को वरन् माता पिताओ को भी लाभ होगा।

ऐसे वैज्ञानिक विषय पर हिंदी में लिखने मे पारिभाषिक शब्दो की कठिनाइया पद-पद पर आती है। लेखक ने इन का साहस के साथ सामना किया है। पुस्तक के अत में जो पारिभाषिक शब्दो की एक सूची दी गई है उस से इस बात का पता चलता है कि लेखक ने अव्यावहारिक गढ़त नही की है। इस विषय पर आगे लिखने वाले लेखको को इन पारिभाषिक शब्दो की सूची से भी पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।

लेखक ने पुस्तक को वैज्ञानिक मर्यादा बनाए रखते हुए भी विषय का प्रतिपादन बड़े रोचक ढंग से किया है।

भाषा के संबंध में लेखक महोदय लिखते हैं—"प्रायः ऐसे विषयों पर लिखे हुए ग्रंथ 'शुद्ध' हिंदी का ही प्रयोग करते हैं और उर्दू, फारसी तथा अंग्रेज़ी शब्दों से सख्त परहेज़ करते, हैं चाहे वह रोज़ व्यवहार में क्यों न आते हों। संभवतः यह दृष्टिकोण साहित्य की दृष्टि से उचित हो पर यहाँ तो हमेशा यही ध्येय रखा है कि पुस्तक की भाषा को जितना स्पष्ट, सरल और सुबोध बनाया जा सके बनाया जाय जिस से विषय के समझने में कोई कठिनाई न हो। यदि कहीं कठिन वाक्यों और शब्दों का प्रयोग हुआ है तो बहुधा मजबूर हो कर कि कहीं सरलता के लिए विषम भावों का नाश न हो जाय।

इस उद्धरण से लेखक की नीति भी स्पष्ट हो जायगी और उस की भाषा का नमूना भी मिल जायगा। हम लेखक को आश्वासन दिला सकते हैं कि उस की भाषा को हिंदी मानने में किसी को आपत्ति न होगी।

रा० ट०

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक, लेखकों के नाम-सहित अंकित किए गए हैं।]

आचार्य द्विवेदी जी का भाषा-सुधार कार्य—श्री प्रेमनारायण टंडन, दक्षिण भारत, जनवरी '३८

आजकल की हिंदी कविता—श्रीमती राजदुलारी, साहित्य-सदन, फरवरी '३८

उर्दू की उत्पत्ति—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

कवींद्र रवींद्र के मृत्यु-संबंधी विचार—श्री कामेश्वर शर्मा, हंस, मार्च '३८

खड़ी बोली की निरुक्ति—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

गोरखनाथ और उन का साहित्य—श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०, वीणा, मार्च '३८

ग्राम-सुधार—श्रीमती रजनी, माधुरी, मार्च '३८

छायावाद—श्री नगेंद्र, हंस, फरवरी '३८

जयशंकर 'प्रसाद'—श्री रामनाथ 'सुमन', माधुरी, फरवरी '३८

'जोश' मलीहाबादी और उन की कविता—श्री चंद्रभूषण सिंह माधुरी, मार्च '३८

डाक्टर उमेश मिश्र के विद्यापति ठाकुर—श्री भुवनेश्वर झा और श्री रामनाथ झा, विशाल-भारत, मार्च '३८

ढोला मारू रा दूहा का परिचय—स्वर्गीय श्री मुंशी अजमेरी, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

ताशी लामा की वैचित्र्यपूर्ण जीवन-कहानी—श्री राजेश्वर प्रसाद, एम्० ए०, विश्वमित्र, जनवरी '३८

शिशु-व्यक्तित्व का विकास—श्री इंद्रमोहिनी सिनहा, विशाल-भारत, मार्च '३८

श्री मद्वल्लभाचार्य—श्री कंठमणि शास्त्री, विशारद', सुधा, जनवरी '३८

समाजवाद—श्री प्रेमनारायण माथुर, एम्० ए०, बी० काम०, विश्वमित्र, जनवरी '३८

सुमेरी संस्कृति का भारतीयत्व—श्री सूर्यनारायण व्यास, सरस्वती, फरवरी '३८

संतो ने हमारे लिए क्या किया?—श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी, सुधा, फरवरी '३८

हिंदी एवं द्राविड भाषाओ का व्यावहारिक साम्य और उन का हिंदी पर संभावित प्रभाव—श्री ना० नागप्पा, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

'हिंदी याने हिंदोस्तानी' में 'संस्कृत' का स्थान—श्री धर्मदेव शास्त्री, सरस्वती, फरवरी '३८

हेगेल और मार्क्स—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०, विश्व मित्र, मार्च '३८

हैदरअली—एक इतिहास प्रेमी, वाणी, फरवरी '३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १।।); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुल्फज़ल। मूल्य १।)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३।।)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५।।); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४।।), सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५।।), सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६), कपड़े की जिल्द ६।।)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ।।)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १।।)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १।)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३।।)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

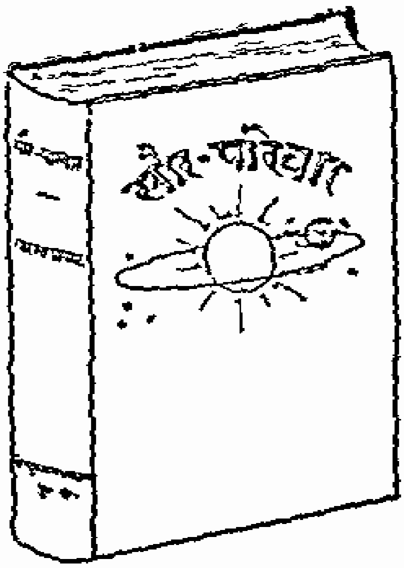
(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४।।); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ।।)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]



आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

(जिन में ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमीं जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय को रोचक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे लोग तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

* * पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना समाप्त किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I have seen, lacking in precision. * * I congratulate you on this excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

प्रकाशक—हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जुलाई, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जूलाई, १६३८

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ }   जुलाई १९३८   { अंक ३

मनु वैवस्वत से पूर्व का भारत

मन्वतर बीत चुके हैं, उन के नाम हैं स्वायभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष। स्वायभुव के वश में उन को भी मिला कर २७ राजाओ के नाम दिए हुए है, जिन में मुख्य नाम हैं स्वायभुव, प्रियव्रत, भरत, पृथु और अतिम २७वा विषग्ज्योति। इन सब के नाम पुराणो में कथित है, तथा उन के सबध में कुछ घटनाए भी वर्णित हैं। स्वायभुव मनु का दूसरा वश इस प्रकार है —

(१) मनु (स्वायभुव), (२) उत्तानपाद, (३) ध्रुव, (४) श्लिष्टि, (५) ऋपु, (६ से ३५ तक) अज्ञाननाम, (३६) चाक्षुष मनु, (३७) उरु, (३८) अग, (३९) वेन, (४०) पृथु, (४१) अनर्द्धान, (४२) हविर्द्धान, (४३) प्राचीन वर्हिष, (४४) प्रचेतस, (४५) दक्ष।

न० ३६ चाक्षुष मनु के नाम पर बीता हुआ अतिम मन्वतर (चाक्षुष मन्वतर) था। इसी के पीछे से वैवस्वत मन्वतर चल रहा है। स्वायभुव और चाक्षुष मन्वतरो के बीच में स्वारोचिष, उत्तम, तामस, और रैवत के नामो पर जो चार मन्वतर चले, उन के विषय में राजाओ की सख्या आदि कुछ ज्ञात नही है। 'विष्णुपुराण' में केवल इतना कथित है कि ये चारो मनु भी स्वायभुव के बडे पुत्र प्रियव्रत के ही वशधर थे। जब इन चारो के नामो पर मन्वतर तक चले तब इतना मानना ही पडेगा कि इन प्रत्येक मन्वतरो में मनु के अतिरिक्त कम से कम एक-एक राजा और था। इस प्रकार चाक्षुष मनु से पूर्व स्वय-भुव मन्वतर के २७ नरेश तथा इन चार मन्वतरो के कम से कम आठ नरेश हो चुके थे। पुराणो में नबर ६ से ३५ तक नरेशो के अस्तित्व का कोई इशारा नहीं है, किंतु जब चाक्षुष छओ में अतिम मन्वतर था, तब साफ है कि उन के पूर्व स्वायभुव मन्वतर के २७ राजे तथा अन्य चार मन्वतरो के आठ राजे, जोड ३५ राजे हो चुके थे, और चाक्षुष का नबर कम से कम ३६ का था। इन के पीछे ९ राजो के नाम लिखे ही हुए है, जो चाक्षुष मन्वतर के अत पर्यंत कम से कम ४५ राजे हो गुज़रे थे। आज कल के ऐतिहासिक प्रति शताब्दी में ६ राज्यो का पडता जोडते हैं। इस प्रकार बीते हुए छओ मन्वतरो का यह समय कम से कम ७५० वर्षों (साढे सात शताब्दियो) का था।

वेदर्षियो के नाम हमारे यहा सब ज्ञात है। सब से पुराने वेदर्षि यही चाक्षुष मनु थे। इन से पूर्व वेदर्षियो में ध्रुव और पृथु के भी नाम है किंतु यह निश्चित नहीं है कि उन नामो वाले वेदर्षि उत्तानपाद-वशी यही नरेश थे, अथवा इन्हीं नामो के कोई और

मनुष्य। इधर चाक्षुप इसी मनु-सयुक्त नाम से साफ-साफ वेदर्पि लिखे हुए है। अतएव दृढता-पूर्वक पहले वेदर्पि यही चाक्षुप मनु थे। अतिम वेदर्पि मदपाल ऋषि से शूद्रा पत्नी मे उत्पन्न द्रोण, मदपाल आदि वे चार ऋषि थे जो बालवय में खाडव-दाह से युधिष्ठिर के अनुज अर्जुन द्वारा बचाए गए थे। अतएव ऋग्वेद का समय युधिष्ठिर से चाक्षुप मनु पर्यत पडता है। डाक्टर सीतानाथ प्रधान ने युधिष्ठिर से रामचद्र तक का समय १४ पीढियो अर्थात् २८० वर्षों का प्रमाणित कर दिया है तथा डाक्टर रायचौधरी और पार्जिटर महाशय के ग्रथ पढने से प्रकट है कि महाभारत युद्ध का समय दशवी शताब्दी ईसा पूर्व है। डाक्टर जायसवाल यही समय १५वी शताब्दी ईसा पूर्व मानते है और डाक्टर प्रधान १२ वी। रामचद्र से मनु वैवस्वत तक ठीक हिसाब जोडने से ३६ राज्या अर्थात् साढे छै शताब्दी का समय बैठता है। इस काल के तेरह वश-वृक्ष पुराणा मे प्राप्त है जिन में से प्राय ६ पूर्ण है। इस प्रकार महाभारत युद्ध का पीछे से पीछ तक का समय मानने से वह दशवी शताब्दी ईसा-पूर्व आता है, राम-काल तेरहवी शताब्दी और मनु वैवस्वत काल बीसवी शताब्दी से प्रारभ हुआ बैठता है। अत वैवस्वत से पूर्व वाला काल मन्वतर काल माना जाने से यह मन्वतर काल बीसवी से २६ वी या २७ वी शताब्दी ईसा पूर्व तक आवेगा। वेदो का गायन इस के प्राय अत म २१ वी शताब्दी से प्रारभ हुआ।

ऐतिहासिको का विचार है कि भारत मे आर्य लोग दो धाराओ में आए। पुराणो मे कथित है कि ब्रह्मा ने दो बार कर के सृष्टि रची। इन दोनो कथनो का सामजस्य बैठता है। समझ पडता है कि दूसरी आर्यधारा मनु वैवस्वत और उन के दामाद (चद्रात्मज) बुध के नेतृत्व मे भारत पहुँची। हम इसी मन्वतर काल को सत्ययुग, वैवस्वत से रामचद्र तक त्रेता, इस से पीछे महाभारत काल तक द्वापर और पीछे कलियुग मान सकते है।

ऋग्वेद मे अनार्यों के जो कथन है वे बहुधा मन्वतर-कालीन अनार्यों से ही सबद्ध है। वे काले, भाषाहीन, अनास आदि कहे गए है, किंतु साथ ही साथ उन मे से कुछ सरदारो के सौ-सौ तक दुर्ग लिखे है। प्रसिद्ध वैदिक विजयी सुदास रामचद्र के प्राय समकालीन थे, ऐसा वेदो तथा पुराणो की घटनाओ के मिलाने से प्रकट है। अतएव स्पष्ट है कि पूर्णतया हारने के पूर्व अनार्यों ने आर्यों से बहुत कुछ सीख भी लिया था। वेदो और पुराणो के अनुसार अनार्यों की जातिया निम्नानुसार भी थी—महिष, कपि, नाग, मग, राक्षस, यातुधान, व्रात्य, महाव्रप, मूजवत, कोल आदि। स्वायभुव के पुत्र प्रतापी राजा

मन्वतर बीत चुके है, उन के नाम है स्वायभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुप। स्वायभुव के वश में उन को भी मिला कर २७ राजाओ के नाम दिए हुए है, जिन में मुख्य नाम है स्वायभुव, प्रियव्रत, भरत, पृथु और अतिम २७वा विषग्ज्योति। इन सब के नाम पुराणो में कथित है, तथा उन के सबध मे कुछ घटनाए भी वर्णित है। स्वायभुव मनु का दूसरा वश इस प्रकार है —

(१) मनु (स्वायभुव), (२) उत्तानपाद, (३) ध्रुव, (४) श्लिष्टि, (५) रिपु, (६ से ३५ तक) अज्ञातनाम, (३६) चाक्षुप मनु, (३७) ऊरु, (३८) अग, (३६) वेन, (४०) पृथु, (४१) अतर्द्धान, (४२) हविर्द्धान, (४३) प्राचीन बर्हिष, (४४) प्रचेतस, (४५) दक्ष।

न० ३६ चाक्षुप मनु के नाम पर बीता हुआ अतिम मन्वतर (चाक्षुप मन्वतर) था। इसी के पीछे से वैवस्वत मन्वतर चल रहा है। स्वायभुव और चाक्षुप मन्वतरो के बीच में स्वारोचिष, उत्तम, तामस, और रैवत के नामो पर जो चार मन्वतर चले, उन के विषय मे राजाओ की सख्या आदि कुछ ज्ञात नही है। 'विष्णुपुराण' मे केवल इतना कथित है कि ये चारो मनु भी स्वायभुव के बडे पुत्र प्रियव्रत के ही वशधर थे। जब इन चारो के नामो पर मन्वतर तक चले तब इतना मानना ही पडेगा कि इन प्रत्येक मन्वतरो में मनु के अतिरिक्त कम से कम एक-एक राजा और था। इस प्रकार चाक्षुप मनु से पूर्व स्वयभुव मन्वतर के २७ नरेश तथा इन चार मन्वतरो के कम से कम आठ नरेश हो चुके थे। पुराणो मे नबर ६ से ३५ तक नरेशो के अस्तित्व का कोई इशारा नही है, किंतु जब चाक्षुप छओ में अतिम मन्वतर था, तब साफ है कि उन के पूर्व स्वायभुव मन्वतर के २७ राजे तथा अन्य चार मन्वतरो के आठ राजे, जोड ३५ राजे हो चुके थे, और चाक्षुप का नबर कम से कम ३६ वा था। इन के पीछे ६ राजो के नाम लिखे ही हुए है, सो चाक्षुप मन्वतर के अत पर्यंत कम से कम ४५ राजे हो गुज़रे थे। आज कल के ऐतिहासिक प्रति शताब्दी में ६ राज्यो का पडता जोडते है। इस प्रकार बीते हुए छओ मन्वतरो का यह समय कम से कम ७५० वर्षों (साढे सात शताब्दियो) का था।

वेदर्षियो के नाम हमारे यहा सब ज्ञात है। सब से पुराने वेदर्षि यही चाक्षुप मनु थे। इन से पूर्व वेदर्षियो मे ध्रुव और पृथु के भी नाम है किंतु यह निश्चित नही है कि उन नामो वाले वेदर्षि उत्तानपाद-वशी यही नरेश थे, अथवा इन्ही नामो के कोई और

मनुष्य। इधर चाक्षुष ईसा मनु-संयुक्त नाम से साफ़-साफ़ वर्णित लिखे हुए हैं। अतएव दृढ़ता-पूर्वक पहले बतलाए यहाँ चाक्षुष मनु थे। अग्नि वर्णित मन्दपाल ऋषि से शार्ङ्गी पत्नी में उत्पन्न द्रोण, मन्दपाल आदि ये चार ऋषि थे जो बाल्यवय में खाण्डव-दाह में युधिष्ठिर के अनुज अर्जुन द्वारा बचाए गए थे। अतएव ऋग्वेद का समय युधिष्ठिर से चाक्षुष मनु पर्यन्त पहुँचता है। डाक्टर सीतानाथ प्रधान ने युधिष्ठिर से रामचन्द्र तक का समय १८ पीढ़ियाँ अर्थात २८० वर्षों का प्रमाणित कर दिया है तथा डाक्टर रायचौधरी और पार्जिटर महाशय के ग्रंथ पढ़ने से प्रकट है कि महाभारत युद्ध का समय दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व है। डाक्टर जायसवाल यही समय १५वीं शताब्दी ईसा पूर्व मानते हैं और डाक्टर प्रधान १२ वीं। रामचन्द्र से मनु वैवस्वत तक ठीक हिसाब जोड़ने से ३९ राज्य अर्थात साढ़े छः शताब्दियों का समय बैठता है। इस काल के तेरह वंश-वृक्ष पुराणों में प्राप्त हैं जिन में से प्रायः ९ पूरे हैं। इस प्रकार महाभारत युद्ध को पीछे से पीछे तक का समय मानने में वह दसवीं शताब्दी ईसा-पूर्व आता है, राम-काल तेरहवीं शताब्दी और मनु वैवस्वत काल बीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ बैठता है। अब वैवस्वत के पूर्व वाला काल मन्वन्तर काल माना जाने से यह मन्वन्तर काल बीसवीं से २६ वीं या २७ वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक आवेगा। वेदों का रचन इसी के प्रायः अन्त में २१ वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ।

ऐतिहासिकों का विचार है कि भारत में आर्य लोग दो धाराओं में आए। पुराणों में कथित है कि ब्रह्मा ने दो बार कर के सृष्टि रची। इन दोनों कथनों का सामञ्जस्य बैठता है। समझ पड़ता है कि दूसरी आर्यधारा मनु वैवस्वत और उन के जामाता (चन्द्रात्मज) बुध के नेतृत्व में भारत पहुँची। हम इसी मन्वन्तर काल को सत्ययुग, वैवस्वत से रामचन्द्र तक त्रेता, इस से पीछे महाभारत काल तक द्वापर और पीछे कलियुग मान सकते हैं।

ऋग्वेद में अनार्यों के जो कथन हैं वे बहुधा मन्वन्तर-कालीन अनार्यों से ही सम्बद्ध हैं। वे काले, भाषाहीन, अनास आदि कहे गए हैं, किन्तु साथ ही साथ उन में से कुछ के नगरों के सौ-सौ तक दुर्ग लिखे हैं। प्रसिद्ध वणिक विजयी सुग्राम रामचन्द्र के प्रायः समकालीन थे, ऐसा वेदों तथा पुराणों की घटनाओं के मिलान से प्रकट है। अतएव स्पष्ट है कि पूर्णतया हारने के पूर्व अनार्यों ने आर्यों से बहुत कुछ सीख भी लिया था। वेदों और पुराणों के अनुसार अनार्यों की जातियाँ निम्नानुसार भी थीं—महिष, कपि, नाग, मृग, राक्षस, यातुधान, ब्राच, महावृष, मूजवन्त, काल आदि। स्वायम्भुव के पुत्र प्रनारा राजा

प्रियव्रत ने राज्य अपने पुत्रो मे बाट दिया। अग्नीध्र को जबूद्वीप (शायद एशिया) मिला, द्युतिमान को क्रौंचद्वीप, भव्य को शकद्वीप, तथा औरो को अन्य प्रात। षष्ठी देवी का पूजन प्रियव्रत का ही चलाया हुआ है। अग्नीध्र ने भी अपना राज्य नौ पुत्रो मे बाँट दिया। नाभि को हिमवर्ष नामक वह देश मिला जो हिमालय से अरब समुद्र पर्यंत कहा गया है। हरि को नैपध उपनाम हरिवर्ष (रूसी तुर्किस्तान) मिला, इलाव्रत को इलावर्ष (पामीर), रम्यक को चीनी तातार, हिरण्य को मगोलिया, कुरु को कुरुवर्ष (साइबेरिया), किंपुरुष को उत्तरी चीन, भद्राश्व को दक्षिणी चीन, और केतुमान को रूसी तुर्किस्तान। नाभि भारत का शासक हुआ। हरिवर्ष को कही-कही अरब या तिब्बत का भी मिलना कहा गया है। इद्र की कन्या जयती का विवाह अग्नीध्र के पौत्र ऋषभ देव से हुआ। आप जैनो के प्रथम तीर्थंकर माने जाते हैं। जान पडता है कि इन्हो ने कुछ धार्मिक नवविचारोत्पादन किया जिस का मूल समय के साथ उन्नति करता हुआ जैन मत बना। इन के पुत्र भरत ने अष्टद्वीप जीते जिन के नाम थे इद्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गोभस्तिमान, नागवर, सौम्य, गधर्व और वरुण। मजुमदार महाशय इन्हे सिंधु, कच्छ, सीलोन, अडमन, नीकोबार, सुमात्रा, जावा और बोर्नियो समझते हैं।

स्वारोचिष मन्वतर में दुर्गापाठ के अनुसार सुरथ नामक एक सार्वभौम राजा हुआ। इसी का सावर्णि मनु होना भी लिखा है। सुरथ के कोला नामक नगर या प्रात का विध्वस शत्रुओ ने किया। अनतर उन से हार कर सुरथ जगल को भाग गया किंतु मत्रियो के पुरुषार्थ से फिर जीत कर राजा हुआ। जगलो मे ऋषियो का सशिष्यवर्ग निवास उसी काल से लिखित है। ऋषियो ने सुरथ से कुछ ऐतिहासिक घटनाए भी कही, जिन का होना इस काल से पूर्व सिद्ध है। महिष जाति का आर्यो से युद्ध, महाप्रलय और शुभ-निशुभ के कथन इसी काल हुए हैं। तामस मनु उत्तम मनु के पुत्र थे। तामस के पुत्र ख्याति, शतहय, जानुजघ आदि थे। रैवत मन्वतर मे वैकुठ-निर्माण कथित हैं। यह कोई उत्कृष्ट नगर होगा।

श्रीभागवत के अनुसार समुद्र-मथन और बलि-बधन चाक्षुष मन्वतर की मुख्य घटनाए है। इस से जान पडता है कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की भी कथाए इसी मन्वतर की हैं। चाक्षुष स्वायभुव के पुत्र उत्तानपाद के वशधर थे। इस वश में ध्रुव, वेन, पृथु और दक्ष महापुरुष थे। वेन ने कोई नया मत चलाना चाहा जिस से रुष्ट

हो कर प्रजा ने उन का वध कर डाला। पृथु इतने महान थे कि पृथ्वी उन की पुत्री मानी गई।

चाक्षुष मन्वतर मे देवासुर-सग्राम एक भारी घटना थी। असुरो मे दैत्य, दानव आदि की सज्ञा थी। समझ पडता है कि वेदो मे भी वर्णित सुरो और असुरो का युद्ध यही देवासुर-वैमनस्य था। पहले तो देवताओ ने हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, बलि आदि को जीत लिया, किंतु पीछे प्रह्लाद नामक कोई दैत्य-सरदार इद्र हो गया, अर्थात् इद्र-पद देवताओ से छिन गया और इन म से कुछ पामीर आदि मे बस गए और शेष वैवस्वत मनु तथा चद्र-पुत्र बुध की अध्यक्षता म भारत चले आए। दैत्य दानवादि जूरास्ट्रियन समझे जाते है। वैदिक पडितो का मत है कि इन्ही से फारस में हार कर देवता भारत म आए। अतएव बलिबधन आदि की घटनाए फारस की समझ पडती है। 'योगवाशिष्ठ' ग्रथ में भी लिखा है कि विष्णु ने प्रह्लाद का देवताओ से मेल करा दिया और यह वचन दिया कि उस काल से दैत्यो का रुधिर पृथ्वी कभी पान न करगी।

सब बातो का प्रयोजन यह निकलता है कि मन्वतर काल म आर्य लोग फारस और भारत दोनो देशो में थे, किंतु चाक्षुप मन्वतर म फारस में हार कर केवल भारत मे रह गए। मन्वतर काल म भारतेतर देशो की भी घटनाए मनुवो से सबद्ध है।[1]

---

[1] हिंदुस्तानी एकेडेमी के छठे साहित्य-सम्मेलन के लिए प्राप्त।

महाराष्ट्र के चार प्रसिद्ध संत-संप्रदाय

[लेखक—श्रीयुत बलदेव उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य]

भारतवर्ष में संत-महात्माओं की संख्या जिस प्रकार अत्यंत अधिक रही है, उसी प्रकार उन के द्वारा स्थापित संप्रदायों की भी संख्या बहुत ही अधिक है। समग्र भारत के संप्रदायों के संक्षिप्त वर्णन के लिए कितने ही बड़े बड़े ग्रंथों की जरूरत पड़ेगी। वह भी किसी एक विद्वान् के मान की बात नहीं। इस लेख में केवल महाराष्ट्र देश में ही समुद्भूत संतों के द्वारा संस्थापित, सुप्रसिद्ध चार संप्रदायों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। अपेक्षाकृत नवीन संप्रदाय का पहले, तदनंतर क्रमशः प्राचीन संप्रदायों का विवरण उपस्थित किया जावेगा।

१—रामदासी

इन चारों संप्रदायों में से अपेक्षाकृत सब से अर्वाचीन यही रामदासी संप्रदाय है। फिर भी यह तीन सौ वर्ष से कम पुराना नहीं है। इस की स्थापना छत्रपति शिवाजी के गुरु, समर्थ स्वामी रामदास जी ने की थी। स्वामी जी का जन्म १६०८ ई० में हुआ था और वैकुंठ-लाभ १६८२ ई० में। इस प्रकार १७वीं शताब्दी के लगभग मध्यकाल में इस संप्रदाय की स्थापना हुई। स्वामी रामदास के जीवन की मोटी-मोटी घटनाएं इतनी प्रसिद्ध हैं कि उन्हें दुहराने की जरूरत नहीं। इतना तो सब लोग जानते हैं कि यह स्वामी जी की ही शिक्षा तथा उपदेश का फल था कि छत्रपति शिवाजी के मन में सनातनधर्म के ऊपर अवलंबित हिंदू-राष्ट्र की संस्थापना का विचार उत्पन्न हुआ, और उन्हों ने उस विचार को कार्य-रूप में भी बड़ी योग्यता से परिणत कर दिखाया। संसार के दुःखद प्रपंच से अलग कर निवृत्ति में ही सुख के भोग को अलापने वाले बहुत से महात्मा मिलेंगे; परन्तु पात्रापात्र का विशद् विचार कर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों के यथायोग्य सम्मेलन पर जोर देने वाले संत-जन कम ही दीखते हैं। स्वामी रामदास जी इस दूसरे प्रकार के

महात्माओ में अग्रणी थे। अत इस रामदासी सप्रदाय का मुख्य अग समाज की ऐहिक तथा पारलौकिक दोनो तरह की उनति करना है। स्वय स्वामी जी ने हरिकथा-निरूपण, राजकारण तथा सावधानगना या उद्योगशीलता को अपने सप्रदाय का मुख्य लक्षण बतलाया है। प्रयत्न, प्रत्यय और प्रबोध—इन्ही तीन शब्दो में रामदास के जीवन तथा ग्रथो का सार है।

रामदासी तथा वारकरी सप्रदायो मे इसी कारण भेद दिखाई पड़ता है। वारकरी सप्रदाय तो सपूर्ण रूप से निवृत्तिपरक है, परतु रामदासी सप्रदाय मे प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनो का यथानुरूप मिश्रण किया गया है। यही इस की विशिष्टता है।

'मानपचक' मे स्वामी जी ने कहा है—

रामदासीं ब्रह्मज्ञान सारासारविचारणा।
धर्मसस्थापने सार्ठी कर्मकांड उपासना॥

सदा जागरूक रहना और यत्न करते रहना—इन दोनो पर स्वामी जी का विशेष पक्षपात था। इन दोनो के आश्रय से केवल ऐहिक सुख की ही प्राप्ति नही मिलती, प्रत्युत पारलौकिक सुख की भी प्राप्ति सहज में हो सकती है। यहा राज्य की प्राप्ति हो सकती है, तो वहा स्वाराज्य की। अत इन्हें उन्हो ने बड़े महत्त्व का बतला कर सदा जागरूकता की सुदर शिक्षा दी है।

राक्षसो के बदीगृह से ऋषियो और देवताओ के उद्धार करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम रामचद्र इस सप्रदाय के उपास्य देवता है, तथा दासमारुति के स्थान पर भीममारुति की उपासना यहा प्रचलित है। रामदास को महात्मा लोग हनुमान जी का अवतार मानते है। स० १५६७–७१ शाक मे हनुमान जी की भिन्न-भिन्न स्थानो पर ११ मूर्तियो की स्थापना स्वामी जी ने की। काशी में भी रामदास द्वारा स्थापित हनुमान जी है। इस सप्रदाय का मुख्य उद्देश्य यह है कि इस के अनुयायी गीता में प्रतिपादित कर्मयोग के सच्चे मार्ग पर शुद्ध मन से चले, जिस से उन का दोनो लोक बन जाय। इस मे गृहस्थ भी है और विरक्त भी। विरक्तो के लिए ब्रह्मचारी रह कर भिक्षा पर अपनी जीविका चला कर निष्काम बुद्धि से समाज का धारण-पोषण करना और साथ ही आत्मज्ञान का सपादन करना आदर्श बतलाया गया है।

'दासबोध' तथा स्वामी जी के अन्य ग्रथ इस सम्प्रदाय के भाषा-ग्रथो मे परम माननीय है। स० १५७० शक से स्वामी जी ने जो रामनवमी का उत्सव आरभ किया वह आज तक बडे समारोह के साथ किया जाता है। हजारो की भीड सिंहगढ आदि स्वामी जी से सबद्ध पवित्र स्थानो पर जुटती है, और कई दिनो तक लगातार 'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम' मत्र का गगन-भेदी कीर्तन होता रहता है। इस की साम्प्रदायिक पद्धति अलग है, तथा रामनवमी के उत्सव मनाने की भी विधि रामदास जी ने ही लिख रक्खी है। स्वामी जी ने राममत्र के ४१ श्लोक लिखे है जो प्रख्यात है। उन में से केवल दो श्लोको को यहा उद्धृत कर और 'मनोबोध' का परिचय दे कर 'रामदासी' के सक्षिप्त वर्णन को समाप्त करते है—

तुला हि तनू मानवी प्राप्त झाली।
बहू जन्म पुण्यें फला लागि आली॥
तिला तू कसा गोविसी विषयीं रे।
हरे राम हा मन्त्र सोपा जपा रे॥
कफें कठ हा रुद्ध होईल जेव्हां।
अकस्मात तो प्राण जाईल तेव्हा॥
तुला कोण तेथे सखे सोयरे रे।
हरे राम हा मत्र सोपा जपा रे॥

रामदास स्वामी ने मन को सबोधन कर ससार की माया को छोड देने और भगवान् की ओर लगने के जो विमल तथा स्फूर्तिदायक उपदेश दिए है वे 'मनोबोधाचे श्लोक' के नाम से प्रसिद्ध है। रामदासी लोगो मे ये पद्य भी खूब प्रसिद्ध है। ये सुदर श्लोक मन पर तुरत असर करने वाले है। प्रात काल उठ कर राम का चितन और रामनाम का भजन करने तथा सदाचार न छोडने की कैसी सुदर शिक्षा मन को दी गई है—

प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।
पुढें वैखरी राम आधी वदावा॥
सदाचार हा थोर सोडू नये तो।
जनीं तोचि तो मानवीं धन्य होतो॥

मन! तू सकल्प विकल्प छोड कर एकात में रमाकात के भजन में सदा लगा रह—

मना ! अल्प सकल्प तोही नसावा ।
सदा सत्यसकल्प चित्तीं बसावा ॥
जनीं जल्प विकल्प तोही त्यजावा ।
रमाकात येकात काली भजावा ॥

२—सत्पंथ

यह विचित्र पथ महाराष्ट्र के धार्मिक सम्प्रदायो मे अन्यतम है। विचित्रता यह है कि इसे चलाया एक मुसलमानी फकीर ने, पर इसे मानते है हिंदू और इसे वैदिक धर्म के विधि-आचार जैसे मौंजी बधन, शिखा-सूत्र, चार वर्ण और चार आश्रम आदि सब मान्य है। खानदेश के फैजपुर में (जहा गत काग्रेस हुई थी) सत्पथियो का एक प्रसिद्ध धर्म-मदिर है। उसी मठ के अधिकारी ने इस सम्प्रदाय का सक्षिप्त वर्णन लिखा है जो महाराष्ट्रीय 'ज्ञानकोश' के २०वे भाग में प्रकाशित हुआ है उसी के आधार पर यह प्रामाणिक वर्णन दिया जाता है।

सन् १४४६ ई० म इसे इमाम शाह नामक मुसलमानी फकीर ने स्थापित किया। ये ईरान के निवासी थे और घूमते घामते गुजरात में आए थे। अहमदावाद से नौ मील दक्षिण गीरमथा गाँव के पास ये रहते थे। पहुँचे हुए सिद्ध थे। इन के चमत्कार को देख कर अनेक लोग इन के भक्त बन गए। बाबा के पाँच पट्ट शिष्य हुए जिन मे एक मुसलमान था और चार हिंदू। मुसलमान शिष्य का नाम हाजर बेग, तथा हिंदू शिष्यो का भाभाराम, नागाकाका, साराकाका था। पाँचवी शिष्या थी। यह चिचिबाई भाभाराम की बहिन थी। इस पथ के अनुयायियो की सख्या काठियावाड, गुजरात मे खूब अधिक है। महाराष्ट्र में खानदेश के गाँवो म ही विशेष कर के सत्पथी गृहस्थ पाए जाते है।

'पिराणा' नामक स्थान म इमाम शाह की गद्दी है, जहाँ पर प्रत्येक मास की शुद्ध द्वितीया, गोकुलाष्टमी, रामनवमी, ध्रुवाष्टमी तथा भाद्र के शुद्ध एकादशी को बडा मेला लगता है जिस में हिंदू लोग हजारो की सख्या में भाग लेते है। इस मत में ब्राह्मण भी है, परतु अधिक सख्या वनिया, कुनबी तथा नोनिया आदि जातियो की है जो इमाम-

शाही कहलाते हैं। इस शाखा में मुसलमान शिष्य बिल्कुल नहीं हैं। गद्दी पर ब्रह्मचारी के ही बैठने की चाल है और वह लेवा (घर बनाने वाले) पाटीदार ज्ञात का होता है। फैजपुर में और खानदेश के अन्य गांवों में भी इन की खासी संख्या है।

ये लोग भागवत, रामायण, गीता आदि धर्म-ग्रंथों को तो मानते ही हैं, साथ ही इमाम शाह के लिखे गुरूपदेश को भी मानते हैं, जिस में हिंदू-धर्म के ग्रंथों के वचन संग्रहीत हैं। इस के अतिरिक्त इस मत के २१ विशिष्ट ग्रंथ हैं जो अधिकांश गुजराती और हिंदी में लिखे गए हैं। कुछ के नाम ये हैं—'जोगवाणी' (गु०), 'बोधरास' (गु०) 'सत्-वचन' (गु०, हि०), 'ब्रह्मप्रकाश' (हि०) आदि। इन के देखने से इन के मत का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। इन लोगों का गुरु-मंत्र है—'शिवोऽहम्'। यह बाल-विवाह करते हैं। विधवा-विवाह की भी चलन है। श्राद्ध करते हैं। साथ ही मंदिरों में प्रेतात्मा की उत्तम लोक की प्राप्ति की इच्छा से 'उच्चासन' नामक विधि भी की जाती है। इस मत का साहित्य अल्प ही है।

३—महानुभाव पंथ

इस पंथ के भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न नाम हैं। महाराष्ट्र में इसे महात्मा पंथ तथा मानभाव (जो महानुभाव शब्द का अपभ्रंश है) पंथ कहते हैं। गुजरात में अच्युत पंथ और पंजाब में जयकृष्णि पंथ के नाम से पुकारते हैं। इस नामकरण का कारण पंथ में कृष्णभक्ति की प्रधानता है। इस पंथ के वास्तविक इतिहास का पता अभी लगा है क्योंकि इस के अनुयायी अपने धर्म-ग्रंथों को अत्यंत गुप्त रक्खा करते थे। वे उसे अन्य मतावलंबियों की दृष्टि में भी आने नहीं देते थे। इस पंथ की भिन्न-भिन्न शाखाओं ने अपने धर्म-ग्रंथ के लिए एक सांकेतिक लिपि बना रक्खी है जो शाखा-भेद के अनुसार छब्बीस हैं। अतः संयोगवश इन के ग्रंथ इतर लोगों के हाथ में भी आ जायें तो आना न आना बराबर रहता था, क्योंकि लिपि के सांकेतिक होने से वे उस का एक अक्षर न बांच सकते थे और न समझ ही सकते थे। परन्तु इस बीसवीं सदी के आरंभ से इन का कुछ रुख बदला है; इतर लोगों ने इन के ग्रंथों को पढ़ा है, और प्रकाशित किया है। स्वयं लोकमान्य तिलक ने १८९९ ई० के 'केसरी' में मानभावों पर अनेक पांडित्य-पूर्ण लेख लिखे थे। परन्तु इन की लिपि के रहस्य को ठीक-ठीक समझाने का काम किया प्रसिद्ध इतिहासज्ञ राजवाड़े ने

और इन के ग्रंथो के मर्म बतलाने का काम किया 'महाराष्ट्र-सारस्वत' के लेखक भावे ने और 'महानुभावी मराठी वाङ्मय' के रचयिता श्री यशवत देशपाडे ने। इन्ही विद्वानो के शोध के बल पर आज इन के मत, सिद्धात, ग्रंथ तथा इतिहास का बहुत कुछ प्रामाणिक पता चला है।

महाराष्ट्र देश में मानभावो के प्रति लोगो में बडी अश्रद्धा है। सवेरे-सवेरे मानभाव का मुँह देखना ही क्यो उस का नाम लेना भी अपशकुन माना जाता है। एक प्रचलित कहावत है—'करणी कसावाची, बोलणी मानभावाची', अर्थात् करनी तो क़साई की है और बोली मानभाव की। साधारण बोलचाल मे मानभाव और क़साई दोनो को एक ही श्रेणी मे रखने मे लोग नही हिचकते। मानभाव गृहस्थ अपने धर्म को कदापि नही प्रकट करता था। वह छिप कर अपना जीवन बिताता था। बडे-बडे सतो की भी यही बात थी। एकनाथ, तुकाराम आदि महात्माओ की बानी में भी मानभावो के प्रति अनादर भरा हुआ है। इस प्रकार इन का सर्वत्र तिरस्कार होता था, इन के प्रति सर्वत्र द्वेष फैला हुआ था। आज कल यह कुछ कम हुआ है, परतु फिर भी यह है ही। इस तिरस्कार का कारण इन के इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट मालूम पडता है। शक की १२वी सदी में यह मत जनमा। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय मत के उपास्य देवता है। देवगिरि के यादव नरेश महादेव और रामराय इन के गुरुओ और आचार्यों को बडे सम्मान के साथ सभा में बुलाते थे। मुसलमानो के आने से वह समय पलट गया। मानभावो ने भी मुसलमानो के हिंदूधर्म के प्रति किए गए छल और अत्याचार को देख कर अपने धर्म के रहस्यो को छिपाया। ये लोग मूर्तिपूजा को नही मानते। अत यवनो ने इन्हे मूर्तिपूजक हिंदुओ से अलग समझा और इन के साथ कुछ रियायत की। बस हिंदू लोग इन से बिगड गए और इन्हे दग़ाबाज़ समझने लगे। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय से सबद्ध तीर्थ-स्थानो पर ये अपना 'चबूतरा' बनाने लगे। स्त्री शूद्रो के लिए भी सन्यास की व्यवस्था की। भगवाधारी सन्यासी से भेद बतलाने के लिए इन के सन्यासी काला कपडा पहनने लगे। इन्ही सब 'अहिंदू' आचारो से हिंदू जनता बिगड गई और इन्हे कपटी, छली, दुष्ट तथा वचक समझने लगी। सौभाग्य-वश यह भाव समय की अनुकूलता से पलट रहा है।

इस मत का आज कल प्रचार केवल महाराष्ट्र ही मे नही है, प्रत्युत गुजरात, पजाब, यू० पी० के कुछ भाग, कश्मीर तथा सुदूर काबुल तक है। हिंदुओ मे वर्ण-भेद को

मिटा कर सब में समानता तथा मैत्री का प्रचार करना ही इस पंथ का उद्देश्य है। इस के संस्थापक हैं चक्रधर जो भड़ोच के राजा थे और जिन का असली नाम था हरपाल देव। पीछे इन्हीं का नाम चक्रधर पड़ा। ११८५ शक में इन्हों ने सन्यास की दीक्षा ली और शिष्य-मंडली इन के विचित्र चमत्कार को देख कर जुटने लगी। इन्हों ने ५०० शिष्य किए जो गुजराती थे। पीछे महाराष्ट्र में यह मत फैला। इस की भिन्न भिन्न १३ शाखाएं हैं जिन्हें आम्नाय कहते हैं। इन शिष्यों में प्रधान नागदेवाचार्य थे जिन के सतत उद्योग से इस का प्रचुर प्रचार हुआ। इन्हें वेदशास्त्र सब मान्य हैं। संस्थापक भी ब्राह्मण थे तथा तीन सौ वर्षों तक ब्राह्मण ही इस के प्रमुख नेता होते थे। इन के दो वर्ग हैं—उपदेशी और सन्यासी। उपदेशी गृहस्थ हैं वर्ण-व्यवस्था मानते हैं और उन का विवाह स्वजातीयों में ही हुआ करता है। सन्यासी स्त्री और शूद्र भी हो सकते हैं। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय उपास्य देवता हैं। गीता मान्य धर्मग्रंथ है। इस कारण चक्रधर के समय से ले कर आज तक अनेक मानभावी संतों ने स्वमतानुसार गीता पर टीकाएं लिखी हैं। ये लोग द्वैतवादी हैं। परमेश्वर को निर्गुण निराकार मानते हैं जो भक्तों पर कृपावश साकार रूप धारण कर लेता है।

महानुभाव संप्रदाय में जितने ग्रंथ उपलब्ध हैं उतने शायद ही तत्सदृश अन्य मत में हों। सब से बड़ी विशेषता इन का प्राचीन साहित्य है। 'ज्ञानेश्वरी' (श० १२१२) ही मराठी साहित्य का आद्य-ग्रंथ अब तक माना जाता था परंतु मानभावों के प्राचीन ग्रंथों की उपलब्धि के कारण यह मत अब बदल गया है क्योंकि ज्ञानेश्वर महाराज से पूर्व के भी अनेक मानभावी गद्य तथा पद्य ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। महींद्र भट्ट का 'लीला चरित्र' (चक्रधर स्वामी का जीवन-वृत्त श० ११६५) भास्कर कवि का ओवी बद्ध 'शिशुपाल वध' और 'एकादश स्कंध भागवत' और 'कृष्णचरित्र' (गद्य) केशव व्यास और गोपाल पंडित का 'सिद्धांत-सूत्रपाठ' (गद्य) जो इस मत का प्रधान दर्शन ग्रंथ माना जाता है और जिस की व्याख्या में अनेकानेक ग्रंथ बने हैं—आदि बहुत ग्रंथ ज्ञानेश्वरी से भी पूर्व के हैं। अतः मानभावों का उपकार मराठी साहित्य पर बहुत अधिक है। इतना ही नहीं इन्हों ने पंजाब जैसे यवन प्रधान देश में अहिंसा का प्रचार किया काबुल में हिंदू मंदिर बनाया जिस का पहला पुजारी नागेंद्र मुनि बीजापुरकर नामक दक्षिणी ब्राह्मण था खास महाराष्ट्र में भी मद्यमांस के निवारण का प्रयत्न किया। मराठी भाषा के ऊपर भी इन का

उपकार कैसे गिनाया जाय ? इन्हो ने ग़ज़नी, काबुल तक मराठी भाषा का प्रचार किया। दोस्त मुहम्मद का प्रधान विचारदास, और कश्मीर के महाराज गुलाब सिंह का सेना पति सरदार भगत सुजन राय दोनो मानभावी उपदेशी थ। अत इन्हो न मराठी को धम-भाषा अपन राज्य म बनाया था। आज भी लाहौर म बहुत से व्यापारी मानभावी हैं जो अपन खर्चे से मानभावी ग्रथो का प्रकाशन भी कर रहे हैं। इस मत के महत लोग भी अब अपन धमग्रथो को, जिन की विपुल सख्या आज भी मराठी भाषा म विद्यमान है, प्रकाशित करन की ओर अग्रसर दीखते हैं। यह मराठी साहित्य के लिए शुभ अवसर है।

४—वारकरी पंथ

यह सप्रदाय महाराष्ट्र देश को धार्मिकता की बहुमूल्य विभूति है। यह वही जनमा, वही पनपा वही इस ने शाखाओ का विस्तार किया और आज भी वही पूर देश भर म अपनी शीतल छाया म हजारो भक्त नर-नारियो को विश्राम दे कर सासारिक ताप से उन्ह मुक्त कर रहा है। इस सप्रदाय का इतिहास लिखना क्या है पूरे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सतो के जीवन, प्रभाव, और कार्य का प्रदशन करना है, क्योकि रामदासियो की सख्या छोड देन पर अधिकाश महाराष्ट्रीय सत इसी पथ के अनुयायी थ। इन सतो से परिचित होन के पहल इस पथ के नाम का ठीक-ठीक अथ जान लना नितात उचित है।

महाराष्ट्र में पढरपुर नामक एक प्रसिद्ध तीथस्थल है। वहा विट्ठलनाथ जी की मूर्ति है। विट्ठल' शब्द विष्णु शब्द का अपभ्रश प्रतीत होता है। अत विट्ठलनाथ जी कृष्णचद्र के बाल-रूप हैं। आषाढ की शुक्ला एकादशी और कार्तिक की शुक्ला एकादशी को साल में कम से कम दो बार विट्ठल के भक्तजन पढरपुर की यात्रा किया करते हैं। इसी यात्रा का नाम है—वारी। अत इस पुण्य-यात्रा के करन वालो का नाम हुआ—वारकरी। इसी कारण इस पथ का नाम वारकरी पथ पडा है। महाराष्ट्र म एक बड महात्मा पुडलीक हो गए हैं जिन की भक्ति से प्रसन्न हो कर स्वय कृष्णचद्र बाल रूप धारण कर उन के सामन प्रकट हुए और उन्हो न उन के बैठन के लिए एक इट रख दी जिस पर वे खड हो गए। ईंट पर वह खडी मूर्ति श्री विट्ठलनाथ जी की है। बाल कृष्ण को तुलसी बडी प्यारी है। अत भक्त लोग गले में तुलसी की माला डाल कर पूर्वोक्त

एकादशी को लाखो की संख्या मे विट्ठल जी के मधुर दर्शन कर अपने जीवन को सफल करने के लिए जब इकट्ठे होते है और जब उन के भक्त कंठ से 'पुंडलीक वरदा हरि विट्ठल' मंत्र की शब्दध्वनि गगन-मंडल को भेदन करती हुई निकलती है, तब का दृश्य शब्दो में वर्णन करने के योग्य नहीं। उस समय प्रतीत होता है कि धार्मिकता की बाढ आ गई हो। भक्तजनो के मनोमयूर नाचने लगते हैं। आनंद की सरिता बहने लगती है। इन मे आषाढी एकादशी (हरिशयनी) को ता सब से अधिक भीड होती है। तीन लाख से भी ऊपर भक्तजन एकत्र होते हैं। इस दृश्य की कल्पना भी वारकरी मत्ता के व्यापक प्रभाव को आज भी बतलाने में समर्थ हो सकती है।

यह वारकरी संप्रदाय पूर्णतया वैदिक धर्मानुकूल है। जिन्हें इस की उत्पत्ति में अवैदिकता की बू आती है, वे गलती पर हैं। यह बिल्कुल भागवत-संप्रदाय है। भगवान् कृष्ण की भक्ति ही मोक्ष का प्रधान साधन है। भक्तिमार्गी होने पर भी यह पंथ माध्वा-दिमता के सदृश द्वैतवादी नहीं है, प्रत्युत पक्का अद्वैतवादी है। अद्वैतवाद के साथ भक्ति का मेल करा देना इस मार्ग की अपनी विशेषता है। यह भक्ति ज्ञान के प्रतिकूल नहीं है, प्रत्युत एकनाथ महाराज के कथनानुसार भक्ति मूल है और ज्ञान फल है। जिस प्रकार बिना मूल रहे फल पाने की संभावना नहीं रहती, उसी तरह बिना भक्ति के, ज्ञान के उत्पन्न होने की भी बात असंभव है। भक्ति तथा ज्ञान दोनों का समन्वय इस मार्ग में है। एकनाथ जी ने अपने 'भागवत' मे स्पष्ट कहा है—

भक्ति तें मूळ ज्ञान तें फळ।
वैराग्य केवळ तेयीं चें फूल॥
भक्ति युक्त ज्ञान तेथें नाहीं पतन।
भक्ति माता तया करिती से जतन॥

भगवान् की प्राप्ति के लिए अन्य साधन बडे कठिन हैं। यदि कोई सुलभ और सहज साधन हाथ के पास है, तो वह हरिभजन ही है। इसी लिए इन संतो ने हरिभजन पर इतना जोर दिया है। इन का निश्चित मत है कि श्री पंढरीनाथ की भजन द्वारा उपासना करने से भक्तो के अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनो की सिद्धि होती है।

इस पंथ में चार संप्रदाय है—(१) चैतन्य संप्रदाय—इस मत में दो भेद हैं। एक में 'राम-कृष्ण-हरि' यह षडक्षरी मंत्र है, और दूसरे में प्रसिद्ध द्वादशाक्षरी मंत्र। (२)

स्वरूप संप्रदाय—इस का 'श्री राम जय राम जय जय राम' यह त्रयोदशाक्षरी मंत्र है। इस के दो छोटे-छोटे उप-संप्रदाय हैं। (३) आनंद संप्रदाय—इस का त्र्यक्षरी मंत्र है 'श्री राम' और द्व्यक्षरी मंत्र केवल 'राम'। इस के अंतर्गत नारद, वाल्मीकि, रामानंद, कबीर आदि संत माने जाते हैं। (४) प्रकाश संप्रदाय—इस का मंत्र है 'ॐ नमो नारायण'। इस प्रकार मंत्र के भेद से वारकरी पंथ के इतने प्रभेद हैं।

यह पंथ प्रधानतया कृष्णभक्ति-मूलक होने पर भी शिव का विरोधी नहीं है। इस में हरि और हर दोनों की एकता ही मानी जाती है। यह इस की बड़ी विशिष्टता है। स्वयं पंढरीनाथ के सिर पर शिव की मूर्ति विराजमान है, तब पंढरीराय के भक्त का शिव से विरोध भला कभी हो सकता है? ये लोग जिस प्रकार एकादशी के दिन व्रत रहते हैं, उसी भाँति शिवरात्रि और सोमवार को भी। इन्हीं के कारण महाराष्ट्र देश में दक्षिण-देश के समान शिव-विष्णु के मतभेद का नाम निशान भी नहीं है। यद्यपि प्रधानतया विट्ठल नाथ ही उपास्य देवता हैं, पर साथ ही साथ अन्य हिंदू देवताओं की भी पूजा और आराधना इस मत में चलती है। ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम जी इस संप्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा हो गए हैं जिन से संबद्ध सब स्थान तीर्थ के समान पवित्र माने जाते हैं। इन के मान्य ग्रंथ 'भागवत' तथा 'गीता' तो हैं ही, साथ ही मराठी ग्रंथों में 'ज्ञानेश्वरी', 'एकनाथी भागवत' तथा तुकाराम के 'अभंग' इन के मान्य धर्मग्रंथ हैं जिन का पठन-पाठन गुरु-परंपरा से लिया जाता है। महाराष्ट्र में आज भी अनेक कीर्तनकार हैं जो इन ग्रंथों के सांप्रदायिक अर्थ की व्याख्या बड़ी विद्वत्ता और मार्मिकता के साथ करते हैं और आज भी इन कीर्तनकारों की वानी में ज़ोर है, प्रभाव है, और महात्माओं की वाणी को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य है।

इस मत के सब संतों के परिचय देने के लिए यहां स्थान नहीं है। इस के लिए तो एक पुस्तक लिखी जा सकती है। यहां पर केवल प्रसिद्ध संतों के ही कुछ नाम दिए जाते हैं—

संतनाम	काल : शक	समाधिस्थान
निवृत्तिनाथ	११९५—१२१९	त्र्यंबकेश्वर
ज्ञानेश्वर महाराज	११९७—१२१८	आलंदी
सोपान देव . .	११९९—१२१८	सासवड

संतनाम	काल शक	समाधिस्थान
मुक्ताबाई	१२०१–१२१६	एदलाबाद
विसोबा खेचर	१२३१	
नामदेव	११६२–१२७२	पंढरपुर
गोरा कुंभार	११८६–१२३६	तेर
सावता माली	१२१७	अरणभेंडी
नरहरी सोनार	१२३५	पंढरपुर
चोखा मेला	१२६०	पंढरपुर
जगमित्र नागा	१२५२	परली (वैजनाथ)
कूर्मदास	१२५३	लऊळ
जनाबाई		पंढरपुर
चांगदेव	१२२७	पुणतांब
भानुदास	१३७०	पैठण
एकनाथ	१४७०–१५२१	पैठण
राघव चैतन्य		ओतूर
केशव चैतन्य	१३६३	गुलबर्गा
तुकाराम	१५७२	देहू
निलोबा राय		पिंपलनेर
शंकर स्वामी		शिरूर
मल्लाप्पा		आलंदी
मुकुंद राज		आंबें
कान्होपात्रा		पंढरपुर
जोगा परमानंद		बार्शी[1]

ये सब संत महात्मा कृष्णभक्ति के प्रसारक हुए। इन में बड़ा-छोटा कहना अपराध है। फिर भी इन में से चार महात्माओं ने कृष्ण भक्ति के देवालय को महाराष्ट्र में बनाया और सजाया। पंथ की उत्पत्ति का पता नहीं, परंतु ज्ञानदेव महाराज ने इस मंदिर का पाया 'ज्ञानेश्वरी' के द्वारा खड़ा किया, नामदेव ने अपने भजनों से इस का

[1] यह सूची प्रोफ़ेसर शंकर वामन दाडेकर के लेख 'महाराष्ट्रीय ज्ञान' के भाग २० के पृ० १७६ से यहां उद्धृत की गई है।

३

विस्तार किया; एकनाथ महाराज ने अपने 'भागवत' की पताका फहराई और तुकाराम महाराज ने अपने अभंगो की रचना कर इस के ऊपर कलश स्थापन किया। तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई ने अपने निम्नलिखित अभंगो में इसी बात को कितने सरल शब्दों में कहा है—

सत कृपा झाली।
इमारत फला आली ॥१॥
ज्ञानदेवें रचिला पाया।
रचियेलें देवालया ॥२॥
नामा तयाचा किंकर।
तेणें केला हा विस्तार ॥३॥
जनार्दन एकनाथ।
ध्वज उभारिला भागवत ॥४॥
भजन करा सावकाश।
तुका झाला से कलश ॥५॥

जब इतने बडे सिद्ध पुरुषो ने अपना चित्त लगा कर इस भक्ति-मंदिर का निर्माण किया है तथा उसे अलंकृत किया है, तब उस की महिमा कैसे बतलाई जा सकती है? धन्य है वह देश जहा ऐसे सिद्ध पुरुष जनमे, और धन्य है वे महात्मा-गण जिन्हो ने सहज भाषा में भगवान् की प्राप्ति का सुगम और सुलभ मार्ग कर जन-साधारण का कल्पनातीत उपकार किया! अंत में शंकराचार्य के 'पांडुरंगाष्टक' से विट्ठलनाथ की स्तुति में एक पद्य तथा 'ज्ञानेश्वरी से' कुछ *ओविया उद्धृत कर यह लेख समाप्त किया जाता है—*

महायोग पीठे तटे भीमरथ्या
वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः।
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं
परब्रह्म लिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥

जय जय देव निर्मल। निजजनाखिलमंगल।
जन्म जरा जलद जाल। प्रभञ्जन ॥१॥

जय जय देव प्रबल । विदलितामङ्गलकुल ।
निगमागम द्रुमफल । फलप्रद ॥२॥
जय जय देव निश्चल । चलित चित्तपान तुन्दिल ।
जगदुन्मीलनाविरल । केलिप्रिय ॥३॥
जय जय देव निष्फल । स्फुरदमन्दानन्द बहल ।
नित्यनिरस्ताखिलमल । मूलभूत ॥४॥

आधुनिक उर्दू कविता में गीत

[लेखक—श्रीयुत उपेंद्रनाथ, 'अश्क']

हिंदुस्तानी' के पिछले अंक में आधुनिक उर्दू कविता के विषय में कुछ निवेदन किया जा चुका है। हम ने कृष्ण, वसंत और होली, एकता और देश, माया, संसार और जीवन संबंधी गीतों से परिचय प्राप्त किया है। लेख के इस उत्तरार्द्ध में उर्दू के गीत-साहित्य के अवशिष्ट अंगों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न होगा।

रहस्यवादी गीत

हिंदी में आज कल छायावाद की बड़ी धूम है। रहस्यवाद का ही दूसरा नाम छायावाद है। हिंदी का सब से पहला रहस्यवादी कवि कबीर हुआ है। आज कल तो हिंदी में रहस्यवाद की बड़ी सुंदर कविता हो रही है। उर्दू साहित्य भी हिंदी की इस धारा से प्रभावित हुआ है। मौलाना 'वक़ार' ने 'उस पार' शीर्षक कविता में लिखा है—

मुझ पै चला है मंतर किसका ?
धरती किस की अंबर किसका ?
सूरज किस का सागर किसका ?
कौन बसत उस पार,
सजनी,
कौन बसत उस पार ?
नीला अंबर सुंदर तारे,
यह सागर वे मोती सारे,
चाँद की नैया धारे-धारे—
किरणों की पतवार,
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

बन के ऊँचे वृक्ष घनेरे,
चीते शेर और लाल बघेरे,
फिरते हैं दौड़े शाम-सवेरे—
मोरो की झकार,
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

हिंदी के छायावादी कवियो के सम्मुख यह चीज़ कदाचित् बहुत फीकी जान पडेगी, किंतु इस से यह तो ज्ञात हो ही जायगा कि हिंदी भाषा ही नही, उस के भावो का भी उर्दू गीतो पर प्रभाव पडा है।

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' अपने काव्य 'अनत के पथ पर' मे ऐसी ही अनत के पथ पर चलन वाली का चित्र खीचते है जो सृष्टि और इस की अद्भुत चीजो को देख कर आश्चर्यान्वित रह जाती है और उस के हृदय में एसे ही प्रश्न उठते हैं। वह भी पूछती है—

इस रत्न-जटित अबर को
किस ने वसुधा पर छाया ?
करुणा की किरणें चमका
क्यो अपना आप छिपाया ?
नभ के परदे के पीछे
करता है कौन इशारे ?
सहसा किस ने जीवन के
खोले हैं बधन सारे ?

इसी किस' की तलाश में वह अपनी कुटिया से चल देती है। 'वक़ार' साहब लिखते हैं—

पीत का किस को रोग लिया है ?
ऐश को छोडा सोग लिया है—
याद में किस को जोग लिया है ?

त्याग दिया घर बार
सजनी,
कौन बसत उस पार?
जोत जगी हूं किस को मन में?
बीत रही हूं किस की लगन में?
ढूंढ रही हूं किस को बन में?
किस के हूं बलिहार?
सजनी,
कौन बसत उस पार?
ज्ञान का सागर लहरें मारे
ध्यान की नैया धारे-धारे
सांस है नैया खेवन हारे
कठिन बड़ो मंझधार
सजनी,
कौन बसत उस पार?

प्रेमी जी की 'अनत के पथ पर' चल निकलने वाली भी ऐसे ही कहती है—

किस का अभाव मानस में
सहसा शशि-सा आ चमका?
है क्या रहस्य, बतला दे
कोई इस अंतर-तम का?
इन सरल-तरल नयनो में
किस की उज्ज्वल छबि छाई?
किस ने मेरे प्राणो में
अपनी तस्वीर बनाई?
अब पथ भूली उस सुख का
पाया यह कंटक-कानन
किस ओर बहा जाता है
अब मेरा आकुल जीवन?

इन दोनो कविताओ को देने से मेरा तात्पर्य कदापि यह दर्शाना नही कि 'वकार' साहब ने प्रेमी जी की कविता को देख कर अपनी कविता लिखी है। कहना केवल यह है कि उर्दू में भी हिंदी जैसी, हिंदी के भावो से ओत प्रोत कविताए लिखी जा रही हैं।

यो तो उर्दू के कवियो पर रहस्यवाद का प्रभाव खूब रहा है। ग़ालिब का शेर

नक़्श फरियादी है किस की शोख़िए तहरीर का।
काग़जी है पैरहन हर पैकरे तस्वीर का॥

रहस्यवादी कविता का उत्तम उदाहरण है। उर्दू गज़लो मे बीसियो ऐसे शेर मिल जायँगे और प्राचीन ढग की गज़लें कहने वाले आज कल के उर्दू कवियो में भी यह रहस्यवाद किसी न किसी अश में पाया जाता है। 'वर्क़' का एक सरल पर रहस्यवादी शेर है—

सौ बार यहा हम आए भी यह बात न लेकिन जान सके।
यह आना-जाना कैसा है क्यों आते-जाते रहते है?

परतु इस विषय के जो गीत उर्दू के कवि आज कल लिख रहे है उन में हिंदी से जो भाषा-साम्य है मेरा तात्पर्य उस की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करना ही है।

विरहिन के गीत

ससार का साहित्य वियोग की करुण भावनाओ से भरा हुआ है। श्रीयुत पत लिखते है—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।

उर्दू में भी हिज्रो-फिराक़ सदैव मे कवियो के आकुल मन में उथल-पुथल मचाते रहे है। वियोग चाहे किसी का हो हृदय को विकल कर देता है, रुला देता है। कौन जाने इस ससार में दिन रात वियोग की अग्नि में कितने हृदय जल कर भस्म हो रहे हैं। भावुक पजाब के प्राणो पर तो वियोग का साम्राज्य ही है। अपने माता पिता की जुदाई के खयाल से ही पजाबी बहन सिहर उठती है और जी मे रो कर गा उठती है—

साडा चिडियाँ दा चम्बा वे
बाबल असा उड जाना।[1]

---

[1] ऐ पिता, हम सहेलियो का गुट तो चिडियों के चबे (झुड) जैसा है, हमें तो एक न एक दिन विभिन्न दिशाओं में उड जाना है।

और फिर

खेडन दे दिन चार नी माए
बरजत नाहीं।[1]

पजाबी युवती फुरकत की मारी बैठी है। कव्वा मुडेर पर आ कर कायें-कायें करता है परतु निराशा इस हद तक बढ गई है कि कव्वे के बोलने से भी आशा नही बँधती। जल कर उसे कहती है—

तेरी काका कागा अडिया, हुन मेरे जी नू साडे।
ओह न आए अखा पक गइयाँ बीते कई दिहाडे।
चगा है जल जल बुझ जाइये भुकन सगर पुआडे।
दोस भला की तेरा कागा है कर्म असाडे माडे।[2]

उर्दू कविता में विरहिन के गीत हिंदी के प्रभाव के बाद ही लिखे गए है। उर्दू का हिज्रो-फिराक प्रमी को ही तडपाता रहा है, प्रमिका को नही, परतु जहा हिंदी ने अन्य बातो में पजाब की उर्दू कविता पर प्रभाव डाला है, वहा हिंदी की कविता के करुण स्रोत ने भी उर्दू शायरो को मोहित किया है।

विरहिन के गीतो का आरभ कैसे हुआ, इस विषय पर मै कुछ नही कह सकता। इतना ही कहना काफी है कि इस शीर्षक से अनगिनत गीत लिखे गए है। आठ-नौ साल पहले जब पजाब मे एसे गीत नजर न आते थे मै ने स्वय एक गीत 'विरहिन का वसत' शीर्षक से लिखा था, जो गवर्नमट कालिज होशियारपुर के हिंदी कवि-सम्मेलन मे पढा गया था। श्री 'हफीज' होशियारपुरी[3] ने भी जो उस समय उस कालिज के छात्र थे

---

[1] ऐ माता, ये चार दिन ही तो खेलने के है तू क्यो मुझे रोकती है ?—इस एक ही वाक्य में जुदाई के खयाल और सुसराल के व्यस्त जीवन की झलक और उस से उत्पन्न होने वाली कैसी हसरत मौजूद है इस का पाठक भली भाँति अनुमान कर सकते है।

[2] 'ऐ काग अब तेरी कायें-कायें मेरे जी को जलाती है। प्रतीक्षा करते करते मेरी आँखें पक गई है, कई दिन बीत गए है पर वे नहीं आए। अब तेरे बोलने से आशा बँधे तो कैसे बँधे ? विरह की आग में तिल तिल जलने से तो यह अच्छा है कि मै शीघ्र ही जल कर सदैव के लिए बुझ जाऊँ।' फिर दूसरे क्षण जब निराशा चरम सीमा तक पहुँच कर हृदय में कुछ शाति उत्पन्न करती है तो, विरहिन कहती है, 'ऐ कव्वे मै तुझे तो व्यर्थ में दोष दे रही हू। वास्तव में दोष तो सब मेरे भाग्य का ही है।'

[3] 'हफीज' जालधरी और 'हफीज' होशियारपुरी दो भिन्न व्यक्ति है।

४

हिंदी मे एक गीत लिखा था और मुसलमान होते हुए भी हिंदी में अच्छा गीत लिखने पर उन की विशेष प्रशसा भी हुई थी।

मौलाना, 'वकार,' पडित बिहारी लाल, पडित इद्रजीत शर्मा, श्री 'कंस' और दूसरो ने विरह भावनाओ को प्रदर्शित करने वाले बीसियो गीत लिखे हैं। हाल ही में उर्दू के प्रख्यात कवि मौलाना 'फाखिर', हरियानवी, जिन्हो ने 'वहा ले चल मेरा चरखा, जहा चलते हैं हल तेरे', 'जफावाले', आदि नज्में लिख कर उर्दू में काफी ख्याति प्राप्त की है, *'विरहिन का गीत' शीर्षक से एक गीत लिखा है* —

घर है सूना रात उदास
दीरघ दिन अधियारी रातें
कैसे गुजरेंगी बरसातें
झूठी थीं सब उन की बातें
रहता है अब यह विश्वास
घर है सूना रात उदास
मैं दुखियारी पीत की मारी
पड गई मुझ पर बिपता भारी
मन में सुलग रही अँगियारी
कौन बुझाये दिल की प्यास
घर है सूना रात उदास
छाई है घनघोर घटाए
चलती है पुरशोर हवाए
मन के मीत अगर आ जाए
तो पूरी हो मन की आस
घर है सूना रात उदास

इसी सबध में श्री 'हफीज' होशियारपुरी का गीत देने योग्य है। कोई विरह की मारी बैठी है, प्रतीक्षा करते-करते सध्या हो जाती है, परतु उस का प्रियतम नही आता, जल कर कह उठती है—

आग लगे इस मन में आग

लो फिर रात बिरह की आई
चारों ओर उदासी छाई
जान मेरी तन में घबराई
अपनी क़िस्मत अपने भाग
आग लगे इस मन में आग

काली और बरसती रैन
उस बिन नींद को तरसे नैन
जिस के साथ गया सुख चैन
उस की याद कहे अब जाग
आग लगे इस मन में आग

जिस दिन से वह पास नहीं है
कोई ख़ुशी भी रास नहीं है
जीने तक की आस नही है
जान को है अब तन से लाग
आग लगे इस मन में आग

कौन जिए और किस के सहारे
मीठे-मीठे बोल सिधारे
गीत कहा वे प्यारे-प्यारे
अब न तान न अब वे राग
आग लगे इस मन में आग

और फिर जल कर ताना देते हुए कहती है—

दरस दिखा कर जो छुप जाए
कौन ऐसे से प्रीत लगाए
क्यों अपनी कोई दसा सुनाए
छोड़ मुहब्बत का खटराग
आग लगे इस मन में आग

श्री अमरचद 'कंस' का गीत 'पी दर्शन की प्यास' भी काफी लोक-प्रिय हुआ है। वह लिखते हैं—

फुलवाड़ी में फूल हैं फूले,
सखियो ने डाले हैं झूले,
वह अपनी दासी को भूले—
हो कर किस के दास?
लगी है पी दर्शन की प्यास।

सुख को मतलब बेचैनो से,
काम है सारा दिन बैनों से,
कितने दूर हैं वे नैनो से—
जो थे हर दम पास?
लगी है पी दर्शन की प्यास।

बरसो बीते आँख लगाए,
इक जा पर सौ-सौ दुख पाए,
ये बिन आए उन ना आए—
टूट चली है आस;
लगी है पी दर्शन की प्यास।

मै मानता हू कि इन गीतो मे 'आज क्यो तेरी वीणा मौन ?', 'प्रेम-पथ पर दुख ही दुख है' और ऐसे ही दूसरे उच्च कोटि के हिंदी गीतों की उडान नही, परतु इतना मै कहूँगा कि इन सब में दिल है, दिल की कसक और दिल के उद्‌गार भी है और भाषा के अत्यत सरल होने के कारण यह दिल मे घर भी कम नही करते ।

स्मृति के गीत

स्मृति के गीत भी वास्तव मे विरह के गीत ही है परतु गत शीर्षक मे मै ने उन गीतो में से कुछ दिए हैं जो 'विरहिन' के नाम से लिखे गए है और यह शीर्षक तनिक व्यापक है। इस बात के अतिरिक्त मै वर्तमान शीर्षक मे यह भी दिखाना चाहता हू कि किस भाँति विभिन्न कवियो ने एक ही भाव से प्रेरित हो कर गीत लिखे हैं। कविता वास्तव में

भावो का चित्र होती है और चूंकि इस ससार मे एक-जैसी परिस्थितियो मे फँसे हुए मनुष्यो के दिलो मे एक-जैसे भाव उठ सकते हैं इस लिए उन भावो को जिस भाषा का चोला पहनाया जाता है, वह भी एक-जैसी हो सकती हैं। अच्छी कविता है भी वही जिसे पढ कर उस परिस्थिति से दो-चार होने वाले उस मे अपने ही हृदय की प्रतिच्छाया देखे।

प्रियतम या प्रेयसी की स्मृति भी दिल वाले लोगो के जीवन म काफी काम करती है। श्रीमती महादेवी जी वर्मा की एक कविता मे विरहिन का सारा जीवन बरसात की रात बन कर रह गया है, क्योकि जीवन-आकाश पर कोई सुधि बन कर, स्मृति बन कर छा रहा हैं। लिखा है—

बाहर घन तम, भीतर दुख तम
नभ में विद्युत, तुझ में प्रियतम
जीवन पावस रात बनाने
सुधि बन छाया कौन ?

हा तो वर्षा ऋतु मे, वर्षा ही क्यो, शीत, ग्रीष्म, पतझड वसत, सब ऋतुओ म ही कौन जाने किस की सुधि किस के दिल को तडपाती रहती है।

पजाबी भाषा के कवि नदकिशोर 'तेरी याद' नामक कविता म लिखते है—

जिस वेलें पत्तिया दे पक्खे, हस हस पौन हिलादी ए।
जिस दम कुदरत धरती उत्ते पल्ले नवें बिछादी ए।
फुला दे जद मुख्खा उत्ते ओस आँसू टपकादी ए।
अग मुहब्बत दी दिल जिस दम बुलबुल दा गरमादी ए।
तेरी याद दिला दे जानी क्यो उस वेले आदी ए॥[१]

श्री अखतर हुसेन रायपुरी के भाई श्री मुजफ्फर हुसेन 'शमीम' ने, जो अपनी कविताओ मे सरल हिंदी शब्द भर कर उन्हे सगीत-मय बना देते है, एक गीत लिखा है। वह ऐसे ही भावो से परिपूर्ण है—

---

[१] जिस समय बयार हँस-हँस कर पत्तो के पखो को हिलाती है, जिस समय प्रकृति धरती पर नए पल्लव बिछा देती है, जब फूलो के मुखो पर ओस अपने आँसू टपकाती है और जब बुलबुल के हृदय में प्रेम की आग धधक उठती है; ऐ हृदयो के प्यारे उस समय मुझे तेरी स्मृति क्यो नूतन बन बन आती है ?

जब पिछले पहर की कोयल उठ कर प्रीत के गीत सुनाती है,
जब शब के महल से सुबह की दूल्हन आखें मलते आती है,
जब सद हवा हर पगडडी पर लहराती बल खाती हैं,
जब बात सबा से करने में एक एक कली शरमाती है,
जब पहली किरण सूरज की उठ कर सैरे चमन को जाती है,
आकाश से ले पाताल तलक इक मस्ती सी छा जाती है—
तब क्या जाने कम्बख्त सबा चुपके से क्या कह जाती है?
फिर दद सा दिल में होता है, फिर याद तुम्हारी आती है!

पजाब के तरुण उदू कवि रणवीर सिंह अमर न भी अपनी एक कविता में बिल कुल एक एसा ही चित्र खीचा है। लिखते हैं—

जब नीले-नीले अबर पर घनघोर घटा छा जाती है,
और सावन की मख़मूर हवा जब रिंदो को बहकाती है,
ख़ामोश अँधरी रातो में, जब बिजली दिल दहलाती है,
और काली काली बदली जब नयनो से नीर बहाती है—
उस वक्त मेरे प्रीतम मुझ पर मदहोशी सी छा जाती है,
इक दद-सा दिल में उठता है और याद तुम्हारी आती है।

प्रेम के गीत

प्रम के बिना दुनिया में कुछ नही। यही स्वग है नरक भी यही है। कही यह अपनी प्रशसनीय सूरत में मौजूद है और कही अपने निंदनीय रूप में।

एक आत्मा एक बार एक फरिश्ते से दो चार हुई और उस से पूछने लगी— स्वग का सब से निकटवर्ती माग कौन सा है ज्ञान का या प्रम का?

फरिश्ते ने आश्चय से आत्मा को ताकते हुए कहा क्या ये दो पृथक माग है?

विख्यात कवि हज़रत आज़र जालधरी ने भी लिखा है—

जो दिल कि मुहब्बत का गुनहगार नहीं,
जो दिल कि मुहब्बत का सज़ावार नहीं,

पत्थर हैं उसे दिल न कहो ऐ 'आज़र',
जिस दिल को मुहब्बत से सरोकार नहीं।

फिर आप जानते है कवि और सब कुछ होते होगे, पत्थर दिल नही होते और फिर पजाब के कवि जहा प्रेम का शाश्वत दरिया 'हीर-राँझा', 'सस्सी-पुन्नू', 'सोहनी-महीवाल' जैसे प्रमियो के अमर अफसानो की सूरत मे बहता है, जहा रिंद और सूफी एक ही समय इस चश्मे से स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। अपनी प्रेमिका की सग-दिली को देख कर पजाब का सच्चा प्रेमी पुकार उठता है—

हीरे नी सुन मेरी ये हीरे असा वाग राँझन मर वहना[1]।

और पजाब के देहात की प्रमिका साफ शब्दो मे कह देती है —

राँझा जोगी ते मैं जोगियानी,
उस दी ख़ातिर भर सा पानी।

तो फिर यह कैसे सभव था कि पजाब मे कविता का कोई युग आता और उस में प्रेम के गीत न लिखे जाते? इस युग के प्रत्येक कवि ने प्रेम के गीत लिखे हैं। मै इन मे से केवल दो यहा देना चाहता हू एक उर्दू के प्रसिद्ध कवि और लेखक डाक्टर महम्मद दीन 'तासीर', प्रिंसिपल इस्लामिया कालेज, अमृतसर का और दूसरा फार्मन क्रिश्चियन कालेज के किसी मुसलमान छात्र सिराजुद्दीन 'ज़फर' का। पहला गीत इस प्रकार है—

तुम भी प्रीत करो तो जानो
हम दुखियो की फरियादो को
दिल से टीस उठे तो दिल से
तुम भूलो सब बेदादो को
प्रीत करो तो जानो
प्रीत करो अपने जैसे से
सुदर सूरत पत्थर दिल से

---

[1] ऐ मेरी हीर जैसी प्रेमिका, सुन मै तो तेरे खातिर राँझे की भाति मर जाऊँगा—पजाब का हर प्रेमी राँझा है, और हर प्रेमिका हीर।

दर दर सर टकराओ जैसे
दीवानी मौजें साहिल से
प्रीत करो तो जानो
प्रीत के शोले ऐसे लपकें
जल-बुझ जाएं सब गुन-औगुन
ना कोई अपना ना कोई दूजा
ना कोई बैरी ना कोई साजन
प्रीत करो तो जानो
तुम भी प्रीत करो तो जानो

'ज़फर' का गीत है—

रोग लगा बैठा——कर के तुझ से प्रीत
मेरी ठंडी साँसें आग
मेरी आहें दीपक राग
मेरे नग़मे दुख के गीत
रोग लगा बैठा——कर के तुझ से प्रीत
मेरी आँखें वर्षा रैन
मेरा हर आँसू बेचैन
रोते रहना मेरी रीत
रोग लगा बैठा——कर के तुझ से प्रीत

प्रकृति के गीत

मै वसत के सबध में लिखे गए गीतो का पहले उल्लेख कर चुका हू। वे भी एक प्रकार से प्रकृति से ही सबध रखते है। परतु सर्दी-गरमी, चाँद-सितारो, बाग-वाटिकाओ, पहाडो और वनो के सबध मे भी इस दौर में गीत लिखे गए है।

मौलाना मकबूल अहमद ने सर्दी को ले कर एक गीत लिखा है। मौलाना ने सर्दी के साथ ही एक देहाती कुटुब का जो वर्णन किया है वह बहुत सुदर है। लिखते है—

आया हूँ जाडे का मौसम, सन सन चले हुवा पिछवाई।
शाम हुई सूरज है पीला, धूप में हलकी जरदी छाई।
गिरे कबूतर कव्वे लौटे, कांव-कांव कर धूम मचाई।
आया हूँ जाडे का मौसम, सन सन चले हुवा पिछवाई ॥
मातादीन, बिहारी, बीरा, हैं ये तीनो भाई भाई।
नबरदार के खेत में मिल के, करते हैं तीनो नरवाई।
आया हूँ जाडे का मौसम, सन सन चले हुवा पिछवाई॥
घास का गट्ठा सिर पर रक्खे, नदी पार से तीनो भाई।
आए और बहन ने जल्दी, कडवा डाल चिलम सुलगाई।
आया हूँ जाडे का मौसम, सन सन चले हुवा पिछवाई॥
आग ताप के बैठे तीनो, जब तन में कुछ गरमी आई।
ढोल उठा कर बिरहे छेडे, कवित पढ़े गाई चौपाई।
आया हूँ जाडे का मौसम , सन सन चले हुवा पिछवाई॥

और फिर सर्दियों की रात का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

पख पखेरू कोई न डोले, सायँ-सायँ दे काग सुनाई।
हवा बजाए सीटी बन में, काली रात अँधेरी छाई।

खाते-पीते कुनबे का ज़िक्र करने के बाद लिखते हैं—

ऐसी रात में ऐ परमेश्वर रास आई कब कड़ी कमाई।
मेहनत करने वाले ने जब, पूरे पेट न रोटी खाई॥

भारत के सुप्रसिद्ध उर्दू कवि मौलाना सीमाब' अकबराबादी के सुपुत्र श्री आजाज़ सिद्दीकी ने तुहिन-कण और तारो पर एक सुंदर गीत लिखा है—

ऐ सुंदर ऐ अचपल तारो ऐ रब के ज्ञानी सय्यारो
साँझ भई और लगे चमकने काले बदरा बीच दमकने
जग को सीधी बात बताते ईश्वर का उपदेश सुनाते
दूर भई जग की अँधियारी
सोवन लागी दुनिया सारी

ओस पड़ी मोती बरसाए फूल औ' पात के मुंह धुलवाए
दूब पै अपना रग जमाया सब्जे को पुखराज बनाया
भर दी ओस से डाली-डाली सगरी रात फिरी रखवाली
भोर भई तो माँद पड़े तुम
पापी जग से रूठ गये तुम

लोरियां

हर देश में और देश की हर भाषा मे लोरिया है। लिखने में यह बहुत कम आती है, पर हर देश, हर नगर और हर गाँव में स्त्रिया अपनी सीधी सरल ज़बान में लोरिया गाती है। कवि भी कभी-कभी लोरिया लिखते है और उन की लिखी हुई लोरियो में सरलता के साथ-साथ कविता भी होती है।

'यशोधरा' में श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने बहुत सुदर एक लोरी लिखी है। लोरी का यह निम्नलिखित पद दु खिनी यशोधरा के हृदय मे प्रति-पल जलने वाली अग्नि का द्योतक है—

मद होने दे दीपक माला।
तुझे कौन भय कष्ट कसाला? ।
जाग रही है मेरी ज्वाला ।

उर्दू कविता के इस रग में भी लोरिया लिखी गई है। पडित सोहन लाल 'साहिर' बी० ए० ने भी एक लोरी लिखी है। लोरी देने वाली मा यहा भी यशोधरा जैसी परिस्थिति में है, और भाव इस में भी गुप्त जी की लोरी जैसे ही है। लड़के का पिता उस की मा को छोड गया है। मा बच्चे को सुलाती और अपने दु ख की कहानी कहती है। एक बद देखिए—

सो जा मेरे राजदुलारे
सो जा मेरी आँख के तारे
तेरी मा ने ग़म का गहना
बच्चे तेरी ख़ातिर पहना
मै न रहूँगी तब तू रहना
जब वह आए तब यह कहना

रो रो के अम्मा बेचारी
तक तक कर थक थक कर हारी
गिन गिन कर रातों के तारे
सो जा मेरे राजदुलारे

एक मुसलमान मा की लोरी है—

सो जा मेरे प्यारे, सो जा
मेरे राजदुलारे, सो जा

नींद की परियो आओ मीठी मीठी लोरिया गाओ
मेरी जान है नन्हा प्यारा मेरा मान है नन्हा प्यारा
ज्यो-ज्यो तू पाखान चढेगा जग में मेरा नाम बढेगा

सो जा मेरे प्यारे सो जा
मेरे राजदुलारे सो जा

हिम्मत अज़मत चाकर तेरी हशमत शौकत चाकर तेरी
तख़्त भी तेरा ताज भी तेरा बख़्त भी तेरा राज भी तेरा
कैसे कैसे काम करेगा पैदा जग में नाम करेगा

सो जा मेरे प्यारे सो जा
मेरे राजदुलारे सो जा

धूम से तेरा ब्याह रचाऊ गोरी चिट्टी बेगम लाऊ
धन और दौलत तुझ पर वारू राज को तेरे सदक़े, वारू
गोद खिलाऊ तेरे बच्चे सो जा सो जा मेरे बच्चे

सो जा मेरे प्यारे सो जा
मेरे राजदुलारे सो जा

एक दूसरी लोरी सुनिए। देहात की मुसलमान मा लोरी दे रही है—

चमगादड ने धूम मचाई, धुमसा छाया राम दोहाई
आई रात अँधेरी छाई, हरयाली[1] ने लोरी गाई

---

[1] लोरी देने वाली का नाम।

अगला झूले बगला झूले
सावन मास करेला फूले[1]
प्यारी नींद का प्यारा आना, भारी पलको से पहचाना
लो हम गाए प्रेम का गाना, अल्लाह, आ भी तुम सो जाना
अगला झूले बगला झूले
सावन मास करेला फूले
हामिद, सरवर, नैयर सोया, मोहन अपने घर पर सोया
जो था बाहर भीतर सोया, सोजा सो जा सब घर सोया
अगला झूले, बगला झूले
सावन मास करेला फूले

बच्चे को नीद से जगाने के लिए भी लोरिया गाई जाती है। पजाब म मा अपने 'कान्ह को जगान के लिए पल भर में यशोदा बन जाती है और बच्चे को प्यार से जगाती हुई कहती है—

बासी रोटी सजरा मक्खन नाल देनिया दहीं
जागियें गोपाललाल, जागदा क्यो नहीं[2] ?

गीतो के इस रग में भी जगाते समय गाई जान वाली लोरी के दो बद देता हू—

जागो मेरे प्यारे जागो
दिल में बसने वालो जागो मनमोहन मतवाले जागो
घर भर के उजियाले जागो गुल्शने दिल के लाले जागो
मादकता के प्याले जागो
जागो मेरे प्यारे जागो
तुतली बोली बोल सुनाओ उट्ठो दौडो, गोद में आओ
लस्सी पीओ माखन खाओ गुडिया ले कर उसे नचाओ
घर भर में इक रास रचाओ
जागो मेरे प्यारे जागो

---

[1] एक देहाती लोरी का पहला बद जिस का लोरी से कोई सबध नहीं होता।
[2] बासी रोटी और ताजा मक्खन तेरे लिए तैयार है, मैं तुझे साथ में दही भी दूंगी, ऐ मेरे गोपाल, जाग, तू जागता क्यों नहीं ?

मजाक और व्यंग्य के गीत

मैं ने गीतो के विभिन्न रूप केवल यह दर्शाने के लिए दिए है कि उर्दू काव्य के इस रग ने भी व्यापक सूरत प्राप्त की है। इस युग में गीत काव्य के हर पहलू पर लिखे गए हैं। इन में व्यथा है, विरह है, प्रेम है, अग्नि है, प्रकृति-सौंदर्य है, रहस्यवाद या छायावाद है, और बहुत कुछ है। एक रस है जिस के सबध मे मैं अभी तक कुछ नही कह सका, और वह है हास्य रस। परतु यदि इस युग की कविताओ की छानबीन की जाए तो आप को हास्य रस की कविताए भी मिलेगी। यह बात और है कि कहीं हम जोर से हँस दे और कहीं मुसकरा कर रह जाए, और कहीं हमारी हँसी दिल की चारदीवारी तक ही परिमित रह जाय। 'वक़ार' साहिब के 'मेरे फूट गए है भाग' नामी गीत को ही लीजिए। देखिए पजाब के अनपढ कुटुब के द्वद्वमय गृह-जीवन के चित्र के साथ ही गीत में व्यग की कितनी अधिक पुट है। सास बहू की नालायक़िया का रोना रोती है, उसे गालिया देती है और साथ वावेला भी किए जाती है—

चरखे तार न चूल्हे आग
मेरे फूट गए है भाग
बहू अभागिन जब से आई
रहती है हर रोज लड़ाई
पीने खाने में चतुराई
काम को कहती है खटराग
मेरे फूट गए है भाग
इधर-उधर की बातें कर ले
स्वाँग हजारो दिन में भर ले
नाम जो चाहो लाखो धर ले
मुँहफट, बोले जैसे काग
मेरे फूट गए है भाग
चटक-मटक में सब से न्यारी
गुन जो देखो औगुनहारी
कुल-खोनी यह चचल नारी

इस को डस ले काला नाग
मेरे फूट गए ह भाग

मि० मुजफ्फर' अहसानी न शिक्षित बकारो की दशा का कसा व्यग्यात्मक चित्र खीचा है। लिखते ह—

भूक लगी है भूक
मुजफ्फर
भूक लगी है भूक
बी० ए० कर के बकारी है
जीने तक से लाचारी है
नादारी ही नादारी है
हूक उठती है हूक
मुजफ्फर
भूक लगी है भूक
नादारी में प्रीत लगाई
प्रीत लगा कर मुँहकी खाई
बिन पैसे का बाप न भाई
चूक गया म चूक
मुजफ्फर
भूक लगी है भूक

आजर जालधरी न लिखा ह—

पसे के है दुनिया में तलबगार बहुत
बन जाते ह पसे से यहा यार बहुत
पैसा हो अगर पास तो फिर ए 'आजर'
ग्रमख्वार बहुत, मूनसो दिलदार बहुत

इसी पसे के विषय म पडित इद्रजीत शर्मा न एक गीत लिखा है—

पैसा है सरताज
जगत में
पैसा है सरताज
पैसे ही की सरदारी है पैसे ही का राज
पैसा है तो मान है प्यारे पैसा है तो लाज
पैसा है सरताज
जगत में
पैसा है सरताज
जब तक पैसा रहे गांठ में कोई न बिगड़े काज
पैसा है तो सेठ कहावे बिन पैसे मुहताज
पैसा है सरताज
जगत में
पैसा है सरताज

'ईंट को पत्थर' शीर्षक कविता में 'आतिश' हरियानवी लिखते हैं—

भेड़ ने बरसो ऊन कटाई
क्यों खाए पर तरस कसाई
शेर की मूंछ से बाल जो तोड़े
किस ने इतनी हिम्मत पाई
क्यों करता है उस को "जी, जी"
जिस ने तुझ पर ईंट उठाई
जिसने तुझ पर ईंट उठाई
उस को पत्थर मार

अंतिम शब्द

उपसंहार के रूप में कुछ बातें निवेदन करना अनुचित न होगा।

पहली बात तो यह है कि शायद उच्च कोटि की हिंदी कविता का रसास्वादन करने वाले पाठकों को इन में हिंदी गीतों की उड़ान तथा उन के गूढ़ भाव न दिखाई दें और वह

इन को देख कर आधुनिक उर्दू कविता पर ग़लत राय क़ायम कर लें। उन पाठको से मैं केवल इतना कहना चाहता हू कि इन गीतो को समालोचना की कसौटी पर कसते समय यह बात भूल नही जाना चाहिए कि गीत उर्दू के शायरो के लिखे हुए है, जिन में से अकसर हिंदी लिपि तक से अपरिचित है, जिन के पास सुदर तथा जँचे-तुले हिंदी शब्दो का इतना आधिक्य नही जितना हिंदी कवियो के पास है, और उन्हें शब्दो की उपयुक्तता का भी इतना ज्ञान नही। उन की कठिनाइयो को हिंदी का वह कवि भली-भाति समझ सकेगा जो उर्दू-लिपि तक से अपरिचित हो और फिर भी उर्दू नज़्में तथा गज़लें अथवा उर्दू मसनविया व रुबाइया लिखने का प्रयास करे। फिर भी जैसा मैं ने पहले कहा था हिंदी और उर्दू के मिश्रण से पैदा होने वाले इन गीतो मे बहुत कुछ है। व्यथा-वेदना, आशा-निराशा, हर्ष-उल्लास, उमग-तरग, विषाद-अवसाद के साथ-साथ इन में हृदय है और उस की कसक तथा उस के कोमलतम उद्गार भी है। यदि सरलता और भाव प्रधानता उत्तम कविता की खूबिया है, तो यह गीत अवश्य ही उत्तम कविता है और साहित्य में इन का अपना स्थान रहेगा, और मै यह कह दू कि जन-साधारण को क्लिष्ट और दुरूह शब्दो से पुर, गूढ भावो वाली कविताओ के मुक़ाबले मे ये गीत अधिक अपने समीप जान पडेंगे और जनता इन्हें अधिक प्यार करेगी और गाएगी।

दूसरी बात मैं इन गीतो में प्रयुक्त हिंदी शब्दो तथा उन के उच्चारणो के बारे में कहना चाहता हू और वह, जैसा मैं पहले भी कह चुका हू, यह है कि इन गीतो में हिंदी शब्द कुछ तब्दीलियो के साथ प्रयोग किए गए है। इस के तीन कारण है। सब से बडा कारण इस तब्दीली का यह है कि हिंदी के बहुत से शब्द उर्दू लिपि में शुद्ध लिखे ही नही जा सकते और चूँकि यह गीत उर्दू लिपि में लिखे गए है, उर्दू कवियो द्वारा लिखे गए है और उर्दू मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रो में छपे है, इस लिए जैसे ये शब्द उर्दू लिपि में आ सकते थे वैसे ही कवियो ने इन का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर 'शक्ति', 'शाति' आदि शब्दो को उर्दू में लिखते हुए 'शक्ती' तथा 'शाती' ही लिखा जायगा और इस लिए महाकवि इक़बाल तथा दूसरे कवियो ने इन्ही बदले हुए उच्चारणो से इन का प्रयोग किया है। जैसे—

शक्ती भी शाती भी भक्तो के गीत में है।

दूसरा कारण इस तब्दीली का पजाबी भाषा है। पजाबी भाषा वास्तव में सस्कृत से ही

1938-01 -Hindusthani Magazine -Hindusthani Acedamy Ki Timahi Patrika -Bhag 8 (1336)

निकली हुई हैं, परन्तु शताब्दियों के फेर से इस मे बहुत अतर आ गया है। उर्दू के इन गीतो में प्रयोग होने वाले शब्दो में बहुत से कवियो ने वही उच्चारण हिंदी का उच्चारण समझ कर प्रयुक्त किया है। उदाहरण के तौर पर 'तत्व' का पजाबी भाषा मे 'तत' और 'सत्य' को 'सत' कहा जाता है। कवि इकबाल ने पजाबी होने के कारण इन सस्कृत शब्दो का वही उच्चारण लिया है जो पजाब मे प्रचलित है। उदाहरणतया—

जान जाए हाथ से जाए न सत
है यही इक बात हर मजहब का तत

मै ने इस सग्रह मे जो गीत दिए है उन मे आप को ऐसे हिंदी शब्द भी मिलगे जो पजाबी भाषा में तब्दील होने के बाद उर्दू में लिए गए है।

तीसरा कारण यह है कि आधुनिक उर्दू काव्य पर हिंदी का जो प्रभाव पडा है वह हिंदी की आधुनिक कविताओ का ही नही वरन् व्रजभाषा से ले कर खडीबोली में लिखी जाने वाली सब कविताओ का है। इस लिए इन गीतो में आप को व्रजभाषा के शब्द भी बहुतायत से मिलेगे। यह विषय अपने मे ही काफी लबा है और मै इसे भाषा-सबधी छान-बीन करने वालो के लिए छोड कर सग्रह म दिए गए .ीतो के सबध में कुछ कहूँगा।

उर्दू काव्य के इस युग मे इतने गीत लिखे गए है कि उन से कई पुस्तके बन सकती है। इस छोटे से निबध में सब गीत देना न तो ठीक है न सभव ही। इस लिए जहा तक मुझ से हो सका है मै ने हर 'स्कूल' के कवियो के गीत देने का प्रयास किया है, परतु फिर भी हो सकता है कुछ रह गए हो। मेरा उद्देश्य केवल हिंदी-भाषियो को उर्दू के इस युग की कविताओ से परिचित कराना था, और साथ ही मै इस अभियोग का उत्तर देना चाहता था जो पजाब पर लगाया जाता है कि पजाब हिंदी के लिए मरु-भूमि है। इन गीतो मे मै ने श्री मकबूल हुसेन और 'सागर' निज़ामी को छोड कर अधिकतर गीत पजाब के उर्दू कवियो के ही दिए है और उन मे भी उर्दू के मुसलमान कवियो को अधिक स्थान दिया है। उर्दू कविता की वर्तमान धारा को देख कर कौन कह सकता है कि पजाब हिंदी के लिए मरु-भूमि है, और यहा हिंदी से छुआछूत का बर्ताव किया जाता है ?

अत में यह कृतघ्नता होगी यदि मै उन कवियो को धन्यवाद न दू जिन्हो ने मुझे अपनी कविताए इस लेख मे छापने की आज्ञा देने की कृपा की है। मै इस के लिए उनका बहुत आभारी हू।

पारिभाषिक शब्द और शिक्षा का माध्यम

[लेखक—श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०]

इस लेख मे मै हिंदी और उर्दू की व्युत्पत्ति तथा सबब की बात नही बढाना चाहता। परतु इस मे सदेह नही कि जिस साहित्यिक हिंदी और उर्दू का ऊँची श्रेणी के पाठको में मान है वह एक-दूसरे से बहुत कुछ भिन्न है और जिस भाषा का हम सभ्य समाज में आपस के व्यवहार मे प्रयोग करते है वह प्राय एक ही है। उदाहरण के लिए यदि हैदराबाद की उस्मानिया युनिवर्सिटी का एक ग्रेजुएट सयुक्त प्रात के पूर्वी देहात में जा कर उस उर्दू म व्याख्यान दे जो उस ने वहा सीखी है तो उस का व्याख्यान वहा के देहाती अधिक समझ सकेगे उस वक्ता के व्याख्यान की अपेक्षा जो—बंगला और मराठी को जाने दीजिए—वहाँ जा कर उन्हें पजाबी भाषा अथवा राजस्थानी में व्याख्यान दे। उसी प्रकार मद्रास के हिंदी साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा पास किया हुआ वक्ता यदि अलीगढ विश्व-विद्यालय अथवा इस्लामिया कालिज पेशावर के छात्रो से अपनी हिंदी में बातचीत करे ता उस के समझने में उन्हें उतनी दिक्कत न होगी जितनी कि उस दशा में जब कि कोई वक्ता सयुक्त प्रात की किसी भी देहाती भाषा में उन्हें अपनी बात समझाने का प्रयत्न करे। तात्पर्य यह है कि साहित्यिक उर्दू और हिंदी में उतना भेद नही है, जितना कि प्रातीय भाषाओ में है। जो कुछ भेद है वह तीन मदा में है—

(१) दोनो भाषाओ को अलग-अलग लिपि में लिखते है। यही सब से बडा भेद है।

(२) हिंदी में हम सस्कृत के शब्द भर देते है और उर्दू में फ़ारसी और अरबी के। इतना ही नहीं, इन प्राचीन भाषाओ के व्याकरण को भी हम काम में लाते है, जिस से भेद और भी बढ जाता है। कोई हर्ज नही अगर हम 'आवश्यकता' की जगह 'ज़रूरत' लफ़्ज इस्तेमाल करे, परतु हम यही नही रुकते, बहुवचन में 'ज़रूरतें' न कह कर 'ज़रूर-यात' इस्तेमाल कर के अपनी क़ाबिलियत दिखाते है। या यह भेद और भी बढ जाता है।

(३) किसी वैज्ञानिक विषय पर लिखने या बोलने की नौबत आती है तो हम चलते हुए अग्रेज़ी अथवा हिंदुस्तानी के शब्द काम मे नही लाते। हम सस्कृत अथवा अरबी-फारसी की शरण मे जाते है और उन की शब्दावली को तोड-फोड कर शब्द तैयार करते है। ये शब्द उर्दू मे आ कर हिंदी के पाठको की समझ मे नही आते और हिंदी में आ कर उर्दू के पाठको की वही हालत करते हैं।

इस लेख मे भेद के पहले दो भागो से मेरा सबध नही है। लिपि का रोना और सस्कृत-फारसी का झगडा शीघ्र शात होने का नही है। परतु तीसरा भेद ऐसा है जिस का अभी तक बहुत महत्व नही था, क्योकि हमारी भाषाओ में ऊँचे दरजे के वैज्ञानिक साहित्य की बहुत कमी है, जो कुछ है वह पाठ्य पुस्तको मे है और ये पाठ्य पुस्तके अभी तक हाई स्कूल कक्षा तक के लिए ही थीं। यदि अलग-अलग पारिभाषिक शब्द काम में लाए भी गए तो बहुत मुसीबत नही बरपा हुई, क्योकि उन की सख्या इन कक्षाओ म कम ही रहती है। परतु अनुमान तो कीजिए यह भेद कितना बढ जायगा जब अलग पारिभाषिक शब्दो का सहारा ऊँची कक्षाओ की पढाई के लिए भी लिया जायगा। मुझे हाई स्कूल कक्षा में इतिहास की शिक्षा का अनुभव है। इतिहास मे पारिभाषिक शब्दो की सख्या बहुत कम है, परतु भाषा-भेद ही इतना है कि नोट लिखाते समय मुझे हिंदी और उर्दू के विद्यार्थियो के लिए अलग-अलग शब्दो का प्रयोग करना पडता हैं। अनुमान तो कीजिए अन्य विषयो में अलग-अलग पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करते हुए शिक्षको और शिष्यो की क्या दशा होगी!

हमारे बीच भाषा की झूठी शुद्धता का इतना विवाद कुछ साहित्यिको ने खडा कर दिया है कि उस के कारण कोई ऐसा निश्चय नही होने पाता जो व्यवहार की दृष्टि से सुलभ हो। जापानियो ने जिस समय पश्चिमी सभ्यता के अनुसार अपने देश को उन्नत करने का निश्चय किया उस समय उन के साहित्य मे वैज्ञानिक साहित्य नही के बराबर था। और अब से एक शताब्दी पहले जो कुछ साहित्य उन की भाषा में था वह उतना भी नही था जितना हमारी भाषाओ में था। उन की भाषा पश्चिमी भाषाओ से कही भिन्न है, उन की लिपि की कठिनता का कोई ठिकाना नही। परतु जापानियो के दृढ निश्चय के आगे कोई भी कठिनाई नही ठहर सकी। बहुत से रोज़मर्रा के वैज्ञानिक शब्द तो उन्हो ने चीनी भाषा के सहारे अपनी भाषा मे बना लिए जैसे एलेक्ट्रिसिटी के लिए देकी, टेलीफोन

के लिए देन्वा और एलक्ट्रिक लाइट के लिए दतो। परतु उन्हो न विदेशी पारिभाषिक शब्दो का बहिष्कार नही किया। जापानी विश्वविद्यालयो को जान दीजिए उन के माध्यमिक शिक्षालयो म भी मैं न अध्यापको और शिष्यो को व्यापार शिल्प विज्ञान और गणित के पठन-पाठन म अग्रजी भाषा के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करते देखा, यहा तक कि बीजगणित के अध्ययन म मैं न उन को अपनी लिपि की जगह अग्रजी के (रोमन) अक्षरो को प्रयोग करते पाया।

फिर भी अग्रजी पारिभाषिक शब्दो का इतना स्वतत्र व्यवहार यह नही सूचित करता कि वैज्ञानिक विषयो पर जापानी भाषा म साहित्य की कमी हैं। कमी की बात दूर हैं, उस का बाहुल्य हैं। इस बाहुल्य का अनुमान यो किया जा सकता है कि तोकियो इपीरियल यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय की आठ लाख पुस्तको म ४ लाख जापानी भाषा म ह। सर्व्वोच्च कक्षाओ तक जापानी भाषा ही शिक्षा का माध्यम है। जापानी मेडिकल डिग्रियो को ब्रिटिश मेडिकल कौसिल उस समय से मान रही है, जब वह हमारी डिग्रियो को नही मानती थी। उन की इजिनियरिग एग्रिकल्चर और मोस्यालोजी की पढाई का जापान के बाहर भी मान हैं यद्यपि शिक्षा का माध्यम जापानी है और अग्रजी के बडे-बडे अध्यापको तक को ठीक ढग से अग्रजी बोलना नही आता। कहन का तात्पय यह है कि यदि विदेशी पारिभाषिक शब्दो को अपना कर जापानी वैज्ञानिक साहित्य उन्नति करता रहा तो क्या कारण है कि हमारा साहित्य भी इन पारिभाषिक शब्दो को काम म लाते हुए उन्नति न कर सकेगा। मेरा यह मतलब नहा ह कि पारिभाषिक शब्द अग्रजी म ही रह हम उन को स्वदेशी न बना सक। जिस पारिभाषिक शब्द का साधारण श्रणी के लोगो म प्रचार हो जायगा उस का चलता हुआ कोई न कोई रूप बन जायगा। वह रूप न सस्कृत का होगा न अरबी-फारसी का क्योकि साधारण जनता के लिए अग्रजी उतनी ही विदेशी है जितनी सस्कृत फारसी। वह रूप हिंदुस्तानी होगा। उदाहरण के लिए, विद्युत विज्ञान के सबध म हम बोलचाल की भाषा म बहुत से शब्द मिलन लग ह जैसे एलक्ट्रिसिटी को बिजली कहते ह और पाजिटिव तथा निगटिव तारो को गरम और ठढा तार कहते हैं। एलक्ट्रिक बल्ब को बिजली की बत्ती या कुप्पी कहते हैं। इस प्रकार बिजली और इजिनियरिग के मिस्त्रियो न जिन पारिभाषिक शब्दो को अपनी भाषा का जामा पहना दिया उन को स्वीकार करन म आपत्ति न होनी चाहिए। मिस्त्री और साधारण श्रणी के लोग अपना मतलब

ज़ाहिर करने के लिए संस्कृत अथवा फारसी की शरण में नहीं जाते, वे तो चलते हुए शब्दों द्वारा काम लेते हैं और यदि उन्हें किसी वैज्ञानिक विचार की परिभाषा करने की आवश्यकता पड़ती है तो भी वे अपने परिमित शब्द भांडार का ही सहारा लेते हैं। क्यों न हम उन्हीं के चलाए हुए पारिभाषिक शब्दों को अपनाएं? अभी इन की संख्या बहुत कम है क्योंकि जनता में पश्चिमी विज्ञान का अभी प्रसार नहीं हुआ है। प्रसार के साथ साथ स्वदेशी पारिभाषिक शब्दों की संख्या भी बढ़ती जायगी। परंतु इस की भी सीमा है। साधारण श्रेणी की जनता में उस उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार होना असंभव है जिस का अध्ययन ऊँची कक्षाओं और विश्वविद्यालयों में ही होता है। उस श्रेणी के साहित्य के लिए विदेशी पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता बनी रहेगी और अंग्रेज़ी भाषा से पारिभाषिक शब्द ले कर हमारी देशी भाषाओं के साहित्य की हानि न होगी। क्योंकि भाषा की जान क्रम और अन्वय में है पारिभाषिक शब्दों में नहीं। जहां तक हिंदी उर्दू से संबंध है ये दोनों भाषाओं के लिए एक हैं। अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों को अपना कर हम हिंदी-उर्दू का भेद कम कर सकेंगे जो राष्ट्रीय संगठन के लिए ही नहीं शिक्षा प्रचार के लिए भी आवश्यक है।

प्रश्न यह है कि ये पारिभाषिक शब्द किस लिपि में लिखे जायँ? रोमन लिपि अथवा देवनागरी और फारसी लिपि में?

उन शिक्षालयों के लिए जहां अंग्रेज़ी न पढ़ाई जाती हो यह आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्द देशी लिपि में ही लिखे जायँ। ऐसे शिक्षालय अभी तक निचली श्रेणी के ही हैं। आगे बढ़ कर अंग्रेज़ी एक अनिवार्य विषय हो जाता है। इस लिए इन छोटी श्रेणी के शिक्षालयों के लिए जो पाठ्य पुस्तकें हों उन में पारिभाषिक शब्दों का देशी लिपि में लिखा जाना आवश्यक होगा। परंतु ऊँची श्रेणी की पाठ्य पुस्तकों में यदि ये शब्द अपनी रोमन लिपि में ही लिखे जायँ तो कोई हर्ज नहीं। देवनागरी लिपि में यह शक्ति है कि वह कठिन से कठिन विदेशी पारिभाषिक शब्द को व्यक्त कर सकती है। परंतु यह क्षमता उस की फारसी बहिन में नहीं है तो फिर दोनों साम्यभाव से पारिभाषिक शब्दों को रोमन लिपि में क्यों न अपनाएं।

हिंदुस्तानी एकेडमी के द्वारा कुछ निवेदन करने का यह मेरा पहला अवसर है। इस एकेडमी का प्रथम उद्देश्य हिंदी और उर्दू के भेद को घटा कर एक राष्ट्रीय भाषा के साहित्य

का प्रचार करना है। मै इस उद्देश्य से सहमत हू। मेरा विश्वास है कि पारिभाषिक शब्दो के सबध मे जो निवेदन मै ने ऊपर किया है वह इस उद्देश्य के अनुकूल है। कठिनाई रूढियो की ही है, परतु राष्ट्रीयता के मार्ग मे यदि रूढिया रोडे अटकाती हो तो उन्हें हटाना हमारा कर्तव्य है, और इन रूढियो से हम तभी स्वतत्र हो सकेंगे जब राष्ट्रीयता के दृष्टि-कोण से ही इस प्रश्न पर विचार करें और निर्णय होने पर उस के अनुसार सेवा-कार्य मे अग्रसर हो।[1]

---

[1] हिंदुस्तानी एकेडेमी के छठे साहित्य-सम्मेलन के लिए प्राप्त।

हसरत मोहानी

[लखक—प्रोफसर अमरनाथ झा एम० ए०]

हसरत मोहानी के विषय म यह कहना यथाथ होगा कि उन की जो योग्यता हम राज नीति म देखते ह उस का वास्तविक क्षत्र साहित्य ह। उन की व्यापक सहानुभति चम त्कारिक बुद्धि सौन्दय के प्रति चतना साहित्य के उत्कृष्ट अगो स परिचय कोमल भावकता —यह सब एसे गण ह जिन्हो न उन्ह समसामयिको की श्रणी म उच्चतम आसन का अधिकारी बनाया था। उदू कविता के गहन ज्ञान और रूढियो के प्रभाव से मुक्त होन के कारण यह बात आरभ म ही स्पष्ट हो गइ थी कि वह साहित्य म प्रकाशमान होग और विशष कर गजल के प्रात म विशिष्टता प्राप्त करग। अपन प्रारभिक वर्षों म उन्हो न जो काय किया वह बड महत्व का था। उन्हो न पुरान लखको की रचनाओ का सपादन किया और इस प्रकार उन की कृतियो को लोप होन से बचाया। उदू ए-मोअल्ला की कई जिल्द गालिब के दीवान का टिप्पणी-सहित सस्करण हातिम जौक मौमिन मीर दद मसहफी और अन्य कवियो की रचनाओ से सग्रह द्वारा हसरत मोहानी न यह प्रकट कर दिया था कि उदू का उन का ज्ञान बहुत विस्तत ह और साहित्य म उन का रुचि अत्यत परिमाजित ह। इन प्रकाशना द्वारा हसरत की विद्वत्ता प्रतिष्ठित हो चकी ह और यह भी स्थापित हो चुका ह कि साहित्य-सबधी बातो म उन के मत का बहुत मूल्य ह। सुरुचि भावुकता कल्पना विचार शक्ति और नई युक्तियो के लिए साहस—इन गुणा न हसरत को प्रथम श्रणी का कवि बनाया। उन म इस बात की क्षमता थी कि बिना परपरा से सबध तो ड़ हुए वह नए प्रयोग कर सक।

सैयद फजल हसन न इलाहाबाद यूनिवसिटी की बी० ए० की परीक्षा सन १९०३ म एम० ए० ओ० कालिज अलीगढ से पास की। जान पड़ता ह कि उन्हो न गजल रचना सन १ ९५ से ही आरभ कर दी थी। और उन के दीवान का अतिम भाग—जहा तक मेरे सग्रह म ह—जो दसवा भाग ह सन १९२४ म प्रकाशित हुआ। इन दस भागो म

सब मिला कर २६० पृष्ठ के लगभग होग। मौलाना हसरत मोहानी की धर्मपत्नी अपनी भमिका म लिखती ह कि दीवान के पहल भाग में १९०३ से १९१४ के बीच म लिखी हुई ग़ज़लें ह और यह कि इस काल का एक हिस्सा उन के पति न जल में बिताया। दीवान का दूसरा भाग १९१४–१६ की रचनाओ से सबध रखता है। इस बीच म वह अलीगढ, ललितपूर झासी और इलाहाबाद के जलो म रह। अन्य गज़लो का अधिकाश भी फैज़ाबाद लखनऊ मेरठ और अहमदाबाद के जलो म रचा गया। पाचवें भाग की भूमिका स्वय कवि न यरवदा जल म १९२३ में लिखी और उन का कहना है कि कुछ कविताए जो उन्हो न कद्रीय खिलाफत कमेटी के नताओ के पास भजी थी वह गुम भी हो गईं। छठ भाग की भूमिका म हम कुछ मूल्यवान सामग्री कवि के जीवन चरित्र के सबध म मिलती है। उसी से हम पता चलता है कि हसरत का कवि-जीवन १८९५ से आरभ होता है, और यह कि उन की प्रारभिक रचनाओ में से कइ सग्रहो म प्रकाशित हुइ है। सन् १८९८ और १९०२ के बीच की अपनी रचनाओ के विषय में उन्ह उत्साह नही है और वह लिखते है कि इन रचनाओ को वह पुन न प्रकाशित करग। इन भूमिकाओ में हमें इस बात की सूचना मिलती है कि कवि न ठीक-ठीक कितना समय कहा पर जल में व्यतीत किया। कदाचित् जल के जीवन न उन्ह वह एकात और अवकाश दिया जिस के बिना कवि का रचनात्मक काय सभव न होता। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस प्रकार के जीवन के परिणाम-स्वरूप ही उन की अनक कविताओ म राजनीतिक रग आ गया है।

हसरत मोहानी जसे नए प्रयोगो के लिए साहस रखन वाल कवि ने भी पद्य के शास्त्रीय नियमो का कितनी सूक्ष्मता से पालन किया है यह बात ध्यान देन योग्य है। वह परपरा द्वारा नियत कला-सबधी बधनो के मूल्य को स्वीकार करते हैं। किसी किसी भूमिका में तो उन्हो न प्रकट सतोष के साथ बताया है दीवान में वणमाला के प्रत्यक अक्षर रदीफ (अत्यक्षर) के रूप म आ गए है और ث 'ض' ص' ط ' ث ک 'ح' ط जैसे कठिन रदीफ में भी अच्छी गज़ल बन पडी है। केवल एक कुशल शिल्पी, जिसे अपन उपकरणो के व्यवहार में उचित गव है, इस प्रकार की विज्ञप्ति कर सकता है। कवि के शिल्प ज्ञान के विषय म एक और बात भी ध्यान देन योग्य है। बन जान्सन का स्पेंसर के विरुद्ध यह उलाहना था कि प्राचीनो के अनुकरण करन में जिस भाषा का उस न प्रयोग किया वह कोई भाषा न रह गई थी। कवित्व के ह्रास का एक अचूक चिह्न शब्दो पर अत्यधिक

(२) मनमोहन शाम से नैन लाग,
निस दिन सुलग रही तन आग।

(३) तन मन धन सब वार के 'हसरत',
मथुरा नगर चल धूनी रमाई।

* * *

पस्ता कद, थवरे बाल पहनावे की तरफ से लापरवाही, तेज़ चाल—देखने म तो 'हसरत अपन कवि होन का प्रभाव नही डाल्ते। उन के सिर के चारो ओर 'तेज मडल' नही है। उन के पीछ अनुयायियो का एसा समूह नही जो उन की प्रशसा पर तुला हुआ हो। उन की कविताओ को एसे कृत्रिम सहारे की आवश्यकता नही जैसे अच्छा टाइप, बढिया कागज़ आकपक बटन वास्तव म वह एसे भद्द ढग से घटिया कागज पर छपी हुई है कि उन के प्रकाशन का एकमात्र तात्पर्य ग्राहको को विमुख करना जान पडता है। परतु एक बार इस भद्द बहिरग पर विजय प्राप्त कर लन पर पाठक के सामने कैसी सदर सपन दुनिया खुल जाती है ! ईश्वर की कृपा से यहा बाहुल्य है बहुत कुछ चितन है प्रम के अनक वचन है जीवन के लिए उमग है और किचित् ऐसा अवसाद भी है जो हमारे विश्वास पर आघात नही करता। इन में कोई राग या दूषण नही है, दया के लिए दीन प्रार्थना नहा है वरन है एक सबल आशा, हल्का कौतुक, और तर्कसिद्ध विश्वास और महदाकाक्षा।

कवि और कविता के सबध म हम हसरत के विचार उन की रचनाओ म बिखरे हुए मिलेंगे। उहो न मीर और मौमिन को बारबार सराहा है —

(१) 'हसरत', यह वह गजल है जिसे सुन के सब कहें,
मौमिन से अपन रग को तुमने मिला दिया।

(२) शेर मेरे भी हे पुरदद लेकिन 'हसरत',
मीर का शेवए गुफ्तार कहा से लाऊ।

(३) गुज़रे बहुत उस्ताद मगर रगे असर में,
बेमिस्ल है 'हसरत' सुख़ने मीर अभी तक।

कविता के विषय पर अनेक उक्तिया है और दिल्ली तथा लखनऊ के कवियो के आपस के

झगडे के विषय पर भी। कविता के सहज, सीधे प्रभाव के संबंध में हसरत कहते हैं —

शेर दर अस्ल है वही 'हसरत';
सुनते ही दिल में जो उतर जाए।

गजल के प्रति अपने अनुराग को लक्षित करते हुए वह कहते हैं —

इश्के 'हसरत' को है ग़ज़ल के सिवा;
न कसीदा न मसनवी की हवस।

लखनऊ दिल्ली विवाद पर वह लिखते हैं —

रखते हैं आशिकाने हुस्ने सुखन;
लखनवी से न देहलवी से गरज़।

गजल के संबंध में उन की पुनः उक्ति है —

लिखता हूँ मर्सिया न कसीदा न मसनवी,
'हसरत', ग़ज़ल है सिर्फ़ मेरी जाने आशिक़ी।

नीचे की पंक्तियों में व्यंजित गर्व क्षम्य है —

'हसरत', उर्दू में है ग़ज़ल तेरी;
परतवे नक्शाए सादी ओ जामी।

ग़ज़ल के क्षेत्र में हसरत की वास्तविक विशेषता क्या है? उन की मौलिकता किस बात में है? वह शराब और साकी, वायज, शमा व परवाना, बहार व दाम शिकारी, के उपयोगी रूपक का परित्याग नहीं करते। परंतु यह निश्चय है कि वह अपने निजी, व्यक्तिगत दृष्टिबिंदु को प्रकट करते हैं। इस बात को देख मुझे अत्यंत संतोष होता है कि उन में एक स्फूर्ति है, मनुष्योचित दृष्टिकोण है, विजय पाने का निश्चय है। साधारण गजल-गो की रीति कोमल अवसाद वर्णन करने की, बीते हुए दिनों पर आँसू बहाने की, व्यर्थ प्रयत्न और अंत में विफलता प्रदर्शित करने की होती है। इन सब बातों से हसरत बहुत दूर हैं। परंतु उन के बल में एक सौंदर्य, मिठास और प्रकाश है। यही है कि वह शहद और शक्कर का ऐसा ढेर नहीं लगा देते कि जी ऊब जाय। क्या पवित्र प्रेम यह नहीं

बताते कि जो कड़ुआ चाखने के लिए तैयार नही वह मीठा चाखने का अधिकारी नही ?

* * *

आइए हम उन पक्तियो को देखे जहा कि मुख्य विषय दु ख और वेदना का है —

(१) सब ने छोडा तुझे, मगर 'हसरत';
दर्द की ग़मगुसारिया न गईं।

(२) वह तुम हो, या तुम्हारा दर्द हो, कोई हो दुनिया में;
किया जिस से तअल्लुक़ हम ने पैदा, उम्र भर रक्खा।

(३) उन से कुछ तो मिला, वह ग़म ही सही;
आबरू कुछ तो रह गई दिल की।

(४) हर हाल में रहा जो तेरा आसरा मुझे;
मायूस कर सका न हुजूमे बला मुझे।

(५) क्यो इतनी जल्द हो गए घबरा के हां फना ?
ऐ दर्दे-यार, कुछ तेरी ख़िदमत न हो सकी।

(६) आई बुझने को अपनी शम्मए हयात;
शबे ग़म की मगर सहर न हुई।

इन पक्तियो से यह ज्ञात होगा कि—यद्यपि दु ख और वेदना का निवेदन रूढ़ियो मे बँधा नही है, साथ ही उस की उदासी मे भी एक मृदुता है। परतु वेदना की देवी बना कर वह उस की पूजा नही करते। आकाक्षा और इच्छा का प्रत्यावर्तन होता है—स्वप्नो का और उमगो का—'पुरानी ओस अब भी पुराने मीठे पुष्पो को भरती है, पुराने ग्रीष्म अब भी नए उपजे गुलाबो को पालते है।' और इन के परे ईश्वर की अतुल दया, शान और अच्छाई है —

(१) पहले इक ज़र्रए-ज़लील था मैं,
तेरी निस्बत से आफ़ताब हुआ।

(२) हवा से दीद मिटी है न मिटेगी, 'हसरत'।
देखने के लिए चाहो उन्हें जितना देखो।

परतु पेशावर शाति दिलाने वाले और नीति की शिक्षा देने वाले द्वारा वह अपने अतिम ध्येय को प्राप्त करेगे। वायज़ तो बुराई और पाप और दुष्कर्म की चिंताओ मे फँसा रहता है। वह जो बुराई और पाप के ससर्ग मे इतना रहता है इन से कैसे बच सकता है ? वह उदारता क्या जाने ?

अजब क्या, जो है बदगुमां सब से वायज़;
बुरा सुनते सुनते, बुरा कहते कहते।

*   *   *

जब 'हसरत' उर्दू कविता के साधारण रूपक ग्रहण करते है तब भी उन मे मौलिकता रहती है और पुरानी कल्पनाए एक नवीनता धारण कर लेती है —

मैं गिरफ्तार उल्फते सैयाद ;
दाम से छुट के भी रिहा न हुआ।

शमा पर एक शेर देखिए —

आई जो तेरे रूए मुनव्वर के करी शम्अ ;
हम लोग यही समझे कि महफिल में नहीं शम्अ।

बहार और तज्जनित प्रेम के सबध मे और उस की मादकता और उल्लास के विषय मे भी हसरत खूब ही लिखते है —

(१) सब्र मुश्किल है ज़ब्त है दुश्वार ;
दिल वहशी है और जुनूने बहार।

(२) हाय जुनूने शौक अभी से बकरार अब की बरस ;
क्या गज़ब ढाएगा तूफाने बहार अब की बरस।

(३) हगामए बहार का देखा कभी न रग ;
हम ने की मुद्दितलए बालए खिज़ा रहे।

(४) कुछ दिल ही बुझ गया है मेरा वर्ना आज कल ;
कैंफीयते वहार की शिद्दत चमन में थी।

(५) सब हँस पडे खिलखिला के गुचे ;
छेडा जो लतीफा सबा ने।

(६) फला फूला रहे गुल्ज़ार यारब हुस्नें खूबा का ;
मुझे इस बाग़ के हर फूल से खुशबूए यार आई।

हाथो मे साकी का आनद-दायक और मादक जाम लिए रहना, मगर उसे देने में पशोपेश करना, झुड के झुड लोगो का घुटना टेके हुए उस की कृपा के लिए प्रार्थी होना और उस से प्रेम जताना तथा उस की प्रशसा करना, साकी का बडी कठिनाई से चद कत्रे जाम का देना, वायज का दूर से उस पर निगाह रखना और तबीह के शब्द उच्चारण करना और उपदेश देना और खुदा के कह्र का डर दिलाना—यह चित्र सभी उर्दू कविता के पढने वालो के लिए परिचित होगे परतु इन पिटे हुए विषयो पर भी हसरत ने बहुत सुदर पक्तिया लिखी है —

(१) जब दिया तुम ने रकीबो को दिया जामे शराब ;
भूल कर भी मेरी जानिब को इशारा न किया।

(२) खुम लगा दे हम बलानोशो के मुँह से साकिया ;
काम आएगा न सागर आज न पैमाना आज।

(३) यारब हमारे बाद भी बज़्मे शराब में ;
साकी के दम से दौरे-मए-अर्ग़वा रहे।

(४) बज़्म साकी में चलें भी तो कहीं हज़रते शैख ;
शर्त हम करते हैं रह जाय जो ईमा का होश।

(५) बडे अज़ाब में है जाने मैकशे साकी ;
नहीं शराब तो जिक्रे शराब रहने दे।

(६) मर जाऊँगा मैखाने से निकला जो कभी मैं ;
नज्ज़ारए मै रूह फिज़ा मेरे लिए है।

(७) नहीं पानी, तो मैख़ाने में ऐ शेख़ ;
जो कुछ मौजूद है लाऊँ वज़ू को।

(८) साक़ी न पूछ कितनी, जहा तक पिऊ पिला,
आदत नहीं है मुझको सवालो जवाब की।

(९) आज तो मुँह लबे साग़र से भिडा दे मेरा,
साक़िया, तुझ को मेरी सुस्तिए पैमा की कसम।

(१०) नसिहरे दे जो तर्क मै के हमें,
ऐसे ग़मख़्वार से ख़ुदा की पनाह।

* * *

उन कविताओ के विषय में भी जिन का लक्ष्य स्पष्टत राजनीतिक है दो शब्द कहने की आवश्यकता है। हसरत की योग्यता की सराहना करनी चाहिए कि उन्हो ने प्रेम-काव्य के रूपको को और शब्दावली को कायम रखने हुए भी अपने शेरो में राजनैतिक सकेत भरे है। बदीगृह के दीर्घ-कालीन निवास ने भी उन के मनुष्य की भलाई के प्रति विश्वास में धक्का नहीं पहुँचाया है। वह होरेस की कसौटी पर सच्चे उतरते है। और प्रकाश से धुआ न उत्पन्न कर के धुए से प्रकाश उत्पन्न करते हैं —

(१) रस्मे जफा कामयाब देखिए कब तक रहे,
हुब्बे वतन मस्ते ख़्वाब देखिए कब तक रहे।
नाम से कानून के होते हैं क्या क्या सितम,
जब्र ब-ज़रे नक़ाब देखिए कब तक रहे।
दौलते हिंदोस्ता क़ब्ज़ए अग़यार में,
बईदो बेहिसाब, देखिए कब तक रहे।
है तो कुछ उखडा हुआ बज़्मे हरीफा का रग ;
अब यह शराबो-कबाब देखिए कब तक रहे।

(२) मैं मुब्तिलए रजे-वतन हू वतन से दूर ;
बुलबुल के दिल में यादे चमन है चमन से दूर।

(३) सब हमारी जिंदगी ही तक है उन के हौसले ;
वर्ना यह नाज़ो-ग़रूरे दिलरुबाई फिर कहा।

(४) उस बुत के पुजारी है मुसलमान हज़ारो ;
बिगडे है इसी कुफ्र में ईमान हज़ारो।

* * *

इस के अनतर आइए हम देखे कि हसरत गज़ल के मुख्य विषय अर्थात् प्रेम का कैसा चित्रण करते है। उन के तगज़्ज़ुल का क्या रग है। सभी भाषाओ में प्रेम गीति-काव्य का मुख्य विषय रहा है। उर्दू प्रेम-काव्य के रचयिताओ में गालिब और मीर के स्वर मुख्य है। यो तो दिल्ली और लखनऊ के अनेक अपेक्षाकृत छोटे कवियो ने इस में साथ दिया है। हसरत मोहानी इस परपरा के साथ यहा तक है कि वह माशूक को अस्थिर और कठिनाई से प्रसन्न होने वाला मानते है। परतु उन में एक विनोद और चतुराई की मात्रा है जो कि उन की कविता को नवीनता प्रदान करती है। वह साधारणत माशूक की क्रूरताओ को तद्वत् नही मान सकते। वह भी एक भाव प्रदर्शन है और वास्तविक प्रेम का सूचक है। यहा या अन्यत्र, जल्दी अथवा देर में मिलन हो कर ही रहेगा। इस बीच में यदि माशूक कठोरता दिखाता है, तग करता है, छेडता है, दिल दुखाता है तो इस की कोई चिंता नही। सच्चे प्रेम का मार्ग कब सीधा, कटक-रहित रहा है। प्रेम के साथ वेदना लगी हुई है। कवि यह सब जानता है फिर भी उसे प्रेम की शक्ति में विश्वास है। इसी लिए हसरत की कविता में हमें विनोद और गभीरता का ऐसा विचित्र समिश्रण मिलता है। गहन से गहन परिस्थिति में हम उन में कौतुक की मनोवृत्ति देखते है —

(१) मानूस हो चला था तसल्ली से हाले दिल ;
फिर तू ने याद आ के बदस्तूर कर दिया।

(२) गर ज़ोशे आरज़ू की है कैफ़ीयतें यही ;
मैं भूल जाऊँगा कि मेरा मुद्दआ है क्या।

(३) इश्क की रूहे पाक को, तुहफए ग़म से शाद कर ;
अपनी जफा को याद कर, मेरी वफा को याद कर।

(४) हकीकत खुल गई 'हसरत' तेरे तर्के मुहब्बत की ;
मुझे तो अब वह पहले से भी बढ़ कर याद आते हैं।

(५) मज़हबे आशिकी में है ऐ अक़्ल ;
बे-खुदी इन्तिहाए दानाई।

(६) बर्क़ को अब्र के दामन में छुपा देखा है ,
हम ने उस शोख़ को मजबूरे-हया देखा है।

(७) ज़ाहिर में जफ़ा करते बातिन में वफ़ा होती ,
सौ ढब से करम होता मंज़ूर अगर होता।

(८) हैफ़ है उस की बादशाहो पर ,
तेरे कूचे का जो गदा न हुआ।

(९) इश्क या हुस्न कौन है ग़ालिब ;
आज तक इस का फ़ैसला न हुआ।

(१०) मर मिटे हम कि दे वह दादे वफ़ा ,
और जो इस का भी कुछ असर न हुआ ?

(११) पहले इक ज़र्रए ज़लील था मैं ;
तेरी निस्बत से आफ़ताब हुआ।

(१२) यह क्या मुंसिफ़ी है कि महफ़िल में तेरी ,
किसी का भी हो जुर्म पाए सज़ा हम।

(१३) ग़म का न दिल में हो गुज़र, वस्ल की शब हो यों बसर ,
सब यह क़बूल है मगर, ख़ौफ़े सहर को क्या करूं।

(१४) कहीं वह आ के मिटा दें न इंतज़ार का लुत्फ़ ,
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तिजा मेरी।

(१५) वह बिगड़े बैठे हैं इस पर कि हम को क्यों चाहा ;
हुई भी गर तौबा साबित हुई ख़ता मेरी।

(१६) उसी से छिपते हैं होती है जिस पै उन की नज़र ;
अगर यही हैं तो उम्मीदवार हम भी हैं।

(१७) दुश्मन के मिटाने से मिटा हूं न मिटूंगा ;
और यों तो मैं फ़ानी हूं फ़ना है मेरे लिए।

(१८) हाल सुनते वह क्या मेरा 'हसरत' ;
वह तो कहिए सुना गईं आँखें।

(१९) शिकवए जौर, तक़ाज़ाए करम, अर्ज़े वफ़ा ;
तुम जो मिल जाओ कहीं हम को तो क्या क्या न करें।

(२०) ख़ाकसारों में अपने दे के जगह ;
तुम ने मग़रूर कर दिया हम को।

(२१) रहमत ने हम से फेर लिया मुंह जो हश्र में ,
सूरत नज़र में फिर गई तेरे हिजाब की।

(२२) सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार ;
क्या करें आशिक़ी में, क्या न करें ?

(२३) गोया व सब सुना ही तो देगी वहा का हाल ?
क्या क्या सवाल करते हैं बादे सबा से हम।

(२४) हरदम है यह डर फिर न बिगड जायें वह 'हसरत' ;
पहरों जिन्हें रो रो के हँसाने में लगे हैं।

हसरत की कविताओं की अंतिम जिल्द को प्रकाशित हुए लगभग चौदह वर्ष बीत गए। कौन इस बात पर खेद किए बिना रह सकता है कि इतने वर्ष उन के परिपक्व जीवन के साहित्य-सेवा में न व्यतीत हो कर राजनीति के अखाडे में संघर्ष में बीते हैं ? यह उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक है कि उन के जीवन के शेष वर्ष—जो हम आशा करते हैं कि अनेक होंगे—अब भी अमर काव्य की सेवा में व्यतीत हों।

तूने हसरत यह निकाला है अजब रंगे ग़ज़ल ;
अब भी क्या हम तेरी यकताई का दावा न करें।

सैयद सज्जाद हैदर का भाषण

[हिंदुस्तानी एकेडेमी के छठे साहित्य सम्मेलन के अवसर उर्दू-विभाग के सभापति-पद से दिए गए भाषण के कुछ उद्धरण लिप्यंतर मात्र से यहा दिए गए हैं। संपादक।]

(१)

अब तो दोनो (हिंदू और मुसल्मान) एक जगह रहते-सहते हैं। जब मुसल्मान हिंदुस्तान में दाखिल भी नहीं हुए थे, उस ज़माने मे भी एक दूसरे की ज़बान और लिटरेचर से ऐसे बेगाना न थे, जैसा कि आमतौर पर ख़याल किया जाता है।

एक पुर अज़ मालूमात व पुर अज़ तहक़ीक़ात मक़ाले मे, जो पंडित बृजमोहन दत्तातिरिया ने, अलीगढ मे पढा था, यह साबित किया था कि फारसी का पढना हिंदुओ मे मुसल्मानो के यहा आने से पहले जारी था, गो आम न हो। और हिंदुस्तान के हिंदू राजा क़ब्ल इस के कि मुसल्मान यहा हम्ला-आवर हुए काबुल और वस्त एशिया की इस्लामी सल्तनतो से, फारसी ज़बान में ख़त व किताबत करते थे और हिंदू दरबार के हिंदू मुंशी उन मरासलात को फारसी मे लिखते थे। 'हिंद व अरब के ताल्लुक़ात' मे मौलाना सैयद सुलैमान नदवी साहब ने बताया है कि जनूबी हिंद मे अरब ताजिरो और अरब जहाजरानो की बदौलत मुसल्मानों और वहा के हिंदुओ में मआशरती और तिजारती ताल्लुक़ात मुसल्मानो के हिंदुस्तान मे फातिहाना हैसियत से दाख़िल होने से क़ब्ल क़ायम हो चुके थे। इसी तरह फारसी ज़बान का 'बुत' असल मे 'बुध' है, यानी हज़रत गौतम बुद्ध का मुजस्समा, और यह तो आप भी देख रहे हैं कि नैपाल जो कि कभी मुसल्मानो के ज़ेरनगीं नहीं रहा, वहा भी शमशेर जंग राना, बबर जंग राना, तेजबहादुर राना, जैसे नाम बता रहे हैं कि मुसल्मानो की ज़बान का असर उन के सियासी असर के हुदूद से बाहर पहुँच गया था।

ऐसी हालत में मैं नहीं मान सकता कि उर्दू जो कि सिर्फ़ मुसल्मानो की ज़बान नहीं, अगरचे उस में फारसी असर ज़्यादा है, वह महज़ मुसल्मानो में महदूद हो कर रह जायगी, या हिंदी को मुसल्मान न समझ सकेंगे। आख़िर अब भी तो हिंदी ठुमरियो और गानो को

मुसलमान सुनते हैं और उन से लुत्फ उठाते हैं। उर्दू का असर मुसलमानो और हिंदुओ पर कम व बेश होगा—हिंदुओ पर कम, मुसलमानो पर ज्यादा। इसी तरह हिंदी का असर हिंदुओ और मुसलमानो पर होता रहेगा—मुसलमानो पर कम, हिंदुओ पर ज्यादा।

मगर जब अमदन यह कोशिश की जाय कि दोनो ज़बाने इस कद्र अलहदा और एक दूसरे से दूर हो जाए, कि उन में मशारकत का इमकान ही बाकी न रहे, रस्मुल्खत तो अलहदा है ही, अल्फाज़ भी ६६ फी सदी अलहदा हो तो फिर अगर आइन्दा की तरफ से नाउमेदी की जाय तो कोई जाय ताज्जुब नही।

(२)

उर्दू से उन फारसी अल्फाज़ के निकालने की कोशिश जो उस के जिस्मो जान में पैवस्त हो गए हैं, नाखन को गोश्त से जुदा करना है।

मौलाना सैयद सुलैमान नदवी ने अपने खुतबए-सदारत मे जो लखनऊ की हिंदोस्तानी कान्फ्रेंस में गुज़िश्ता साल इरशाद फरमाया था, कहा था कि उर्दू ने जिन फारसी अल्फाज़ को अपना लिया हैं उन को उन्ही मानो मे और वैसे ही तलफ्फुज़ और इमला के साथ इस्तैमाल करना चाहिए जिन मानो और जैसे तलफ्फुज़ और इमला के साथ उर्दू में वह रायज हो गए हैं। मौलाना ने इस की मिसालें भी दी हैं, मसलन 'मवाद', 'अस्ल', 'शहवत', 'मशकूर', 'मसाला', 'मशाल'। इसी तरह सस्कृत के अल्फाज़ जिस तरह उर्दू मे या हिंदुस्तानी में रायज हैं, उन को छोड कर, असली सस्कृत के तलफ्फुज़ के साथ उन के बोलने की कोशिश को भी बिल्कुल बजा तौर पर अदबी पाप करार दिया हैं।

उन फारसी अल्फाज़ से जिन्हें हम फारसी समझ कर फारसी मे इस्तैमाल करते हैं, अह्ले ईरान उन पर चौक्ते हैं, और हमारी हँसी उडाते हैं, यानी वह अल्फाज़ फारसी नही रहे। हम ने उर्दू में उन को दूसरे मानी दे दिए है, और अब वह लफ्ज़ बिल्कुल हमारे हो गए है। आप उन को अपनी ज़बान से निकाल दीजिए, आप के यहा से निकल कर वह बिल्कुल निधरे हो जायँगे, क्योकि फारसी या अरबी इन मानो में उन्हे क्बूल न करेगी।

मसलन इन दो लफ्ज़ो को लीजिए जिन को फारसी में इस्तैमाल करने में, जब कि वह ईरान मे सफर करते हैं, अह्ले हिंद ठोकर खाते हैं—

	असल मानी	उर्दू में
तकलीफ	फर्ज़, ज़िम्मेदारी	ज़हमत
खफा	गला घोटना	नाराज़ होना

यह न खयाल कीजिए कि हम ने अल्फाज के मानी बदल दिए। ईरानियो ने भी ऐसा किया है, मसलन 'नाखुशी' हम असली मानी 'नाराजी' मे इस्तैमाल करते है, ईरानियो ने 'नाखुशी' को 'बीमारी' के मानी दे दिए है।

(३)

यह जो आम शिकायत की जाती है कि आज कल उर्दू लिखने वाले जान जान कर गैर मानूस और सख्त अरबी-फारसी के अल्फाज़ अपनी तहरीरो में ठूँसते हैं, और रोजमर्रा के सादा अल्फाज के इस्तैमाल को अपने खिलाफ शान समझते है, यह एक हद तक सही है। मगर मेरा खयाल है कि एक ज़िंदा और तरक्की करने वाली ज़बान हमेशा नए नए लफ्ज अपने मे जज्ब करती रहती है। इस को कतअन रोकने की कोशिश करना मुजिर होगा। अब यह मजाक सलीम और हिंदोस्तानी एकेडेमी के अहकामात पर मौकूफ है कि लिखने वाला कौन से लफ्ज अख्तियार करे और उन को रवाज देने की कोशिश करे। 'नान कोआपरेशन' के जमाने मे अखबारात और तकरीरो मे 'अदम तआउन' और 'मुकावमत मजहूल' पढने और सुनने में आते थे। मुकावमत मजहूल लाहौल बिला कूअत ! सिवाय इस के कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' का एक भोडा सा तर्जुमा कर दिया, मक्खी की जगह मक्खी मार दी, मगर सुनने वाला खाक नही समझा कि यह 'मुकावमत मजहूल' क्या बला है ! मै अब भी कहता हू कि अगर ज़ेह्न म 'पैसिव रेजिस्टेंस' के अल्फाज पेश्तर से न हो तो कोई अरबीदा भी इस के वह मानी नही बता सकता जिस के लिए 'मुकावमत मजहूल' गढा गया। बहर-हाल 'मुकावमत मजहूल' अपनी मौत मर गया, मगर 'अदम तआउन' ज़िंदा व कायम है, इसी तरह 'मंदूब', 'मबऊस', 'नुमाइदा' तीन लफ्ज निकले। यह उर्दू मे 'रिप्रेजेंटेटिव' या 'डेलीगेट' के मानो म नए लफ्ज थे। 'मंदूब' व 'मबऊस' का इस्तैमाल इस कदर कम है कि बमज़िले न होने के है, मगर 'नुमाइदा' चल पडा है। 'एक्टिंग' की जगह 'अदाकारी' ने ली है और यह अच्छा लफ्ज है।

बाज़ अच्छे खासे लफ्ज़ छोड कर, नए लफ्ज़ महज़ इस लिए कि वह शानदार है, अख्तियार किए जा रहे है। 'नाज़रीन' करीब करीब मरहूम है, उस की जगह 'कारईन कराम' ने ली है। 'हीरो' को छोड कर 'बतल' को रायज करने की कोशिश की गई, मगर शुक्र है कि उस मे कामयाबी नही हुई।

मैं ने एक उसूल कायम किया है, या यो कहिए कि यह मेरा एक नज़रिया है। अरबी

के जो अल्फाज़ फारसी के जरिए से हम तक पहुँचे है, उर्दू उन्हे हज़्म कर लेती है मगर जो अल्फाज़ बराहरास्त अरबी से लिए जाते है उर्दू का माद्दा उन्हें क़बूल करने से इन्कार करता है। फारसी भी सादी व हाफ़िज़ की नरम व शीरी फारसी, न कि आज कल की करख्त ईरानी, अब तो फारसी के लिए अरबी के लफ्ज़ का इस्तेमाल भी ममनूअ है, चुनाचे 'बनल', 'फक़ाहात', 'शुजरात' हज़्म न हो सके। इस बात पर गौर करना भी दिलचस्प है कि नैपाल में शमशेर जंग, तेग बहादुर, बबर जंग तो चला, सैफुल्मुल्क व ज़ीगमुद्दौला न चला।

(४)

यह इल्ज़ाम भी गलत है कि हिंदी के लफ्ज़ जान जान कर निकाले जा रहे है। 'समाज (बमानी सोसायटी), 'परचार', 'चुनाव', 'जाती' जो पहले इस्तेमाल न होते थे, अब मुसल्मानो की तहरीरो में मिलते है। बल्कि मैं तो कह सकता हू कि हिंदू लिखनेवाले फारसी के मुरव्विजा और ज़बानज़द व आम अल्फाज के साथ ज्यादा अदम तआउन बरतते है।

और यह बात कि मुसल्मानो की उर्दू में फारसी अल्फाज निस्बतन ज्यादा मिलते है और हिंदुओ की ज़बान मे संस्कृत के कुदरती बात है। जिस लिटरेचर और ज़बान से जो शख्स ज्यादा मुतास्सिर हुआ है उस की तहरीर व तकरीर मे उसी की झलक पाई जायगी।

पारसियो की गुजराती हिंदुओ की गुजराती से एक हद तक मुख्तलिफ होती है। पारसियो की गुजराती में फारसी और उर्दू के अल्फाज़ ज्यादा होते है। 'जाम-जमशेद' जो पारसियो का मशहूर अखबार है और गुजराती में शाया होता है, अगर आप के सामने पढ़ा जाय तो उस में आप बहुत से अल्फाज़ ऐसे पाएँगे जिन्हें हम बोलते है और लिखते है। अखबार का नाम ही फारसी है। 'सञ्जवर्तमान' जो हिंदुओ का कसीरुल-इशाअत गुजराती ज़बान का अखबार है उस में फारसी और उर्दू के अल्फाज कम है, वजह यह है कि बावजूदे कि पारसियो ने गुजराती ज़बान, अख्तियार कर ली है, लेकिन उन में एक काफी तादाद अब भी फारसी पढ़ती है और उस की तहरीर व तकरीर में उस का असर नुमाया होता है। इसी तरह काज़ी नजरुलिस्लाम जो बंगाल के नौजवान शायरो में बेहद शोहरत व मक़बूलियत हासिल कर रहा है, कहा जाता है कि उस की शायरी में गुल व बुलबुल, ज़ुल्फ व काकुल, साग़र व शराब और इसी किस्म के और फारसी अल्फाज़ कसरत से आते है। सिर्फ

देखना यह चाहिए कि जान जान कर और तास्सुब से तो अल्फाज का इस्तैमाल नहीं किया जा रहा हैं। अगर बसाख्ता जबान पर आता हैं ठीक है।

(५)

यह कोशिश कि हिंदी से फारसी अल्फाज यानी विदेसी अल्फाज खारिज कर दिए जायँ नैशनलिस्ट शराब के नशे का नतीजा है। ईरान और तुर्की के कौम-परवर भी इसी नशे से बदमस्त है। फारसी से अरबी अल्फाज को देस निकाला मिल रहा है। तुर्की में इस का जोर है कि फारसी और अरबी दोनो को निकाल दो। मेरा खयाल है कि तुर्की और ईरानियों की यह कोशिश कामयाब होती नजर नहीं आती। शुरू शुरू में तो मैं ने देखा कि ऐसी तुर्की लिखी जाती थी जिस का समझना अजबस दुश्वार था मगर अब मैं देखता हूं कि फिर वही मामूली तुर्की है जिस में फारसी के लफ्ज भी है और अरबी के भी। हिंदी की इस नैशनलिस्ट तहरीक जदीद का क्या हश्र होगा इस के मुताल्लिक इस वक्त कोई अंदाजा नहीं लगाया जा सकता मगर मेरा दिल गवाही देता है कि यह शिद्दत यह तास्सुब कायम नहीं रहेगा।

(६)

मुश्तरक जबान का हल मेरे नजदीक यह नहीं कि एक ऐसी जबान बनाई जाए जो न आज कल की सख्त उर्दू हो और न आज कल की सख्त हिंदी क्योंकि जब ऐसी रीडरें तैयार की जाती है तो दोनो तरफ से उन पर एतराज शुरू होते है। उर्दू वाले कहते है कि मुश्तरक जबान के परदे में हिंदी को रवाज दिया जा रहा है। हिंदी वाले कहते है कि यह तो वही उर्दू रही। मेरे नजदीक इस मुश्किल का हल यह है कि हर तालिब इल्म को उर्दू और हिंदी दोनो जबानो के सीखने पर मजबूर किया जाय। फिर आहिस्ता आहिस्ता खुद बखुद एक घुली मिली जुबान पैदा हो जायगी।

शायद यह कहा जाय कि तालिब इल्म पर कितनी जबाने सीखने का बार डाला जायगा ! इस का मेरे पास यह जवाब है कि उर्दू और हिंदी दो मुख्तलिफुलअस्ल जबान नहीं है। जब जनूबी अफरीका में डच और अंग्रेजी और कनाडा में फ्रेंच और अंग्रेजी पहलू-ब-पहलू चल सकती है हालाकि अंग्रेजी और डच और फ्रेंच और अंग्रेजी दो बिल्कुल जुदा जुदा जबाने है तो कोई वजह नहीं कि उर्दू व हिंदी जो हकीकत में एक ही जबान है क्यो साथ साथ न चल सकेंगी।

हिंद मुसन्निफीन से मेरी दर्खास्त है कि वह ऐसी उर्दू लिखें जैसी मेरे देरीना मुहिब मुकर्रम मुंशी दयानरायन साहब निगम, पंडित कौल, पंडित जुत्शी लिखते हैं। मुसल्मान ऐसी लिखे जैसी सैयद सुलैमान साहब नदवी, मौलवी अब्दुलहक, हसन निजामी, डाक्टर जाकिर हुसैन लिखते हैं। काश मुंशी प्रेमचंद जैसे मुसन्निफीन हम में पैदा हों जिन की कादिरुल्कलामी उर्दू और हिंदी जबानों में यकसां थी, और जिन्हें उर्दू और हिंदी अपना सब से बड़ा अदीब शुमार करने में मुसाबकत कर रही है!

एक हद तक यह मसला फरसूदा हो गया है। मैं देख रहा हूं कि जब से हिंदुस्तानी एकेडेमी कायम हुई है, उस के हर सालाना जलसे में, हर खुतबए-सदारत में, इस के मुतल्लिक इजहार खयाल किया गया है। सर तेज बहादुर सप्रू, मिस्टर सच्चिदानंद, मौलवी अब्दुलहक साहब, मौलाना सैयद सुलैमान नदवी, डाक्टर गंगानाथ झा, एकेडेमी में और एकेडेमी के बाहर बतौर कौल फैसल के पंडित जवाहरलाल नेहरू, निहायत काबलियत मगर निहायत ठंडे दिल से इस मसले के हर पहलू पर नजर डाल चुके हैं। लेकिन मसला इतना अहम है कि हमारे मुफक्करीन की तवज्जेह तमामतर उस की तरफ है। फिर भी कोई माकूल हल, ऐसा हल जिसे आम राय खुशी से कबूल कर ले नजर नहीं आता। तो फिर इस गुत्थी को सुलझाने का क्या दावा कर सकता हूं। लेकिन अपनी बिसात भर कोशिश मैं ने भी की।

हजरात, हिंदुस्तानी एकेडेमी की इल्मी और अदबी खिदमात काबिल तहसीन हैं। इस कलील अर्से में उस ने बहुत किया है, लेकिन काम की इब्तिदा ही है और इस वक्त ही अपना प्रोग्राम पूरे गौर और खौज से मुअय्यन कर लिया जाय तो बेहतर है।

(७)

हमारी जबान के लिए यह दौर दौर तर्जुमा है। उस्मानिया यूनिवर्सिटी हो कि अंजुमन तरक्की उर्दू, हिंदुस्तानी एकेडेमी हो कि कोई और जमायत दूसरी जबानों के बुलंद पाया मुसन्निफीन की किताबों के तर्जुमे से वह बे-नेयाज नहीं। यही नहीं कि बे-नेयाज नहीं, बल्कि उन की कोशिशों के बेशतर हिस्से का इन्हेसार उम्दा किताबों के तर्जुमे कराने या ऐसी तालीफात पर है जिन का माखज कोई मुस्तनद किताब या मुस्तनद मुसन्निफ है। और यह तरीक अमल सही भी है। तखलीकी दौर तर्जुमे के दौर के बाद आता है। पहले अपनी जबान के खजाने उन जवाहिरात से भर लीजिए जो आप को आसानी से मिल सकते

हैं, फिर नई कानो की तलाश मे निकलिएगा। लकिन मैं देखता हू कि इस पर ज्यादा जोर दिया जाता है कि साइस और फलसफे की किताबो का ही तर्जुमा किया जाय। बेशक उन का तर्जुमा लाबदी और जरूरी है। लेकिन दूसरी जबानो के लिटरेचर से हमे बेखबर नही रहना चाहिए। इन्सानी रूह की तड़प और उस तडप से जो सोज़ो-गुदाज कौमो मे पैदा हुआ है, वह हमे लिटरेचर ही से मिलता है।

सैयद हुसैन बिलगरामी मरहूम ने अलीगढ मे एक लेक्चर के दौरान मे किस कदर सही फरमाया था कि अरबो ने यूनानियो के उलूम व फनून, हिकमत व फिलसफा मतक व तिब का अपनी जबान मे मुतकिल कर के, उन के दिमाग, उन के गोश्त व पोस्त को ले लिया। मगर उन के लिटरेचर से बे-एतनाई बरतने की वजह से यूनान की रूह, यूनानियो के दिल तक उन की रसाई नही हुई। यूनान की खुश्की व यबूस्त तो उन मे आ गई, मगर यूनान की लताफत हुस्न व जमालियात की फरेफ्तगी की अकलीम से वह दामनकशा निकले चले गए। इस लिए वह एक बहुत बडी न्यामत से महरूम रहे।

यूरोप जब करूवस्ता के ख्वाब से बेदार हुआ तो इन्सानियत परस्ती की लहर, इसी लिटरेचर के मुताले से उस म दौड गई। इस लिटरेचर को उस ने 'ह्यूमैनिटीज' के निहायत मौजू नाम से याद किया। इस लिए मेरी अर्ज है कि आप लिटरेचर के तर्जुमे की अहमियत को मामूली नजर से न देख और यूनान और कदीम रोमा का लिटरेचर हमारी ज़बान मे मुतकिल होना चाहिए।

जिस लिटरेचर ने बायरन को यूनान का ऐसा आशिक बना दिया कि उस न उस के लिए अपनी जान दे दी, वह कुछ जादू अपने अदर रखता होगा। बायरन ही क्या इग्लिस्तान और यूरोप के कुल शायरो, कुल अदीबो को इसी लिटरेचर से इल्हाम हुआ है। मिल्टन, कीट्स, शैली की शायरी मे यूनान व रोमा के लिटरेचर से मुतास्सर हिस्से को निकाल डालिए तो फिर क्या रह जाता है? गरज कि होमर, बरजिल, हेरोडोटस, सफाक्लिस और दीगर खुदायाने सखुन की तसानीफ हमारी ज़बान मे बराहरास्त आनी चाहिए।

मै ने बराहरास्त अमदन कहा। मुझे हँसी आती है जब मै पढता हू कि रूसी और फ्रासीसी अदबियात के शाहकारो के तर्जुमे उर्दू मे हो रहे है। जब देखिए तो मुराद यह है कि मैक्सिम गोर्की, टाल्स्टाय, चेखाव, अनातोल फ्रास के जो तर्जुमे अग्रेजी मे हुए है उन म से कुछ किताबे, या कुछ फिसान उर्दू में तर्जुमा किए गए है। यानी तर्जुमा दर तर्जुमा।

यह कहन की जरूरत नही कि वहतरीन तजुमा असल की खूबियो का धुधला सा नक्गा होता ह। यह नक्गा और भी धुधला हो जाता ह जब कि वह तर्जुमे का तजमा हो। एकेडमी को इस कायदे की सख्ती से पावदी करनी चाहिए कि वह किसी तजमे को कबूल न करे जब तक कि वह असल जबान से उर्दू म न किया गया हो। अफसोस ह कि उर्दू म खुद हिंदोस्तान की दूसरी जबानों के तर्जुमे अग्रजी से किए जाते ह।

टगोर न अपनी तसानीफ के अग्रजी तर्जुमे खुद किए ह लहाजा यह कहा जा सकता ह कि वह तर्जुमे नही ह उस की तसनीफ ह। इस लिए टागर की अग्रजी तसानीफ से तजमा करना जायज ह। लकिन बकिमचदर और दीगर बगाली मुसन्निफीन की जो किताब उर्दू म तजुमा हुई ह मरा खयाल ह कि वह उन के अग्रजी तजुमो से उर्दू म तजुमा की गई ह। गजब खुदा का ! म न अल्फिल्ला का एक तजमा देखा जो अग्रजा से किया गया था ! मेरी इल्तिजा ह सस्कृत लिटरेचर के तर्जमे भी उर्दू और सस्कृत के आलिम उर्दू म कर के हम को इनायत कर।

(८)

हिंदुस्तानी एकेडमी न एक कमेटी इस गरज से कायम की थी कि वह इस मसल पर गौर करे कि एक मुश्तरिक जबान किस तरह आलम वजूद म लाई जा सकती ह। इस कमेटी न १२ नववर १९३१ को अपना इजलास मुनकद किया और अपनी रिपोट तयार की। एकेडमी की कौसिल म ७ मार्च १९३२ को यह रिपोट पश हुई और कौसिल न रिपोर्ट से इत्तिफाक राय करते हुए यह रिजोल्यूशन पास किया कि एकेडमी एक ऐसी डिक्श नरी शाया करे जिस म उर्दू और हिंदी के तमाम वह अल्फाज हो जो रोजमर्रा की बोलचाल म इस्तैमाल किए जाते ह। १६ जनवरी १९३७ ई० को मौलाना सयद सुलमान नदवी न अपन खतबए सदारत म यह तजवीज पश की कि एसे आसान हिंदी लफ्जो का एक लुगत फारसी खत म लिखा जाय और उन के हम-मानी हिंदोस्तानी लफ्ज लिख जायें ताकि वह आसानी से हिंदोस्तानी म शामिल हो सक। मेरी दरख्वास्त इस से ज्यादा है। एक मुकम्मल हिंदी डिक्शनरी फारसी खत म छापी जानी चाहिए। हिंदी अल्फाज को खतूत वह दानो म नागरी हरूफ म भी लिख लिया जाए। मगर मानी और तशरीह सब फारसी खत और हिंदोस्तानी म हो।

(९)

जब एकेडमी कायम हुई उस की इब्तिदा ही म, यानी ६ दिसबर, १९२८ ई० को मैं न एक रिज़ोल्यूशन रोमन हरूफ के रवाज दन के मुतल्लिक पश किया था। फिर गुज़श्ता साल लखनऊ म हिंदुस्तानी एकेडमी की काफ्रस म उर्दू सेक्शन म, इस के मुतल्लिक एक मकाला पढा। अब फिर आप को वहकान और आप के दद-सर का बाअस होन के लिए म उसी राग को अलापता हू।

लकिन इस मरतबा मेरी हिम्मत बढी हुई है। हिंदुस्तान की उस अज़ीमुश्शान जमाअत के सद्र न (जिस के हाथ में इस मुल्क के सात सूबो की हुकूमत की वाग है) हरी पूरा काग्रस के प्लैटफाम स इस मसल पर इज़हार ख़याल फरमा कर, इस की अहमियत को कहीं से कहीं पहुँचा दिया। मिस्टर सुभाष बोस रोमन हरूफ के रवाज के हामी ह, यह आवाज़ तमाम मुल्क म गूज रही है। इस मसल पर जो और आवाज़, कमज़ोर आवाज़, कमज़ोर आदमियो की तरफ से उठती थी उन को कोई वक्त नही दी जाती थी। लकिन जब एक बड गिरजा के बड आरगन की पुर अज़मत आवाज से वही ल निकल रही है तो मुझ यकीन है कि वह अकीदत व एहतेराम स सुनी जायगी।

निहायत मुख्तसर तौर से यह अज़ कर दू कि मैं यह नही कहता कि टर्की की तरह कानूनन हिंदोस्ताना का फारसी हरूफ या नागरी हरूफ म लिखना बद कर दिया जाय और हर शख्स मजबूर किया जाय कि वह रोमन म लिख पढ। नहीं, मरी गरज यह है कि मौजूदा फारसी ख़त और नागरी ख़त जारी रहे। मगर साथ ही इस के रोमन को भी रवाज देन की कोशिश की जाय और उर्दू व हिंदी की किताब और अख़बारात इन हरूफ म भी छाप जायँ। ताकि मुल्क के उस तबक तक जो कि हिंदुस्तानी ज़बान म बोलता और समझता है मगर ब-सबब इस के कि फारसी रस्मुलख़त और नागरी रस्मुलख़त से नाबलद है, उसे पढ नही सकता, हमारे लिटरेचर की रसाई हो सके।

(१०)

ख़ातमा कलाम पर मैं उर्दू और हिंदी के हमगीर असर के मुतल्लिक अज़ करना चाहता हू। इस म तो कोई कलाम नहीं कि वह ज़बान जिसे उर्दू कहिए या हिंदी, या सुलह जूयाना तरीक से हिंदुस्तानी, इस मुल्क के एक बड हिस्स पर छाई हुई है और छाती जाती है। लकिन मेरा अकीदा है कि हिंदुस्तान म ज़बान का भी फेडरेशन होगा। लकिन यह

दो फेडरेशन होगे। पजाव, सिध, सूबा सरहद, उर्दू के फेडरेशन में शामिल होंगे, यहा उर्दू हाकिम आला होगी। मुकामी हुकूमत खुद इख्तियारी पजाव मे पजाबी को, सिध में सिंधी को, सूवा सरहद मे पश्तो को दी जाएगी। बलूचिस्तान के मुताल्लिक मै कोई राय कायम नही कर सकता कि आया वह इस फेडरेशन मे शामिल होगा या नही।

दूसरा हिंदी का फेडरेशन होगा। इस में मुमालिक मुतवस्सिता, महाराष्ट्र, बबई शामिल होगे। हमारा सूबा और बिहार हिंदी के फेडरेशन में होगा। मगर उर्दू का फेडरेशन यहा हम्लाआवर रहेगा और बहुत मुमकिन है कि यहा लसानी तवायफुल्मुलूकी (लिग्विस्टिक अनार्की) रहे। जिस तरह बलूचिस्तान के मुताल्लिक मै कोई राय नही दे सकता, बगाल के मुताल्लिक भी मै ने कोई राय कायम नही की।

बलूचिस्तान का उर्दू के फेडरेशन मे शामिल होना इस लिए मुशतबा है कि वहा ज़बान व लसान के बारे मे कोई अहसास, कोई बेदारी नही। बगाल की हालत इस के बिल्कुल खिलाफ है। वहा खुददारी का एहसास इस कदर तेज है कि बगाली हिंदी के फेडरेशन में शामिल होना अपनी कसर शान समझेगा।

जनूबी हिंद इन दोनो फेडरेशनो से कुल्लियतन आज़ाद रहेगा। मिस्टर गोपालाचार्या जनूबी हिंद मे हिंदी की तरवीज की कोशिश कर रहे है। मगर 'ऐंटी हिंदी कांफ्रेंस' के कयाम ने उन्हें साबित कर दिया होगा कि वह जनूबी हिंद मे बजब्र हिंदी को रवाज नही दे सकते। इस की वजह यह है कि गो हिंदू मज़हब की वजह से हिंदू माशरत का असर वहा हावी है और सस्कृत लिटरेचर वहा अकीदत और शौक से पढा जाता है, लेकिन चूकि वहा की ज़बानें 'ड्रावीडियन' है, वह अपने को हिंदी से बिल्कुल अलहदा और दूर पाती है। रस्मुलखत, अल्फाज़, ग्रामर, हर चीज़ अलहदा है।

सूबा सरहद के उस बदनाम 'ऐंटी हिंदी सर्कुलर' ही को लीजिए जिस की वजह से अखबारात के सैकडो कालम सियाह हुए और सैकडो प्रोटेस्ट रिज़ोलूशन पास हुए। नतीजा क्या हुआ? सरहद में न हिंदी रही न उर्दू। वहा की असेबली के नेशनलिस्ट मेबर ने यह रिज़ोलूशन असेंबली में पेश कर दिया कि वहा की मादरी ज़बान पश्तो है, लेहाज़ा वहा ज़रिए तालीम पश्तो ही हो।

मै ने जो यह कहा कि सूबा सरहद, पजाब और सिंध में गालिबन उर्दू कामियाब होगी, यह इस बिना पर कहा कि वहा के बाशिदे (मै अकसरियत का ज़िक्र कर रहा हू)

जिस रस्मुल्खत मे अपनी अपनी जवान पढ़ते लिखते है वह वही रस्मुल्खत है जिस में उर्दू लिखी जाती है, अलावा अजी उन की जवानो में फारसी और अरबी अल्फाज उसी निस्वत से शामिल है जिस निस्वत से कि उर्दू में। इस लिए वह उर्दू को वमुकावले हिंदी के अपनी जवान के करीवतर पाएँगे।

इसी बिना पर सूवा मुतवस्सित, वरार, ववई, महाराष्ट्र के लोग हिंदी को अपनी जवान के करीवतर पाएँगे।

गरज कि हर जगह जहा हिंदी कामयाव होगी वहा समझना चाहिए कि उर्दू भी कामयाव होगी। इसी तरह जहा उर्दू ने घर कर लिया, वहा हिंदी भी दाखिल हो गई। मदरास का रहने वाला जो तेलगू या कनारी या मलयालम वोलता है, जब हिंदी वोलने और पढने लगेगा तो क्या वह उर्दू नही समझेगा ?

दुर्योधन का क्षोभ

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र]

[हिंदी के प्रसिद्ध नाटक-कार तथा कवि, पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र, महाभारत के कर्ण-पर्व के आधार पर अतुकांत छंद में एक महाकाव्य की रचना कर रहे हैं। इस का प्रथम सर्ग तैयार हो चुका है, और उसी का एक अंश नीचे दिया जा रहा है। द्रोणाचार्य के निधन के पश्चात्, उस कराल रात्रि में शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शकुनि आदि वीरों के साथ दुर्योधन अपने शिविर में बैठा हुआ है। सब लोग द्रोणाचार्य की मृत्यु पर खेद प्रकट कर रहे हैं। इसी के बीच कृतवर्मा के कुछ कहने के पश्चात् दुर्योधन कुछ निराशाजनक स्वर में बोलता है। अश्वत्थामा जो अपने पिता की मृत्यु से क्षुब्ध है, उत्तेजित हो उठता है।]

मौन कृतवर्मा हुआ। मर्म भेदी साँस ले
बोला यों सुयोधन सखेद धीर वाणी में,
"भाई क्या कहूं मैं और आज किस योग्य हूं ?
रक्षक बने हो तुम मेरी कालरात्रि के,
धो सकोगे किंतु क्या लिखा है जो विधाता ने
मेरे हीन भाल में ? नियति चक्र मेरा जो
घूमता रहा है प्रतिकूल, पलटोगे क्या
गति उस की ? जो कहूं मैं भी सदा दास सा
प्रस्तुत रहूँगा धन-धर्म, प्राण देने को
सेवा में तुम्हारी, यह आशा तो दुराशा है।
हाय भाई कैसे कहूं चाहता हूं कितना,
कितना ऋणी हूं, मैं तुम्हारे उपकार का

बदला चुकाता कभी! किंतु देखता हूँ मैं
अंत इस जीवन का अंत इस युद्ध में।
कौन जानता था हाय! कुरु-कुल-उग्र वे
मृत्युंजय, भीष्म-व्रती भीष्म इस रण में
आ गिरेंगे पृथ्वी पर बाणों से शिखंडी के
भाग्य की विडंबना से? नारी है कि नर है
राहु वह बोलो सखे कुरु-कुल-रवि का?
अंजन से रंजित वे आँखें पद्म-दल सी,
और वह वेणी गुँथी पीठ पर उस के,
कंचुकी विलोक वह, देख चंद्रहार को
कौन कह देगा वह नारी नहीं नर है?
छलती मरीचिका है जैसे मरुभूमि में
पथिक पिपासाकुल, वैसे छला नीच ने
माया-जाल डाल इस वंश की विभूति को।
देवव्रत धर्मधीर हैं वे, भला अबला
मारते कभी हैं महावीर भूल कर भी?
देखा एक दृष्टि अरे नारी पार्थ रथ में
फेर लिया आनन तुरंत, पर-नारी को
देख सकते थे कभी विश्व वंद्य वीर वे?
और वे पड़े हैं आज काल शर-सेज में,
काल शर-सेज में पड़े हैं बंधु आज वे,
विस्मय जगत के वे देव नर दैत्यों के,
मन्मथ-जयी वे, योगिराज सम धीर वे!
कामिनी की कामना न डोली कभी जिस के
मानस में, बाहुवल्लरी में पद्मिनी की रे
बाँधा गया जो न कभी, चंद्रमुखी-मुख की
आभा से न दीप्त हुई आभा पंचबाण की

जिस के लिए; न जाना जिस ने कि कैसा है
मजु अधरो का रस उन्नत उरोजो का,
कैसे तीक्ष्ण नेत्र-शर होते मृगनैनी के,
वेधते अचूक नर-सिंह योगिजन जो;
हाव, भाव, मादक कटाक्ष षोडशी के वे,
वासती वसत में ज्यो, यामिनी शरद में
पूर्ण शशि, कोकिल की कूक अर्ध-निशि में,
व्याप्त करते जो मन-प्राण क्षण-भर में,
व्याप्त करते जो, यह सृष्टि मधु-मद में
होती है द्रवित यो शिला ज्यो शिलाजीत की।
कहते इसी से कुसुमायुध अजेय है;
जीता जिसे केवल या शकर ने तप से,
और जिसे जीता नर-देही देवव्रत ने।
देव-देही किंवा दैत्य-देही और कौन है
भाई इस विश्व में लगाई नहीं जिस ने
फाँसी स्वय आप आत्म-रस में विभोर हो
विषधर नाग तुल्य मानिनी की वेणी की ?
और वे ही जा पडे जो देखो काल-मुख में
नीति से, तुम्हारे कुलभूषण की नीति से।
माधव मुकुद जो तुम्हारे दिव्य चक्षु है,
देखते है स्वार्थ साधना जो शत नेत्र से,
जान गए वे जब पितामह अजेय है,
साध्य नहीं पार्थ का जो मारे उन्हें रण में,
और यदि यशकीर्ति लडते रहेंगे जो,
पूरी हो सकेगी नहीं पाडवों की कामना,
कौशल से काम लेना जानते मनस्वी है,
और वे मनस्वी है, तभी तो शिशुपाल को

मारी था उन्हों ने सभा-मध्य जो निरस्त्र था,
तर्कपूर्ण वाणी युद्ध करने उठा था जो,
जानता नहीं था जो कि उत्तर में तर्क के
चक्र चलता है। वह दृश्य इन आँखों में
घूमता है बार बार, उस ने कहा था जो--
'योग्य क्या यही है जहा पूज्य गुरुजन है,
शस्त्र-पूज्य, शास्त्र-पूज्य, आयु-पूज्य जन ये
हीन हो रहे हैं आज मध्यम की पूजा से
कैसा है अनर्थ यह ?'
तत्क्षण ही व्योम में
फूटी अग्नि आभा, झँपीं पलकें, खुलीं जो वे
देखा भूमि-लुठित था शीश शिशुपाल का।
काँप उठी सारी सभा विस्मय से भय से,
नीचे झुका शीश चक्रवर्ती धर्मराज का,
धर्म-यज्ञ-मडप में हत्या यों अधर्म से!
बात बिगडी थी, जो न होते पितामह तो
निश्चय था होती क्राति और रक्त-धारा से
बुझती हविष्य अग्नि। साम, दाम, भेद से
शात कर क्रोधानल शिष्टाचार वारि से,
बोध नृप-वर्ग का किया था यज्ञभूमि में
तात देवव्रत ने, बचाई धर्मसुत की
लोकलाज, धर्मलाज। बदला उसी का तो
उन को मिला है इस रण में शिखडी से।
देखते नहीं है कभी नारी ब्रह्मचारी वे
विश्व में विदित यह निष्ठा उन की जो है,
भीष्म व्रत भीष्म का न डोलेगा जगत में,
चाहे डोल जाए धरा, सूर्य शशि डोलें ये,

डोले ध्रुवलोक, ध्रुव धारणा जो उन की
डोलेगी कदापि नहीं, कौशल रचा गया
और वह क्लीव द्रोण-द्रोही सुत निंद्य रे।
निंद्य जिस का है जन्म, आचरण निंद्य है,
मर न गया जो हाय मा के ही उदर में।
धारण किया था वह गर्भ किस लोभ से
जननी अभागिनी ने ? ग्लानि नर-वंश की
पैदा किया लाभ क्या था ? लज्जित हुई न जो
प्रसव किया क्यों सुत ऐसा नारि-वृत्ति का ?
नारि वेश, आभरण, भूषण में हाय रे!
मिलता जिसे है रस जीवन-जगत का।
किंतु दोष क्या है जननी का ? किस भाँति से
जान सकती है वह क्या है उस गर्भ में,
कालकूट किंवा सुधा, लोहा है कि सोना है ?
आशा तो सदा ही उसे रहती मनोज्ञ है
होगा शिशु वीर, गुणी और इस लोक की
गुणिजन-गणना में जिस की सुकीर्ति से,
धन्य होगी जननी की यातना प्रसव की,
धन्य होगी कोख वह। किंतु दुर्दैव का
कैसा है विधान यह क्रूर, सखे, देखो तो,
होते उसी गर्भ से हैं निंद्य जन विश्व के।
कुलटा सुताएं और पापी सुत माता का
पीते वही पय, जो कि पीते गुणी जन हैं,
पीते महावीर, महादानी, महाज्ञानी जो
योगिजन जीवन-मरण हीन जग में।
कहना ही होगा सखे क्रूर कर्मरेखा की
क्रूर दुर्दैव की विभीषिका जगत में

जलती निरतर है।"
भीम ध्वनि पौंड्र की
गूंज उठी बेधती धरा को और व्योम को।
चौंके सब वीर, चौंकी सृष्टि वज्र-नाद से,
फूट पडे ज्वालामुखी, किंवा भूमि-कप हो,
कांप उठी सारी सृष्टि त्रस्त प्राण-भय से।
"देता है चुनौती भीमसेन कुरु-दल को,"
बोला द्रौणि,—"लाओ बनू दूत मैं प्रलय का,
लाओ रथ, लाओ तूण, भीषण पिनाक रे!
आज मैं पिनाकी बनू और इस सृष्टि को
भेजू मैं रसातल को फूंक अग्नि बाणों से,
बोरू इसे छोड वरुणास्त्र आज रण में,
मेटू अपवाद पाडवो का और कृष्ण का,
भोगें राज-वासना विपक्षी यमलोक में।
एक सग भेजू धृष्टद्युम्न, धर्म-सुत को
सग सग पार्थ, कृष्ण, भीमसेन, सात्यकी
और उस विश्व-ग्लानि युवती शिखडी को,
द्रुपद-सुता का पद ले जो उस लोक में,
रानी बने पांच भाइयो की, इस लोक की
सपदा जो सारी मिलें यमपुर में उन्हें,
राज्य करें राज्यवासना हो तृप्त उन की।
मेरे दिव्य शस्त्र, देवशस्त्र, विश्वनाशी वे
ब्रह्मशिरा, सर्वग्रासी, नारायण अस्त्र को
रोक सके ऐसा कौन है जो इस लोक में?
देव हो कि दानव हो, शक्ति किस की है जो
मेट सके ब्रह्मशर-महिमा जगत में?
पापी धृष्टद्युम्न को सुलाऊ काल-रण में।

मारे गए तात पुत्र-शोक में विकल हो,
और वही पुत्र हू मै, धिक् मुझे धिक् है
जीवित हू अब तक मै, पापी पितृ-ऋण से
उऋण हुआ न जो हा मार पितृघाती को
ग्लानि वीरकुल की मै पुण्यक्षीण धिक् है
जीवित हू !"

थरथर कांपा वीर रोष से,
काँपता है जैसे सिधु झझा की झकोर में।
तत्क्षण ही वाणी रुकी, क्रोध की लपट में
मानो जली जीभ, जलीं आँखें धकधक सी
आहुति पडने से यथा अग्नि। श्रमबिंदु से
शोभित था भाल हेमकूट रत्नमय ज्यो।

कहने लगा यो तब आश्वासन-स्वर में
अधनृप-नदन, "हे वीर गुरु-पुत्र हे
कर्म-रेख मिटती कभी क्या पुरुषार्थ से ?
भाई अनुकूल पाडवो का दुर्दैव है,
हो रहा तभी तो हाय नित्य क्षीण-बल मै,
करता तभी तो उपहास शख ध्वनि से
देखो यह शत्रु, आज सकट की रात में।
सहना पडेगा हमें भाग्य में लिखा है जो
निर्दय विधाता ने।"

"परतु कर्मलिपि की
(हाथ फेंक द्रोण-सुत बोला ग्लानि व्यग से)
निर्दय विधाता और भाग्य की विडबना,
देखी नहीं तुम ने क्या राजकुल-रत्न हे
कुरु-कुल चूडामणि ! माँगा जब तुम से
पाडु के सुतो ने राज-भाग था अनय से,

और जब तुमने कहा था वीर-दर्प से
होते अधिकारी यथा अनौरस तनय हैं—
सिंहासन, राजछत्र, राजदंड-पद के?
धरती न दूंगा प्राण दे दूं भले किंतु मैं
लूंगा अपवाद नहीं शत्रु-शस्त्र-भीति का!
और जब आज जली अग्नि इस रण की
दे रहे हो दोष दुर्दैव कर्म-लिपि को!
भूल चुके राजनीति और वीर व्रत हो।
भूले यदि जीवन के मोह में समर में,
संधि करो पांडवों से और संधि-दूत मैं
आज बनूं। किंतु जब पद्मपति प्राची में
आकर करेंगे अनुरंजित जगत को,
मेरी प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा द्रोण-सुत की
दावानल बन कर जलेगी शत्रु बन में।
एकाकी लड़ूंगा। पितृदेव के निधन का
बदला न लूं जो धृष्टद्युम्न के रुधिर से,
तर्पण उन्हें कर न सींचूं धरातल को
शत्रुओं के शोणित से, जाऊं मैं नरक में,
घोर कुंभीपाक में जलूं मैं। यदि जन्म हो
मेरा फिर जग में तो दैव! रे कहूं मैं क्या
याचना है दूसरा शिखंडी बनूं लोक में,
वीर-कुल ग्लानि बनूं जग का कलंक मैं।"
कौंधती है चंचला ज्यों वेग से गगन में
घोर घन बेधती हुई ज्यों लुप्त होती है,
देखी वही शक्ति, वेग शक्ति गुरु-पुत्र की
बाहर शिविर के हुआ था जो निमेष में,
अंबर में गूंजती थी वाणी अभी जिस की।

— और वह अग्नि आत्म-ग्लानि प्रतिहिंसा की
धधक उठी जो महावीर के हृदय में,
जलती चतुर्दिक् थी मानो विश्व-व्योम में,
जल उठा मानो कुरुराज उस वह्नि में,
कहने लगा यों—
"पितृ-शोक में विकल हो
खोई तुम ने है ज्ञान-चक्षु, प्रतिहिंसा की
भावना में भूले महावीर वीरव्रत हो।
जा रहे हो जाओ, गुरु-पुत्र जानता हूं मैं
संकट में कौन किस का है इस लोक में?
छोड़ते हैं पक्षी वृक्षराज जब वन में
जल उठता है घोर ज्वाला में दवाग्नि की।
जैसे जब पुष्प-शर प्रेरणा से इंद्र की
तोड़ने चला था जो समाधि योगिराज की,
देव-कुल मंगल की कामना थी मन में,
किंतु जब हाय! नेत्र-ज्वाला में त्रिनेत्र की
भस्म हुआ, उस को बचाया क्या सुरेंद्र ने?
चंद्र ने बचाया, या कि वायु ने, वरुण ने
तीन लोक त्राहि त्राहि करता फिरा था जो?
आश्रय मिला न कहीं। विश्व के विधान में
आता नहीं आड़ कोई भीषण विपत्ति में।
जाओ, उपालंभ नहीं मेरा कुछ तुम से,
कूदा था स्वयं मैं इस विग्रह-समुद्र में
लोकनीति रक्षा करने को; बाहु-बल से
पार मैं करूँगा इसे या कि डूब जाऊँगा,
चिंता नहीं, डूबता तो अखिल जगत है
डूबता है आज कोई और कल कोई है,
डूबती है सारी सृष्टि वेला में प्रलय की।"

दो कविताएं

[रचयिता—श्रीयुत सुमित्रानन्दन पंत]

(१)

ठङ — ठङ — ठन !
लौह-नाद से, ठोक पीट घन,
निर्मित करता श्रमिकों का मन
ठङ — ठङ — ठन !

"कर्म-क्लिष्ट मानव-भव-जीवन,
श्रम ही जग का शिल्प सनातन,
कठिन सत्य जीवन का क्षण-क्षण
घोषित करता घन वज्र-स्वन,—
व्यर्थ विचारों का संघर्षण,
अविरत श्रम ही जीवन-साधन;
लौह-काष्ठमय, रक्त-मांसमय
वस्तु-रूप ही सत्य चिरंतन।"
ठङ — ठङ — ठन !

अग्नि-स्फुलिंगों का कर चुंबन
जाग्रत करता दिग्-दिगंत घन,—
"जागो श्रमिको, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी हैं श्रमजन !"
"मांस-पेशियां हृष्ट-पुष्ट, घन,
बढ़ी शिराएं, श्रम-बलिष्ठ तन,

भू का भव्य करेंगे शासन,
चिर लावण्यपूर्ण श्रम के कण।"
ठड् – ठड् – ठन!

(२)

ताक रहे हो गगन?
मृत्यु - नीलिमा - गहन
गगन?
अनिमेष, अचितवन
काल-नयन?
निःस्पद, शून्य, निर्जन,
निःस्वन?
देखो भू को!
जीव-प्रसू को।
हरित-भरित
पल्लवित-मर्मरित
कुजित-गुजित
कुसुमित
भू को!
कोमल
चचल
शाद्वल
अचल,—
कलकल
छलछल
चल-जल-निर्मल,—

कुसुम-खचित,
मारुत-सुरभित,
खगकुल-कूजित,
प्रिय पशु-मुखरित,—
जिस पर अंकित
सुर-मुनि-वंदित
मानव पद-तल !
देखो भू को,
स्वर्गिक भू को !
मानव पुण्य-प्रसू को !

———

असितकुमार हल्दार की चित्रकला

[लेखक—श्रीयुत रामचद्र टडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

अब से तिहाई सदी पहले भारतीय चित्रकला के क्षेत्र मे जो नवजागृति बगाल मे हुई, वह वास्तव मे हमारे देश मे विस्तार पाती हुई पाश्चात्य शैली के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिक्रिया थी। हिंदुस्तान मे पश्चिमी चित्रकला की जिस 'एकेडेमिक' परपरा का अनुकरण हो रहा था, वह ऐसी थी जो यूरोप मे ही शका की दृष्टि से देखी जाने लगी थी। भारतीय आदोलन का उद्देश्य यह था कि इस देश के शिल्पी अपने ही अतीत से प्रेरणा प्राप्त करे और अपनी शक्ति को पश्चिम की नकल मे व्यर्थ न गँवावे। किंचित् आश्चर्य की बात है कि यह स्फूर्ति बगाली चित्रकारो को एक अग्रेज द्वारा प्राप्त हुई। यह सज्जन थे स्वर्गीय ई० बी० हैवेल, जिन का नाम हमारी चित्रकला के इतिहास मे अमिट रहेगा। हमे ज्ञात है कि इस आदोलन को आरभ के दिनो मे, विशेष कर बगाल मे ही बडे विरोध का सामना करना पडा था। इस का उपहास भी हुआ, परतु अब विरोध और उपहास प्राय दोनो ही शात हो चुके है, और अब हम जब पिछली सदी की अतिम दशाब्दी मे प्रचलित कला-सबधी विचारो पर ध्यान देते है और उन का मिलान आज के विचारो से करते है तो हमे आश्चर्यजनक परिवर्तन मालूम पडता है। यह बात बहुधा बताई जाती है कि बगाल के कला-सबधी आदोलन का बडी योग्यता के साथ नेतृत्व श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर और उन के बडे भाई श्री गगनेंद्रनाथ ठाकुर ने किया। मेरी ऐसी धारणा है कि ठाकुर बधुओ को इस कार्य मे अपने प्राथमिक शिष्यो से जो सहायता प्राप्त हुई है उस पर कम ज़ोर दिया गया है। श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर एक योग्य गुरु थे और एक योग्य गुरु की भाँति ही उन्हो ने अपने शिष्यो को अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुरूप भाव प्रदर्शन के कार्य मे प्रोत्साहित किया। परिणाम यह हुआ कि बगाल की कला-सबधी जागृति में इन प्राथमिक शिष्यो का भी पूरा-पूरा हाथ रहा है। इन मे से दो के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है। एक तो श्री नदलाल बोस का, जिन की प्रतिभा बहुमुखी रही है और दूसरे श्री असितकुमार हल्दार का जिन्हो

ने अपने सुकुमार चित्रांकण द्वारा अपने लिए कला-जगत में एक विशेष स्थान बना लिया है।

असितकुमार का जन्म कलकत्ता मे १० सितंबर १८९० में हुआ था। यह बंगाल के चौबीस-परगने के जगद्दल नामक स्थान के प्रसिद्ध हल्दारवंश में उत्पन्न हुए हैं। इन के पिता, श्री सुकुमार हल्दार ने 'ए मिड-विक्टोरियन हिंदू' नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिस में कलाकार के पितामह श्री राखालदास हल्दार के जीवन पर अच्छा प्रकाश मिलता है। श्री राखालदास हल्दार एक स्वतंत्र आचार-विचार के सुधारवादी हिंदू थे, जो ब्रह्म-समाज के कार्यों में बहुत उत्साह प्रदर्शित करते थे और जिन्हों ने एक बार अपने यज्ञोपवीत का भी त्याग कर दिया था। यह इंग्लिस्तान की हवा खाए हुए थे और अपना जीवन सरकारी नौकरी मे बिताते हुए भी साहित्य से बहुत प्रेम रखते थे। वह कला-प्रेमी भी थे। परंतु कला के संबंध मे उन का मत था कि कला को प्रकृति का अनुकरण करना चाहिए। पूर्वीय कला की कृतियो मे पाए जाने वाले शरीर-विन्यास से वह असंतुष्ट रहते और पूर्वीय चित्रो में प्राप्त अलंकार के प्राधान्य के विरोधी थे। मूर्तिकला के विषय मे वह यूनान और रोम के आदर्शों के भक्त थे। इस प्रकार के विचार प्राय आज से दो-तीन पीढ़ी पूर्व के अंग्रेज़ी शिक्षित हिंदुस्तानियो में साधारण थे। यह बात किंचित् कौतूहल-जनक है कि असितकुमार ने अपने पितामह के कला-संबंधी विचारो का अपनी आलोचनाओ और रचनाओ द्वारा बराबर प्रतिवाद किया है। कलाकार के पिता श्री सुकुमार हल्दार बिहार के एक अवकाश-प्राप्त सरकारी कर्मचारी हैं जो अब राँची मे बस गए है। अपने पुत्र की कलाभिरुचि को देख कर उन्हो ने असितकुमार को सन् १९०५ में कलकत्ता के स्कूल आव् आर्ट्स में भरती कराया। अवनींद्रनाथ इस समय अपना कार्य आरंभ कर चुके थे और सन् १९०५ से १९११ तक इस स्कूल मे रह कर असितकुमार ने न केवल अपने समय का छात्र-रूप में सदुपयोग किया वरन् उस कार्य में अपने गुरु के सहायक हुए जिस ने कि एक प्रकार से हमारे देश में कलाभिरुचि में क्रांति उत्पन्न कर दी। असितकुमार के सहपाठियो मे इस काल में श्री नंदलाल बोस, श्री समरेंद्रनाथ गुप्त, श्री क्षितींद्रनाथ मजूमदार, श्री शैलेंद्रनाथ दे और श्री वेंकटप्पा थे। इन सभी ने अपनी-अपनी कला के कारण देश मे प्रतिष्ठा पाई है। असितकुमार को मूर्तिकला सीखने का भी शौक था और मूर्तिकला में उन्हो ने शिक्षा श्री लेओनार्ड जेनिंग्स से ग्रहण की, जो कि उस समय भारतीय सरकार के शिल्पी थे।

जैसा कहा जा चुका है अवनीद्रनाथ आदि बगाली शिल्पियो का आदर्श भारतीय कला का पुनरुद्धार करना था। लार्ड जेटलैंड (जो पहले लार्ड रोनाल्डशे तथा बगाल के गवर्नर थे) ने लिखा है कि "इन के अस्तित्व के अचतन तथा गहरे स्तरा में प्राचीन भारतीय कलाकारो की प्रवृत्तिया तथा भावनाए प्रकट होने के लिए जोर लगा रही थी।" फिर भी, यह किंचित् आश्चर्य की बात है कि—जैसा इन शिल्पियो ने स्वय लार्ड जेटलैंड से स्वीकार किया—यह लोग भारतीय कला की परपरा और शिल्पशास्त्र में अकित नियमादि से अनभिज्ञ थे। परतु एक बार अपने कार्य मे सलग्न हो जाने के अनतर इन्हो ने न केवल सस्कृत ग्रथो के अध्ययन और मनन द्वारा प्राचीन चित्रकारो की शिल्प-परपरा का ज्ञान सीखा वरन् प्राचीन चित्रकारो की कृतियो से भी यथा-सभव साक्षात् प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसी निमित्त डाक्टर अवनीद्रनाथ ठाकुर न प्रथम अवसर से लाभ उठा कर १९०९–१० में अपन शिष्यो को लेडी हेरिंघम की प्रसिद्ध यात्रा म अजता के भित्तिचित्रो के अध्ययन के लिए और तत्सबधी शिल्पज्ञान प्राप्त करन के लिए भेजा। इन शिष्यो मे प्रमुख श्री नदलाल बोस तथा श्री असितकुमार हल्दार थे। यहा पर असितकुमार हल्दार ने सर्वप्रथम उन विशाल भित्तिचित्रो का निरीक्षण किया जिन्हें समय तथा मनुष्य के आक्रमणो ने अब भी सपूर्णतया नष्ट नही किया था। असितकुमार का अपना काय केवल दो चित्रो की नकल उतारने तक सीमित रहा। यह नकलें आज लदन के साउथ केंजिग्टन म्यूजियम के भारतीय विभाग में सुरक्षित है। हल्दार ने अपने चित्रो मे अजता का अनुकरण करने का विशेष प्रयत्न नही किया है, परतु अजता ने उन पर जो प्रभाव डाला वह गहरा था और उन्हें प्राचीन भित्तिचित्रो की शैली के अध्ययन का जो अवसर प्राप्त हुआ वह मूल्यवान् था। तब से इस ज्ञान को विस्तार देने के और भी अवसर उन्हें मिले है। सर जान मार्शल ने भारतीय सरकार के पुरातत्व-विभाग की ओर से उन्ह मध्य-भारत की सिरगुजा रियासत में स्थित जोगीमारा गुफाओ के चित्रो की नकल करने का कार्य सौंपा। और १९०७ तथा १९२१ में ग्वालियर दरबार के आदेश से उन्हो न बाग की गुफाओ से भित्तिचित्रो की नकलें तैयार की। भित्तिचित्रो के सबध के अपने ज्ञान को और भी पूर्ण करने का असितकुमार हल्दार को तब अवसर मिला जब उन्हो ने जयपुर में रह कर वहा की आधुनिक चित्रशैली से परिचय प्राप्त किया। उन्हो ने भित्तिचित्रो की इटालियन शैली का भी ज्ञान प्राप्त किया है और आज भारतीय चित्रकारो में बहुत कम ऐसे मिलेंगे

जिन का इस विषय का ज्ञान हल्दार जैसा हो।

शिक्षक के रूप मे भी हल्दार को विस्तृत अनुभव प्राप्त है। सन् १९१८ में इन्हो ने कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्ट्स में एक शिक्षक का पद पाया। परतु यहा पर यह थोडे ही काल तक रहे, क्योंकि १९१९ मे यह श्री रवीद्रनाथ ठाकुर की अतर्जातीय सस्था शातिनिकेतन में कलाभवन के प्रिंसिपल नियुक्त हो गए। यहा पर अपने युग के एक महान् व्यक्ति से निकट सपर्क मे रहते हुए असितकुमार ने न केवल बहुत कुछ रचनात्मक कार्य किया वरन् अपने उत्साह और सलग्नता द्वारा इन्हो ने कई ऐसे शिष्य तैयार किए जो कि इस समय भी भारतीय चित्रकारो के बीच आदरणीय स्थान रखते हैं। कलकत्ता गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्टस् के प्रिंसिपल श्री मुकुलचद्र दे और वहीं के हेडमास्टर श्री रामेंद्रनाथ चक्रवर्ती दोनो ही हल्दार के शिष्य रह चुके हैं। इन के अतिरिक्त श्री धीरेंद्रकुमार देव वर्मन जिन्हो ने लदन के इडिया हाउस मे चित्रण किया, श्रीमती प्रतिमा ठाकुर, श्रीमती सविता ठाकुर, बबई की श्रीमती हथीसिंघ (जो अपनी नृत्यकला के लिए भी विख्यात हैं) आदि के भी हल्दार गुरु रहे हैं। सन् १९२३ मे हल्दार ने यूरोप की यात्रा की। इस यात्रा का उद्देश्य प्रसिद्ध यूरोपीय चित्रकारो की कृतियो से परिचय प्राप्त करना था तथा यूरोपीय शिल्पज्ञान की सूक्ष्मताओ का अनुशीलन करना भी था। वहा से लौटने पर सन् १९२४ में वह जयपूर के प्रसिद्ध महाराजाज़ स्कूल आव् आर्टस् के प्रिंसिपल नियुक्त हो गए और इस पद पर बडी योग्यता के साथ काम किया। सन् १९२५ मे यह लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्टस् ऐंड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल हो गए। तब से वह इसी पद पर काम कर रहे हैं। इन के लखनऊ के शिष्यो में विशेष प्रसिद्ध श्री ए० डी० टामस हैं जिन्हो ने ईसाई धार्मिक विषयो पर चित्रण द्वारा अच्छा नाम पाया है और जिन्हो ने दिल्ली में वाइसराय के गिरजा-घर में चित्रकारी की है। इन के अतिरिक्त सर्वश्री श्रीराम व्यास, राधेश्याम तथा पी० एन्० जिज्जा हैं जो सभी होनहार चित्रकार हैं।

लखनऊ स्कूल की चित्रकला शैली की दृष्टि से बगाली शैली की एक प्रशाखा मात्र हैं। यहा के चित्रकारो ने, जैसा स्वाभाविक था, विशेष कर हल्दार से ही प्रेरणा प्राप्त की है। साहित्य मे जो अतर महाकाव्य और गीति-काव्य मे है वही चित्रकला के क्षेत्र मे नदलाल बोस और हल्दार की कृतियो में समझना चाहिए। मिस्टर जेम्स कजिन्स ने ठीक ही लिखा है कि "श्री हल्दार बगाल शैली के चित्रकारो में 'रगो के कवि हैं'।" उन के चित्रो

में हम उन के काव्यमय चिंतन के साथ ही रहस्यवाद का पुट भी पाते हैं। रेखाओ द्वारा उन मे मृदुल कल्पनाओ को साकार करने की क्षमता है। आधुनिक भारतीय चित्रकारो मे बहुत कम ऐसे होगे जिन्हे रेखाओ के अकन मे वह पटुता प्राप्त है जो कि हल्दार को है। मैं श्री अब्दुल रहमान चुगताई की भावपूर्ण तथा कोमल रेखाकृतियो को भूल नही रहा हू। परन्तु वही प्रभाव जो कि चुगताई महोदय अनेक सूक्ष्म रेखाओं को खींच कर उत्पन्न करते हैं, हल्दार रेखाओ के मितव्यय द्वारा ही उत्पन्न कर लेते हैं। फिर निश्चय ही इन के चित्रो में सजीवता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

सन् १९२३ मे श्री जेम्स कजिन्स तथा अर्द्धेदुकुमार गागुली ने हल्दार की कला पर एक पुस्तक प्रकाशित की थी जो कि कलकत्ता के 'रूपम्' कार्यालय से निकली थी। इस पुस्तक में हल्दार की उस समय तक की कृतियो का अच्छा मनन किया गया है और पुस्तक मे हल्दार के प्रसिद्ध चित्रो का भी समावेश किया गया है। इन चित्रो की सहायता से हम कलाकार के विस्तृत वस्तुचयन का अनुमान कर सकते है। हमारे इतिहास, पुराण तथा काव्य-ग्रथो के कथानको को ही रेखाओ और रगो द्वारा साकार नही किया गया है, वरन् शिल्पी ने अपनी कवि-कल्पना द्वारा अनेक चित्रो का सृजन भी किया है। चित्रकार की कृतिया अधिकाश भावो के चित्रण मे विशेषता रखती है। उन में रहस्यवाद का पुट रहता है यह कहना अनुचित न होगा। फिर भी विषयो की प्रचुर विभिन्नता है। कुछ ऐसे चित्र है जो हमारी प्राचीन कथाओ की स्मृतिया जागृत करते है। 'रामायण' से 'अशोकवन में सीता' और 'राम-गुहक मिलन' के विषय लिए गए है। इन में से पहले चित्र ने तो भगिनी निवेदिता पर बडा प्रभाव डाला था। रगो की अद्भुत योजना है। दूसरा चित्र बहुत विस्तृत चित्रपट पर तैयार किया गया है और भित्तिचित्र का आभास देता है। मूर्तियो के आकार-प्रकार और व्यवधान अजता के चित्रो की सुधि दिलाते है। कृष्ण की कथा से लिए गए दो सुदर विषय चित्रित हुए है। 'यशोदा और बालकृष्ण' कलाकार की आर-भिक रचना होते हुए भी बडी मार्मिक है। यह चित्र प्रसिद्ध कलामर्मज्ञ डाक्टर आनद-कुमार स्वामी के सग्रह में है। दूसरा चित्र 'रासलीला' शीर्षक है। अत्यत मनोमोहक है। डाक्टर कजिन्स ने इस की मुक्तकठ से प्रशसा की है। वह लिखते है कि "इस चित्र की प्रत्येक आकृति की प्रत्येक रेखा में गूढ आनद का भाव है—एक सहज, पवित्र उल्लास है, जो सत्य और सौंदर्य के नियमो से पोषित है।" हल्दार ने अपने 'खेयालिया' नामक काव्य-

सग्रह मे एक जगह लिखा है, "तुम्हारे नृत्य की भगिमा मे ताल और लय साकार हो गए हैं, और सारी सृष्टि जीवन से प्रकपित हो कर सगीत में प्रस्फुटित हो गई है।" कुछ ऐसे ही भाव इस चित्र के देखने वाले के मन मे भी उठते हैं। 'मूल्यवान् भेंट' शीर्षक चित्र मे बुद्ध-देव के जीवन से लिया गया एक आख्यान है। एक भिखारिनी अपना एक मात्र परिधान भगवान् को भेट कर के झाडियो की ओट में अपनी नग्नता छिपाती है। 'अज्ञात यात्रापथ' में नवीन विवाहित जीवन की कल्पना की गई है। युगल एक नाव मे एक दूसरे से मिल कर बैठे दिखाए गए है। पुरुष अपनी वशी बजा रहा है और उस की सगिनी उस वशी की स्वर-लहरी पर मुग्ध है। नौका अज्ञात दिशा की ओर बह रही है। 'वर्षा का दिन' हृदय मे करुणापूर्ण वेदना उपजाने वाला चित्र है। एक गृह-विहीन, जर्जर वस्त्र धारण किए हुए, असहाय स्त्री, मूसलाधार वर्षा मे भीग रही है। अपने नन्हे बालक को छाती से लगाए हुए है, और इस प्रकार उसे ठड से बचाती हुई स्वय भी सात्वना प्राप्त कर रही है। 'जल-प्रपात' और 'रहस्यमयी प्रकृति' शीर्षक चित्रो द्वारा कलाकार ने यह बोध उत्पन्न कराने का प्रयत्न किया है कि प्रकृति और मनुष्य के बीच एक मौन सहानुभूति रहती है। 'तूफान की देवी' चित्राकण की दृष्टि से बडी प्रभावशाली कृति हैं। एक श्यामवर्ण तरुणी बडी तेज़ी से नौका चला रही है। उस के काले लबे घने केश हवा मे उडते हुए काले बादलो का आभास देते है। चित्र की रग-व्यवस्था भी वर्षा के आगमन की सूचक है। इन चित्रो के अतिरिक्त इस सग्रह मे कई सुदर पेंसिल से बने रेखाचित्र भी है। इस चित्रसमूह को देख कर विचार उठना स्वाभाविक है कि कलाकार ने भावो के चित्रण पर विशेष ध्यान दिया है। और इस मे उसे सफलता भी प्राप्त हुई है।

हल्दार ने अपनी विशेष प्रतिभा के अनुकूल अपना चित्रण-कार्य जारी रक्खा है। साथ ही शिल्पज्ञान की दृष्टि से और वस्तु-योजना की दृष्टि से भी उन्हो ने नए-नए क्षेत्रो मे भी प्रयास किया है। इसी प्रसग मे हम उन के उन चित्रो के नाम ले सकते है जो उन्हो ने ईरान के प्रसिद्ध सूफी कवि उमर खय्याम की रुबाइयो के भावो के चित्रण मे बनाए हैं। हल्दार ने ईरानी चित्रकारी की शैली का गूढ अध्ययन और अभ्यास करने के अनतर उमर खय्याम के अनेक पद्यो को चित्रित किया है। यह चित्र मदरास के श्री रामस्वामी मुदा-लियर के चित्र-सग्रह को सुशोभित करते है। यह सुदर् ढग से इडियन प्रेस, इलाहा-बाद द्वारा प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस सग्रह की भूमिका मे प्रसिद्ध कलाविद् स्वर्गीय

ई० बी० हवेल महोदय न लिखा ह कि इन रूबाइयो पर अनक बार चित्र बनाए गए ह—हिंदुस्तान म और यूरोप म भी। परतु किन्ही चित्रो न कविता के मदुल भावो को इतन सहज और स्पष्ट ढग से नही ग्रहण किया ह। शिल्प शली के विषय म मुगल दरबार के चित्रकारो की श्रष्ठतम परपरा का अनसरण करते हुए भी इन चित्रो मे श्रीयुत हल्दार न प्रत्यक विषय पर अपनी रचनात्मक कल्पना और सौन्य की अनुभूति द्वारा अपनी विशप छाप लगा दी ह।

हल्दार न इधर हाल म कछ एस चित्र बनाए ह जो शली की दष्टि से बिल्कुल नए ह। य चित्र आन्वीक्षिक तथा लाक्षणिक ह। इन चित्रो की एक विशपता यह ह कि इन म चित्रकार न किसी विशप विषय के चित्रण का प्रयास नही किया ह। यह चित्र डिजाइन या विन्यास मात्र प्रतीत होते ह। फिर भी इन म रेखाओ की सजीवता रग भरन का सौष्ठव प्रत्यक्ष ह। इन का नामकरण चित्रकार न नही किया ह। यह दशक अपनी चाह के अनकूल कर सकते हैं।

हल्दार के नए चित्रो का एक और वग भी उल्लखनीय ह। चित्रकार न इस बात की कल्पना की ह कि एक मछली एक मेंढक एक मधमक्खी एक पक्षी और एक पश की दष्टि म इस ससार की रूपरेखा कसी जान पडती ह और इस कल्पना के आधार पर इन प्रत्यक जीवा का दष्टिकोण लते हुए एक एक चित्र अकित किया ह। इन चित्रो म भी विषय चित्रण अथवा भाव प्रदशन की अपक्षा विन्यास पर अधिक ध्यान दिया गया ह।

हल्दार निरतर नई-नई रचना प्रणाली का आश्रय लते रह ह। बगाल के चित्रकारो म वह इन गिन लोगो म ह जिन्हो न सब से पहल छोट चित्रपटो तक अपन को सीमित न रख कर बड और विस्तत चित्रपटो के चित्रण की ओर ध्यान दिया था और इस प्रकार अपन चित्रो म कछ-कछ भित्तिचित्रो का प्रभाव ला सके थ। राम-गहक मिलन जिस की चर्चा हो चकी ह इसी प्रकार का चित्र ह और विशष रूप से उल्लख्य ह। इधर हाल म इन्हो न लकडी की भमि पर कछ अत्यत सुदर लाक्षाचित्र तयार किए ह। यह शली उन की अपनी ह। उन का यह प्रयोग बहुत रुचिकर हुआ ह और अब और लोग भी लाक्षाचित्र बनान लग ह विशप कर लखनऊ स्कूल आव आटस के उन के ही शिष्य। रवींद्रनाथ ठाकुर जो चित्रकार से बहुत वर्षो से परिचित हैं और जिन के आश्रय म चित्रकार काम कर चुके ह इस शली से बहुत सतुष्ट हुए ह। हल्दार के कुछ लाक्षणिक लाक्षाचित्रो को देख कर

उन्हो ने लिखा था कि "तुम्हारे लाक्षाचित्र बहुत भले लगते हैं। अनभ्यस्त नेत्रो को वह किंचित् विभ्रांत करें। उन की रेखाओ में जो सजीवता और सौष्ठव हैं उस का अनुभव करने के लिए बोध और जानकारी की आवश्यकता है।" हल्दार के लाक्षाचित्रों मे कदाचित् सब से सफल चित्र 'निर्माता अकबर' का है। इस में हम अकबर को एक किले के निर्माण का निरीक्षण करते हुए देखते हैं। एक ओर अकबर और उस के भृत्य के चित्रण में वह सूक्ष्मता दिखाई गई है जो पुराने उस्तादो का स्मरण करा देती है, दूसरी तरफ किले का पत्थर चुनने वाले मजदूरो के चित्रण में अद्भुत सादगी है। और इन दो विभिन्न बातो का चित्र मे सुदर सतुलन हुआ है। यह चित्रपट बडा है और न केवल हिंदुस्तान की कई प्रदर्शिनियो मे वरन् लदन मे भी प्रदर्शित हो चुका है और कलाविदो द्वारा प्रशसित हो चुका है। हल्दार के बडे लाक्षाचित्रो में दो अन्य चित्रो का वर्णन भी होना उचित है। एक का शीर्षक तो 'उपहार' है। इस मे एक स्त्री पुष्पो की माला श्रीकृष्ण के सम्मुख भेंट करती हुई दिखाई गई। बशी फूँकते हुए स्वर्णिम तेजोमडल वाले श्यामवर्ण बालक कृष्ण का चित्र बडा ही रमणीय है। उस मे एक विचित्र स्फूर्ति और आध्यात्मिक भाव का सम्मिश्रण है। और यह प्रभाव कलाकार इतनी थोडी रेखाओ द्वारा प्रस्तुत कर सका है कि उस की प्रतिभा को कोई स्वीकार किए बिना नही रह सकता। 'विश्वमातृका' चित्र मे विश्व की पोषिका जननी विश्वरूपी बालक को अपनी गोद मे लिए दिखाई गई है। जननी की मूर्ति चतुर्भुजी है। अपने इस लाक्षणिक चित्र में हल्दार ने प्राचीन भारतीय कल्पना का सुदर रीति से समावेश किया है। रजत तेजोमडल वाली इस प्रतिमा मे अद्भुत शाति दिखाई देती है। हल्दार ने कई छोटे लाक्षाचित्र भी बनाए है। इन का एक सुदर वर्ग वह है जिस में जलप्रपात, वन, अग्नि और वायु की आत्माओ का चित्रण किया गया है। कलाकार ने इन चित्रो को भी लकडी पर चित्रित किया है और अपनी स्वतत्र रेखाए न खीच कर लकडी में पाई जाने वाली रेखाओ का अनुगमन करते हुए अत्यत सुदर चित्र उपस्थित किए है। एक प्रकार से वह प्राकृतिक विन्यास में सहायक मात्र हुए है।

ऊपर बताए गए यह तथा और भी अनेक चित्र अब इलाहाबाद म्यूनिसिपल अजायबघर मे स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हुए है। यहा पर हल्दार के नाम पर एक कमरा ही अलग कर दिया गया है जिस का उद्घाटन पिछली फरवरी मे कलाविद् श्री राय राजेश्वर बली के हाथो से हुआ है। इस कमरे में प्रवेश करते हुए हम दाहिने हाथ ऊपर 'राम-गुहक मिलन'

का बडा चित्र देखेगे। यह भित्तिचित्र का प्रभाव डालता है इस का वर्णन हो चुका है। उस के नीचे 'षड् ऋतु' शीर्षक एक बडा चित्र है। बडी कोमल रेखाओ द्वारा चित्रकार ने कृष्ण को नर्तन करने की मुद्रा मे दिखाया है और उन के साथ नृत्य करने वाली छ गोपिया ही छ ऋतुए है। इस के सामने की दीवार पर वृद्ध सम्राट् अशोक के भिक्षुओ को आमलक भेट करने का विषय केवल रेखाओ द्वारा चित्रित हुआ है। चित्रपट 'राम-गुहक मिलन' के इतना ही बडा है। परतु इस मे रगो का आयोजन नही। पश्चिम की दीवार पर 'निर्माता अकबर' का चित्र है, जिस का भी वर्णन हो चुका है। एक दूसरा चित्र इसी की बराबरी मे चैतन्य महाप्रभु के जीवन की एक घटना का चित्रण करता है जिस मे कि कुछ डाकुओ ने उन पर आक्रमण कर के उन्हे आहत किया था परतु महाप्रभु के मुख पर इस अवस्था मे भी दयाभाव देख कर स्तब्ध रह गए थे। 'विश्वमातृका' और 'उपहार' शीर्षक लाक्षा-चित्र पूर्व की दीवार मे लगे हुए है। इस हाल मे छोटे चित्र भी अनेक है जिन मे मुख्यतया वह है जो कलाकार की 'खेयालिया' शीर्षक कविता सग्रह को चित्रित करते है। इस चित्र-सग्रह को इलाहाबाद के रोरिक सेटर आव् आर्ट ऐंड कल्चर ने प्रकाशित भी किया है। 'खेयालिया'-सबधी चित्रो के साथ-साथ हमे हल्दार की सुदर पक्की बँगला लिखावट का परिचय भी मिलता है।

'खेयालिया' की चर्चा इस बात की सुधि दिलाती है कि हल्दार न केवल चित्रकार है वरन् स्वय एक सफल कवि भी है। रवींद्रनाथ ने इन्हे अपने कवित्वपूर्ण ढग में लिखा था—"तुम केवल चित्रकार नही, कवि भी हो। इसी लिए तो तुम्हारी तूलिका से दो धाराए प्रस्फुटित होती है। और इसी कारण जब एक कवि को चित्रो की आवश्यकता होती है तो वह तुम्हारी अपेक्षा करता है।" हल्दार की कविताए रवींद्रनाथ से प्रेरणा पाती हुई भी मौलिक है। उन मे माधुर्य है और रहस्यवाद है। चित्र-जगत में हल्दार की विशद प्रतिभा का अनुमान लगाने मे हमें उन की कविताओ से पर्याप्त सहायता मिलती है।

चौदह वर्ष की अवस्था से ही हल्दार बँगला की कविताए रचते रहे है। समय पा कर उन के उद्‌गार और परिपक्व हुए है। 'खेयालिया' मे सगृहीत कविताओ के अतिरिक्त भी उन्हो ने कविताए रची है जिन मे से कुछ बँगला पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुकी है। 'खेयालिया' के कुछ गीतो का अनुवाद अग्रेजी मे भी प्रकाशित हो चुका है।

हल्दार की साहित्यिक कृतिया कविताओ तक सीमित नही है। वह बँगला पत्र-

पत्रिकाओ मे कला-विषयक लेख बहुधा लिखते रहते हैं। सन् १६०६ मे उन्हो ने अजता की कला पर 'भारती' पत्रिका में अपना पहला लेख लिखा था। तब से अब तक वह पचासो लेख लिख चुके है और हाल में एक विस्तृत पुस्तक भी उन्हो ने बँगला मे लिखी है, जिस में कि पूर्वी और पाश्चात्य कला पर धारावाहिक रूप से समीक्षाए प्रस्तुत की गई है। यह पुस्तक अनेक चित्रो से सुसज्जित होगी और इस के प्रकाशन की योजना कलकत्ता विश्वविद्यालय कर रहा है। 'भारती' के अतिरिक्त हल्दार ने 'प्रवासी', 'भारतवर्ष', 'उत्तरा', 'परिचारिका', 'रोचना', 'चदा', आदि प्रतिष्ठित बँगला पत्रिकाओ मे लेख छपाए है। अग्रेज़ी मे भी उन्हो ने कई निबध प्रकाशित कराए है जिन मे से कुछ विदेशी पत्रो में भी सम्मान पा चुके है। सन् १६३५ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय की तरफ से यह 'अधरचद्र मुकर्जी' के नाम पर दिए जाने वाले व्याख्यानो के सिलसिले म व्याख्यान देने के लिए आमत्रित हुए थे और "भारतवर्ष के कला-कौशल" पर उन्हो ने व्याख्यान दिए थे जो कि बाद में 'कलकत्ता रिव्यू' मे प्रकाशित हुए थे। इसी वर्ष इन के अग्रेज़ी निबधो का एक सग्रह 'आर्ट एड ट्रेडीशन' ('कला और परपरा') शीर्षक आगरे से प्रकाशित हुआ है। हल्दार ने बालको के लिए भी कुछ सचित्र पुस्तकें तैयार की है जिन मे कि सयुक्ताक्षरो का उपयोग नही होने पाया है। यो बालको की रुचि के लिए इन्हो ने बहुत से चित्र बनाए है जिन मे से कुछ इलाहाबाद अजायबघर के सग्रह मे सुरक्षित है।

सब से बडी बात यह है कि हल्दार अपने को निरतर कला का विद्यार्थी मात्र जानते रहे हैं। एक बार उन्हो ने इस लेखक को लिखा था—"मै आजन्म विद्यार्थी रहने मे विश्वास रखता हू। यदि मै कला की कुछ भी सेवा करने में सफल हुआ हू तो इस का एक मात्र कारण यह है कि मै ने इस मत्र को ग्रहण किया है। और जब कभी मुझे कुछ नई बात सीखने का अवसर मिला है तो उसे यथाशक्य ग्रहण किया है।"

जिस निष्ठा के साथ हल्दार अपने कला के धधे को सँभालते है, और कला के महान् उद्देश्य के सबध में जो उन की धारणा है उस का पता हमे कलाकार के एक लेख से मिल जायगा जो उन्हो ने डाक्टर कज़िन्स के पास अपने चित्र 'शिल्पीर मोहभग' ('शिल्पी का मोहभग') की व्याख्या करते हुए भेजा था। इस चित्र का विषय यह है कि एक मूर्तिकार एक मूर्ति निर्माण कर रहा है और उस का कार्य प्राय समाप्त हो रहा है। ठीक जब काम समाप्त होने के निकट है तो वह इस बात का अनुभव करता है कि वह सत्य और सौंदर्य

के आदर्श को मूर्तिमान करने के बजाय अपनी ही वासना को साकार कर सका है। अतएव वह क्षुब्ध हो कर तैयार मूर्ति को नष्ट कर देता है। हल्दार ने लिखा था—"कलाकार का उद्देश्य रूप का प्रस्तुत करना मात्र नहीं है। उस का उद्देश्य इस से ऊँचा है, अर्थात् चिर सत्य और सौंदर्य को अपनी रचनाओ के माध्यम द्वारा प्रकट करना। यदि उस की रचना सत्य और सौंदर्य के आदर्श को स्पष्ट करने मे सफल नही होती तो वह उस के लिए असह्य हो जाती है। वास्तविक और आदर्श उस के मस्तिष्क मे अभिन्न है। जब यह भिन्नता धारण करते है तो उस के लिए कोई आनद नहीं रह जाता। जब कि महादेव अपनी सृष्टि मे सत्य के साथ असत्य का मिश्रण देखते है तो असत्य के विनाश के लिए रुद्र रूप धारण कर लेते है।"

कला के प्रति ऐसी उच्च भावना रखते हुए हल्दार महोदय अपने रचनात्मक कार्य मे अधिकाधिक सफल होगे यह आशा रखना व्यर्थ न होगा।

स्फुट प्रसंग

१–एक ऐतिहासिक भ्रम-संशोधन

भारतीय इतिहास के मुसल्मान-काल के इतिहास का मुख्य साधन फारसी मे लिखी गई तवारीखें हैं। अग्रेज़ी मे प्राय इन सब के सुसपादित अच्छे अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं, पर राष्ट्रभाषा हिंदी में इन के अनुवाद का अभाव बना हुआ है। इन्ही ग्रथो के आधार पर ७० वर्ष हुए आठ जिल्दो मे एक बडा ग्रथ अग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित हुआ था, जिस का नाम 'दि हिस्टरी आव् इडिया एज़ टोल्ड बाई इटस् ओन हिस्टोरियन्स' है। इस मे मुसल्मानो के भारत में आगमन से मुगल-साम्राज्य के अत तक का इतिहास उक्त फारसी तवारीखो से लबे-लबे उद्धरण ले कर पूरा किया गया है। इस की उपादेयता इतनी है कि आज भी मुसल्मान काल के इतिहास-प्रेमी के लिए इस का पठन आवश्यक है और साथ ही यह अत्यत मान्य ग्रथ भी है। ऐसे ही ग्रथ की एक ऐतिहासिक भूल हाल मे छपे हुए वैसे ही वृहत्काय, उपादेय तथा मान्य ग्रथ 'दि केम्ब्रिज हिस्टरी आव् इडिया' मे ज्यो की त्यो मौजूद है। इस से यह तात्पर्य न समझ लिया जाय कि इस ग्रथ मे यही एक भूल है या इस से इस ग्रथ की महत्ता मे कुछ कमी होती है। अस्तु, यह देख कर कि यह अशुद्धि इतनी प्राचीन हो जाने पर भी प्रचलित है, यह सशोधन लिखना मुझे उचित ज्ञात हुआ। यह अशुद्धि फारसी लिपि को शुद्ध न पढने के कारण ही हुई थी। अब सक्षेप मे ऐतिहासिक घटना का उल्लेख कर के शका-समाधान का प्रयत्न किया जायगा।

जौनपुर की शर्की सल्तनत की स्थापना सन् १३९४ ई० मे हुई थी और सन् १४७६ ई० के लगभग दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी ने अतिम शर्की सुल्तान हुसैनशाह को परास्त कर उस पर अधिकार कर लिया था। इस ने अपने बडे पुत्र बर्बकशाह को वहा का प्राताध्यक्ष नियत किया। सन् १४८९ ई० में बहलोल लोदी की मृत्यु पर उस का द्वितीय

पुत्र सिकंदर लोदी दिल्ली के तख्त पर बैठा, और उस ने अपने बडे भाई बर्बकशाह पर चढाई की। उसे परास्त कर अपनी ओर से उसे पुन वहा का प्रांताध्यक्ष नियत कर दिया, परतु वह उस प्रांत के उपद्रवियो को शांत न रख सका। इस कारण सिकंदर लोदी ने उसे कैद कर लिया और दो बार विद्रोहियो को दमन करने के लिए जौनपुर पर चढाई की थी। "जौनपुर से समाचार आया कि उक्त प्रात के जमींदारो ने वछगोतियो से मिल कर एक लाख पैदल तथा सवार सेना एकत्र कर ली और जौनपुर के सूबेदार मुबारक खा से शासन छीन कर उस के भाई शेर खा को मार डाला है। मुबारक खा झूंसी घाट से गगा पार करने पर मुल्ला खा के हाथ पड गया, जिस पर पन्ना के राजा रायभिद ने उसे पकड लिया और कैद कर ले गया। . सुल्तान सिकंदर उस ओर चला रायभिद ने सुल्तान की अप्रसन्नता के भय से मुबारक खा को विदा कर दिया। पर वह कतित की ओर बढा, जो पन्ना के अंतर्गत है। यहा का राजा रायभिद मिलने के लिए बाहर आया और उस ने अधीनता स्वीकार कर ली, जिस पर सुल्तान ने उसे कतित मे बहाल रक्खा और आरैल तथा बयाक की ओर चला। इसी समय रायभिद अपने शकापूर्ण स्वभाव के कारण पडाव तथा अपना कुल सामान आदि छोड कर भाग गया। वर्षा व्यतीत होने पर सन् ६०० हि० म सुल्तान पन्ना की ओर राजा भिद को दड के देने के लिए चला पर रेवान घाटी पहुंचने पर इस का सामना उस के पुत्र वीरसिंह देव से हो गया, जो लडने को उद्यत हो गया। परास्त होने पर पन्ना की ओर भागा, जिस का पीछा इस्लाम की सेना ने किया। सु तान के पन्ना पहुंचने पर राजा भिद सरगुजा की ओर भागा पर रास्ते म मर गया। तब सुल्तान सिकंदर पन्ना के अंतर्गत फर्पूंद पहुंचा पर कमी के कारण उसे जौनपुर लौट आना पडा। इस के सिवा इस के प्राय सब घोडे मर गए । राजा भिद के एक पुत्र लक्ष्मीचद तथा अन्य जमींदारो ने सुल्तान हुसैन को लिखा कि सिकंदर के पास एक भी घोडा नही है सब नष्ट हो गए है। इस पर हुसैन ने भारी सेना तथा सौ हाथी के साथ बिहार से सिकंदर को परास्त करने को कूच किया। सिकंदर कतित उतार से गगा पार कर पहले चुनार और तब बनारस गया। यहा से उस ने खानखाना को राजा भिद के पुत्र शालवाहन के पास भेजा कि उसे समझा कर अपने साथ लावे। सुल्तान सिकंदर ने भी शालवाहन की सहायता से, जो ठीक अवसर पर आ गया था, युद्ध आरभ

कर दिया। [१]

इस के अनतर सिकदर न हुसैनशाह को परास्त कर बिहार पर अधिकार कर लिया और बगाल के सुल्तान से सधि हो गई। तब सिकदर न भट्टा के राजा पर भारी सेना भजी और आप भी पीछे-पीछे चला। इस के पहल सुल्तान न राजा की पुत्री मागी थी पर उस न अस्वीकार कर दिया था जिस पुरानी घटना का बदला लन के लिए अब उस के राज्य पर चढाई की गई और कुल खती का निशान तक नष्ट कर दिया गया। इस के बड बड वीरा न बाधू दुग पर साहस दिखलाया जो उस प्रात का दृढतम दुग ह। [२]

केम्ब्रिज हिस्टी आव इडिया म भाग ३ पृ० २७३-४ पर यही घटना ठीक इसी प्रकार दुहराई गई है पर इस म कुछ नाम कुछ हर फर के साथ आए ह जसे इस ग्रथ के फाफामऊ के राजा भील फारसा तवारीखो के भट्टा या पन्ना के राजा रायभिद ह। अब प्रश्न यह उठता ह कि सिकन्दर शाह से युद्ध करन वाला तथा उसे सहायता देन वाला यह राजा कौन ह और कहा का राजा ह? यह अब तक हल नही हो सका है। इस म भ्रमोत्पादक मुख्य शब्द भट्टा ह जिस के विषय म कई पाश्चात्य विद्वानो न बुद्धि लडाई है पर अत में वे कहते ह कि ठीक पढन के लिए यह अत्यत कठिन नाम है और किसी भी मूल लखक न इसे शुद्ध रूप म नही दिया ह। पाठातर पटना पन्ना और ठट्टा मिलते ह। जनरल ब्रिग्ज (जि० १ पृ० ५७३)न पन्ना का राजा शालिवाहन लिखा है और डा० डान न पृ० ५६ पर शालिवाहन और पना दिया है। इस प्रात का नाम वास्तव म भट्टा या भटघोडा या केवल घोडा है जैसा कि आईन-अकबरी में परगनो के बिना ठीक विवरण के दिया हुआ ह। यहा बाधू दुग के उल्लख से जो अब बदरीगढ के नाम से अधिक ज्ञात है कुछ भी सशय नही रह जाता कि किस प्रात से मतलब है पर अन्य उद्धरणो म जसा दूसरे स्थानो पर लिखा गया है प्राय इसी कठिनाई म हम लोग पड है। [३]

इलियट की हिस्टी के भाग ४ पृ० ४७८ पर लिखा है कि जब शरशाह न कालिजर म प्राण खोया तब उस का सब से छोटा पुत्र रेवान बस्ती म था जो भट्टा प्रात म है।

---

[१] इलियट-डाउसन 'हिस्टी आव इडिया', भा० ५, पृ० ९२-५
[२] वही, पृ० ४९२-३
[३] वही, पृ० ९३

यही से बुलाए जाने पर यह इस्लाम शाह के नाम से दिल्ली का सुल्तान हुआ था। इस से इतना ज्ञात हो जाता है कि भट्टा में रेवान बस्ती है और वह कालिंजर के पास है। उर्दू में भट्टा इस प्रकार लिखा जाता है بھٹہ जिसे केवल इसी रूप में अनेक प्रकार से पढ सकते है। यदि इस पर बिंदी बदलते चले तो दस-बीस प्रकार से और भी पढ सकते है। यदि बिंदी, हे का चिह्न, और टे का 'तो' चिह्न न हो तो पन्ना, पट्टा आदि भी पढ लीजिए। फारसी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो को उठा देखिए, ज़ेर, ज़बर, पेश देना दूर, बिंदी तक पूरी नही रहती। 'गाफ' के दो मरकज़ भी न रहेंगे केवल काफ का एक ही दिया रहेगा, आप उसे 'क' पढे या 'ग' पढे, लेखक की बला से। ऐसी हालत मे भ्रम हो जाना आश्चर्य नही है।

बाँधू या बाधव (باندھو) तथा रीवा या रेवान (ریوان) उर्दू में एक-सा, नुक्ता आदि सहित लिखा जायगा। बाधवगढ तथा रीवा और इन के सिवा अन्य स्थान सरगुजा तथा फफूद भी उसी प्रात मे है, जो बघेलखड कहलाता है और यही प्राचीन भट्टा है। यह ध्यान रखना चाहिए कि झूसी तक यमुना और उस के बाद गगा के दक्षिण नर्मदा नदी तक और चबल नदी के पूर्व उडीसा तक जो पार्वत्य प्रात है उस का पश्चिमी भाग बुदेलखड तथा पूर्वीय भाग बघेलखड कहलाता था और है। बघेलखड को भीटा या भट्ट प्राचीन काल से कहते आए है। ऊपर लिखा गया है कि मुबारक खा को झूसी के पास गगा पार करने पर राजा भिद ने कैद किया था। रायभिद को कतित का राजा कह कर लिखा है क्योकि यह भट्टा के अतर्गत है। कतित वास्तव में बघेलखड के अतर्गत था और है। पहले बघेलखड की राजधानी बाधवगढ थी पर अब रीवा है। इस प्रकार यह निश्चय हो गया कि पूर्वोक्त उद्धरणो का भट्टा प्रात वास्तव मे बघेलखड है, जिस के अतर्गत उक्त सभी स्थान स्थित है। यहा तक लिख जाने पर अब यही निश्चित करना रह जाता है कि भट्टा प्रात के राजवश मे इन नामो के राजाओ का ठीक-ठीक पता मिलता है या नही तथा उन से दिल्ली के सुलतानो से उस समय किस प्रकार का सबध था।

'मआसिरुल् उमरा'[1] नामक प्रसिद्ध फारसी इतिहास-ग्रथ में राजा रामचद्र बघेला की जीवनी दी हुई है, जिस मे उस के पौत्र के पौत्र अमरसिंह तक का हाल दिया है। इस

---

[1] हिंदी संस्करण, पृ० ३३०–४ (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

ग्रथ में बाधवगढ पर अकबर के सेनापति राय रायान पत्र दास की चढाई तथा उस के उजाड होने पर रीवा के राजधानी होने का भी विवरण है।[1] रामचद्र अकबर का समकालीन था। उक्त रामचद्र के पिता वीरभानु का उल्लेख जौहर आफ्तावची तथा गुलबदन बेगम ने किया है, जिस ने हुमायू की सहायता की थी।[2] इन के सिवा रायभिद तथा उन के तीन पुत्रो वीरसिंह, शालिबाहन तथा लक्ष्मीचद का उल्लेख हो चुका है, जो सिकदर लोदी तथा बाबर के समकालीन थे। फारसी की तवारीखो में दिए हुए उक्त नामो को भट्टा-नरेशो की राज-वशावली से मिलान कर अब देखना चाहिए कि ये नाम उस में है तो किस क्रम से है।

रीवा-नरेश महाराज रघुराजसिंह बघेला ने अपने ग्रथ 'आनदाबुनिधि' मे अपनी वशावली इस प्रकार दी है—

सिंहदेव, भैरोदेव, नरहरि, भयददेव
त्यों शालिबाहन, बीरसिंह देव जानिए।
वीरभानु, रामसिंह, बीरभद्र, विक्रमजू,
अमर, अनूप, भावसिंह को बखानिए॥

'मआसिरुल्उमरा' के भट्टा-नरेशगण रामचद्र (रामसिह) बघेला, वीरभद्र, विक्रमाजीत, अमरसिंह तथा अनूपसिंह इस मे ठीक क्रम से मिल गए। उक्त ग्रथ मे विक्रमाजीत के भाई दुर्योधन के भी बादशाह की ओर से बलात् गद्दी पर बैठाए जाने तथा दो वर्ष तक राज्य कर के मर जाने का उल्लेख है। वशावली मे रामसिंह के पिता वीरभानु का नाम दिया है और वीरभानु तथा भयद देव के बीच वीरसिंह देव और शालिवाहन का नाम है, जो ऊपर

---

[1] 'हिंदी मआसिरुल् उमरा', पृ० ३८०

[2] बढ़ी बादशाही जैसे सलिल प्रलै को बढै,
राना राव उमराव सब को निपात भो।
बेगम बिचारी बही कतहूं न थाह लगी
बांधौगढ गाढो गढ़ ताको पक्षपात भो॥
शेरशाह सलिल प्रलै को बढ्यो 'अजवेस'
बूडत हुमायूं के बडोई उत्पात भो।
बलहीन बालक अकब्बर बचाइबे को
बीर भानु भूपति अछैबट को पात भो॥

भयद देव के पुत्र बतलाए गए हैं। ये दोनो क्रमश राजा हुए थे इस लिए दोनो के नाम राजवशावली मे दिए गए हैं। भयद शब्द उर्दू अक्षरो मे ﺑﮩﯿﺪ लिखा जाता है, जिसे सहज ही भेद या भिद पढ सकते है पर 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री' मे वह किस प्रकार भील हो गया, यह नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार राजा भयद देव से लेकर अनूपसिंह तक आठ पीढी नामो का मिलान ठीक बैठ जाने पर यह निश्चय हो गया कि लोदी वश की सहायता करने तथा उस वश से लडने वाले भट्टा के नरेश बघेला राजवश ही के थे, जिन की राजधानी पहले बाधवगढ थी तथा बाद को रीवा हुई।

ब्रजरत्न दास

२—बनारस का एक उर्दू-हिंदी लेख

यह लेख विश्वनाथ मदिर के मुख्य द्वार के सामने वाले मकान की दीवार में खुदा है, और ३ फीट लबे तथा १½ फीट चौडे पत्थर पर खुदा है, जो बरामदे की वाहरी पश्चिम की दीवार मे लगा हुआ है। इस के अक्षर उभरे हुए है। लेख की लिपि उर्दू तथा हिंदी है। भाषा हिंदुस्तानी है। ऊपर उर्दू तथा नीचे हिंदी अक्षर खुदे है। विषय एक है, केवल भिन्न भिन्न लिपि मे अक्षर खुदे है।

मकान की बनावट से प्रगट होता है कि यह मकान (नौबतखाना) एक मजिला था जो सन् १७८५ में तैयार किया गया था। कुछ समय के पश्चात् दो मंजिले और जोड दी गई। यह आजकल विश्वनाथ जी के पुजारी का निवास-स्थान है।

लेख का ऊपरी भाग कही-कही अक्षरो के टूट जाने से स्पष्ट नहीं है। हिंदी लेख ज्यो का त्यो सुरक्षित है। उस में केवल एक अक्षर नष्ट हो गया है, जिसे कोष्ट मे दिया गया है। नीचे की पक्ति सस्कृत भाषा मे है, परतु अशुद्ध है। यह लेख निम्नलिखित है—

"यह नौबतखाना विश्वेश्वर का नबाब अजीजुल्मुल्क अली इब्राहिम खा सवत् १८४२ मे नवईमादुद्दौला गवरनर जनर(ल) अमीरल्म मालिक वारन हिंटिंस जलादत् जग के फर्मान से वनाया। निपिरिय[1] राय ब्रजलालस्य"

[1] निपिरियं शब्द लिपिरियं का अशुद्ध रूप है।

यानी सवत् १८४२ में गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स की आज्ञा से अली इब्राहीम खा ने विश्वनाथ के नौबतखाना को बनवाया। ब्रजलाल राय ने इस लेख को लिखा था।

इस शिला-लेख के अध्ययन करने से कई प्रकार के प्रश्न उठते हैं—

(१) अली इब्राहीम कौन था ?

(२) वारेन हस्टिंग्स ने विश्वनाथ के मदिर के समीप नौबतखाना बनाने की क्यो आज्ञा दी ?

(३) क्या दोनो व्यक्तियो मे से किसी को हिंदू धर्म से प्रेम था ? यदि नहीं, तो यह भवन क्यो बनवाया गया ?

इन समस्त प्रश्नो का उत्तर तत्कालीन परिस्थिति से परिचय प्राप्त करने पर स्वय मिल जाता है। भारतवर्ष म अग्रेजी राज्य को सुदृढ बनाने का श्रेय वारेन हेस्टिंग्स को दिया जाता है। इस की जानकारी से पूर्व पहले प्रश्न का उत्तर आवश्यक ज्ञात होता है। अतएव अब यह विचारना चाहिए कि तत्कालीन राजनैतिक अवस्था मे अली इब्राहीम का कौन स्थान था। अब्दुल अली ने फारसी पत्रो की जो सूची निकाली है, उस के चौथे भाग के दूसरे पत्र म इस का नाम उल्लिखित है। उस पत्र से ज्ञात होता है कि अली इब्राहीम वारेन हेस्टिंग्स का एक विश्वासपात्र आदमी था तथा उस के सुदर कार्यो से वह मुग्ध हो गया था। "सैरउल मुताखरीन' नामक पुस्तक में भी अली इब्राहीम का नाम आया है। उस के वर्णन मे ज्ञात होता है कि वह नवाब अलीवर्दी खा के साथ मुर्शिदाबाद गया था और वही पर वह बस गया। मीर कासिम की ओर से उस ने बगाल के नवाब सिराजुद्दौला से सधि की। दोनो ने मिल कर अग्रेजो का मुकाबला किया। अली इब्राहीम बक्सर की लडाई मे भी सम्मिलित था तथा पराजित होने के पश्चात् भी वह मीर कासिम की तरफ सहयोग देता रहा।

वह अपनी योग्यता से मुसल्मानी सल्तनत का दीवान बनाया गया। तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स उस को बहुत मानता था। कहा जाता है कि वारेन हेस्टिंग्स ने एक मुसल्मान रजा खा नामक व्यक्ति को कैद करा लिया था, परतु अली इब्राहीम खा के कहने से वह मुक्त कर दिया गया। वह एक योग्य तथा न्यायपरायण व्यक्ति था। उसे बगाल की फौजदारी का पद दिया गया था, लेकिन उस ने इस पद को स्वीकार न किया, क्योंकि इस कार्य म मार-पीट के अतिरिक्त कुछ न था। अली इब्राहीम एक ऊँचे दर्जे का

सभ्य, सरल व उदार-चित्त व्यक्ति था। इन सब गुणों के अतिरिक्त वह एक अच्छा साहित्यिक भी था। यही सब कारण है कि वह वारेन हेस्टिंग्स का विश्वासपात्र होने तथा उस की आज्ञानुसार हिंदू मंदिर के नौबतखाने के निर्माण में तनिक भी आगा-पीछा न कर सका। मुसल्मान होने हुए भी केवल आज्ञा-पालन के भाव को लेकर ही उस ने उस भवन को तैयार कराया।

इस के पश्चात्, जैसा ऊपर कहा गया है, दूसरा प्रश्न यही होगा कि कौन से ऐसे कारण थे जिस से बाधित हो कर वारेन हेस्टिंग्स ने ऐसी आज्ञा दी। इस का कोई विशेष कारण था। वारेन हेस्टिंग्स ने तत्कालीन काशी-नरेश चेतसिंह को पराजित किया था। अंग्रेज़ों के दुर्व्यवहार से काशी की जनता क्षुब्ध थी। अपने शासक की ऐसी हालत देख कर वह क्रोधित तथा अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ थी। इसी जनता को शांत तथा उन के मनोभाव को बदलने के लिए गवर्नर-जनरल ने एक चाल चली, जो अद्यावधि नौबतख़ाने के रूप में वर्तमान है। हिंदू जनता, विशेषतः काशी-वासी धार्मिक होते हैं। वारेन हेस्टिंग्स ने उसी जनता के प्रसन्न करने के लिए विश्वनाथ मंदिर के नौबतखाने के निर्माण की आज्ञा दी। उस समय काशी बंगाल के शासक द्वारा ही शासित होने जा रहा था, इस लिए गवर्नर-जनरल ने कूटनीति द्वारा अपने विश्वास-पात्र और एक उच्च पदाधिकारी को इस भवन को तैयार कराने का भार सौंपा, जिस के द्वारा जनता का धार्मिक भाव जागृत हो जाय और वे अंग्रेज़ों को शत्रुवत् न समझें। यही कारण है कि वारेन हेस्टिंग्स ऐसे अंग्रेज़ ने एक मुसल्मान द्वारा नौबतखाने को तैयार करवाया।

वासुदेव उपाध्याय

समालोचना

परमात्मप्रकाश तथा योगसार—सपादक श्री आदिनाथ नमिनाथ उपाध्याय एम० ए०। प्रकाशक शठ मणिलाल रेवाशकर जौहरा परमश्रुत प्रभावक मडल बबई। १९३७। पृष्ठ-सख्या १२+१२४+३९६। सजिल्द मूल्य ४॥)

प्रस्तुत जिल्द म श्री योगीदुदेव कृत दो ग्रथ उपस्थित किए गए ह—परमात्म प्रकाश और योगसार। जन-सप्रदायो के मानन वाल सभी भक्त इन ग्रथो को बडी श्रद्धा से पढते ह। परमात्मप्रकाश के रचयिता भी बडी उदार प्रकृति के थ साप्रदायिक भद भाव की अवहलना कर उन्हो न शिव ब्रह्मा आदि देवा का भी उल्लख समान भाव से परमात्मा के अथ म किया हैं। फिर उन के यह ग्रथ क्यो न सवमान्य हो ?

(क) परमात्मप्रकाश बडा ग्रथ है योगसार छोटा। दोनो अपभ्रश म ह। प्रस्तुत सस्करण म सपादक की ९२ पृष्ठ की सारगभित और गवेषणापूण भूमिका है। उस के बाद इस भूमिका का ३२ पष्ठा म हिंदी म सार। फिर ३५२ पृष्ठो म परमात्म प्रकाश का मूल पाठ सस्कृत टाका तथा हिंदी टीका १० पृष्ठो म पाठभद और ८ पृष्ठो म दोहानुक्रमणिका आदि। बाकी के २६ पृष्ठो म योगसार पाठभद और हिंदी अनुवाद समेत है।

श्री आदिनाथ उपाध्याय जन प्राकृत तथा इतर जन साहित्य के प्रगाढ पडित ह। प्रसिद्ध ग्रथ प्रवचनसार का सुदर और सर्वागपूण सस्करण निकाल कर उन्हो न पहल ही विद्वन्मडली म आदर और सत्कार पाया है। प्रस्तुत ग्रथ के द्वारा उन्हो न अपनी कीर्ति को और उज्ज्वल किया है।

परमात्मप्रकाश का पाठ स्थिर करन म उन्हो न दस हस्तलिखित प्रतियो का उपयोग किया। भूमिका म इन प्रतियो के तुलनात्मक महत्व पर प्रकाश डाल कर ग्रथ का सक्षिप्त सार प्रस्तुत कर आप न ग्रथ की साहित्यिक दृष्टि से महत्ता तथा आत्मिक उन्नति की दृष्टि से उस का उपयोग ग्रथ की भाषा और उस की व्याकरण का ढाचा ग्रथकार के

समय, ग्रंथो आदि का परिचय, सस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव, ग्रथ की कन्नड टीका आदि सभी प्रश्नो की विवेचना की है।

'परमात्मप्रकाश' ऐसे महत्वपूर्ण ग्रथ का ऐसा सुसपादित सर्वांगपूर्ण सस्करण निकालने के लिए सपादक विद्वन्मडली के धन्यवाद के पात्र है। भूमिका मे प्रदर्शित यत्र-तत्र सपादक जी के मत से विभिन्नता हो सकती है। (उदाहरणार्थ पृष्ठ ४४ पर स के ह में परिवर्तित होने पर, अथवा पृष्ठ ६५ पर जोईदु और कुमार के समय-प्रतिपादन पर) किंतु इस से इस ग्रथ पर जो उन्हो ने परिश्रम किया है उस का मूल्य घटता नही। इतने सुसपादित ग्रथ बिरले ही देखने को मिलते है।

(ख) 'योगसार' छोटा ग्रथ है। इस में कुल १०८ दोहे है। प्रत्येक दोहे के नीचे उस की सस्कृत छाया, पाठातर तथा हिंदी अनुवाद दे दिया गया है। पाठातर मूल पाठ के अनतर ही दिया जाना अधिक उपयोगी है। इस बात मे 'परमात्मप्रकाश' की अपेक्षा इस मे विशेषता है। सस्कृत छाया कही-कही विचारणीय है, क्योकि वह मूल प्राकृत से भाषा की दृष्टि से मेल नही खाती। परतु भाव मे इस में कोई अतर नही पडता। योगसार मे आत्मा किस प्रकार परम पद को पा सकती है इस का सक्षेप मे व्याख्यान है।

बाबूराम सक्सेना

* * *

महाकवि पुष्पदत कृत महापुराण, भाग १—सपादक डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य, प्रोफेसर, नौरोसजी वाडिया कालेज, पूना। प्रकाशक, मत्री, माणिकचद दिगवर जैन-ग्रथमाला, हीराबाग, गिरगाँव, बबई। १९३७। पृष्ठ ४२+६७२। सजिल्द, मूल्य १०)

* * *

पुष्पदत ने अपभ्रश म तीन ग्रथ लिखे थे। उन मे से 'जसहरचरिउ' और 'णाय-कुमारचरिउ' क्रमश डा० प० ल० वैद्य और प० हीरालाल जैन द्वारा सपादित पूर्व ही प्रकाशित हो चुके है। इन में से 'जसहरचरिउ' की आलोचना 'हिंदुस्तानी' के एक पिछले अक मे निकल चुकी है। पुष्पदत का प्रस्तुत तीसरा ग्रथ पूर्व-प्रकाशित दो ग्रथो से आकार और महत्व दोनो दृष्टियो से वृहत्तर है।

'जसहरचरिउ' की ही भाँति विद्वद्वर डा० वैद्य ने प्रस्तुत ग्रथ का सपादन बडी योग्यता और परिश्रम से किया है। पाँच हस्तलिखित पुस्तको के आधार पर मूल पाठ स्थिर

किया गया है। आरभ मे एक सविस्तर भूमिका और अत मे अग्रेजी टिप्पणी तथा कतिपय प्राकृत शब्दो की सूची दे दी गई है। मूल पाठ के साथ ही साथ नीचे प्रतियो के अन्य पाठ तथा सस्कृत टिप्पण से आवश्यक उद्धरण दे कर सस्करण और भी उपयोगी बना दिया गया है।

'महापुराण' एक भारी ग्रथ है। प्रस्तुत भाग मे ग्रथ की १०२ सधियो मे से केवल ३७ आ पाई है। शेष दो भागो मे बाकी ग्रथ समाप्त होगा।

'महापुराण' जैनियो के लिए प्राय वही महत्व रखता है जो वैदिक धर्मावलवियो के लिए 'महाभारत' और 'रामायण'। इस में ६३ जैन महापुरुषो के जीवन-चरित सन्निहित होने है। प्रस्तुत भाग में केवल प्रथम तीर्थंकर ऋषभ और प्रथम चक्रवर्ती भरत का वर्णन है।

डा० वैद्य तथा माणिकचद्र दिगबर जैन-ग्रथमाला के सचालक को धन्यवाद है कि उन्हो ने इतने महत्वपूर्ण ग्रथ को प्रकाशित किया और आर्यभाषा तत्वज्ञो और आर्य सस्कृति के रसिको के सामने अपूर्व सामग्री उपस्थित की।

शेष दो भागो की प्रतीक्षा उत्सुकता मे की जावेगी।

बाबूराम सक्सेना

*　　　*　　　*

ब्रजभाषा-व्याकरण—लेखक, डाक्टर धीरेद्र वर्मा। प्रकाशक, लाला रामनरायन लाल, इलाहाबाद। १९३७। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक मे हिंदी भाषा के प्रगाढ तथा लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् के कई वर्षो के परिश्रम का फल सनिहित है। दुर्भाग्य से हिंदी के प्राचीन ग्रथो के सुसपादित सस्करणो का अभी भी अभाव है। परिणाम-स्वरूप इन ग्रथो के आधार पर कोई वैज्ञानिक व्याकरण प्रस्तुत करना कितनी टेढी खीर है यह वही जानते है जिन्हो ने इस ओर कोई कार्य किया है।

इस व्याकरण को तैयार करने मे धीरेद्र जी ने विक्रमी २०वी शताब्दी के पूर्व के ग्रथो का उपयोग किया है। आरभ मे लेखक ने ४४ पृष्ठ की गवेषणापूर्ण भूमिका दी है, जिस में 'ब्रज' शब्द, ब्रजभाषा की अन्य बोलियो से तुलना, ब्रजभाषा की उत्पत्ति और उस के सामान्य लक्षण, उस की अध्ययन सामग्री, उस का शब्दसमूह और उस की लिपि शैली आदि विषयो पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस के उपरात उन्हो ने वैज्ञानिक रीति से इस भाषा के अगो का विश्लेषण कर के भेदो और उस के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है।

रचना सर्वथा सुंदर और उपादेय है और प्रत्येक पृष्ठ लेखक की विद्वत्ता का परिचायक है। डा० धीरेंद्र वर्मा ने यह पुस्तक उपस्थित कर के हिंदी की बडी भारी कमी की पूर्ति की है।

बाबूराम सक्सेना

*　　　*　　　*

अभिषेक नाटक—मूल संस्कृत ग्रंथकर्ता महाकवि भास। अनुवादक, श्री प्रेमनिधि शास्त्री, 'व्यास'। प्रकाशक, स्वाध्याय सदन, मोहन लाल रोड, लाहौर। १९३७। प्रथम संस्करण। पृष्ठ ३० + ६२। सजिल्द। मूल्य १२ आने।

कोई पच्चीस वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय पंडित गणपति शास्त्री ने तेरह नाटक खोज निकाले थे और कतिपय लक्षणो के कारण उन्हो ने उन सब को भास महाकवि की कृति बताया था। यह ग्रंथ भास कवि द्वारा रचित हैं अथवा नही इस विषय पर संस्कृत साहित्य की विद्वन्मंडली मे ऐसा विवाद उठ खडा हुआ जो अभी भी शात नहीं हुआ है। अनुवादक ने अपनी भूमिका में केवल पंडित गणपति शास्त्री की युक्तियां उपस्थित की है और इस विवाद से अनभिज्ञ मालूम पडते है।

अनुवादक ब्रजभाषा के पुजारी है और अपने 'नम्र-निवेदन' मे उस की वर्तमान अधोगति पर उन्हो ने आंसू बहाए हैं। पद्य-भाग की रचना ब्रजभाषा में है। अनुवाद साधारण रीति से अच्छा है।

बाबूराम सक्सेना

लेख-परिचय

[इस स्तभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ में विगत तीन मास में प्रकाशित गभीर लेखो के शीर्षक लेखको के नाम सहित अकित किए गए है।]

अमर कलाकार शरच्चद्र—श्री भारतभूषण अग्रवाल, सुधा, मई, १९३८

अलेक्जेंडर की भारत में पराजय और दुर्गति—प्रोफेसर हरिश्चद्र सेठ, एम० ए०, पी०-एच्० डी०, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

आधुनिक हिंदी कविता—श्री सच्चिदानद हीरानद वात्सायन, विश्वमित्र, अप्रैल-मई, १९३८

आधुनिक हिंदी कहानी—श्री जीवानद, विशाल-भारत, अप्रैल, १९३८

इस्लाम का कवि-दार्शनिक इकबाल—मौलवी जियाउद्दीन, विशाल-भारत, जून, १९३८

उडिया साहित्य का आधुनिक रूप—श्री कालिदीचरण पाणिग्राही, बी० ए०, विशाल-भारत, मई, १९३८

उत्कलमणि गोपबधु दास—श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक, विशाल-भारत, मई, १९३८

एक बिंदी पर ६ सहस्र सैनिक बलिदान!—श्री व्रजरत्न दास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सुधा, अप्रैल, १९३८

एक लिपि ('देवनागर' से उद्धृत)—उत्थान, मार्च, १९३८

एकाकी नाटक—श्री प्रकाशचद्र गुप्त, हस, मई, १९३८

कन्नौज के सकलन—श्री उमेशचद्र देव, साहित्यरत्न, सरस्वती, अप्रैल, १९३८

कविवर कुचन नम्पियार—श्री एन्० वेंकटेश्वर, दक्षिण भारत, फरवरी-मार्च, १९३८

कला और साहित्य—श्री गजानन-त्र्यबक माडखोलकर, वीणा, जून, १९३८

काका साहब का पत्र-व्यवहार—श्री धर्मदेव शास्त्री, दर्शनकेसरी, सुधा; मई, १९३८

कृपाण राजगण—श्री सुदरलाल त्रिपाठी, उत्थान, मार्च, १९३८

कोरेन्त्रियो ताकादाहो का विचित्र जीवन—श्री विश्वनाथ सेठी, बी० एस्-सी०, विश्वमित्र, अप्रैल, १९३८

क्या एकांकी (नाटक) का साहित्य में कोई स्थान नहीं?—श्री उपेंद्रनाथ अश्क, हंस, जून, १९३८

गढ़वाली भाषा के 'पखाणा'—श्री शालिग्राम वैष्णव, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८,४

गुप्तवंश—श्री सुदरलाल त्रिपाठी, उत्थान, अप्रैल, १९३८

गोविंददास—श्री नरेंद्रदास विद्यालंकार, साहित्य, भाग २-२

गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनी—श्री रामबहोरी शुक्ल, एम्० ए०, साहित्य-रत्न, वीणा, मई, १९३८

चीन की भारत को देन—श्री माहेश्वरी सिंह 'महेश', एम्० ए०, विश्वमित्र, अप्रैल, १९३८

जीवन और काव्य-प्रकृति—प्रिंसिपल लक्ष्मीनारायण सिंह, सुधांशु, एम्० ए०, वीणा, मई, १९३८

डाक्टर अक्बाल की काव्य-कला—श्री यदुनंदन मिश्र, एम्० ए०, वीणा, अप्रैल, १९३८

तिब्बत में भारतीय कला—श्री मणींद्रमोहन के लेख के आधार पर, विशाल भारत, जून, १९३८

तुलसीदास और दर्शन—श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०, सम्मेलन-पत्रिका, भाग २५, ७-८

तेलुगु का नाटक साहित्य—श्री उनव राजगोपाल कृष्णय्या, दक्षिण भारत, अप्रैल, १९३८

हृद्वृत्ति और फ्रायड—श्री प्राणजीवन पाठक, एम्० ए०, विशाल-भारत, मई, १९३८

नव्य कला में मनोविज्ञान—श्री प्रभाकर माचवे, एम्० ए०, साहित्यरत्न, सुधा, जून, १९३८

नागरी लिपि में कुछ आवश्यक परिवर्तनों की वाञ्छनीयता—श्री मोतीलाल गुर्टू, सुधा, अप्रैल, १९३८

पद्माकर कवि—स्वर्गीय पंडित नकछेदी तिवारी (अजान कवि), उत्थान, अप्रैल, १९३८

पद्माकर का भाव-चित्रण—श्री गोपेशकुमार ओझा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, सुधा, जून, १९३८

'प्रसाद' जी के छंद—श्री सत्येंद्र, एम्० ए०, साहित्य-संदेश, अप्रैल, १९३८

प्राचीन भारतीय जनपद—श्री सुंदरलाल त्रिपाठी, उत्थान, मार्च, १९३८

बैसवारी बोली का ब्रजभाषा पर प्रभाव—श्री शिवरत्न शुक्ल 'सिरस', साहित्यरत्न, सरस्वती, मई, १९३८

भक्त कवि नरसी और उन के पद—श्री उमाशंकर वाजपेयी, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

भक्ति-काल के प्रमुख कवि—श्री हज़ारीलाल द्विवेदी, साहित्याचार्य, वीणा, अप्रैल, १९३८

भारत में संग्रहालय और उन की उपयोगिता—श्री सतीशचंद्र काला, बी० ए०, चाँद, मार्च-अप्रैल, १९३८

भारतीय मनोविज्ञान की रहस्यपूर्ण झाँकी—श्री रामनिवास शर्मा, माधुरी, मई, १९३८

भारतीय साक्षरता का भविष्य और वर्तमान—श्री विष्णुदत्त मिश्र, 'तरंगी', सरस्वती, जून, १९३८

मराठों के पतन के कारण—प्रोफ़ेसर शान्तिप्रसाद वर्मा, एम्० ए०, वीणा, मई, १९३८

महाकवि भूषण—रावराजा रायबहादुर श्री श्यामविहारी मिश्र, एम्० ए० और रायबहादुर श्री शुकदेव विहारी मिश्र, बी० ए०, उत्थान, मार्च, १९३८

महात्मा पुरंदरदास जी—श्री के० नारायणाचार्य, कल्याण, अप्रैल, १९३८

महाराजाधिराज सम्राट—श्री कृष्णकुमार, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

रानी एलिज़बेथ और धार्मिक अत्याचार—माननीय पंडित रविशंकर शुक्ल, उत्थान मार्च, १९३८

राष्ट्र-भाषा का नाम—श्री चंद्रबली पांडय, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

राष्ट्र-भाषा का निर्णय—श्री चंद्रबली पांडय, एम्० ए०, वीणा, अप्रैल, १९३८

राष्ट्रलिपि की समस्या—श्री रामनाथ 'सुमन', जीवन-सुधा, अप्रैल, १९३८

रूप और साधना—श्री हरिहरनाथ हुक्कू, एम्० ए०, कल्याण, मई, १९३८

रोमन बनाम देवनागरी—श्री कमलाकांत वर्मा, बी० ए०, बी० एल्०, विशाल भारत अप्रैल, १९३८

वर्तमान काव्य की विविध धाराएं और उन का भविष्य—श्री वासुदेव सिंह, साहित्यरत्न माधुरी मई, १९३८

वर्तमान हिंदी काव्य की विशिष्ट प्रवृत्तियां—श्री रामखेलावन, विशाल भारत जून, १९३८

विवेचना की आवश्यकता—श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', सुधा, अप्रैल १९३८

वैभवशाली हिंदू राष्ट्र—श्री विनायक-दामोदर सावरकर, बैरिस्टर-एट्-ला, सुधा, मई १९३८

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय—श्री राजनाथ राय, एम्० ए०, सरस्वती, मई, १९३८

श्री रामचरितमानस में उकार तथा अनुस्वार—श्री विजयानंद त्रिपाठी, विशाल भारत, मई १९३८

स-ध्रुव मालेक्यूल—श्री जगद्बिहारी सेठ, एम्० ए०, (कंब्रिज) आई० ई० एस्०, सरस्वती, मई, १९३८

सह-शिक्षा की उपयोगिता—प्रिंसिपल कालूलाल श्रीमाली, एम्० ए०, बी० टी०, वीणा मई, १९३८

साहित्य का राष्ट्र पर प्रभाव—श्री शुकदेव प्रसाद, साहित्य, भाग २–२

साहित्य में सत्य—श्री देवराज उपाध्याय, विशाल भारत, अप्रैल, १९३८

साहित्य से वर्तमान मांग—श्री रामचंद्र तिवारी, हंस, जून, १९३८

सूरदास की रचना में काव्य-शास्त्र का प्रस्फुटन—श्री बलभद्र प्रसाद मिश्र, एम्० ए०, सम्मेलन-पत्रिका, भाग २५, ७–८

स्वप्न-तत्व, भारतीय दृष्टिकोण से—श्री रामदत्त भारद्वाज, एम्० ए०, विशाल-भारत, जून, १९३८

स्वर्गवासी राय बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय बहादुर—उत्थान, मार्च, १९३८

स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र—श्री गोपालराम गहमरी, सरस्वती, जून, १९३८

स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त—श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, उत्थान, मार्च, १९३८

हमारी जन-संख्या समस्या—श्री सत्येंद्र, विश्वमित्र,' जून, १९३८

हमीर-हठ—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०, विशाल भारत, मई, १९३८

हिंदी एवं द्राविड भाषाओं का व्यावहारिक साम्य और उन का हिंदी पर संभावित प्रभाव—श्री ना० नागप्पा, एम्० ए०, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ४

हिंदी कविता और दर्शन—श्री कृष्णशंकर तिवारी, वीणा, अप्रैल, १९३८

हिंदी गीति-काव्य—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, हंस, जून, १९३८

हिंदी नाटकों की भूमिका—श्री सत्यद्र, एम्० ए०, वीणा, अप्रैल, १९३८

हिंदी भाषा और साहित्य—श्री किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, माधुरी, मई, १९३८

हिंदी भाषा में अनुस्वार और चंद्रबिंदु—श्री गोपाललाल खन्ना, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

हिंदी साहित्य और समालोचना—श्री पद्मानंद चतुर्वेदी, माधुरी, जून, १९३८

हिंदी साहित्य के संभाव्य संस्कार—श्री सत्यप्रसाद थपल्याल, चाँद, मार्च-अप्रैल, १९३८

हिंदुस्तानी में 'नें' का प्रयोग—श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, साहित्य, भाग २, २

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥), सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥), कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

मिलने का पता—
मोहन न्यूज एजेन्सी,
कोटा (राजपूताना)

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक—डाक्टर ताराचंद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अक्तूबर, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, अक्तूबर, १६३८

संपादक—रामचंद्र टंडन

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } अक्तूबर, १९३८ { अंक ४

आधुनिक हिंदी नाटकों का अभिनय

[लेखक—श्रीयुत सूर्यकरण पारीक, एम० ए०]

देश-विदेश के प्राय सभी विद्वान् और कलाविज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष मे नाट्यकला का प्रादुर्भाव बहुत प्राचीन काल मे हुआ था और अब से

भारतीय नाटक की प्राचीनता

लगभग ढाई-तीन हज़ार वर्ष पूर्व इस देश मे नाट्यकला इतनी विकसित हो चुकी थी कि वह लोकप्रिय हो सके। शिलालिन् और कृशाश्व के समय मे नाटक-कला उन्नति की चरम सीमा को पहुँच चुकी थी, और पाणिनि के सूत्रो तथा पतजलि के 'महाभाष्य' मे भी भारतीय रगशालाओ का उल्लेख मिलता है। 'हरिवशपुराण' मे विवरण मिलता है कि बज्रनाभ नगर मे 'कौबेररभाभिसार' नाटक खेला गया था, जिस की रगभूमि में कैलाश का दृश्य दिखलाया गया था। मध्यकालीन सस्कृत नाटको की उत्तम रचना, उन के लोकप्रचलन और कलात्मक बारीकियो को देख कर यही कहना पडता है कि भारतीय नाटक अन्यान्य विज्ञान और कलाओ की भाँति भारतवर्ष की ससार को बहुत प्राचीन देन है। भास, कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, भट्टनारायण, विशाखदत्त, राजशेखर आदि सस्कृत नाटक के अमर कलाकार हैं। मैक्समूलर, पिशेल, लेवी, मैकडानेल आदि पाश्चात्य विद्वानो का सुनिश्चित मत है कि नाटको का आरभ सब से पहले भारतवर्ष में ही हुआ। यही नही,

दृश्य-काव्य और अभिनय-कला की रूपरेखा को सुनिश्चित शास्त्रीय स्वरूप देने के लिए इस देश में बहुत प्राचीन काल मे नाटयशास्त्र के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने सर्वांग-संपूर्ण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन सहित लक्षण-ग्रंथ 'नाटयशास्त्र' लिखा। इतनी भारी प्रतिष्ठा का पात्र बन कर नाटयशास्त्र पंचम वेद की तरह माना जाने लगा। इस के बाद के आचार्यों ने भी नाटयकला पर अनेक लक्षण-ग्रंथ लिखे, जिन मे रंगमंच, अभिनय-सौष्ठव, पात्र-संगठन, वेशभूषा, देश, काल, शैली आदि के विषय में सूक्ष्म विवेचन उपलब्ध होते हैं। दसवीं शताब्दी के लगभग लिखा हुआ धनंजय का 'दशरूपक' उस विकास-शृंखला का अंतिम प्रौढ पुष्प है। प्रेक्षागृह (स्टेज या थियेटर) के विषय मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि कुछ वर्ष पूर्व सिरगुजा राज्य के अंतर्गत रामगढ के इलाके मे दो पहाड़ी गुफाओं मे भारतीय और यूनानी शैली के मिश्रित प्रेक्षागृहों का अनुसंधान हुआ था। उन्हीं में अशोक-कालीन लिपि में शिलालेख भी खुदे मिले थे। पुरातत्व-वेत्ताओं के अनुमान से ये शिलालेख और प्रेक्षागृह ईसा से कम से कम ३०० वर्ष पूर्व बने होंगे। इस से यह भी प्रमाणित होता है कि उस काल तक न केवल भारतीय नाटयकला ने ही पूर्ण उन्नति कर ली थी वरन् उस मे यूनानी नाटयकला के सम्मिश्रण के चिह्न भी दिखाई देने लगे थे। यह सब कुछ लिखने से हमारा अभिप्राय है कि नाटयकला भारत की बहुत प्राचीन निधि है, और समय-समय पर उस मे संशोधन होते रहे है। इस उज्ज्वल अतीत को ध्यान में रख कर हमें केवल गर्व से फूल ही न जाना चाहिए वरन् उसे वर्तमान अध:पतन के गर्त से निकालने के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील भी होना चाहिए।

हिंदी का नाटक-साहित्य

अन्यान्य देश-भाषाओं की तरह हिंदी मे भी नाटक लिखने का उपक्रम संस्कृत के अनुकरण से लगभग १०० वर्ष पूर्व हुआ। वैसे देखा जाय तो कहने को हिंदी में काफी संख्या मे नाटक है। कुछ अच्छे और मौलिक नाटक भी है, परंतु अनुवाद अधिक है। हिंदी में नाटय-साहित्य के जन्मदाता और उन्नायक भारतेंदु हरिश्चंद्र समझे जाते हैं। उन के बाद भी हिंदी मे अनेक अनूदित नाटक बने, और अब भी मौलिक और अनूदित नाटक बनते चले जा रहे हैं, परंतु राष्ट्र-भाषा के गौरव के अनुकूल हिंदी मे नाटक-साहित्य नहीं है, ऐसा कहा जाय तो अनुचित न होगा। भारतेंदु बाबू की संस्कृत-पाश्चात्य मिश्रित शैली, द्विजेंद्रलाल

राय की प्रधानत पाश्चात्य शैली तथा 'प्रसाद' जी की नूतन ऐतिहासिक शैलियों के रूप-विकास की एक पतली सी धारा अवश्य झिलमिलाती दिखाई देती है, परतु समयानुकूल मौलिकता के उद्भास की इन सब मे न्यूनता ही पाई जाती है। यह कहना न होगा, कि अपने परमोज्ज्वल अतीत की तुलना मे हिंदी का नाटय-साहित्य समय की गति से हजारो वर्ष पिछडा हुआ है। पीछे से आरभ करने वाले अन्यान्य सभ्य देशो की नाटय-कला के विकास के समक्ष यह ठहर नहीं सकता। हमारे इस वक्तव्य का उद्देश्य केवल अपनी न्यूनताओ पर आँसू बहाने का ही नहीं है, वरन् अपनी वर्तमान दशा का दिग्दर्शन कराते हुए नाटयकला मे समयोचित सुधार करने की ओर हिंदी पाठको का ध्यान आकर्षित करने का है। विशेषत पिछडे हुए रगमच और अभिनयकला का सुधार परमावश्यक है, यह वक्तव्य है।

यह कहना अप्रयुक्त न होगा कि पारसी स्टेज के अर्वाचीन इद्रजाल ने हिंदी नाटककारो, अभिनेताओ और रगमच-अध्यक्षो को लक्ष्यभ्रष्ट और सस्कारभ्रष्ट कर दिया।

हिंदी का रगमच

परतु सारा दोष केवल पारसी थियेटर के सिर ही नहीं मढा जा सकता, हमारी किकर्तव्य-विमूढता और दयनीय मानसिक दरिद्रता भी बहुत कुछ उत्तरदायी है। हिंदी नाटको का कोई अपना रगमच नहीं है, यह कहते-कहते हिंदी के सर्वोत्तम कलाकार 'प्रसाद' जी का अवसान हो गया, और अब भी हमारे कानो पर जू तक नही रेंगती। हमारी घोरतम अस्वाभाविकता से परिपूर्ण रगमच-रचना, निरुद्देश्य अभिनय चेष्टाओ, कृत्रिम भाषा और निरर्थक वेशभूषा की तुलना मे मदारी का खेल और नटो की कलाबाजिया कही अधिक स्वाभाविक और मनोरजक होती है। रगमच, अभिनय, वेशभूषा, भाषा आदि वाह्य उपकरणो की दृष्टि से हिंदी नाटक का अध पतन जितना वर्तमान काल में हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ होगा। बँगला, गुजराती, मराठी आदि देशभाषाओ ने अब से बहुत पहले अपने पैर सँभाल लिए, जिस का परिणाम यह है कि उन भाषाओ के नाटक-साहित्य मे बहुत कुछ समयोचित सुधार हो चुके है, पर हिंदी की नीद अभी तक टूटी नही है।

अभिनय-कला के पाश्चात्य आदर्श

१७ वी शताब्दी में फ्रास के एक प्रसिद्ध कला-आलोचक बूयलो ने नाटय-कला के सबध मे कहा है —

"दर्शक के समक्ष अविश्वसनीय प्रदर्शन कदापि न करना चाहिए। कभी-

कभी सत्य भी ऐसा रूप धारण कर लेता है, जिस से वह सत्य नहीं जान पड़ता। विवेकशून्य चमत्कार आकर्षण की वस्तु नहीं है। मन पर ऐसी बातों का प्रभाव कभी नहीं पड़ता, जिन में वह विश्वास न कर सके।"

जिन लोगों ने शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'हैमलेट' को पढ़ा है, उन्हें याद होगा कि उस का नायक, हैमलेट, अपनी नाटक-मंडली को अभिनय के पूर्व चेतावनी देता हुआ, नाटयकला के मूल सिद्धान्त—स्वाभाविकता—के विषय में दीक्षा देता है—

"तुम्हें ऐसी उदार सहिष्णुता का उपार्जन करना चाहिए, जिस से तुम्हारे भावों में कोमलता का समावेश हो। मेरी आत्मा को सन्ताप होता है, जब कि मैं किसी अल्हड़, अकुशल अभिनेता को किसी भाव का इस प्रकार प्रदर्शन करते देखता-सुनता हूं कि जिस से भाव का ही सर्वनाश हो जाता है।

ऐसा अकुशल पात्र दंड का भागी है क्योंकि वह अनावश्यक बदमिज़ाजी का प्रदर्शन करता हुआ, चरम कोटि की भद्दी भड़ैती का नाटय करता है। इस का त्यागना ही अच्छा है।"

भाव-प्रदर्शन और अभिनय-कला के विषय में हैमलेट यह आशय प्रकट करता है—

"पात्रों का भाव-प्रदर्शन लचर भी नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हें विवेकपूर्ण आत्मशासन रखना चाहिए। अभिनेता का व्यापार शब्दानुकूल और शब्द व्यापारानुकूल हो। उसे खास कर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह स्वाभाविकता के नियमों से दूर न पड़ जाय, क्योंकि अभिनय की दृष्टि से इस प्रकार का व्यतिक्रम अक्षम्य है। अभिनय का लक्ष्य सदा-सर्वदा प्रकृति के रूप का हूबहू प्रतिफलित चित्र उतारना है। कुशल अभिनेता सदाशयों के समक्ष उन के सद्गुणों की विशेषता और दुराशयों के समक्ष उन के दुर्गुणों का नंगा चित्र रखता हुआ तत्कालीन युग और समय के सामने उन की सच्ची आकृति और प्रेरणाओं को हूबहू ला रखता है।"

जिस प्रकार के अकुशल अभिनय की आलोचना शेक्सपियर ने अपने नायक के मुख से की है, उसी प्रकार की दशा हमारे अभिनय की भी है और उस कवि के शब्दों में यह कहना ठीक होगा कि—

"वे मानवता का कैसा भद्दा अनुकरण करते हैं।"

मानवीय अवस्थाओं का स्वाभाविक अनुकरण करना नाट्यकला का आधार-तत्व है। इसी लिए इस का शास्त्रीय नाम रूपक पड़ा। पूर्वघटित अथवा काल्पनिक

रूपक

अवस्थाओं का जैसा का तैसा स्वाभाविक अनुकरण रूप खड़ा करके आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अनुकरण द्वारा देखने अथवा सुनने वाले के मन में नकल के द्वारा असल का भ्रम पैदा कर देना ही नाटक अथवा रूपक का लक्ष्य है। ऐसा करने से रस की उत्पत्ति और आस्वादन होता है। अतएव रूपक को काव्य का भेद भी कहा है।

अभिनय-कला का भारतीय आदर्श

नाट्यशास्त्र में लोकधर्मी और नाट्यधर्मी अभिनयों में भेद किया गया है।

स्वभावो लोकधर्मी तु नाट्यधर्मी विकारत ।

अर्थात् स्वाभाविक अनुकरण लोकधर्मी अभिनय का आधार होता है और कृत्रिम उपकरणों से नाट्यधर्मी अभिनय सजते हैं। इन दोनों उपकरणों के सामंजस्य से ही उत्तम अभिनय की उत्पत्ति होती है। परंतु हम देखते यह हैं कि हमारे अभिनयों में लोकधर्म की न्यूनता और नाट्यधर्म की वृद्धि होती जा रही है। इसे रोकने की आवश्यकता है।

अब देखना यह है कि हिंदी नाटकों में किन किन दिशाओं में समयोचित सुधार हो कि वे लोकधर्मी अभिनय बन सकें। अभिनय के शास्त्रानुसार चार भाग हैं—(१) आंगिक, (२) वाचिक, (३) आहार्य और (४) सात्विक। अंगों द्वारा चलने फिरने, उठने-बैठने, दौड़ने आदि की क्रियाओं का स्वाभाविक ढंग से प्रकट किए जाते देखने के विपरीत दांभिक क्रियाओं और झूठी शान का प्रदर्शन ही हम स्टेज पर देखते हैं। वाचिक अभिनय के अंतर्गत भाषा का स्वाभाविक रूप होना चाहिए। भाषा के साहित्योचित गौरव के विरोधी हम कदापि नहीं हैं पर यह भी कहना न्याय है कि भाषा या तो इतनी जटिल बना दी जाय कि कोष की सहायता के बिना उसे समझ न सकें अथवा उसे भद्दी तुकबंदी का ऐसा जामा पहना दिया जाय कि वह एक विचित्र लोक की-सी भाषा जान पड़े। हमारे दैनिक बोलचाल की सरल भाषा में क्या वह शक्ति नहीं है कि वह भावों का स्वाभाविक प्रदर्शन कर सके? इस ओर हिंदी के नाटककारों का अब ध्यान जाने लगा है यह शुभ लक्षण है।

आहार्य अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा, आकृति, देश, काल शैली आचार-व्यवहार,

आदि वाह्य उपकरण है। इन के यथोचित अभिनय की ओर भी हमारी नाटक-मंडलियो का अधिक ध्यान जाना चाहिए। देखा ऐसा जाता है कि अभिनय करने वाले पात्र इस बात का ध्यान नही रखते कि किस देश और काल के पात्र को कैसी वेशभूषा और आचरण प्रदर्शित करना चाहिए। वही वेशभूषा, आकृति और आचरण राजपूत काल के पात्र का होता है और वही महाभारत काल, गुप्त काल अथवा मुगल काल के पात्रो का। इस से रसास्वादन म व्याघात उपस्थित होता है। सच तो यह है कि वेशभूषा और आचरण की स्वाभाविकता की ओर हमारे रगमच के अध्यक्षो का ध्यान उतना नहीं जाता, जितना टीम-टाम, ऊपरी तडक-भडक और व्यर्थ के दिखावे की ओर, चाहे फिर वह दिखावा किसी प्रकार के कृत्रिम साधनो से उपलब्ध हो सके।

सात्विक अभिनय मे उन मनोवेगो और सात्विक अनुभवो का प्रदर्शन किया जाता है, जो अभिनय में 'रस'-तत्व का परिपोषण करते है, यथा—करुणा, दया, हास्य, क्रोध, ग्लानि, ईर्ष्या, प्रमाद आदि। इन्ही की सकुशल और यथार्थ व्यजना पर अभिनय की सफलता वहुत कुछ आश्रित रहती है। पर हम देखने क्या है कि स्टेज पर पात्र रोते भी है तो ताल, स्वर और आलाप के साथ और हँसने तथा हाव-भाव, चेष्टादि का तो कोई नियम ही नही है। साराश यह है कि अभिनय-कला के चारो अगो म जव तक विवेकपूर्ण स्वाभाविकता का समावेश न किया जायगा, तव तक हिंदी के अभिनय इसी प्रकार लचर और ढीले वने रहेंगे। नाटक लेखक का तो प्रथम कर्तव्य है कि वह पात्र का चरित्र-चित्रण ही इतना स्वाभाविक बनावे, परतु इस से भी अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है रगमच के अध्यक्ष का, जो इन बातो पर अभिनय की दृष्टि से विशेष ध्यान रक्खेगा। प्रत्येक साहित्यिक नाटक किसी हद तक दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य, दोनो सम्मिलित रूपो में प्रकट होता है। उस का दृश्य-रूप तव तक पूर्णत प्रकट नही होता, जब तक वह अभिनय के रूप म सामने नहीं आता। यूरोप के देशो मे वहुत प्राचीन समय से प्रथा रही है, कि नाटककार द्वारा लिखित अथवा मुद्रित प्रति तव तक अभिनय के योग्य नही समझी जाती, जव तक रगमच का मैनेजर अभिनय-कला की दृष्टि से उस में उचित काट-छाँट और सशोधन नही कर देता। ऐसी दशा मे एक ही नाटक की पठनीय और अभिनेतव्य प्रतियो मे कभी-कभी वडा अतर हो जाता है। पाश्चात्य नाटको का स्टेज मैनेजर (सूत्रधार) उतना ही स्वतत्र और प्रतिष्ठित कलाकार समझा जाता है, जितना कि स्वय मौलिक नाटक का लेखक।

हिंदी में भी कोई ऐसा ही मार्ग निकालना होगा। उदाहरणत 'प्रसाद' जी के ऐतिहासिक नाटक साहित्य की दृष्टि से सर्वोत्तम संपत्ति हैं, परन्तु अभिनयोचित काट-छाँट और संशोधन के बिना उन का स्टेज पर प्रदर्शन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। दूसरी ओर राधेश्याम 'कविरत्न', नारायण प्रसाद 'बेताब', हरिकृष्ण 'जौहर' और किशनचंद 'जेबा' के थियेट्रिकल नाटक अभिनय के अधिक उपयुक्त हैं, परन्तु साहित्य में उन का विशेष स्थायी स्थान नहीं है। इन दोनों के बीच के मध्यम मार्ग का अवलंबन करने से ही हिंदी अभिनय का उद्धार हो सकता है। न तो 'प्रसाद' जी की ही अति जटिल और दार्शनिक भाषा अभिनयोपयुक्त है, और न उन थियेट्रिकल नाटकों की कृत्रिम, तुकांत, भद्दी भाषा। 'प्रसाद' जी की साहित्यिक भाषा एक संकुचित समुदाय की भाषा है, परन्तु 'कविरत्न' और 'बेताब' की भाषा अप्राकृतिक है। थोड़े से अभिनयोचित सुधार के बाद 'प्रसाद' जी के नाटक हिंदी-रंगमंच के शृंगार बन सकते हैं। पर थियेट्रिकल नाटकों में जो कुछ अच्छा है वह केवल उन के उच्चाशय पात्रों का नाम तथा उन की आदर्श कथा-गाथा है।

कविता और संगीत

नाटक की आत्मा उस का व्यापार है, जो अभिनय द्वारा कर के दिखाया जाता है। यदि किसी नाटक का पात्र स्थान-स्थान पर कविता और संगीत का आश्रय ले कर अपनी निष्क्रियता प्रदर्शित करे, तो प्रेक्षकों पर उस का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। कविता और संगीत अच्छी कलाएँ हैं, परन्तु देखने वाले कार्य देखने को उत्सुक हैं, संगीत सुनने और कविता का भाव समझने को नहीं। यों तो नाटक के क्रम-विकास में नृत्य और संगीत का महत्वपूर्ण हाथ है। परन्तु अभिनय व्यापार की दृष्टि से ये दोनों ही नाटक में प्रायः निरभिप्राय से हैं। हाँ, पात्र की मानसिक दशा को किसी विशेष परिस्थिति में जागृत और उत्तेजित करने में संगीत और कविता सहायता देते हैं, परन्तु यथार्थ तो यह है कि इन साधनों का जितना कम उपयोग होगा, उतना ही नाटक के अभिनय-गुणों का उपकार होगा। हिंदी के थियेट्रिकल नाटकों में प्रयाप्त से एक पद्धति का पालन दीख पड़ता है। प्रायः प्रत्येक पात्र दो-एक वाक्य बोल कर उन के बाद अनिवार्यतः दो चार पद्य पंक्तियों में उस साधारण सिद्धांत का वर्णन करता है जिस में उस की गद्योक्ति की परिपुष्टि हो जाय। यह क्रम अंत तक चला जाता है। कैसा बनावटी और बेढंगा होता है इस प्रकार का कथोपकथन। इसी प्रकार अवसर-अनवसर का कुछ भी ध्यान न रख कर कोई पात्र स्टेज पर धारा-

प्रवाह ढग से कविता पाठ करने लग जाता है और दूसरे पात्र तथा प्रेक्षक तद्रापूर्ण आंखो और कानों से मन्त्रमुग्ध की तरह उसे देखते-सुनते रहते हैं। सगीत की तो यहा तक दुर्दशा है कि पात्र को सर्प ने काट खाया है अथवा किसी भारी आपत्ति का सामना करना पडा है, और वह ताल-स्वर के साथ सुमधुर गान की तान अलापता है। कितना अस्वाभाविक है! हमारे कहने का यह आशय नहीं है कि हिंदी के सभी नाटको में ऐसा होता है, परतु अधिकाश मे ऐसे व्यतिक्रम देखे जाते हैं। 'प्रसाद' जी के अधिकाश पात्र समयानुकूल अत स्थिति-परिचायक गान गाते हे, परतु साथ ही उन के कई पात्र लबी-लबी स्वगतोक्तियो, दार्शनिक कविताओ और वक्तृताओ के बन्धपाश में फँसे रहते हे। यह भी अस्वाभाविक है। इसी लिए कुछ लोगो ने उन की भाषा शैली को पथरीली कहा है।

इधर पिछली एक-डेढ शताब्दी से पाश्चात्य, खास कर अग्रेजी, नाटको के सपर्क से दु खान्त और सुखात ('ट्रेजेडी और 'कामेडी') की विवादपूर्ण भावना हिंदी नाटक-जगत मे भी उत्पन्न हो गई है। हमे उस से यहा पर कोई बहस नही है। सिद्धात रूप मे हम तो यह देखते हैं कि जीवन में दु ख और सुख का जोडा है, एक दूसरे से पृथक् नही किए जा सकते। यदि नाटक का उद्देश्य जीवन की घटनाओ का स्वाभाविक प्रतिफलन उपस्थित करना है, तो हम अपने नाटको में दोनो का मिलाजुला जीवित रूप प्रदर्शित करेंगे, कारण, ये जीवन मे घुले-मिले मिलते हैं। कुछ लोगो का कहना है कि गभीर प्रसगो का अनुशीलन करते-करते प्रेक्षक के चित्त मे थकावट आ जाती है, इस लिए उसे विश्राति देने के लिए नाटक में प्रहसन का लगा देना आवश्यक होता है। यह दलील ही विरोधाभास है। यदि अभिनय रोचक है तो वह चाहे कितना ही करुण, गभीर और भयानक हो उस से थकावट नही हो सकती। और यदि वह अरोचक है तो चाहे कितने ही चित्ताकर्षक प्रहसन जोड दिये जायँ, उन से मूल अभिनय मे रोचकता आ नही सकती, और न क्लात चित्तवृत्ति का उपराम ही हो सकता है। अतएव ऊपर से जोडे हुए, नाटक की आधिकरणिक और प्रासगिक कथा-वस्तु से सर्वथा असबद्ध प्रहसनो से अभिनय अथवा प्रेक्षको का कोई उपकार नही हो सकता। पर हिंदी के अधिकाश नाटको में यह मिलते है। इस अनावश्यक विडबना को त्यागना आवश्यक है। प्रसगत यह ध्यान देने की बात है कि सस्कृत नाटको मे भी हास्य और

प्रहसन

प्रहसन कथावस्तु का आवश्यक अग बना रहता है। विदूषक राजा का अतरग मित्र—अतएव कथावस्तु का आवश्यक पात्र—गिना जाता है। सभवत इसी विदूषक के अनुकरण मे यूरोप वालो ने अपने मध्यकालीन नाटको के 'क्लाउन', 'बफूनो' का निर्माण किया।

दृश्य, सजावट, आदि

दृश्य, सजावट, रगमच आदि अभिनय-सबधी वाह्य सामग्री मे भी स्वाभाविकता और युक्तिसगतता अपेक्षित होती है। ये वाह्य उपकरण नाटक के कार्य को प्रभावान्वित करने के लिए प्रयुक्त होते है। और दूसरा प्रयोजन इन से सिद्ध नही होता। परदो का प्रयोग अच्छा है, और इन से रगमच की रोचकता बढती है, परतु यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि घटना का स्थान राजस्थान की रेतीली भूमि हो तो उस दृश्य के पृष्ठ-पट पर उर्वर कछार, नदी-कूल और नदी अकित न हो, और पर्वत श्रेणी हो तो पथरीली और कटीली हो, न कि सघन वन-मडित। सजावट और अन्य वाह्य साधनो के विषय मे इन्ही बातो का ध्यान रखने से अभिनय की स्वाभाविकता बढ सकती है।

सिनेमा और टॉकी

लोग कहते है, और कुछ अश मे ठीक ही कहते है, कि अब नाटको का जमाना गया, चित्रपटो (सिनेमा') और बोलपटो ('टाकीज') का जमाना आ गया। विज्ञान के धाराप्रवाह मे पड कर मानव-जीवन बडी तीव्रता के साथ सभ्यता की मजिलो की ओर उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। उसे रोकना न तो उचित ही है और न सभव ही। यह तो ठीक ही है। परतु चित्रपट, बोलपट, अथवा अन्य कोई उन्नत वैज्ञानिक साधन भी नाटक के बीज-तत्व को लुप्त कर सकेगा, यह कल्पना में नही आता। न यह विज्ञान का प्रयास ही है। विज्ञान तो साधन मात्र है, जो विद्युत् की शक्ति से दृश्यकाव्य को पट पर चित्र के रूप में दिखाता है, और अब चित्रपट के साथ ध्वनि का सामजस्य भी सभव हो गया है। इन सब वैज्ञानिक सुविधाओ से नाटक के विकास का अवरोध नही होता, बल्कि उन्नति ही सभाव्य है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि नाटक स्थायी साहित्य-सपत्ति है और सिनेमा-टाकी अस्थायी प्रदर्शन मात्र। जो अतर दैनिक समाचार-पत्र और साहित्य ग्रथ मे होता है, वही इन दोनो मे समझना चाहिए। परतु फिर भी ये दोनो एक ही वाङ्मय के अन्योन्याश्रित अग है।

अभिनय-कला के हितैषियो को सिनेमा और टॉकी के नवीन आयोजनो से बहुत

सहायता मिल सकती है। इस मे सदेह नही है कि बाह्य साधनो के जुटाने में सिनेमा कप-नियो ने बहुत परिश्रम किया है। वातावरण, वेशभूषा, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, देश-काल और शैलियो के विषय में बहुत सी उपयोगी सामग्री हमें सिनेमा और टाकी से मिल सकती है। उस का उपयोग हमें अपने साहित्यिक नाटको मे यथोचित ढग से करना चाहिए। परतु साथ ही इन के दुर्गुणो और असभव कल्पनाओ से भी बचना चाहिए। हमारे कहने का यह तात्पर्य नही है कि सिनेमा और टॉकी में जो कुछ होता है वह ठीक ही होता है। यह एक स्वतत्र विषय है, प्रसगत यहा उल्लेख मात्र कर दिया गया है।

निवेदन

अत मे हमें यह कहना है कि स्वाभाविकता से हमारा अभिप्राय नग्न वास्तविकता अथवा उस यथार्थवाद से नही है, जिसे पाश्चात्य नाटको मे इब्सेनिजम कहा गया है। कल्पना का भी नाटक मे उचित स्थान है और रहेगा। नाटक की दृश्यकाव्यता और श्रव्यकाव्यता नष्ट होने से भी हमारा उप-कार न होगा। हमे पाश्चात्यो का अधानुकरण करना भी शोभा नही देता। अपने प्राचीन भारतीय आदर्शों और साहित्यिक सस्कारो को अक्षुण्ण रखते हुए अभिनय की दृष्टि से हमे नाटको में समयोचित सुधार करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए, जिस से हमारे अभि-नय सामाजिक वास्तविकताओ से तटस्थ न रह कर लोक-रुचि का अत्यधिक आकर्षण कर सके। ऐसी ही दशा मे वे समाज का कुछ उपकार कर सकते है।

तुलसीदास का हस्त-लेख

[लेखक—श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

इस तरह के सात नमूने हस्तलेखा के हैं जो अलग अलग तुलसीदास के कहे जाते हैं। इन का सक्षिप्त परिचय मनोरजक और आवश्यक होगा।

अ एक पचायतनामा स० १६६६ का लिखा हुआ है। इस के द्वारा एक टोडर की जायदाद का बँटवारा उन के देहात के पीछे उन के दो उत्तराधिकारियो के बीच किया गया है—इन उत्तराधिकारियो मे से एक उन का लडका है और दूसरा उन के एक मृत लडके का लडका है। यह पचायतनामा अब महाराज बनारस के निजी सग्रह में है। इस की केवल पहली छ पक्तिया ही तुलसीदास की लिखी कही जाती है।

इस की प्राप्ति का स्थान विश्वसनीय है। यह सैकडो वर्षो तक टोडर के उत्तराधिकारियो के पास था—केवल थोडे ही वर्ष हुए जब यह वर्तमान महाराज बनारस के एक पूर्वज के अधिकार मे आया। इस के बदले म प्राप्तकर्ता महाराज ने कुछ वार्षिक सहायता देने का वचन दिया था, जो अभी तक चौधरी लाल बहादुर सिंह को राज्य से मिला करता है। चौधरी लाल बहादुर सिंह ही अब उपर्युक्त टोडर के एकमात्र उत्तराधिकारी है। टोडर का घर बनारस मे असी घाट के निकट ही था, और वह अब भी चौधरी लाल बहादुर सिंह के अधिकार में है। लाल बहादुर सिंह प्रत्येक वर्ष श्रावण की श्यामा तीज को तुलसीदास के नाम पर उन की निधन-तिथि के उपलक्ष्य म सीधा दिया करते हैं। उन का कहना है कि इसी तिथि पर उन्हो ने अपने पिता को भी तुलसीदास के नाम पर सीधा देते हुए देखा था, और उन से यह सुना भी था कि यह चलन उन के घराने में पहले ही से चली आ रही है। इस साक्ष्य से यह भली भाँति जान पडता है कि टोडर और तुलसीदास का सबध बहुत कुछ घनिष्ठ उस का रहा होगा। सम्भव यह सम्भव है कि कवि ने उन के उत्तराधिकारियो के बँटवारे में कुछ हाथ बँटाया हो और पचायतनामे की प्रथम छ पक्तिया लिख दी हो।

यह हलके भूरे हाथ के बनाए हुए कागज पर फीकी काली स्याही से लिखा हुआ है।

कागज पतला है, और बहुत घिसा हुआ है। यह बड़ी ही असावधानी के साथ एक मोटे कागज पर चिपकाया और मोड़ कर लपेटा हुआ है। इसी असावधानी के कारण हाशियो पर पंक्तिया टेढ़ी-मेढ़ी हो गई है और अनेक अक्षर बिगड़ गए है। अस्तु, यह एक अत्यंत मूल्यवान् पत्र है, और संभवत कवि के हस्तलेख का एक मात्र नमूना इसी में सुरक्षित है। नीचे के विवेचन में इस पत्र की पहली छ पंक्तिया अ कही जाएगी।

व स० १६४१ की लिखी हुई 'वाल्मीकि रामायण' के उत्तरकाड की एक हस्त-लिखित प्रति है। प्रतिलिपि किसी तुलसीदास की की हुई है, यह उक्त प्रति की पुष्पिका म प्रकट है। प्रति इस समय काशी के सरस्वती-भवन में सुरक्षित है।

यह किस प्रकार हस्तातरित होते हुए सरस्वती-भवन में पहुँची और कब और किस प्रकार अपने पहले स्वामी से इस का विच्छेद हुआ, अब अज्ञात है। प्रति की पुष्पिका के नीचे एक श्लोक लिखा हुआ है, जो इस सबंध मे जानने योग्य है। वह इस प्रकार है —

श्रीमदेदिलशाहभूमिपसभासभ्येंद्र भूमीसुर—
श्रेणीमडनमडलीधुरि दयादानादिभाजिप्रभु.।
वाल्मीके कृतिमुत्तमा पुररिपो. पुर्यां पुरोग: कृती-
दत्तात्रेय समाह्वयो लिपिकृते. कर्मत्वमाची करत् ॥१॥

'जो राजा एदिलशाह की सभा का सर्वश्रेष्ठ सदस्य है, जो ब्राह्मणो का भूषण और उन की मडली का धुरी है, और जो दया-दानादि विभाग का अध्यक्ष है, और जिस का नाम दत्तात्रेय है, उस ने वाल्मीकि की इस उत्तम कृति का लिपि-कर्म शिव की पुरी में करवाया।'

यह समझना कदाचित् कठिन न होगा कि महाकवि तुलसीदास से कोई भी व्यक्ति 'लिपि-कर्म' नही करा सकता था। उन्हो ने स्वत 'वाल्मीकि रामायण' ऐसे बृहत्काय ग्रथ की प्रतिलिपि करने का कार्य किया होगा, विशेषत उस समय जिस समय अपना लोक-प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' उन्हो ने प्रकाशित कर दिया था, यह भी सभव नही जान पडता। वैष्णव धर्म के उस नवोदित काल मे, 'तुलसीदास' एक प्रचलित नाम रहा होगा, फलत यदि इस प्रति का लेखक तुलसीदास हमारे महाकवि से भिन्न कोई व्यक्ति रहा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।

प्रति सुरक्षित दशा में है। कागज उस का हाथ का बना भूरापन लिए हुए सफेद है। प्रति भर मे काली स्याही का प्रयोग हुआ है, केवल पुष्पिका लाल स्याही से लिखी गई

है। उस के नीचे का श्लोक, पुनः काली स्याही से लिखा गया है, किंतु उस की स्याही उस से बहुत चमकीली है, जिस का प्रयोग प्रति भर में किया गया है। यह स्वतः स्पष्ट है कि पुष्पिका के नीचे का श्लोक उस हाथ का लिखा नहीं है जिस की लिखी पूरी प्रति है। अब नीचे के विवेचन में हम तुलसीदास के हस्तलेख पर विचार करते हुए इस श्लोक के हस्तलेख को विस्मृत रक्खेंगे। इस प्रति को हम व कहेंगे।

स, द, और य सं० १६६१ की लिखी 'रामचरितमानस' के बालकांड की एक प्रति है। यह अयोध्या में श्रावणकुंज नामक एक मंदिर में है। तुलसीदास को इस प्रति का लेखक नहीं कहा जाता, केवल इस में किए हुए कुछ स्थलों पर के संशोधन उन के हाथ के किए हुए कहे जाते हैं। ये संशोधन पूरी पूरी पंक्ति के हैं और तीन पृष्ठों पर हैं। पर ये संशोधन पृष्ठों के ऊपरी या नीचे के हाशिए में लिखे गए हैं।

इन संशोधनों के तुलसीदास के हस्तलेख होने का दावा किन्हीं सीताप्रसाद का किया हुआ है और उस का आधार उन के ही लिखने के अनुसार केवल यह है कि इन का हस्तलेख राजापुर के 'मानस' की प्रति के हस्तलेख से पूरा पूरा मेल खाता है। स्पष्ट है, उस निष्कर्ष में यह पहले से मान लिया गया है कि राजापुर वाली प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई है, जो ठीक नहीं जान पड़ता।

प्रति हाथ के बने सफ़ेद काग़ज़ पर लिखी है, जो पुराना होने के कारण कुछ भूरा हो गया है। प्रतिलिपि और संशोधन दोनों ही काली स्याही से किए गए हैं। प्रति अच्छी हालत में है। इन तीनों संशोधनों को हम क्रमशः स, द तथा य कहेंगे।

फ सं० १६६६ की लिखी 'रामगीतावली' की एक हस्तलिखित प्रति है जो रामनगर (बनारस स्टेट) निवासी एक चौधरी छत्तीसिंह के संग्रह में है। यह प्रति भी, ऊपर लिखी प्रति की भाँति, कवि की लिखी हुई नहीं कही जाती, केवल इस के एक पृष्ठ पर किया हुआ संशोधन उस का किया हुआ कहा जाता है। मूल प्रति किसी भगवान ब्राह्मण की लिखी है, जो उस की पुष्पिका में लिखा हुआ है।

संशोधन के तुलसीदास का किया हुआ होने का दावा चौधरी साहब केवल इस आधार पर करते हैं कि उन्हें इस के हस्तलेख और पंचायतनामे के हस्तलेख में यथेष्ट साम्य समझ पड़ता है। वस्तुतः दोनों में कहाँ तक साम्य है यह हम आगे देखेंगे।

प्रति भूरापन लिए हुए सफ़ेद काग़ज़ पर लिखी हुई है और इस की स्याही काली

1938-01 -Hindusthani Magazine -Hindusthani Acedamy Ki Timahi Patrika -Bhag 8 (1336)

है। यह अत्यत घिर्सी हुई है, और इस को उलटने पुलटने में बडी सावधानी की आवश्यकता पडती है। और, जान पडता है कि कभी इस के पन्नो पर से धूल हटाने के उद्देश्य से मोटा कपडा या और कोई ऐसी ही चीज रगड दी गई थी जिस से पृष्ठो के अक्षरो की स्याही थोडी बहुत निकल गई। इस सशोधन को नीचे के विवेचन मे हम 'फ' कहेंगे।

ज 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाड की एक प्रति राजापुर में एक पडित मुन्नीलाल उपाध्याय के पास है। इन का मकान तुलसीदास के मदिर के पास है। कहा जाता है कि पहले प्रति इसी मदिर मे रक्खी रहती थी, बाद को चोरो के डर से उपाध्याय जी उसे अपने घर मे रखने लगे। प्रति में कोई पुष्पिका नहीं है, इस लिए निश्चय के साथ इस के लेखक और लेखन-काल के सबध मे कहना असभव है। जनश्रुति यह है कि इस के लेखक तुलसीदास ही थे। किंतु इस जनश्रुति का समर्थन और किसी प्रकार से नहीं होता।

प्रति हाथ के बने सफेद कागज पर है, जो पुराना होने के कारण कुछ भूरा पड गया है। स्याही काली है। यह साधारणत अच्छी हालत में है, केवल कागज के किनारो पर पानी से भीगने के दाग बने हुए है। नीचे के विवेचन मे इस प्रति का उल्लेख 'ज' नाम से किया जायगा।

इस लेख के साथ जो चित्र दिए जा रहे है, वे सभी मूल के फोटोग्राफ है, केवल 'ज' मूल के एक छपे हुए 'ब्लाक'[१] का बढाया हुआ फ़ोटोग्राफ़ है। इस के मूल का फोटोग्राफ इस के अधिकारियो के अनेक प्रयत्न करने पर भी देने से इन्कार कर दिया।

हस्तलेखो का मिलान करने के कुछ प्रसिद्ध नियम है, उन्हीं को ध्यान में रखते हुए नीचे इन नमूनो का हम विश्लेषण करेंगे।

हस्तलेखो के मिलान में पहली बात जो देखी जाती है वह है उन का 'साधारण स्वरूप' अथवा 'स्टाइल'। 'साधारणस्वरूप' अथवा 'स्टाइल' से तात्पर्य है उस मानसिक चित्र से जो कोई भी हस्तलेख उस के विश्लेषक के मस्तिष्क में निर्मित करता है। अस्तु, 'स्टाइल' की दृष्टि से जब हम व से ले कर ज तक के हस्तलेखो की तुलना करते है तो, यह ज्ञात होता है कि व तथा ज सब से अधिक नियमित है और एक ढग पर लिखे गए है। ध का स्थान इस दृष्टि से व तथा ज के बाद आता है, क्योंकि उन की अपेक्षा यह कम

[१] 'वीयन इन्टरनेशनल ओरियेन्टल काग्रेस', १८८६, पृ० २११

नियमित ढंग पर लिखा गया जान पडता है। स, द और य की 'स्टाइल' इन तीनो की अपेक्षा कम नियमित और कम एक-सी जँचती है, और फ तो इस दृष्टि से सब से पिछड़ा हुआ ज्ञात होता है।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और तरीका उन की 'गति' (मूवमेंट) की जाँच का है, अर्थात् यह देखने का है कि विभिन्न हस्तलेखो मे उन के लेखको ने अपेक्षाकृत द्रुत या मद 'गति' से लिखा है। इस दृष्टि से जब हम अ से ले कर ज तक के लखो को देखते है तो ज्ञात होता है कि अ सर्वश्रेष्ठ है, क्योकि अन्य सब की अपेक्षा इस म गतिविधि स्वच्छद और द्रुत ज्ञात होती है। फ, स, द और य क्रमत ठीक इस के पीछे आते है, क्योकि इन में 'गति' कुछ बाधित और अपेक्षाकृत मद है। ब और ज इस दृष्टि से सब से पीछे है, क्योकि वे सब से अधिक सावधानी और इसी लिए मद 'गति' मे लिखे ज्ञात होते है। ब और ज मे भी ब की गति ज की अपेक्षा मद ज्ञात होती है।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और तरीका उन मे व्यवहृत अक्षरो के 'खतो' और 'मोडो' ('स्ट्रोक्स' और 'कर्व्स') की जाँच करने का है। नमूनो को जब हम इस दृष्टि से देखते है तो जान पडता है कि ब और ज के 'खत' अन्य हस्तलेखो के खतो की अपेक्षा कही अधिक भरपूर है। और यह स्वाभाविक भी है, क्योकि ब तथा ज अन्य सभी नमूनो की अपेक्षा अधिक सावधानी से लिखे गए है। स द और य के खत ब और ज से बहुत कुछ मिलते जुलते है। इन के पीछे का स्थान, इस दृष्टि से, फ का है, और अ सभी से इस दृष्टि से गया-बीता जान पडता है।

इन नमूनो को 'खत' की दृष्टि से तुलना करते हुए यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये सभी लेख बहुत पुराने है, और इसी लिए खतो की स्याही पर समय का प्रभाव यथेष्ट पडा है। ये नमूने, अलग अलग, अभी तक जिस प्रकार सुरक्षित रक्खे गए होगे उस का भी प्रभाव कम न पडा होगा। फिर, वह कागज जिस पर अ लिखा गया है, असावधानी के साथ प्रयोग में आने के कारण हाशिए पर और सिरे पर कई जगह फट गया है, इस की मरम्मत जैसा अधिकतर होता है, पूरे पत्र को एक दूसरे कागज पर चिपका कर की गई है इस को चिपकाने मे कौन सी गोद का प्रयोग हुआ है यह भी अज्ञात है। इस लिए यह कहना कठिन है कि अ का 'खत' दूसरे कागज पर उसे चिपकाने के कारण कहा तक विकृत हुआ है।

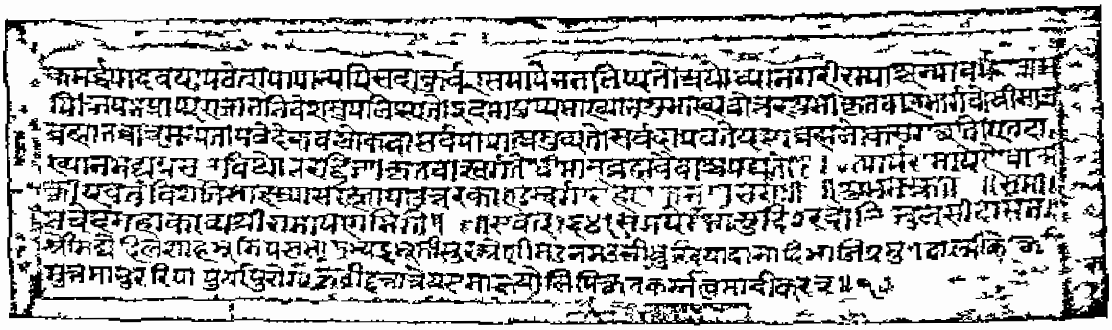
एक और भी तरीका हस्तलेखों के विश्लेषण का उन के अक्षरों के आकार (साइज़) की तुलना का है। यह अनुभव करने में कदाचित् देर न लगेगी कि इस बात में ब और ज सर्वश्रेष्ठ हैं। इन दोनों में अक्षरों का आकार अन्य नमूनों की अपेक्षा अधिक एक-सा है। इन के बाद स्थान स तथा द का है, जिन के अक्षरों का आकार ब ज की अपेक्षा कम एक-सा है। अ का इस दृष्टि से और भी नीचा स्थान है और य तथा फ विशेषतः फ का स्थान सभी से नीचा है। पुनः। यह ध्यान देने योग्य है कि अ ब तथा स के अक्षरों का आकार कुछ-कुछ वर्ग का सा है, और द ज य तथा फ के अक्षरों का आकार अपेक्षाकृत समकोण-समद्विबाहु-चतुर्भुज (रेक्टेंगल) का-सा है। य तथा फ में कुछ अक्षरों का आकार तो ऐसा है कि उन की लंबाई और चौड़ाई का अनुपात दो और एक का है।

हस्तलेखों के विश्लेषण का एक और भी अन्य तरीका अक्षरों के बीच का फ़ासला देखने का है। यह स्वतः स्पष्ट है कि अ के अक्षरों के बीच सब से अधिक अंतर रक्खा गया है, किंतु, साथ ही हमें यह न भूलना चाहिए कि अ में लिखने के लिए स्थान भी अपेक्षाकृत सब से अधिक था। अ के बाद स्थान स और द का आता है। इन में यह फ़ासला अ की अपेक्षा कम है। ब और ज में यह फ़ासिला और भी कम रक्खा गया है, और य तथा फ में तो बहुत ही कम है। य तथा फ में अक्षर एक दूसरे से जितने सटा सटा कर लिखे गए हैं उतने किसी भी अन्य नमूने में वे नहीं लिखे गए हैं।

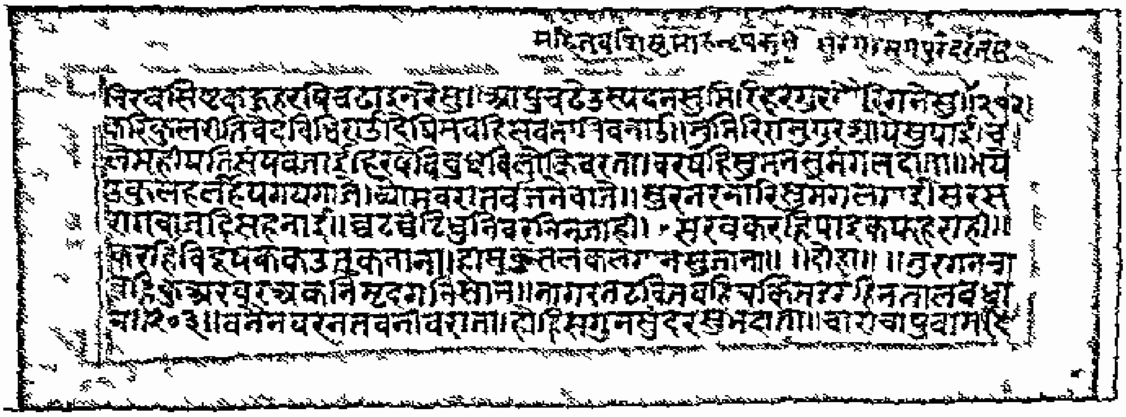
हस्तलेखों के विश्लेषण का एक और भी तरीका यह देखने का है कि उन की पंक्तियों की गति कागज़ के दूसरे किनारे तक पहुँचते पहुँचते कैसी रहती है। इस संबंध में अ विशेष ध्यान देने योग्य है। उस की पंक्तियाँ दूसरे छोर तक पहुँचते पहुँचते नीचे की तरफ़ कुछ झुक जाती हैं। किंतु, पत्र के फट जाने और पुनः एक दूसरे कागज़ पर उस के चिपकाए जाने, और चिपकाने में भी असावधानी होने के कारण—जो पंक्तियों के दाहिनी छोर पर अक्षरों और शब्दों की विकृति से अत्यंत स्पष्ट है—यह झुकाव संभवतः जितना होना चाहिए था उस से कुछ अधिक ज्ञात होता है। इस लिए यह झुकाव कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। और, अन्य नमूनों में तो यह झुकाव ज्ञात ही नहीं होता। फिर भी, ब और ज की पंक्तियों में जो सीधापन है वह भी महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि दोनों में पहली पंक्ति के लिए रेखा खींच लेने के बाद लिखना आरंभ किया गया है। और स द य तथा फ पूरा पत्र लिखे जाने पर लिखे गए हैं, इस लिए लेखक को लिखी हुई पंक्तियों से समानांतर पर लिखने में

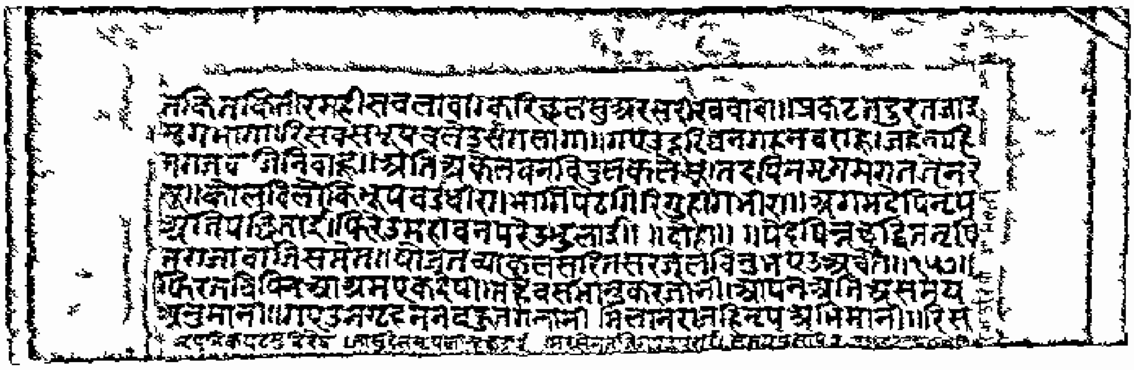


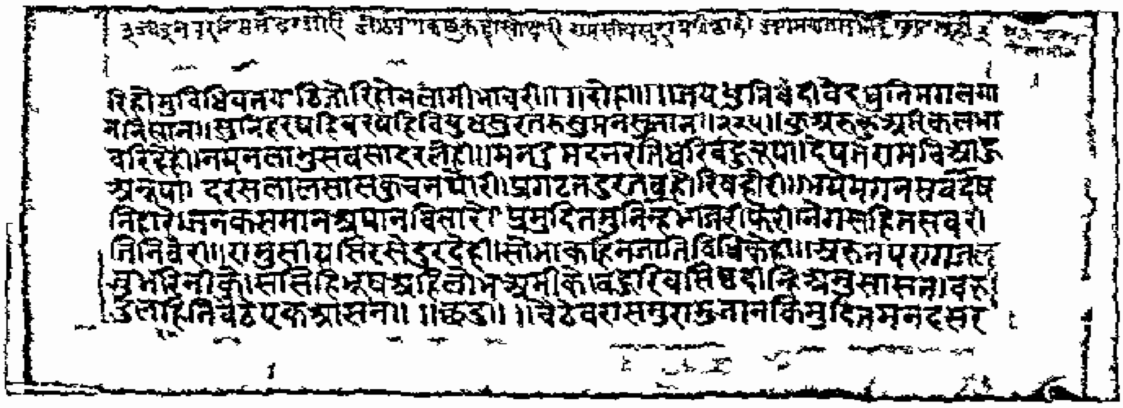
अ स० १६६६ वि० का पचायतनामा



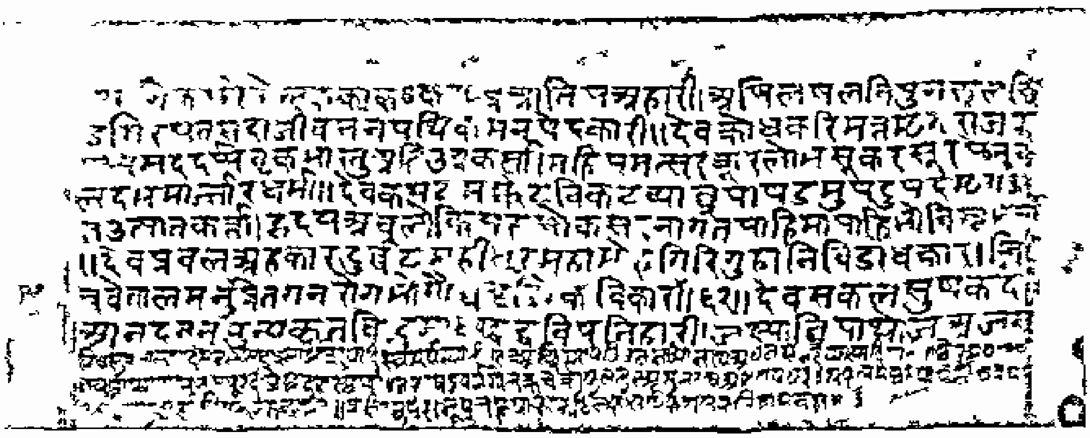
ब स० १६४१ वि० की लिखी हुई वाल्मीकि रामायण का अंतिम पृष्ठ



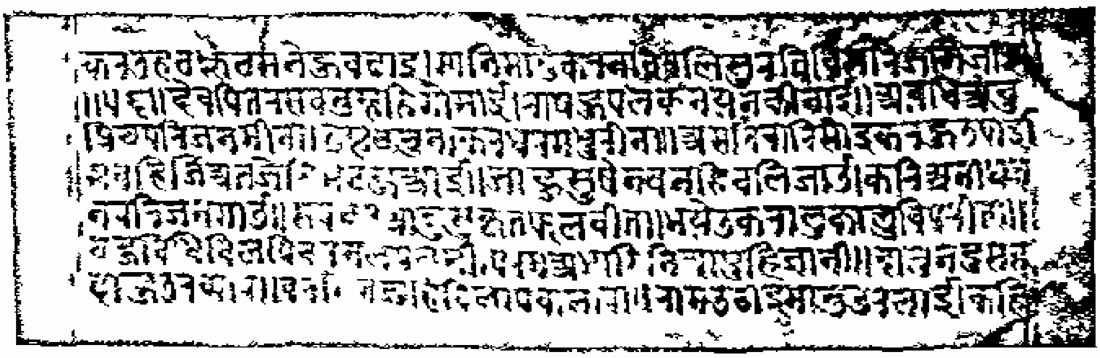




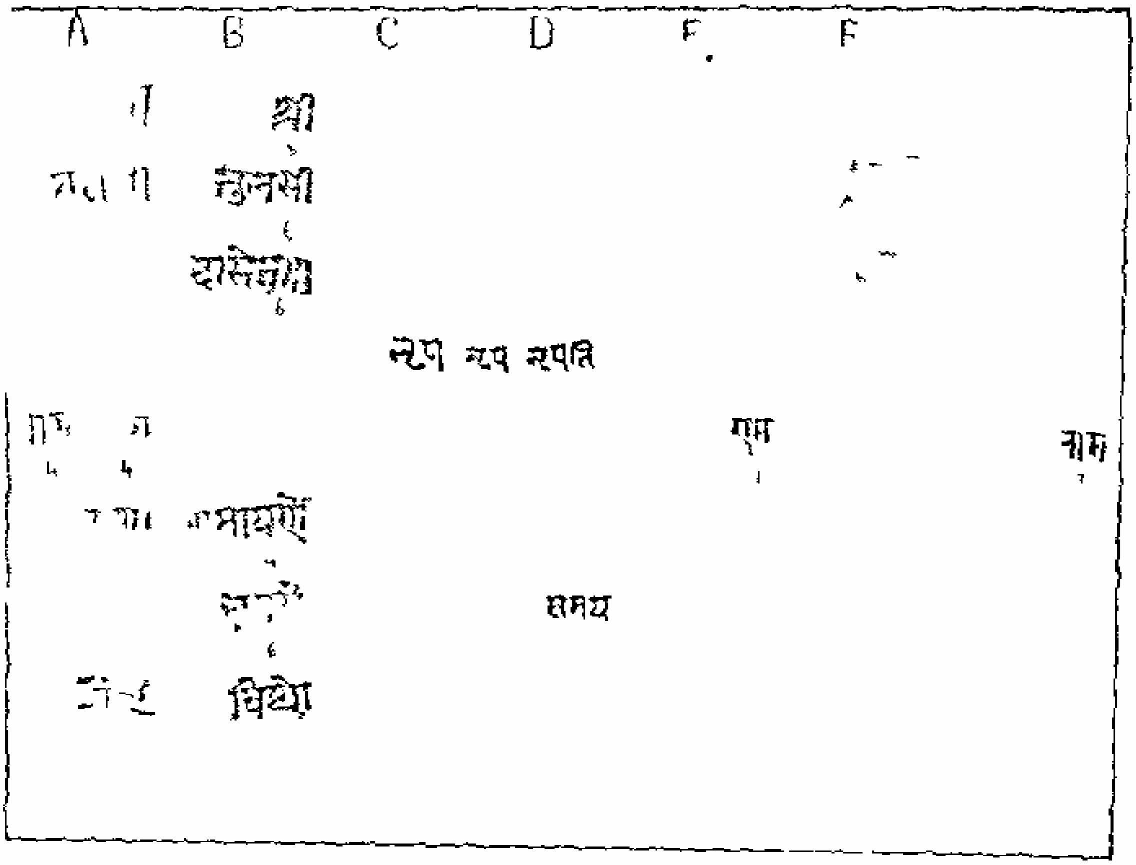
स द और य सं० १६६१ वि० के श्रावण कुंज अयोध्या के हस्तलिखित
रामचरितमानस के तीन पष्ठ



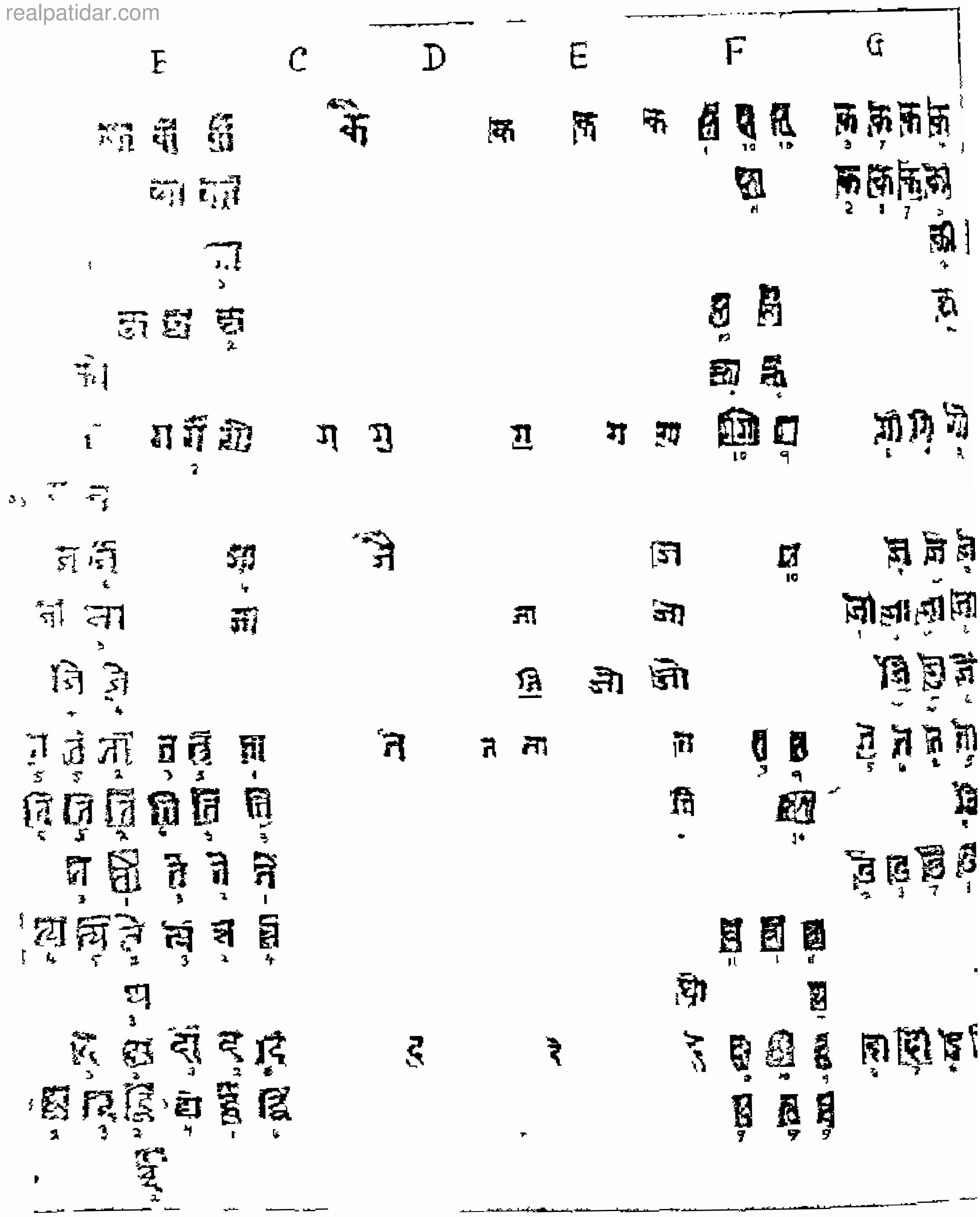
क सं० १६६६ की लिखी 'राम-गीतावली' की हस्तलिखित प्रति का एक पृष्ठ



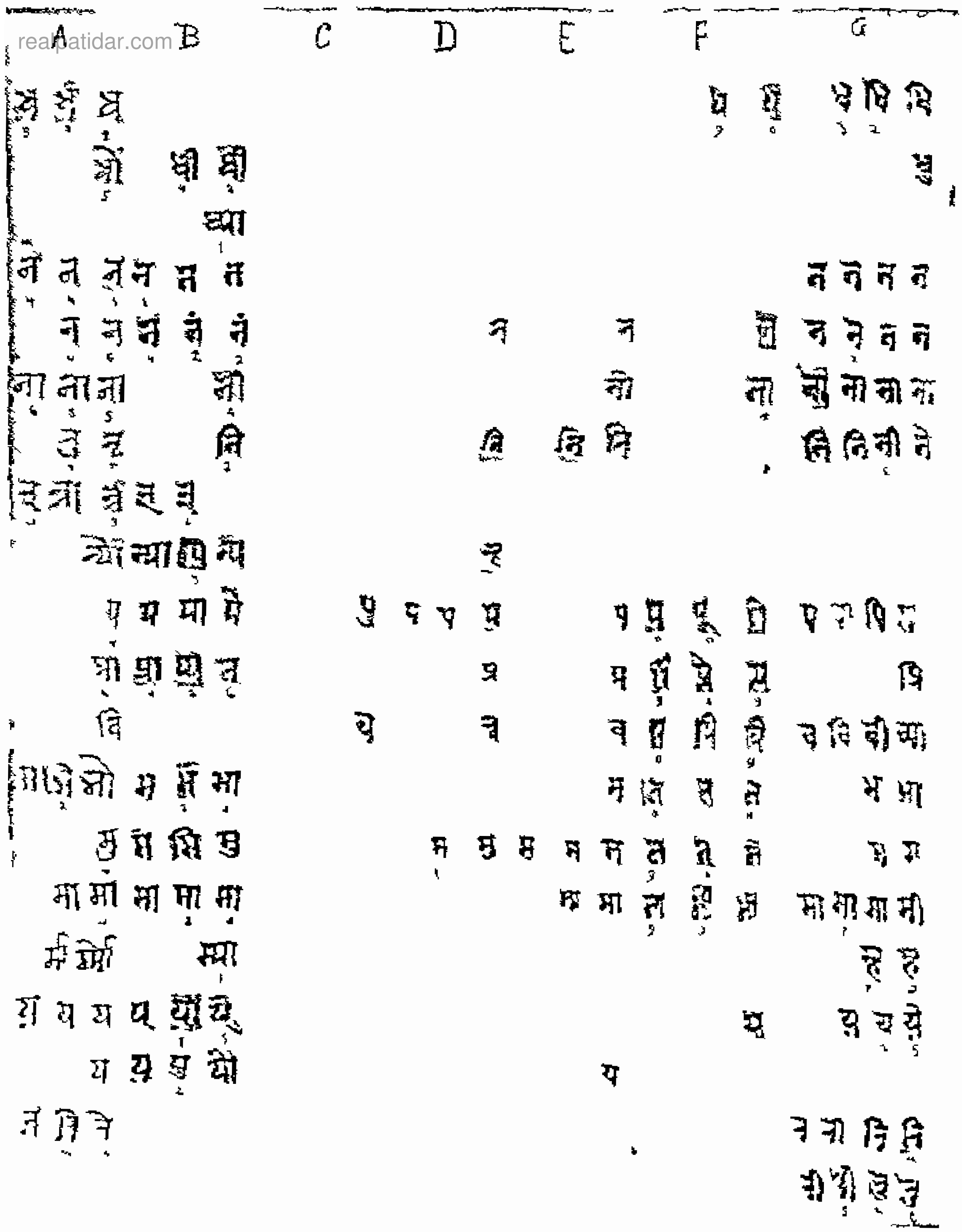
ज राजापुर के 'रामचरितमानस' की प्रति का एक पृष्ठ



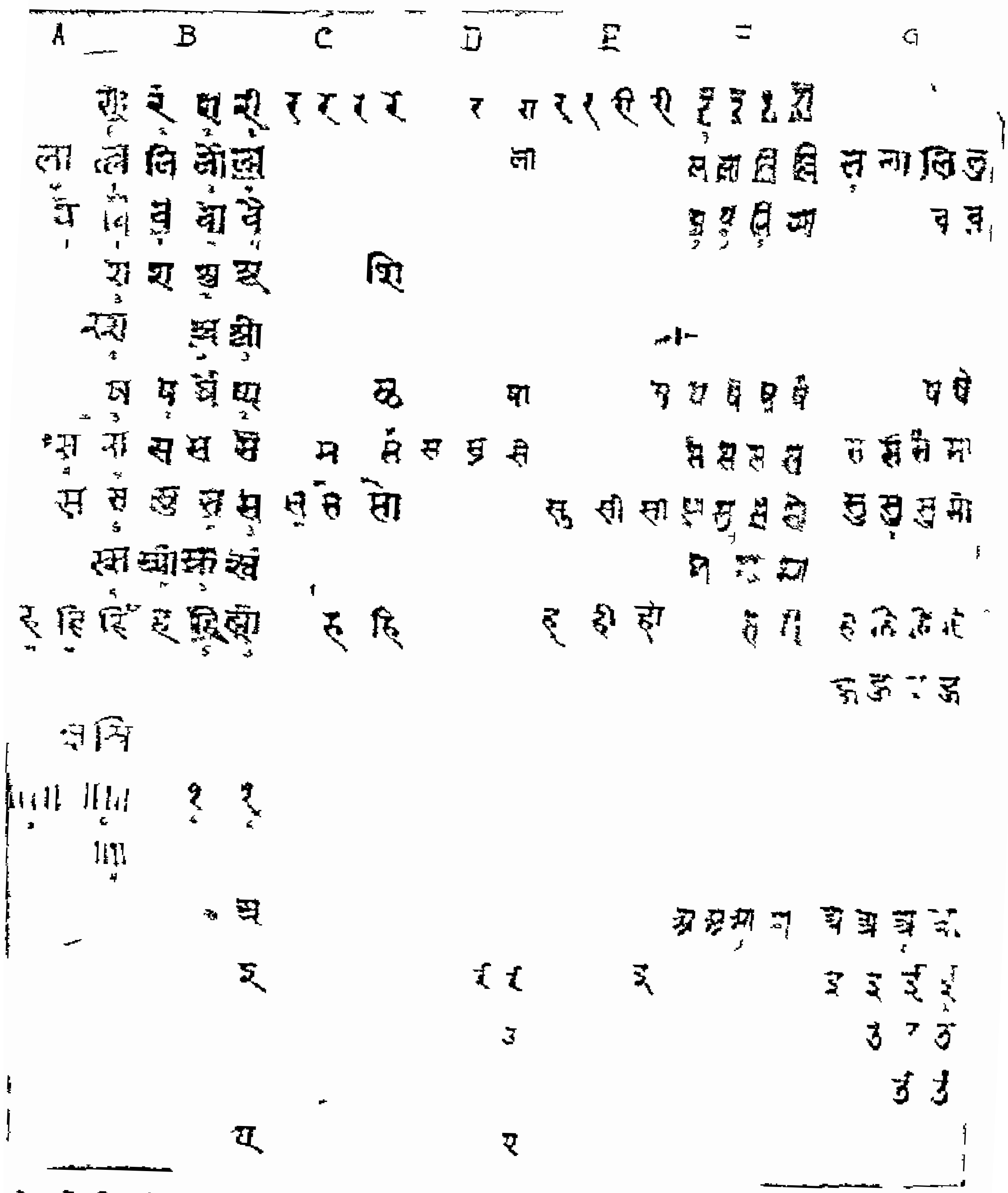
लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का क्रमागत 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' (१)



लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का क्रमागत 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' (२



लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का क्रमागत 'जक्स्टापोजड चार्ट' (३)



लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का क्रमागत 'जक्स्टापोज़ड चार्ट' (४)

सहायता अवश्य मिली होगी। यह ध्यान देने योग्य है कि अ के लेखक को इन मे से एक भी सुविधा नही थी।

एक और महत्त्वपूर्ण बात इस सबध मे ध्यान देने योग्य है; यदि अ के प्रत्येक अक्षर का सम्यक् निरीक्षण किया जाय तो यह विदित होगा कि प्रत्येक अक्षर अपने पूर्ववर्ती अक्षर की अपेक्षा कुछ नीचे से लिखा जाने लगता है, और इसी लिए पूरी पक्ति एक सीढ़ियो की पक्ति सी दिखाई पड़ती है। यह 'सीढ़ीनुमा' पंक्ति-विन्यास अन्य किसी नमूने मे नही मिलता।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और भी तरीका यह देखने का है कि लेखक शिरो-रेखा के साथ अक्षरो का शेष भाग साधारणत कितने अश के कोण पर रखता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा मे 'स्लेन्ट' कहते हैं। इस सबध मे यह प्रकट है कि अ तथा फ मे यह कोण समकोण है, अर्थात् यदि शिरोरेखा से समानातर पर कोई रेखा खीची जाय तो इन के अक्षर ९०° का कोण बनावेगे। अन्य नमूनो अर्थात् ब, स, द, य, तथा ज में यद्यपि यह 'स्लैंट' समकोण प्रतीत होता है, किंतु ध्यानपूर्वक देखने पर विदित होगा कि अनेक स्थलो पर वस्तुत वह पूरा समकोण नही है।

अत मे, हस्तलेखो के विश्लेषण का सब से अधिक प्रचलित और मान्य तरीका नमूनो में से ऐसे शब्दो और अक्षरो को काट-काट कर एकत्र आमने सामने चिपकाने का है, जिसे वैज्ञानिक भाषा मे 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' तैयार करना कहते हैं। इस के निर्माण से अक्षरो की बनावट का अतर आसानी से स्पष्ट हो जाता है। इन नमूनो का 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' देखने से यह भली भाँति विदित होगा कि अक्षरो की बनावट मे ये नमूने एक दूसरे से बहुत भिन्न है। यह अतर कुछ अक्षरो के सबध मे तो अत्यत स्पष्ट है, जैसे ज, ध, न, नृ, ब, भ, म, ल, व, स और ह लगभग प्रत्येक नमूने में प्रत्येक दूसरे नमूने से बनावट मे बहुत भिन्न हैं। यही बात इ, ई, उ तथा ओ की मात्राओ के विषय मे भी कही जा सकती है। न केवल इन मात्राओ की बनावट नमूनो में एक दूसरे से भिन्न है, बल्कि वर्णों के साथ जिस ढग से इन्हें जोड़ा गया है उस मे भी ध्यान देने योग्य अतर है।

इस प्रकार, हम देखते है कि ऊपर के सात नमूनो में से कोई दो भी ऐसे नही है जो कसौटी पर ठीक ठीक एक-से उतरते हो, फलत यह स्पष्ट है कि कोई दो भी एक ही व्यक्ति के हस्तलेख नही हो सकते—और सातो के एक ही व्यक्ति के हस्तलेख होने की बात ही दूर

है। और यदि हम सात में से किसी को किन्हीं तुलसीदास का लिखा हुआ मानें तो अन्य छ को उन्हीं तुलसीदास का लिखा हुआ नहीं माना जा सकता। और यह पहले ही देखा जा चुका है कि केवल ज अर्थात् 'पचायतनामा' ही के सबध में का साक्ष्य ऐसा है कि उसे महाकवि तुलसीदास का लिखा हुआ माना जाना चाहिए, इस लिए, 'पचायतनामा' के अतिरिक्त जो छ नमूने है उन्हे महाकवि तुलसीदास का हस्तलेख नहीं माना जा सकता।[1]

---

[1] इस लेख से सबद्ध चित्रो के ब्लाक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चासलर महोदय के अनुग्रह से प्राप्त हुए हैं। सपादक।

'असर' और उन की कविता

[लेखक—प्रोफेसर अमरनाथ झा]

खान बहादुर मिरज़ा जाफर अली खा, बी० ए० सिविल सर्विस के योग्य सदस्य और जिला अफसर के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर हैं। वह एक सुसस्कृत महानुभाव हैं, अग्रेज़ी साहित्य में उन की अच्छी गति हैं, और यूरोपीय कविता मे भी अभिरुचि रखते हैं। अपने पद के कर्तव्यो मे व्यस्त रहते हुए भी उन्हो ने अपना साहित्य-प्रेम जागृत रक्खा हैं और पुराने तथा नए साहित्य का अनुशीलन मात्र ही नही करते वरन् उर्दू साहित्य मे उन्हो ने मूल्यवान् रचनात्मक कार्य भी किया हैं। समकालीन आलोचको मे उन का महत्वपूर्ण स्थान है। उन के विवेचन तथा आलोचनाए उन के प्रौढ मनन, सुरुचि और निष्पक्षता का निदर्शन करते हैं। साहित्य मे क्या वस्तुत मूल्यवान् हैं और क्या मूल्य-विहीन, क्या चिरतन और क्या क्षणिक—इस की उन्हे अच्छी परख हैं। उन की गद्य-शैली सहज, सरल, होते हुए भी मनोरम है। उस मे बातचीत का सा प्रवाह मिलता है। उस मे हमे फारसी और अग्रेज़ी की प्रतिध्वनिया मिलेगी, फिर भी पाडित्य प्रदर्शन का प्रयास उस मे नही मिलेगा। यो वह विशेष बातचीत नही करते, परतु जब अनुकूल सग मिल गया तो उन की बातचीत बडी ही हृदयग्राही होती है। कारण यह हैं कि जो कुछ वह कहते है गभीर मनन और अनुशीलन का परिणाम होता है, वह अपना विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं और जो कुछ वह कहते हैं वह दूसरो के विचारो की पुनरुक्ति मात्र नही होती।

आलोचना के क्षेत्र में 'असर' का नाम बहुत समय तक लिया जायगा क्योकि उर्दू में अच्छी आलोचना की बहुत कमी है। साथ ही वह अपनी पीढी के प्रमुख कवियो मे भी गिने जायँगे। उन्हो ने गज़ले, रुबाइया, नज़्मे लिखी हैं, नाटको के तर्जुमे किए हैं, दाते को उर्दू पद्य में उतारा है और मर्सियो की रचना की हैं। इन विविध पद्यो की रचना

मे उन्हें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई हैं। उन्हो ने कुछ अच्छी लबी पद्य-रचनाए भी प्रस्तुत की है। उन की अपनी विशिष्ट शैली है, और वह किसी साहित्यिक-वर्ग के अनुयायी नही हैं। लखनऊ मे जन्म पा कर और वहा की परपरा से निकट सपर्क रखते हुए भी वह 'मीर' तथा दिल्ली के अन्य कवियो की शैली के निकट है। उन की रचना मे दिल्ली के कवियो जैसी सादगी और लखनऊ शैली के कवियो का विन्यास-परिपाक मिलेगा। दोनो ही शैलियो के गुण उन की कविता में मिलते है और यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उन के प्रिय कवि 'मीर' है। वास्तव मे 'मीर', 'आतश' और 'गालिब' तीन महा-कवियो ने उन पर गहरा प्रभाव डाला, जान पड़ता है।

मिरज़ा जाफर अली खा का जन्म लखनऊ मे, जूलाई सन् १८८५ मे हुआ था। उन्हो ने जुबली हाई स्कूल में शिक्षा पाई। सन् १९०२ में वहा से निकल कर यह कैनिंग कालिज मे भरती हुए। डाक्टर वाइट की परपरा वहा इस समय भी काम कर रही थी। सन् १९०६ में इन्हो ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा पास की। सन् १९०९ में वह प्रातीय सिविल सर्विस मे प्रविष्ट हुए, और आज वह उसी सर्विस के एक ऊँचे पदाधिकारी हैं। जिले के प्रबध-कार्यो, फौजदारी के मुकदमो और वकीलो की बहसो के सुनने मे व्यस्त रहते हुए भी उन्हो ने साहित्य और कविता में जो अनुराग बनाए रक्खा है वह प्रशसनीय है। उन का कविता-प्रेम केवल क्षणिक समय-यापन के निमित्त नही है वरन् कविता का अभ्यास उन्हो ने कला के रूप में किया है। उन्हो ने आमोद प्रमोद त्याग कर इस दिशा में परिश्रम किया है। पुराने उस्तादो की कृतियो का अच्छा मनन किया है और उन का ज्ञान बहुत विस्तृत है। कविता के क्षत्र में मिरज़ा जाफर अली खा ने कौशल प्राप्त करने का प्रयत्न किया है और एक कला-कार की भाँति वह अपनी रचनाओ के प्रति उचित गर्व रखते है। सुदर वाक्य-विन्यास, नए प्रयोगो के लिए उत्साह, छदो के चुनाव मे सुरुचि, और अपनी कविता को रोचक बनाने का उन का सतत प्रयास यह सिद्ध करते है कि वह एक उच्च कोटि के कलाकार हैं। उन की कविता में हमे युवकोचित उल्लास और सजावट मिलती है, परतु वह मनन और पवित्रता से भी पूर्ण हैं।

मिरज़ा साहब की प्रकाशित कृतिया अधिक नही है। मेरा अनुमान है कि दो पुस्तको से अधिक उन्हो ने नही प्रकाशित किया है। उन का दीवान 'असरिस्तान' सन् १९२४

में प्रकाशित हुआ था और उस पर एक विस्तृत भूमिका स्वर्गीय मौलाना अज़ीज़ ने लिखी थी। उन की दूसरी कृति 'लेडी अज्योर' नामक नाटक का अनुवाद है और यह भी सन् १९३० में निकल चुका है। मैं उन की किसी अन्य कृति से परिचित नहीं हूँ। परन्तु मैं उन की कविताएं बराबर पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ता रहा हूं और मुझे कुछ कविताओं को मुशायरों में सुनने का भी अवसर प्राप्त हुआ है। उन की कविताओं के एक नए संग्रह की बड़ी आवश्यकता है और मैं आशा करता हूं कि इस के लिए लंबी प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी। उन की कविता के संबंध में निश्चित मत तो उसी समय बनाया जा सकता है जब कि उन की समस्त रचनाएं पढ़ ली जायें, परन्तु जो कुछ प्राप्त हैं उस के आधार पर भी विचार करना अनुपयुक्त न होगा। अभी कवि वृद्ध नहीं हुआ है और उस के सामने रचनात्मक कार्य के लिए अनेक वर्ष हैं। समग्र रूप से उस की रचनाओं पर विचार संभव नहीं क्योंकि उस का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है।

मैं ने बताया है कि मिरज़ा साहब के प्रमुख प्रभावकों में कवि 'मीर' हैं। यह बात किंचित् आश्चर्य-जनक है। इस काल में भी 'असर' भाषा की वह सादगी और सीधापन प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं, जिन गुणों के लिए 'मीर' विशेष रूप से विख्यात हैं। यह देख कर भी बहुत संतोष होता है कि वह बहुत से हिंदी शब्दों और पर्याय का निस्संकोच प्रयोग करते हैं। मदभरी आँखें, रोग, पापी, रतनारी, उदासी, अमृत, ध्यान, चितवन, मेल, जोगी, जटा, आसन, रसिया, आदि कितने ही शब्द हैं जिन के प्रयोग बराबर हुए हैं। यह बड़ी अच्छी प्रवृत्ति के सूचक हैं और यदि अन्य उर्दू कवि भी इस से उदाहरण ग्रहण करें तो बहुत ही अच्छा हो। भाषा की सादगी और सीधेपन के लिए 'असर' की प्रशंसा होनी चाहिए। समालोचकों के यहां यह एक प्रचलित कथन है कि शैली की सहजता और स्वभावोक्ति के गुण बड़े कलाकारों में ही मिलते हैं और कठिन, अप्रचलित शब्द और आडंबरपूर्ण शब्द-विन्यास नौसिखियों की चीज़ें हैं —

(१) दिल इश्क़ की मै से छलक रहा है;
इक फूल है जो महक रहा है।
आँखें कब की बरस चुकी हैं;
कौंदा अब तक लपक रहा है।

अब आए बहार या न आए,
आँखों से लहू टपक रहा है।
किस ने वहशिए असर को छेड़ा ?
दीवार से सर पटक रहा है।

(२) न सुनना था जिस को आज उस को—
माजराए आलम सुना बैठे।
ध्यान किस से लगा हुआ है 'असर' ?
सोचते रहते हो यह क्या बैठे ?

(३) कोई दिल पर हाथ रख कर उठ गया,
हाथ अब दिल से उठाऊँ किस तरह ?
मेरे कहने में नहीं है दिल 'असर'
इस को समझाऊँ बुझाऊ किस तरह ?

(४) इधर देख लेना, उधर देख लेना,
फिर उन की तरफ इक नज़र देख लेना।
वह मेरा न कहने में कह जाना सब कुछ,
वह उन का अचानक इधर देख लेना।

(५) जब सुना, यों ही सुना, तुम ने कि गोया न सुना,
फिर गलत क्या है कभी हाल हमारा न सुना ?

(६) फेरता हू जो उधर से दिल को,
दिल उधर और चला जाता है।

(७) लहराता और लहरा गाता,
झरने का वह रसिया पानी।
मटका थिरका और गत नाचा,
अलबेला मतवाला पानी।
पेट को पकडे मारे हँसी के,
बैठा, उट्ठा, लोटा पानी।

डाली, डाली, पाती, पाती,
खूब ही झूला झूला पाती।

प्रकृति-वर्णन और दृश्यो का चित्रण कई उर्दू कवियो की रचनाओ मे मिलता हैं। परन्तु इस प्रकार का विषय-चित्रण गज़ल छोड कर अन्य शैली के पद्यो मे हुआ है। गज़ल का विषय मुख्यतया प्रेम माना जाता हैं जो उचित ही हैं। परन्तु फारसी—और उर्दू—परपरा ने प्रकृति से इतने सकेत और प्रतिमाए ग्रहण कर लिए है कि गजल मे प्रकृति-चित्रण का होना परपरा पर कुछ विशेष वडा आघात नही प्रतीत होता। सितारो की स्थिरता तथा अनुद्विग्नता, पतग की रति, बुलबुल का हृदय टूटना, बिजली का कहर, बहार की हवा द्वारा नवीन प्राण-सचार—यह तथा अन्य प्राकृतिक घटनाए प्रेम-काव्य मे बराबर दुहराई जाती रही हैं। परन्तु वह केवल उदाहरण के रूप मे, और उपदेश के अभिप्राय से वर्णित हुई है। प्रकृति के प्रति सहज उल्लास, उस के दर्शन मात्र से सतोष, स्वय प्रकृति के लिए उत्साह—यह गज़ल मे मिलना दुस्तर हैं। 'असर' अपनी गज़लो में और गजलो के द्वारा प्रकृति-चित्रण मे सफल हुए है। हमे बार बार प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण मिलेगे।

(१) भरी बरसात और यह घुप अँधेरा!
अँधेरा आप सर टकरा रहा हैं।
(२) {सुहागिन रात का ढलता हैं काजल।}
(३) वह जो न आए, बादल छाए,
गरजे, बरसे, खुल भी गए;
इस के सिवा हम हिज्र के मारे,
क्या जानें बरसातों को?
(४) सुन के पयाम सबा का, गूंचे लरज लरज गए।
जब हो यह हाल नाज़ुकी, हाय कोई लगाए क्यो?
(५) नाखुदा ने जब सुनाया मिज़दए साहिल मुझे।
बढ के हिम्मत ने कहा आगोशे तूफा चाहिए।

(६) है शाम का वक़्त दम बखुद है साहिल;
कुहसार है छाया, है सकूते कामिल।
फितरत की ख़ामोशियो में गोयायी है;
महफिल को है इतिज़ार-ए-मीरे महफिल।

(७) परदे में रात के मुसकराती आई;
आग़ोश में गुल के लहलहाती आई।
अँगड़ाइया लेती हुई जागी हर शाख़;
अलबेली बहार गुनगुनाती आई।

(८) हौल फिर ऐसी दिल में समाई,
गिरता पड़ता भागा पानी।
भूल के पीछे मुड के न देखा,
इस दरजा था सहमा पानी।
रफ़्ता रफ़्ता फिर था खिलँदरा,
नद्दी से छीटे खेला पानी।
सूझी समंदर से जो ठठोल,
ऐसा डूबा न उभरा पानी।

'असर' की कविता के विचारो पर ध्यान देनें से पूर्व उन की सुदर उपमाओं का रसास्वादन कदाचित् अनुपयुक्त न होगा।

(१) हसरतें दिल से यूं चलीं जैसे;
ग़ोल उदासी फकीरो का जाए।

(२) हसरते अर्जे तमन्ना में जो लज्ज़त है, न कुछ;
साज़ में इतने भरे नग़में की ख़ामोश हुआ।

(३) यह शौक दीद में आँखो का रंग है जैसे;
अचानक आईने में आफ़्ताब देख लिया।

(४) मस्त आँखो पर घनी पलको का साया यूं था;
कि हो मैखाने पर घनघोर घटा छाई हुई।

(५) झपकी जरा जो आँख, जवानी गुज़र गई;
बदली की छाँव थी, इधर आई उधर गई।

इन उपमाओ की मौलिकता, नवीनता और उपयुक्तता प्रशसनीय है।

'असर' की कविता पढने वाले के लिए यह स्वाभाविक है कि वह उन पक्तियो पर ध्यान दे जिन मे शराब और पाप के परिचित विषय लिए गए हैं। यत्र-तत्र ऐसे वर्णन मिलते है जिन मे कवि ने कवि-धर्म की ओर सकेत किया है। फिर जीवन और उस की समस्याओ तथा मृत्यु के सबध में विचार मिलेंगे। उन के प्रेम-सबधी पद्यो का अतिम प्रभाव अबाध रूप से स्वस्थकर है। उन के दार्शनिक विचारो के विषय मे भी निवेदन करूँगा।

शायर हूँ तो इस तरह तमाशाई हो,
फितरत तेरे अदाज़ की शैदाई हो।
आयात-व-इशरत का मर्कज़ हो दिल;
हर शै में नज़र, नज़र में गोयाई हो।

एक 'मक्ता' यह है—

जामे खाली को छलकते कभी देखा है 'असर'?
शेर में जोश कहा, दिल में अगर जोश नहीं?

विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि वह सचाई, भावना की यथार्थता, को इतना महत्व देते है। उन की कविता मे कही बनावट या स्वाँग नही। ऊँची ध्वनि के शब्दो मात्र से कविता नही बनती, उस मे आत्मा का उद्गार होने की भी आवश्यकता है। सच्ची भावना से सहज उद्गार भी प्राप्त होता है। कवि की भावना तत्काल आनद या सुख मे डूबी हो चाहे वेदना और उदासी में, उस की सच्चता, उस का खरापन स्पष्ट है। वह केवल अपने मस्तिष्क से काव्य-रचना नहीं करता, इस कार्य में उस का हृदय, उस की सपूर्ण आत्मा सहयोग देती है। अपनी कला में तन्मयता 'असर' की कविता का एक विशेष गुण है।

'वायज़' या उपदेशक ससार की अनित्यता की ओर सकेत करता है, ऐसे देश का वर्णन करता है जहा का गुलाब मुरझाता नही, क़यामत के दिन का चित्र खींचता है

जब कि पापियो का चीत्कार मात्र सुनाई देगा और न्यायकर्ता उन पर तीव्र दृष्टि डालता होगा। परतु यौवन का प्रेम इन की चिंता नही करता। शराब का एक जाम सभी कातरता और भय को दूर करता है, और स्वर्ग के स्वप्नो से अच्छा है। पापी और पुण्यात्मा समान रूप से ईश्वर के प्राणी है और पाप भी ईश्वर की सृष्टि के भीतर की ही वस्तु है।

(१) जाते कहा खुदाई के बाहर गुनाहगार?
तेरी ज़मीं न थी कि तेरा आस्मां न था?
(२) ज़ाहिद! ज़ाहिद! ऐसे जन्नत मालूम?
क्या मुझ को नहीं रगे तबीयत मालूम?
लुत्फ मयो शाहिद से जो बे बह्रा हो,
मुँह उस को लगाए हूरें, हज़रत, मालूम!

वे लोग जो पृथ्वी के सुखो का त्याग करते है, वह आने वाले सुख की लालसा से आकर्षित रहते हैं। जब कि हमारे चारो ओर इतना आनद, सूर्य का प्रकाश और सगीत फैले हुए है, तब हमारे पक्ष मे यह कितनी बडी कृतघ्नता होगी कि इन सब को छोड कर हम किन्ही नीरस, प्रेरणा-विहीन उपदेशो को ज्ञान-पट पर, बादल के अधकार की छाया डालने दें!

(१) हमीं महरूम हैं इक जाम से अल्लाह! अल्लाह!
दौर पर दौर तेरी बज़्म २ में चलते देखा।
(२) मेरी तौबा से तौबा है, पिला साकी, पिला साकी!
करूँगा खुम के खुम खाली दमे मैखाना आराई।
(३) शब की बेदारिया, अरे तौबा!
छुप के मैख्वारिया, अरे तौबा!
दौर उस नरगिसे खुमारी का,
अपनी सरशारिया अरे तौबा!
(४) तेरे होठो का तबस्सुम, तेरी आँखों का खुमार।
उन को भी साकी शरीके जाम होना चाहिए।

हिंदी कविता की प्रगति

[लेखक—श्रीयुत शांतिप्रिय द्विवेदी]

(१)

उनीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध— हरिश्चद्र-युग ।

हमारे साहित्य म हरिश्चद्र-युग रीति-काल का अतिम युग है। साथ ही वर्तमान हिंदी साहित्य के पृष्ठभाग का प्रथम स्तर भी वही है। वह प्राचीन और नवीन के समन्वय का युग है। वह हमारे साहित्य का पूर्ण प्रभात नही बल्कि उष काल है जहा रीति-युग की साहित्यिक सध्या की अतिम परिणति और नवीन युग के राष्ट्रीय प्रभात की पूर्व-सूचना है। हरिश्चद्र-युग न रीति-काल की काव्य-कला को पूर्वजो के थाती-स्वरूप अपनाया साथ ही नवीन सपत्ति के अर्जन-स्वरूप उस न उनीसवी शताब्दी की सामाजिक और राजनीतिक चेतना से साहित्य के लिए नए उपकरण भी लिए। चूकि नवीनता के लिए वह प्रथम प्रयास था इस लिए उस युग म साहित्य के नए उपकरण विशेष नही पुरान उपकरण ही अधिक हैं—भारतेन्दु तथा उन के युग के अन्यान्य साहित्यिको की गद्य-कृतियो म।

राजनीतिक चेतना न सभा-सोसाइटियो को जन्म दे कर गद्य को प्रधान बना दिया था फलत हरिश्चद्र-युग न भी गद्य को अपना लिया। वह साहित्यिक रूढ़िवादी होन के कारण कविता म परिवर्तन करन को विशेष तैयार न था किंतु एक अतिथि के रूप म गद्य को अपना लेन म उसे सकोच न हुआ। साहित्य म बंकिम का उदाहरण उस के सामन था अतएव नवीन पुकार सुनान के लिए उसे भी कुछ सबल मिल गया। अपन काव्य म वह सतुष्ट था निदान नवीन कला के लिए उस न नाटको और कहानियो के रूप म कथा साहित्य को ही चुन लिया।

इस के बाद बीसवी शताब्दी का प्रारभ होता है यहा साहित्य म प्राचीन और नवीन की सधि टूटन-सी लगती है—देश म केवल नवीन युग का प्रभात चमकन लगता

है। साहित्य मे, समाज मे, देश मे, केवल नवीनता ही नवीनता की पुकार गूँज उठती है, प्राचीनता के प्रति असतोष हो जाता है। फलत रीति-काल की कविता और ब्रजभाषा दोनो को विदाई दी जाने लगी। किंतु ब्रजभाषा के चले जाने पर हिंदी-कविता सूनी पड रही थी, नवयुवको का भावुक हृदय काव्य-विहीन कैसे रहता? इधर गद्य मे खडीबोली सशक्त हो रही थी, नवयुवको ने कविता मे उसे ही स्थान दे दिया। यही द्विवेदी-युग है, वर्तमान खडीबोली की कविता उसी की देन है।

मध्यकाल के इतिहास की समाप्ति के साथ ब्रजभाषा की कविता के पतझड में खडीबोली का जो नवीन वसत पल्लवित हुआ, उस ने शृगार के शयन-कक्ष की ओर नहीं देखा। वह नवीन अभिमन्यु सीधे राष्ट्रीय सग्राम मे चला गया। जाने से पूर्व उस ने अपनी सस्कृति के अनुसार प्रभु-स्तवन किया, पूर्वजो के आदर्शों का स्वस्ति-वचन श्रवण किया, और इस बार उस ने अग्निबाण ले कर नहीं, मानव-परित्राण का व्रत ले कर राष्ट्र तथा साहित्य में प्रवेश किया।

हा तो, खडीबोली की कविता पहले भक्ति और राष्ट्रीयता को ले कर उद्गत हुई। हमारे काव्य मे पहले सूर और तुलसी जगे, फिर तिलक, गोखले और गाधी भी। भक्ति और राष्ट्रीयता ने शृगार-मलिन नेत्रो को स्वच्छ करने मे 'बोरिक-एसिड' का काम किया। नवीन दृष्टि प्राप्त होने पर हमारे समाज ने अपने आदर्शों के अनुसार अपना नवीन आत्म-विस्तार किया। भक्ति और राष्ट्रीयता की दिशा मे हमारे सार्वजनिक अभाव बोलते रहे, नवीन आत्म विस्तार में हमारे भाव भी बोलने लगे। काव्य का कठ भक्ति और राष्ट्रीयता तक ही सीमित न रह कर दैनिक जीवन के प्रसार की भाँति मुक्त हो गया। गुप्त जी के उत्तरकालीन काव्य तथा छायावाद की रचनाए इसी नवोत्कर्ष के उदाहरण हैं।

द्विवेदी-युग मे भी कुछ वयोवृद्ध कवि हरिश्चद्र-युग के अवशिष्ट प्रतिनिधि-स्वरूप रहे, जिन में उपाध्याय जी, रत्नाकर जी, और श्रीधर पाठक जी गण्यमान्य है। उपाध्याय जी और पाठक जी हरिश्चद्र-युग और द्विवेदी-युग के बीच के हैं, गुप्त जी द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के बीच के। उपाध्याय जी ने 'प्रिय-प्रवास' द्वारा खडीबोली का साथ दिया। 'रस-कलश' द्वारा ब्रजभाषा का। रत्नाकर जी आजन्म ब्रजभाषा के हामी रहे। अपने अतिम साहित्यिक-जीवन में उन्हो ने खडीबोली के भी दो चार पद्य लिखे, किंतु कौतूहल-

वश। पाठक जी ने अपनी काव्य-कृतियो द्वारा व्रजभाषा और खडीबोली दोनो का एक तत्कालीन परिधि की सुरुचि मे साथ दिया।

(२)

सर्वश्री स्वर्गीय श्रीधर पाठक (अयोध्यासिंह उपाध्याय मैथिलीशरण गुप्त) गोपाल शरण सिंह (जयशकर प्रसाद' माखनलाल-चतुर्वेदी, एक भारतीय आत्मा रामनरेश त्रिपाठी, (सियारामशरण गुप्त) मुकुटधर पाडेय द्विवेदी-युग के आदरणीय कवि है। इस युग मे दो प्रवृत्तियो का दर्शन मिलता है—एक मे पौराणिक सस्कृति और मध्यकालीन काव्य-कला का विकासोन्मुख प्रकाशन है दूसरी मे केवल हार्दिक भावो का नवीन कला प्रस्फुटन। पहली के अतर्गत पाठक जी उपाध्याय जी गुप्त जी और ठाकुर साहब है दूसरी के अतर्गत प्रसाद जी चतुर्वेदी जी सियाराम जी त्रिपाठी जी और मुकुटधर। इन दोनो प्रवृत्तियो में कुछ साम्य भी है—प्रथम विभाग के सभी कवियो ने स्वतत्र हार्दिक भावो को भी अपनाया द्वितीय विभाग के कवियो ने यत्किंचित सामयिक राष्ट्रीय भावो को भी, विशेषत चतुर्वेदी जी, त्रिपाठी जी सियाराम जी ने। कारण काव्य प्रेरक गुप्त जी है। कविता और राष्ट्रीयता दोनो के प्रतिनिधित्व का श्रेय वर्तमान खडीबोली मे उन्ही को है। प्रथम विभाग के कवियो मे यदि गुप्त जी अग्रणी है तो द्वितीय विभाग मे प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी। गुप्त जी ने खडीबोली की स्वाभाविकता को जगाया प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी ने उस की भावुकता को। प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी के बाद जो नवयुवक भावुक कवि उत्पन्न हुए, उन्हो ने भी खडीबोला का अनुराग गुप्त जी की रचनाओ से पाया क्योकि प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी की भावुकता को धरातल पर आने के लिए प्रथम प्रथम गुप्त जी का काव्य-साहचर्य आवश्यक था और सच तो यह कि खडीबोली की कविता का व्याकरण उन्ही की रचनाओ मे था बिना उन्हे जाने कोई आगे जा ही नही सकता था।

(३)

द्विवेदी-युग मे खडीबोली की कविता के सीनियर कवि पाठक जी उपाध्याय जी और गुप्त जी है।

वर्तमान हिंदी-कविता में नवीनता का श्रीगणेश करने का प्रयत्न पाठक जी ने किया अग्रेजी के साहचर्य से, गुप्त जी ने बगला के साहचर्य से। किंतु पाठक जी ने

स्वतन्त्र रचनाएं उतनी नहीं दीं जितनी कि गोल्डस्मिथ की अनूदित रचनाएं। गुप्त जी ने स्वतंत्र रचनाएं भी अधिक दीं, और माइकेल के प्रचुर काव्यानुवाद भी। पाठक जी खड़ीबोली को निखार न सके, ब्रजभाषा के मोह ने उन की खड़ीबोली को एक मिश्रित भाषा का रूप दे दिया। उन का ब्रजभाषा-मोह देख कर ज्ञात होता है कि नवीनता के नाम पर वे ब्रजभाषा में अंग्रेजी के क्लासिकल स्कूल की कला के एक प्रतिनिधि थे। अंग्रेजी शासन आज की अपेक्षा यदि मध्ययुग में ही आ गया होता तो ब्रजभाषा के काव्य का जो अप-टु-डेट रूप होता, वही पाठक जी की कविता में है।

गुप्त जी ने खड़ीबोली को खड़ीबोली के रूप में ही साजा। उन्हों ने खड़ीबोली को विशुद्ध, सुंदर और प्रवाहपूर्ण बनाया। गुप्त जी ने खड़ीबोली को ओज दिया, ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने माधुर्य। गुप्त जी ने ओज के साथ ही भावों और छंदों को भी यथासंभव विविधता और विपुलता दी। ठाकुर साहब ने मध्य-काल की मर्यादा के भीतर एक नवीनता 'माधवी' में उत्पन्न की। 'माधवी' की कला इस अर्थ में नवीन है कि उस में खड़ीबोली की भाषा और खड़ीबोली के अनुरूप एक कोमल भावना है, किंतु छंद (कवित्त और सवैया) तथा आलंबन अधिकांशतः मध्यकालीन हैं। ब्रजभाषा के ये परिचित छंद और आलंबन खड़ीबोली में भी कितना सगठित हो सकते हैं, इस का निदर्शन पहले-पहल 'माधवी' द्वारा ही हुआ, यह मानो रत्नाकर जी के लिए खड़ीबोली का निमन्त्रण था। कतिपय ब्रजभाषा प्रेमी किंतु खड़ीबोली के नवयुवक कवियों द्वारा 'माधवी' का अनुसरण भी हुआ। गुप्त जी द्वारा खड़ीबोली के मँज जाने पर ठाकुर साहब का सर्वाधिक सराहनीय प्रयत्न भाषा को सरल-कोमल बनाने का रहा। वृंदावन का एक मध्यकालीन भक्त बीसवीं शताब्दी के द्वार पर आकर जब अपना कंठ प्रस्फुटित करेगा तो उस की भाषा वह होगी जो ठाकुर साहब की खड़ीबोली में है।

द्विवेदी-युग में आवश्यकता इस बात की भी थी कि जिस प्रकार ओज को लेकर गुप्त जी ने काव्य-कला के अंतरंग और बहिरंग को नवीनता और विस्तीर्णता दी, उसी प्रकार माधुर्य को लेकर भी कोई कवि अग्रसर होता। इस आवश्यकता की पूर्ति आगे चल कर छायावाद-स्कूल ने की। छायावाद स्कूल में पंत जी उसी प्रकार लोकप्रिय हुए, जिस प्रकार द्विवेदी-युग में गुप्त जी। इस पर्वतीय कवि ने ही खड़ीबोली में पहाड़ों की स्वर्गिक

सुषमा भर दी, अपने हृदय के मधु से उसे मधुमय कर दिया, खड़ीबोली में रूप-रस-गंध भर दिया। यह कहने को नहीं रहा कि खड़ीबोली तो खुरदुरी है।

(४)

उपाध्याय जी का काव्यादर्श चिर प्राचीन रहा। हरिश्चंद्र-युग में, गद्य में, जो जाग्रत सामाजिक आदर्श तथा काव्य में ब्रजभाषा का मध्यकालीन माधुर्य भाव था, उन्हीं दोनों की एकता से उन्हों ने 'प्रिय प्रवास' की रचना की। उपाध्याय जी मुख्यतः भावना के कवि हैं, आँसुओं की भाँति सजल-कोमल। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी का अंत और बीसवीं शताब्दी का प्रारंभ चिंतना से हुआ। उपाध्याय जी जिस कोमल-कांत भावना के कवि हो कर चले, उस समय उस माधुर्य-भाव के लिए खड़ीबोली की भाषा मँज न सकी थी, यही कारण है कि 'प्रिय-प्रवास' की भाषा और श्रीधर पाठक की रचनाओं की भाषा में खड़ीबोली की पूर्ण स्वच्छता नहीं है। चिंतना के लिए खड़ीबोली गद्य में मँज चली थी। गुप्त जी चिंतना के पथ पर चले, फलतः वे विशेष कृतकार्य हुए।

उपाध्याय जी करुणा के कवि हैं। वस्तु-जगत के कवि नहीं, बल्कि भाव-जगत में प्रकृति-पुरुष के बीच व्याप्त विरह (ट्रेजेडी) के कवि हैं, मानो सूक्ष्मतम सजलता के कवि हों।

'प्रिय-प्रवास' के बाद, उस की भूमिका में 'वैदेही वनवास' लिख जाने की सूचना उन की इसी कोमल रुचि की सूचक थी। उन का 'प्रिय-प्रवास' 'विरहिणी-ब्रजांगना' ही होने लायक था, क्योंकि इस काव्य में पंचदश सर्ग ही अन्य सर्गों की अपेक्षा अधिक मर्मव्यंजक है। अन्य सर्ग या प्रसंग तो इस में आलवाल मात्र हैं। उपाध्याय जी की करुण-वृत्ति 'प्रिय-प्रवास' जैसे महाकाव्य के बजाय एक मार्मिक खंडकाव्य की अपेक्षा रखती थी।

उपाध्याय जी ने व्यावहारिक आदर्श के लिए 'प्रिय प्रवास' में यथार्थवाद का किंचित् ग्रहण किया है। कृष्ण-चरित्र के अंकन में वे देश-सेवा के सामयिक आदोलनों से प्रेरित थे। किंतु जिस काल (उन्नीसवीं शताब्दी के अंत) की देश-सेवा से वे प्रेरित थे, उस काल का क्षेत्र परिमित था, उसी के अनुरूप उन्हों ने प्रभु कृष्ण का मानव-पक्ष दिखलाया। उस समय हमारे सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाएँ नहीं आई थीं। स्त्री-शिक्षा का आंदोलन शुरू हो चुका था, फिर भी पुरुष की भाँति नारी भी कर्म-क्षेत्र में अग्रसर हो, यह दूर का स्वप्न था। इसी लिए 'प्रिय-प्रवास' में हम राधा का कोई नवीन विशद चरित्रांकन

नहीं पाते। उस मे राधा का सेवा-भाव माधुर्य-भाव की रक्षा के लिए है। उस युग की नारी इस से अधिक और क्या करती ? यदि उपाध्याय जी आज 'प्रिय-प्रवास' लिखते तो उस का कुछ और ही स्वरूप हो जाता।

करुणा की शांति लोक-सेवा मे है, इसी लिए 'प्रिय-प्रवास' मे कृष्ण इसी रूप मे दिखाए गए है। राम के जीवन मे जो लोक-मगल का भाव है, वही 'प्रिय-प्रवास' मे भी दिखाने का प्रयत्न किया गया। किंतु कृष्ण की उपासना हमारे यहा माधुर्य-भाव मे ही की गई, अतएव उपाध्याय जी भी विप्रलभ शृगार मे ही मार्मिक रहे। कृष्ण के लिए लोक-सग्रह-जैसे सार्वजनिक पथ पर चलने का सौकर्य उन्हे पूर्ववर्ती कवियो से प्राप्त नही था, इसी लिए वे कृष्ण के लोक-चरित्र को अकुरित ही कर सके, विकसित नहीं।

गुप्त जी को राम के लोक-चरित्र-चित्रण के लिए अपने पूर्ववर्ती कवियो से भी साधन प्राप्त था। इस के अतिरिक्त, 'साकेत', 'द्वापर', 'अनघ', 'यशोधरा', 'त्रिपथगा', 'स्वदेश-सगीत' उन्हा ने उस युग में लिखा, जब गाधी का भारत चतुर्दिक जग चुका था, मनुष्यता के विकास के आयोजन सचेष्ट हो गए थे, अतएव उन्हो ने अपने पौराणिक काव्यो म नव-प्रबुद्ध भारत का पूर्ण उपयोग किया। उन्हो ने प्राचीनता मे नवीनता ला दी। वे साहित्य और सस्कृति दोनो ही दृष्टि से हिंदी के राष्ट्रीय प्रतिनिधि हुए। जिस नए चिंतित युग को 'प्रिय-प्रवास' द्वारा उपाध्याय जी ने छूना चाहा, वह गुप्त जी का ही आलबन था। उपाध्याय जी केवल कवि है, गुप्त जी वैतालिक भी।

उपाध्याय जी की भाँति श्रीधर पाठक जी भी कोमल रस के कवि थे। पाठक जी की तरह ही यदि उपाध्याय जी भी अपने एक मात्र रस मे रमे रहते तो आज उन के रचना-प्रसूनो का कुछ और ही मधु-गध होता। पाठक जी भी भावना के कवि थे, उन्हो ने जहा चिंतना को ग्रहण करने का प्रयत्न किया वहीं कविता विडबना मे पड गई, किंतु अपने जीवन का अधिकांश उन्हो ने भावना की ओर ही लगाया। किसी कवि के लिए सब से बडी बात यह है कि वह आत्म-निरीक्षण करके अपने साध्य पथ का सधान कर ले। प्रत्येक कवि की अपनी अपनी विशेष साधना होती है, उसी विशेष साधना को सफल करना ही कवि के काव्य की सफलता है।

(५)

खडीबोली का प्रथम यौवन नेतृत्व ले कर आया था। गुप्त जी उस के नेता थ,

मस्तिष्क थे, द्विवेदी जी प्रोत्साहक और आशीर्वादक। उस समय खड़ीबोली को शक्ति देने के लिए मस्तिष्क की ही आवश्यकता थी। किंतु इस बीसवीं शताब्दी का एक दूसरा यौवन भी जागरूक रहा, यह केवल हृदय का यौवन था। इस का बाल्यकाल उपाध्याय जी के 'प्रिय-प्रवास' में है, और पाठक जी और ठाकुर साहब की रचनाओं में भी। प्रसाद और माखनलाल इसी यौवन के नवोदित अगुआ थे। मस्तिष्क-पक्ष द्वारा खड़ीबोली को सुरक्षा मिल जाने पर ही यह दूसरा यौवन गतिशील हुआ।

प्रसाद जी और माखनलाल जी की रचनाओं ने खड़ीबोली के उस कल्पवृक्ष में जिसे द्विवेदी-युग के कवियों ने लगाया था, छायावाद की दो शाखाएं बनाईं। प्रसाद जी कालिदास की कला लेकर चले, माखनलाल जी मध्यकाल का माधुर्य-भाव। देश-काल की साहित्यिक-प्रगति से दोनों की अभिव्यक्तियों ने नवीनता ली।

प्रसाद जी की कला आधुनिक पश्चिमीय काव्य-कला के सहयोग में है, माखनलाल जी की अभिव्यक्ति उर्दू के तर्ज़-बयां में कुछ मध्यकालीन। एक की भाषा सांस्कृतिक हिंदी है, दूसरे की भाषा असल हिंदुस्तानी। एक में भाव-विदग्धता है, दूसरे में वाग्विदग्धता। प्रसाद जी, अधिकांशतः भावना के कवि हैं, चतुर्वेदी जी चिंतना के। चिंतना को उन्हों ने एक मुक्तक-परिमाण में गुप्त जी की अपेक्षा कुछ और कवित्व दिया।

प्रसाद जी ने जिस छायावाद का प्रवर्तन किया, उसे अपनी अपनी रसात्मकता में विविध रूप से सिंचित-पुष्पित करने वाले कवि हैं सर्वश्री—मुकुटधर पांडेय, गोविंदवल्लभ पंत, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा इत्यादि। चतुर्वेदी जी की काव्य-धारा के अंतर्गत—सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, गोकुलचंद्र शर्मा, जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद', गुरुभक्त सिंह, गोपालसिंह नैपाली, 'शाखाल', 'बच्चन' इत्यादि। 'नवीन', 'मिलिंद', नैपाली, 'बच्चन' तथा सी० पी० स्कूल के तरुण कवियों ने यथास्थान दोनों स्कूलों के बीच संयोजन भी किया है, विशेषकर पंत अथवा महादेवी की कला के साथ। छायावाद के सद्य नवयुवक-कवियों में से कोई कभी चतुर्वेदी जी की शाखा के किसी कवि के साथ, कभी प्रसाद शाखा के किसी कवि के साथ अपने मन का रंग मिला कर चित्र लिखते हैं। इस से कला तो दूसरे कवि की प्रधान रहती है, भाव अपना रहता है, अर्थात् भिन्न शरीर में निजी हृदय। एक अन्य प्रकार के वे कवि हैं जिन्हों ने प्रसाद और चतुर्वेदी-शाखा के किसी एक या एकाधिक कवि की कला को मिश्रित

कर ऐसी स्वतत्र पदावली बना ली है जो मिश्रित होकर भी अमिश्रित-सी है। मिश्रण और अमिश्रण के अतिरिक्त ऐसे भी नवयुवक कवि है जिन्हो ने प्रसाद ग्रुप के किसी एक मनोनुकूल कवि की ही कला को ले कर अपना हृदय प्रवाहित किया है, प्रधानत प्रसाद, पत, या महादेवी में से किसी एक की कला को। इस प्रकार के कवियो पर सब से पहले पत का प्रभाव अधिक पडा इस के बाद गीति-काव्य के क्षेत्र मे महादेवी का।

प्रसाद और माखनलाल की काव्य-धाराओ का अतर भावना तथा चितना का है। जिन्हो ने दोनो कूलो से सहयोग किया उन्हो ने भावना और चितना का सम्मिश्रण किया। किंतु द्विवेदी-युग से ही भावना और चितना का एक मिश्रण सास्कृतिक स्वरूप में गुप्त जी की कविताओ द्वारा चला आ रहा था।

अतएव, गुप्त जी के बाद, एक कवि-समूह वह है जो प्रसाद और माखनलाल-स्कूल की कला के सयोजन में नही, बल्कि अपनी स्वतत्र मनोधारा से भावना और चितना को स्वरूप देता आया है। ऐसे कवियो मे सर्वश्री रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' और इलाचद्र जोशी है। जिस प्रकार खडीबोली को गुप्त जी ने ओज और पत जी ने माधुर्य दिया, उसी प्रकार इस मनोधारा में निराला जी ने ओज और जोशी जी ने ठेठ लालित्य का परिचय दिया।

भावना और चिनना के समिश्रण की आवश्यकता भाव-जगत और वस्तु-जगत के एकीकरण के लिए पडती है। यह एकीकरण निराला जी ने गुप्त जी की भाँति वैष्णव सस्कृति के माध्यम से भी किया और 'युगात' में पत जी ने, तथा 'कामायनी' में प्रसाद जी ने भी अपने-अपने ढग से। प्रसाद जी ने उन मनोवृत्तियो का पौराणिक रूपक ग्रहण किया जो विश्व-जीवन के सचालन में सुदर सहायक हैं, पत ने उन भावनाओ को जो युग की शिराओ मे सद्य सजग है।

(६)

द्विवेदी-युग और छायावाद-युग की कविता में कुछ भाव-साहचर्य होते हुए भी कला की व्यजकता मे अतर था—

निशात में तू प्रिय-स्वीय कात से
पुन· सदा है मिलती प्रफुल्ल हो।

परतु होगी न व्यतीत ऐ प्रिये,
मदीय घोरा-रजनी-वियोग की।

—हरिऔध

विजन निशा में किंतु गले तुम
लगती हो फिर तरुवर के,
आनदित होती हो सखि! नित
उस की पद-सेवा करके।

और हाय, मै रोती फिरती
रहती हू निशिदिन वन-वन,
नहीं सुनाई देती फिर भी
वह वशी-ध्वनि मनमोहन!

—पत

तरुशिखा पर थी अवराजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

—हरिऔध

तरु-शिखरों से वह स्वर्ण-विहग[1]
उड़ गया, खोल निज पख सुभग,
किस गुहा-नीड में रे किस मग!

—पत

पूरा-पूरा परम प्रिय का मर्म मै जानती हू,
है जो वान्छा विशद उर में जानती भी उसे हू।

—हरिऔध

---

[1] सायकालिक प्रकाश

मौन है, पर पतन में—उत्थान में,
वेणु-वर-वादन-निरत विभु गान में।
है छिपा जो मर्म उस का समझते
किंतु फिर भी है उसी के ध्यान में।

—निराला

अपने सुख में मस्त जगत को
कर न तनिक भी कभी दुखी;
दुखिया का दुख वह क्या जाने
जो रहता है सदा सुखी।

—गोपालशरण सिंह

खाली न सुनहली सन्ध्या
मानिक मदिरा से जिन की,
वे कब सुनने वाले हैं
दुख की घड़ियां भी दिन की।

—प्रसाद

इस प्रकार हम देखते है कि द्विवेदी-युग का पद्योन्मुख गद्य भी काव्य की ललित सज्ञा (रसात्मकता) ग्रहण करने में सलग्न रहा। उस युग का काव्योत्कर्ष छायावाद युग में गुप्त जी के 'साकेत', 'यशोधरा' इत्यादि काव्यो तथा ठाकुर साहब की 'कादबिनी' और सियारामशरण जी की कविता-पुस्तको में प्रकट हुआ, इन कवियो ने द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के कला-पार्थक्य को यथासभव ऐक्य दिया।

(७)

द्विवेदी-युग के कवि द्विवेदी-युग की प्रगति से ही चले। द्विवेदी-युग की प्रगति अतर्प्रांतीय साहित्यो के सहयोग में थी, जिन में उन्नतिशील बँगला साहित्य नवीनता के लिए अपनी ओर विशेष आकर्षण रखता था। चूँकि खडीबोली का आरभ ताजा था, उस के सामने रीति-काल की कविता की परंपरा का तकाजा भी चला आ रहा था, इस लिए

साहित्य-क्षेत्र मे द्विवेदी-युग एक विशेष प्रकार की सस्कृति और कला के बधन से बँधा हुआ धीरे-धीरे अग्रसर हो रहा था। उस की प्रगति एक वयोवृद्ध सुधारक की-सी थी, न कि एक नवोद्बुद्ध उद्योगी की-सी, इसी लिए उस की मथर गति माइकेल-काल की-सी बगीय साहित्यिक नवीनता की ओर बढ रही थी। माइकेल ने अपने समय में जो कलात्मक नवोद्बुद्धता दिखलाई वह मध्यकालीन पूर्वीय और पश्चिमीय काव्य-साहित्य के आधार पर निर्मित नवीनता थी।

माइकेल के बाद बगीय काव्य मे नव-प्रवर्तन का श्रेय रवीद्रनाथ ठाकुर को है। रवि बाबू ने भी 'भानुसिंह पदावली' द्वारा मध्यकालीन परपरा के आधार पर ही नवीनता उत्पन्न करने का प्रारभिक प्रयत्न किया, परतु उन्हे इस से सतोष न हुआ। उन्हो ने विश्व-साहित्य के साहचर्य से आमूल परिवर्तन का महोत्सव किया। उन्हो ने काव्य की आत्मा (सस्कृति, अथवा सतो की सस्कृति) तो सूक्ष्म-रूप से भारतीय ही रक्खी, किंतु उस का कला-शरीर (व्यजना और शैली) रोमाटिक युग के अग्रेजी काव्य से ग्रहण किया। हिंदी-कविता में द्विवेदी-युग के बाद जो नवजाग्रत नवयुवक दल उदित हुआ, उस ने खडी बोली का सस्कार तो द्विवेदी-युग से लिया, कला की प्रेरणा रवीद्रनाथ से पाई, इस के बाद उस के लिए भी सप्त-सिंधु-पर्यंत विश्व-साहित्य खुला हुआ था। इस प्रकार उस ने भारतीय प्रेरणाओ से पश्चिमीय साहित्य-कला का सचयन किया।

द्विवेदी-युग की प्रगति द्विवेदी-युग के लेखको और कवियो तक सीमित रह गई। वह युग अनुदार नही था, वह भी आधुनिक था, किंतु उस की आधुनिकता क्लासिकल थी। साहित्य में इस काल की बडी विशेषता यह है कि उस से एकदेशीय सस्कृति को विशेष सरक्षण मिलता आया है। द्विवेदी-युग के कवियो ने पौराणिक भारतीय सस्कृति को सुरक्षित रक्खा। नवीन युग का साहित्य जब कि पूर्व और पश्चिम का एकीकरण कर रहा है, द्विवेदी युग का साहित्य पूर्वीय ही अधिक है। जिन्हे अपनी जातीयता से प्रेम है वे द्विवेदी-युग के कवियो से विशेष रस ग्रहण करेंगे, परतु जिन के साहित्याध्ययन की प्रमुख प्रेरणा जातीयता नही, केवल कला-विदग्धता है, वे दोनो ही युगो की रचनाओ से रस लेंगे।

निर्देश किया जा चुका है कि वर्तमान हिंदी-कविता मे हिंदी से भिन्न साहित्यो की भी कला-प्रेरणा है। किंतु इस प्रेरणा के मूल मे अपनी भारतीयता (अपना अस्तित्व) अक्षुण्ण है, भारतीयता के क्षेत्र में खडीबोली की कविता मुख्यत. सस्कृत काव्य-साहित्य से लाभान्वित

है, और अशत मध्य-काल की हिंदी-कविता से। द्विवेदी-युग के कवियो में यह भारतीयता बहुत स्पष्ट है और नवीन युग के कवियो मे सूक्ष्मतर। मध्यकाल की काव्य-धारा हमारी शिराओ मे सस्कृति होकर बह रही थी। द्विवेदी-युग के कवियो में वह देशकाल के भीतर थी। उस ने नवीन कवियो में देशकाल से पृथक् स्थान भी पाया। यदि भारतीयता का यह सूक्ष्म सूत्र न होता तो द्विवेदी युग के कवियो मे गुप्त जी तथा ठाकुर साहब को नवीन काव्य-कला रुचिकर न होती, नवीन युग की कविता और ये दो युग आपस में एक दूसरे से अपरिचित ही रह जाते। सौभाग्य-वश ही द्विवेदी-युग ने नवीन युग में आ कर एक पूर्वज की भाँति यहा का कुशल-क्षेम ले लिया।

अब तक की बाह्य और अत प्रगतियो का साराश है यह—भारतेदु-युग मे प्रथम-प्रथम साहित्य को सार्वजनिक जागृति मिली, द्विवेदी-युग मे हिंदी-कविता ब्रजभाषा से खडीबोली मे आई, छायावाद-युग मे उसे कला-विकास मिला, तात्कालिक राजनीतिक युग में कुछ नवीन रोमांटिक-विचार भी।

भारतेदु-युग की सार्वजनिकता को गुप्त जी ने आगे बढाया। उधर उपाध्याय जी, पाठक जी, ठाकुर साहब, मध्ययुग के जिस अवशेष कोमल आभिजात्य को ले कर चले आ रहे थे, उसे प्रसाद ने छायावाद का अत प्रकाश दिया, पत ने 'पल्लव' में मनोहर प्रशस्त विकास, महादेवी ने अनादि नारी हृदय की सगीत-साधना। इन सब से भिन्न माखन-लाल ने मध्ययुग की हिंदू-मुस्लिम-मयी भावुकला का एकत्रीकरण दिया।

खडीबोली की कविता में निराला जी ने एक मुक्त-क्राति की, किंतु पत ने 'पल्लव' की कोमलता मे शाति-पूर्वक ही उसे नवीन काव्य-युग से मिला दिया। निराला और पत के छदो मे जितना अतर है, उतना ही दोनो की कलात्मक-नवीनता के व्यक्तित्व में।

सामयिक राजनीतिक उथल-पुथल में गुप्त जी और निराला जी मध्ययुग की सास्कृतिक भूमि पर हैं, कला में नव-प्रवर्तक होते हुए भी सस्कृति मे क्लासिकल है। इधर पत जी समाजवादी चेतना की सतह पर सस्कृति मे रोमांटिक है। मानव-सवेदना, तीनो की कविताओ मे है। किंतु गुप्त जी और निराला जी की कविताओ मे करुणा नहीं, दया-दाक्षिण्य है। दोनो की भिक्षुक-सबधी कविताओ की सस्कृति एक है। यह उस युग का दया-दाक्षिण्य है, जहा राजा दीन प्रजा को इनायत की दृष्टि से देखता है। पत की सस्कृति मे वह सवेदना है जहा मनुष्य दया-दाक्षिण्य पर निर्भर नही, वल्कि जन्मसिद्ध मान-

वता का अधिकारी है। अवश्य ही गुप्त जी की सस्कृति राष्ट्रीयता से भी ओत-प्रोत है, महात्मा जी के पथ-निर्देश मे, जिस से गुप्त जी की अवसर-ग्राहिता सूचित होती है। इस के विपरीत निराला जी की सस्कृति हिंदुत्व-प्रधान है। 'जागो फिर एक बार', और 'महाराज शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविताए इस के लिए द्रष्टव्य है।

सस्कृति के प्रचार-क्षेत्र मे आकर हिंदी-कविता अनिवार्यत गद्य भी बन गई है, गुप्त जी, निराला जी और पत जी, तीनो की कविताओ में इस के उदाहरण है। ऐसे समय मे जब कि निश्चित सस्कृति अभी भविष्याधीन है, हिंदी-कविता के कठ में वह काव्य भी बनाए रखना होगा जिस के द्वारा भावी युग अपना स्वागत सगीत मे ही पा सके। महादेवी जी इस ओर प्रयत्नशील है।

(८)

भारतेदु-युग की भूमिका पर खडीबोली जब अपने प्रारभिक प्रयास से खडी हुई, तब उस की दशा दयनीय थी। उस के प्रयास मे शैशव था। बीसवी शताब्दी का विश्व-दोलित युग भारत की चेतना में नवीन जागृति, नवीन स्फूर्ति, नवीन आकाक्षाओ का सृजन कर रहा था। खडीबोली को इसी युग के राष्ट्र और साहित्य का सजीव प्रतिनिधित्व करना था। उस के दुर्बल कधो पर बहुत बडा उत्तरदायित्व था। हरिश्चद्र-युग ने इस भार को कुछ हलका कर दिया था। किंतु खडीबोली के सामने एक शताब्दी के जीवन का ही प्रश्न नही, बल्कि ब्रजभाषा की भाँति ही उस के सामने भी अनेक शताब्दिया है। फलत उसे अपने शैशव के प्रयासो से ही एक सुदृढ अस्तित्व ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत होना पडा।

खडीबोली की कविता किस बाल्यकाल से वर्तमान काल तक पहुँची है, इस का परिचय उस समय की उन कविताओ से मिलता है, जिन्हें लक्ष्य कर सन् १९१६ की 'सरस्वती' में प० कामताप्रसाद गुरु ने लिखा था—

"वे लोग (कविगण) तन और धन की सुदरता का वर्णन करते है, पर मन की सुदरता का नाम नही लेते। राजभक्ति सिखाते है, पर देशभक्ति नही सिखाते। रण की कटाकट का वर्णन घर बैठे करते है, परतु शूरता और साहस का उपदेश नही देते। शब्दालकारो को छोड, उन्हें अर्थालकार सूझता ही नही। ... कोई-कोई कुनैन, मच्छड और खटमलो को ही कविता के योग्य विषय मानते है।"

खडीबोली की कविता की यह प्रारभिक प्रगति हास्यपूर्ण अवश्य है, परतु उस की वर्तमान उन्नति देख कर उस के प्रति अवज्ञा नही होती। उस समय के उन्ही झाड-झखाडो ने आज के कुसुमित काव्य-कानन के लिए खाद्य (खाद) का काम दिया था।

उस समय के कवियो की विफलता का कारण यह नही कि वे "रण की कटाकट का वर्णन घर-बैठे करते है, परतु वे शूरता और साहस का उपदेश नहीं देते।" यदि वे उपदेश देते तो उन की कविताओ का हद से हद हमें वह रूप मिलता जो आगे चल कर राष्ट्रीय कविताओ मे प्रकट हुआ। वे राष्ट्रीय कविताए साहित्य और देश के इतिहास की वस्तु अवश्य है, उन का एक विशेष सामयिक मूल्य है, किंतु वे काव्य की स्थायी सपत्ति नही है। इतिहास कभी स्थायी नही होता, पुराण (परिपक्व-इतिहास) स्थायी होता है। इतिहास ही पुराण बनता है, परतु कब, जब उस में सास्कृतिक बल रहता है। जिन राष्ट्रीय कविताओ मे सामयिकता ही नही, बल्कि चिरतन सस्कृति (शाश्वत अनुभूति) है, व साहित्य की अचल सपत्ति हो सकती है। सामयिक कविताओ की विफलता का कारण उन मे उन स्थायी भावो का अभाव है, जो अपने विभाव-अनुभाव द्वारा रस-पुष्ट हो कर मन को गति देते है। मनोगति से ही कवि कही भी नि शरीर भी उपस्थित रह सकता है। यह सभव नही कि कवि सशरीर ही सर्वत्र उपस्थित रह सके, किंतु अपनी मनोगति से वह हृदयत अपने अभीष्ट रसलोक मे उपस्थित रह सकता है, क्योकि वह विश्व-लीला का असाधारण दर्शक है, इसी लिए कहा गया है—'जहा न जाय रवि, वहा जाय कवि।' साधारण जन जब खुली आंखो से ही विश्व को देख सकते है, तब इस के विपरीत कवि सूरदास हो कर भी वह झांकी पाता है जो लोक-दुर्लभ है। कवि कल्पक है, उस का सत्य केवल प्रत्यक्ष (वर्तमान) तक ही केंद्रित नही, बल्कि वह त्रिकालदर्शी है, अपने मानसिक नेत्रो द्वारा। इसी लिए उस कल्पक की कृति कल्पात तक अमर रहती है, काव्य में जब ध्येय गौण रहता है, माध्यम प्रधान, तब कविता में वस्तु-जगत के उपकरणो का प्राधान्य हो जाता है, काव्य अखबारी दुनिया के समीप आ जाता है—उस में कवित्वशून्य इतिवृत्त अधिक रहता है। द्विवेदी-युग की प्रारभिक कविता में इतिवृत्त के लिए लौकिक उपकरणो का इतना अकाल पड गया था कि कुनैन, मच्छड और खटमल भी अभाव की पूर्ति करने को प्रस्तुत थे। सच तो यह है कि खडीबोली की कविता अपने शिशु-पाठ से ही छायावाद की कविता की ओर अग्रसर हो सकी है, उस में शनै-शनै ही सरसता, गभीरता और

मार्मिकता आई है। खडीबोली के उस आरंभिक काल में लौकिक उपकरणो के माध्यम की विपुलता से हिंदी-काव्य को अपनी सुदृढता के लिए पुष्ट जमीन मिली, उसी जमीन पर हिंदी कविता खिली है। यदि वह पृष्ठभाग न मिलता तो आज की कला कली ही रह जाती। द्विवेदी-युग की कविता ने जिस प्रकार वाह्य विषय लिए, उसी प्रकार उस ने कला के वाह्य अगो, शब्द, छद, अभिव्यक्ति, इत्यादि को सुडौल बनाने मे भी, अपने अनुरूप सत्प्रयत्न किया। खडीबोली की कविता मे प्रारंभिक कार्य तो शरीर-निर्माण का हुआ, जब इस ओर से कुछ निश्चिंतता प्राप्त हुई तो उस युग के विशिष्ट कवियो ने इस की प्राण-प्रतिष्ठा की ओर भी सजग दृष्टिपात किया। उन के मनोहर प्रयासो से खडीबोली जी गई, आज के नव-नव कवि उसी जीवित खडीबोली मे अपनी नई-नई साँस फूँक रहे हैं।

छायावाद की कविता द्वारा हम उन की इन साँसो से परिचित हुए है। किंतु इस के आगे एक और ससार है, जो है तो राजनीतिक किंतु वह हमारे साहित्य में उसी प्रकार प्रभाव डालेगा, जिस प्रकार राष्ट्रीय चेतना ने हमारी कविता पर अपना प्रभाव छोड कर उसे राष्ट्रीय भी बना दिया था। वह ससार भविष्य के गर्भ में है।

लार्ड हार्डिंज का प्रांतीय स्वराज्य संबंधी खरीता

[लेखक—डाक्टर विश्वेश्वर प्रसाद, एम० ए०, डी० लिट्०]

प्रांतीय स्वराज्य-शासनविधान के विकास में लार्ड हार्डिंज के २५ अगस्त, १९११ वाले खरीते (डिस्पैच) का विशेष महत्व है। यह इस लिए नहीं कि लार्ड हार्डिंज ने उस पत्र में भारत-सचिव से स्वराज्य देने की प्रार्थना की हो या अन्यथा किसी महान् सुधार का प्रण किया हो, किंतु इस कारण कि उस पत्र के फलस्वरूप भारतीय जन-सम्मति ने उस समय से एक निश्चयरूप ग्रहण किया और तब से उत्तरोत्तर राजनैतिक उन्नति की प्रगति उसी ओर है। उस पत्र का सामयिक सरकारी नीति पर तो कोई असर नहीं हुआ लेकिन उस दिन से हमारे देश की राजनैतिक संस्थाओं और नेताओं ने प्रांतीय स्वराज्य (प्राविंशियल आटोनोमी) को अपना ध्येय बनाया। सरकार ने तो साफ साफ कह दिया कि जनता ने वायसराय महोदय के शब्दों का गलत अर्थ लगाया है और असंभव को संभव करना चाहती है। परंतु इस समझाने का भी अधिक प्रभाव न हुआ। जन-सम्मति उसी बात पर अड़ी रही और आज पचीस वर्ष पश्चात् उस ने अपने अर्थ की सत्यता प्रमाणित कर दी।

गदर के बाद भारतीय शासनविधान की प्रगति दो दिशाओं में थी—प्रथम, व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना और उन के द्वारा शासन की देख-रेख, द्वितीय, भारत-सरकार के नियंत्रण से प्रांतीय शासन का धीरे धीरे स्वतंत्र होना। इस शताब्दी के आरंभ में यद्यपि केंद्र में व्यवस्थापिका सभा काम कर रही थी और पाँच प्रांतों में भी ऐसी सभाएं चल रही थीं तथापि शासन का रूप बहुत न बदला था। इन सभाओं को न तो बजट पर ही अधिकार प्राप्त था न उन के प्रस्तावों का ही अवश्यभावी प्रभाव था। शासन मनमाना था और पूर्णतः भारत-सचिव तथा पार्लियामेंट के अधीन था। प्रांतीय शासन की तो विशेष दुर्दशा थी। १८७० ई० से प्रांतों को कुछ विशेष महकमों के खर्च में थोड़ी स्वतंत्रता मिल गई थी, परंतु अब भी प्रांतीय सरकार का बजट भारत-सरकार स्वीकृत करती थी, और

उस के बनाए नियमो को अनुमति देती थी। प्रातीय व्यवस्थापिका सभाए किसी कानून पर उस समय तक बहस न कर सकती थी, जब तक भारत-सरकार ने उस के लिए पहले से अनुमति न दे दी हो। इस प्रकार प्रातीय शासन पूर्णत भारत-सरकार के ही इशारे पर चलता था। प्रातो की उन्नति में इस कारण बाधा पडती थी और देश में सर्वत्र असतोप बढ रहा था। इधर बगाल प्रात के दो टुकडे होने से विरोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। बगभग आदोलन की प्रतिध्वनि सारे देश मे हुई। काग्रेस ने स्वराज्य प्राप्त करना अपना ध्येय बनाया। गर्मदल ने विदेशीवस्त्र बहिष्कार अस्त्र का प्रयोग किया। क्रातिकारियो ने हिंसात्मक विरोध का बीडा उठाया। जन-सम्मति के इस विकराल रूप को देख कर सरकार को विरोध शात करने के अनेक उपाय करने पडे। एक ओर तो दमन नीति से आतक छाया। दूसरी ओर सरकार ने राजनैतिक सुधार की एक और किस्त दे कर उदार-दल को सतुष्ट करना चाहा। फलस्वरूप, १६०६ ई० में मार्ले-मिंटो सुधारो की आयोजना हुई। इस नए प्रबध में व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो की सख्या बढा दी गई, प्रातो मे गैर-सरकारी सदस्यो की बहुसख्या हुई और इन सभाओ को बजट पर बहस करने का अधिकार प्राप्त हुआ। सुधार की इस मात्रा से कुछ तो उन्नति अवश्य हुई परतु जब तक प्रातीय शासन पर से केद्रीय सरकार के अन्य अधिकार कम नही होते थे तब तक नई व्यवस्थापिका सभाए प्रात की आर्थिक नीति को ठीक न कर सकती थी और शासन पर अच्छी देख-रेख भी न रख सकती थी। आवश्यक था कि प्रातीय शासन को कुछ स्वतत्रता मिले। इस के लिए १६०८ ई० में निष्केंद्रीकरण समिति (डिसेंट्रलाइजेशन कमीशन) की नियुक्ति हुई थी और उस की रिपोर्ट में अनेक छोटे मामलो में प्रातीय सरकार को स्वतत्रता देने की सिफारिश थी। यह रिपोर्ट उस समय लिखी गई थी जब राजनैतिक सुधार मिले न थे। इस कारण ये सिफारिशें अधूरी थी। मार्ले-मिंटो सुधार से जो आशा लगी हुई थी वह पूर्ण न हो सकी, और जन-सम्मति असतुष्ट रही। भारत सरकार किसी प्रकार शाति स्थापित करना चाहती थी। १६१० ई० में जार्ज पचम सिंहासन पर आए और उन्हो ने निश्चय किया कि वे अपना राजतिलक इस देश में आ कर करेंगे। यह उचित था कि सम्राट् के आने पर देश में शाति हो और सभी दल मिल कर उन का आदर करें। इस के लिए आवश्यक था कि प्रजा की माँगो पर ध्यान दिया जाए और उस की कठिनाइयो को दूर किया जाए। इस सबध में २५ अगस्त, १६११ को लार्ड हार्डिंज की सरकार ने भारत-सचिव

को एक पत्र लिखा जिस में कई समस्याओं के संबंध में भारत-सरकार की राय थी और जन-सम्मति को शांत करने के लिए कई उपायों का उल्लेख था। यह डिस्पैच दरबार के दिन गज़ट में प्रकाशित हुआ।

भारत-सरकार ने लिखा कि राजधानी कलकत्ता से हटा कर दिल्ली में कर दी जाए और बंगभंग का विच्छेद कर के, बिहार-उड़ीसा का एक नया प्रांत बनाया जाए। इस के पश्चात् यह भी लिखा कि "भारत में ब्रिटिश शासन के लिए आवश्यक है कि गवर्नर-जनरल और कौंसिल का पूर्ण आधिपत्य बना रहे। १९०९ के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट से सिद्ध होता है कि भारतीय व्यवस्थापिका सभा (इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) के गैरसरकारी सदस्यों की बहुसंख्या को महत्वपूर्ण प्रश्नों को निश्चय करने की आज्ञा देना असंभव है। फिर भी, यह निश्चय है कि कुछ समय में भारतवासियों की न्याय-युक्त माँग को, कि वे शासन में अधिकाधिक भाग ले सकें, पूरा करना ही होगा। तब यह प्रश्न उठेगा कि बिना गवर्नर-जनरल और कौंसिल के आधिपत्य को कम किए हुए यह अधिकार-निक्षेपण (डिवोल्यूशन अव् पावर) कैसे संभव हो। यह कठिनाई एक ही प्रकार हल हो सकती है कि धीरे धीरे प्रांतों को अधिकाधिक स्वराज्य दिया जाए जिस से अंत में भारतवर्ष में अनेक प्रांतीय शासनों की स्थापना हो जाए, जो सभी प्रांतीय मामलों में स्वयंशासित (आटॉनमस) हों, और उन सब के ऊपर भारत-सरकार हो, जिस को अधिकार हो कि असम्यक् शासन में दखल दे सके, परंतु सामान्यतः केवल अखिल भारतीय (इंपीरियल) कार्यों में ही लगी रहे।"[1]

इस पत्र में उन्हीं बातों का उल्लेख है जिन के द्वारा देश में राजनैतिक आंदोलन शांत किया जा सकता था। इस के अतिरिक्त न तो विकेंद्रीकरण समिति की सिफ़ारिशों का उल्लेख है और न शासन-नियम (इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट) में ही निकट भविष्य में किसी परिवर्तन का विचार है। इस से आश्चर्य होता है कि ऊपर लिखी हुई महत्वपूर्ण घोषणा क्यों की गई। यह समझना भ्रमपूर्ण है कि यह बात यूँही कह दी गई, या यह कथन बिना समझे-बूझे किया गया था। यह पत्र छपने के लिए था। इस का तात्पर्य था कि किसी

---

[1]भारतीय सरकार का २५ अगस्त १९११ का खरीता सेक्रेटरी अव् स्टेट फ़र इंडिया के नाम। पैरा ३। १२ दिसंबर सन् १९११ के विशेष गज़ट में प्रकाशित।

प्रकार देश में शाति हो। फिर भला यह कैसे माना जा सकता है कि इन शब्दो के द्वारा सरकार ने अपनी भावी नीति का दिग्दर्शन नही कराया ?

भारतीय नेताओ ने डिस्पैच के इस भाग का स्वाभाविक अर्थ लगाया। उन का विचार था कि इन वाक्यो द्वारा सरकार न भारतवर्ष मे प्रातीय स्वराज्य शासन स्थापित करने की अपनी नीति घोषित की है। साधारणत यही अर्थ हो भी सकता था। इन वाक्यो से यह स्पष्ट है कि केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा के गैरसरकारी सदस्यो को शासन पर अधिकार नही दिया जा सकता है परतु भारतवासियो की माँग को भी पूरा करना अभीष्ट है। अत उन को प्रातीय शासन में ही अधिकार दिया जा सकता है। प्रातीय शासन पर से भारत-सरकार का अकुश हटाए बिना यह सभव नही हो सकता है, और यह अकुश केवल साधारण व्यय सबधी नियमो मे थोडा परिवर्तन करने से नही हो सकता है। अत प्रातीय शासन को स्वतत्रता देने का केवल अर्थ यही हो सकता है कि प्रातीय शासन स्थानीय व्यवस्थापिका सभाओ के अधीन कर दिया जाए। प्रातीय स्वराज्य (प्राविंशल आटॉनोमी) का आशय इस लिए, यही हो सकता है कि प्रातीय शासन उत्तरदायित्व-पूर्ण हो। इस प्रकार भारतीय जन-सम्मति ने सोचा, और सभी जगह इस डिस्पैच के छपने से खुशी मनाई गई।

परतु शीघ्र ही भारत-सचिव लार्ड क्रू ने इस सुख-स्वप्न को भग कर दिया। उन्हो ने अपनी एक वक्तृता मे कहा कि "स्वतत्र शासित प्रातो' (आटॉनोमस प्राविंसेज) वाक्य का आशय केवल इतना ही है कि प्रातीय शासन पर से भारत सरकार का अकुश हटा लिया जाए और प्रातीय सरकार को व्यय करने तथा शासन-सबधी अन्य कार्यों म अधिक स्वतत्रता दे दी जाए। उन्हो ने कहा कि सरकार की यह मशा नही है कि प्रातीय शासन को जनता के अधीन कर दिया जाय, अर्थात् शासन उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवस्थापिका सभाओ की इच्छानुसार हो। उन के कहने का तात्पर्य यह था कि इस घोषणा मे अधिक निष्केंद्रीकरण (डिसेंट्रलाइजेशन) पर जोर दिया गया है न कि अधिकार-निक्षेपण (डिवोल्यूशन अव् पावर्स) पर। लार्ड क्रू के इस कथन का भारतवर्ष में विरोध किया गया। इगलैंड में उन के सहायक मिस्टर माटेगू ने कैंब्रिज मे एक वक्तृता दी जिस मे कहा कि "अब हमारे लिए नीति निर्धारित करना और उस की घोषणा करना आवश्यक हो गया है . और अतत , परतु शीघ्र नही, वायसराय ने हिम्मत कर के भारतवर्ष के प्रति ब्रिटिश नीति

की व्याख्या कर दी है। हम को इसी मार्ग पर चलना है।" उस समय से भारतीय शासन-विधान की प्रगति ने माटेगू के कथन की सत्यता प्रमाणित कर दी है।

भारतीय राजनैतिक विचारधारा अपनी टेक पर अडी रही। "प्रांतीय स्वराज्य" उस का ध्येय हो गया और क्रू के मना करते हुए भी उस समय से भारतीय नेताओ ने इस को पाने का ही प्रयत्न किया। उन का कहना बहुत अंश मे ठीक था। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने यह दलील दी कि "सम्राट् जार्ज के दरबार के उपलक्ष मे जिस डिस्पैच मे भारतवासियो को अनेक "वर" (बून्स) देने की प्रार्थना थी, उस डिस्पैच के इस वाक्य का कोई क्षुद्र अर्थ करना अवसर की महत्ता को कम कर देगा। अत यह मानना पडेगा कि वायसराय ने इन शब्दो द्वारा ब्रिटिश नीति को ही लक्ष्य किया है।" दूसरे लोगो का कहना था कि भारतसरकार का यह आशय कदापि न होगा कि केवल आय-व्यय संबंधी नियमो मे हेर-फेर कर के प्रांतीय शासन को स्वतंत्र कर दिया जाए, क्योकि इस के पूर्व भी १८७० ई० के पश्चात् इस प्रकार के अनेक सुधारो से भी प्रांतीय शासन स्वतंत्र न हो सका था। केवल कोशजात निष्केंद्रीकरण (फाइनेंशल डिसेंट्रलाइजेशन) प्रांतीय स्वराज्य नही ला सकता है। १९१२ मे कांग्रेस के सभापति मिस्टर मुधोलकर ने बहुत ही जोरदार शब्दो में यह स्पष्ट कर दिया कि लार्ड क्रू के मतानुसार सुधार होने से उत्तरदायित्वहीन प्रांतीय शासको को अधिकार मिल जाएगा और उन के ऊपर भारत-सरकार का अंकुश न होने से हित के स्थान पर अहित ही होगा, क्योकि भारत-सरकार का नियंत्रण हट जाने से देश भर मे स्थान स्थान पर निष्केंद्रित स्वेच्छाचारिता (आटोक्रेसी) की स्थापना हो जाएगी। भारतीय राजनीतिज्ञो ने सदा ही प्रांतीय शासन को स्वतंत्र करने का विरोध किया था जब तक कि उस के ऊपर व्यवस्थापिका सभाओ द्वारा नियंत्रण न हो जाए। उन की धारणा थी कि भारतसरकार प्रांतीय शासको की स्वेच्छाचारिता को रोकती है अन्यथा शासन बहुत ही दु खपूर्ण और प्रजा के लिए अहितकर हो जाए। अब अगर लार्ड हार्डिंज के इन वाक्यो का प्रभाव यही होना है कि प्रांतीय गवर्नर मनमानी कर सकें तो वे ऐसे सुधार को न चाहते थे। उन की कल्पना ठीक भी थी, इसी कारण उन का विश्वास था कि हार्डिंज की सरकार का आशय उत्तरदायित्वपूर्ण प्रांतीय स्वराज्य शासन देना था जिस से भारत-सरकार द्वारा किया गया अधिकार प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओ के हाथ में आ जाए।

इस में संदेह नही है कि भारतीय नेताओ ने जो अर्थ लगाया था वह ठीक था।

भारतसरकार न पहले कई बार कहा था कि प्रातीय शासन को उस समय तक ऊपर के नियत्रण से स्वतत्रता नही दी जा सकती है जब तक वह शासन प्रजा के प्रतिनिधियो के प्रति जिम्मदार न हो। लाड डल्हौजी के समय से कर्जन के समय तक कई वार वायसरायो और अन्य सदस्यो को प्रातीय शासको का ध्यान इस कठोर सत्य की ओर आकर्षित करना पडा था। प्रातीय शासक भारतसरकार के दखल को नापसद करत थ परतु उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति में उन के लिए दूसरा माग न था। जब तक नीच से जनता का नियत्रण सभव न था पार्लिमट और उस के प्रतिनिधि भारतसचिव तथा गवनर-जनरल और कौंसिल का अधिकार अवश्यभावी था। दूसर यह मानना बुद्धिविरुद्ध है कि जिस समय चारो ओर से औपनिवशिक स्वराज्य की माग हो रही थी और काग्रस स्वराज्य को ध्यय मान चुकी थी भारतसरकार हमारी राजनतिक उन्नति का अत केवल सरकारी प्रातीय स्वराज्य (आफिशल प्राविशल आटानोमी) बताती। अगर यह मान लिया जाए और इस म सशय नही ह कि इस डिस्पैच म सरकार की भावी नीति का सकेत था तो उन वाक्यो का एक ही अथ हो सकता है कि उत्तरदायित्वपूण शासन की स्थापना का आरभ प्रातीय क्षत्र म ही हो सकता है। राजनैतिक उन्नति का आधार यही था और उसी पर १९१९ की योजना का निर्माण हुआ। इस प्रकार यह डिस्पैच उतना ही अथवा उस से अधिक महत्वपूण है जितना लाड रिपन का स्थानीय स्वराज्य प्रस्ताव (लोकल सेल्फ गवनमट रिजोलूशन १८८२)। पहल के द्वारा स्थानीय शासन पर जनाधिकार हुआ और अब दूसरे के द्वारा प्रातीय शासन पर प्रजा के अधिकार होन की सभावना थी।

इस डिस्पैच का कोई अन्य प्रभाव हुआ हो या नही इतना तो निश्चय है कि जन सम्मति न इस समय से प्रातीय स्वराज्य को अपना उद्देश्य माना और उस के लिए निरतर प्रयत्न आरभ किया। १९१९ में उस को आशिक सफलता मिली और १९३५ म प्रातीय स्वराज्य के आधार पर ही पूरा शासन विधान खडा किया गया है। आग की राजनैतिक उन्नति देख कर यही मानना पडगा कि लाड क्रू गलत थ और भारतीय नेता सही।

पंजाबी बहन गाती है

एक लोकगीत-अध्ययन

[लेखक—श्रीयुत देवेंद्र सत्यार्थी]

पजाबी भाषा मे 'भ्रा' और 'भापा' भाई के अर्थ मे आते हैं, पर लोकप्रियता की कसौटी पर तो एक तीसरा ही शब्द पूरा उतरा है, और वह है 'वीर'। लोकगीत की भाषा इस से धन्य हुई है। इतिहास के एक-एक परदे के पीछे कौन झाँके ? कैसे गुज़री दास्तानो की कडिया टटोली जायँ ? न जाने कितनी बार बहन ने अपने भाई को आत्म-सम्मान और वीरता की तकडी पर तोला होगा ! अब भी जब पजाब की बेटी 'वीर' कह कर अपने भाई को बुलाती है, ऐसा लगता है कि अदर से इस शब्द की आत्मा नाच उठी है। पुराने समय आँखो के रूबरू आते दीखते है। न जाने कितनी बार भाई ने बहन की ख़ातिर जान लडाई होगी ! और जब बहन ने देखा कि भाई जान पर खेल गया है, और अभी उस की निस्सहाय अवस्था शेष नही हुई, तो 'वीर' शब्द ने स्वय ही अपना अचल फैला दिया। अपरिचित और परिचित किसी भी युवक को बहन अपनी सहायता के लिए पुकार सकती थी।

मुझे खूब याद है, बहन का गीत मैं ने पहले-पहल चदी से सुना था। "जीवे मेरा वीर-प्यार !" (भाई के लिए मेरा प्यार सदा जीता रहे)—यह चदी के गीत की अस्थाई थी। तब हम बच्चे थे। 'वीर-प्यार' चदी के हृदय मे उसी तरह उग रहा था, जैसे खेत मे गेहू उगता है। 'वीर' शब्द मुझे प्रिय लगता था, इस की आत्मा से मेरा पूर्ण परिचय अभी न हुआ था। पर इस से क्या ? चदी मुझे 'वीर' समझती थी, और मैं उसे सहोदरा से कही अधिक मानता था। चदी का अपना भाई, चन्नण, उस के गीत की ओर इतना आकर्षित न हुआ था। "काली डाँग मेरे वीर दी, जिथ्थे वज्जदी बद्दल वाँगू गज्जदी" (मेरे भाई की काली डाँग—बडी लाठी—जहा भी पडती है, बादल सी गरजती है !)—

यह गीत चन्नण को भी पसद था। यह उस की 'डाँग' का शब्द-चित्र था। और वह कहता था, गरज में उस की डाँग निरी बादल की बहन है। मेरे पास कोई 'डाँग' न थी, पर मैं चाहता था, मैं भी कभी चन्नण के घर से एक डाँग ले लू। चदी ने कई गान सीख लिए थे। मैं सदा 'वीर-प्यार' के गान पर मुग्ध रहा।

अब बचपन के वे भोले दिन कभी के बीत गए। अठारह-उन्नीस वर्ष का लबा समय बीच से गुज़र गया है। चदी का विवाह हुए नौ साल हो चुके हैं। उमर के साथ ही चदी की गीति-काव्य की दुनिया, जहा 'वीर-प्यार' सदा सुरक्षित रहेगा, और भी पवित्र होती जा रही है।

चदी स्वय गीत-रचना में कुशल नही है। पर मैंने यह देखा है कि वह अपनी मा से सीखे हुए गीतो को इस शौक से गाती है, जिस से शायद कोई कवि अपनी नई रचना का गान भी न कर सकता हो। उस नारी की भाँति जो अपनी पडोसिन के शिशु को अपनी गोदी के लाल से कही अधिक प्यार करती हो, चदी इन गीतो को अपने हृदय मे स्थान देते समय यही समझती है कि ये गीत बने ही उस के लिए है। गीत तो उस ने और भी बहुत सीख रक्खे है, पर 'वीर-प्यार' के गान मे तो हमारे गाँव की एक भी लडकी उस से होड नही ले सकती।

चदी के गीतो मे बहन का खुला दिल देख कर मुझे कई बार चार्ल्स लैब के वे शब्द याद आ गए है, जो उस ने 'मेरी' के रेखा-चित्र में प्रयोग किए थे "ससार में जितने मनुष्यो से मैं परिचित हू, सभी स्वार्थी है, पर मेरी मे स्वार्थ का एकदम अभाव है। मै स्वर्ग मे रहू या नरक मे, मेरी मेरा साथ देगी। ऐसा लगता है, कि बहन बनने के लिए ही उस का जन्म हुआ है।" और जिस ने पहली बार यह कहा था कि नारी द्वारा ही प्रकृति पुरुष के हृदय पर अपना सदेश लिखती है, बहन के व्यक्तित्व को भी ज़रूर परख लिया होगा।

पिता को लोकगीत में 'धर्मी बाबल' कहा गया है, 'लखिया' या 'लख-दाता' एक दूसरा शब्द है, जिसे अमीर-गरीब की पुत्रियो ने एक ही रूप मे अपनाया है। मा वह पसद की गई है, जो बेटी का दु ख-सुख सुन सके, और जिस से बिना किसी सकोच के हर बात कही जा सके। ऐसे माता-पिता की उपस्थिति में भी मा-जाये भाई के बिना, एक 'वीर' के बिना, पजाब की लडकी अपनी दुनिया को सूनी ही समझती है। यह ठीक है कि वह 'तारो में चाँद' सरीखा वर चाहती है, और शताब्दियो से गाती आई है, "जियो तारेयाँ चो

चन्न, चन्नाँ चों कान्ह कन्हैया वर लोड़िये" (पिता, जैसे तारों में चंद्रमा है, चंद्रमाओं में जैसे कृष्ण है, ऐसा वर मुझे चाहिए), पर मा के 'चाँद' की, 'वीर' की, प्रतीक्षा तो वह ससुराल में भी करती रही है। ससुराल का जीवन सदा सुख-पूर्ण ही मिलेगा, इस का हिसाब भी तो सदा ठीक नहीं बैठता। गीत में तो कन्या यही गाती आई है "बावल, देईं अयुद्धया दा राज, झरोखे बैठी हुक्म करां!" (पिता, मुझे अयोध्या का राज्य देना, जहां मैं झरोखे में बैठ कर हुक्म चलाऊं!), पर किस-किस को आदर्श ससुराल मिल सकती है? जो हो, कन्या सदा मा-बाप के यहां नहीं रह सकती, 'चिड़िया' की भाँति उसे उड़ ही जाना चाहिए, ऐसा ही प्रकृति का विधान है। गीत ने इस की साक्षी दी है "साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे, बाबल, असाँ उड्ड जाणा, साडी लम्मी उडारी वे, बाबल, केहड़े देस जाणा?" (पिता, हम तो चिड़ियों की टोली हैं, हमें उड़ जाना है, बहुत लम्बी है हमारी उड़ान, पिता, बताओ तो हमें किस देस को जाना है?) और जब वधू की डोली ससुराल के लिए चलती है और विवाह-गान के सम्मिलित स्वर करुण हो उठते हैं, आँसुओं से भीग-भीग कर, वर भी इस करुणा में भाग लिए बिना नहीं रहता। आँसुओं के बीच में डोली आगे बढ़ती चली जाती है, सहेलियां लज्जाशीला वधू के मूक हृदय को गीत में उतार लेती हैं 'असीं ताँ कुड़ियाँ, चबेदियाँ चिड़ियाँ वे लखी बाबल मेरे, उड्ड जाएं वारो वार, वे लखी बाबल मेरे!' (हम बालिकाएं तो एक ही टोली की चिड़िया हैं। लख-दाता पिता, हम बारी-बारी से उड़ जाती हैं!) वधू के हृदय में एक कसक सी उठती है, 'वीर' को सम्बोधन करती है "मैनूं रख्ख लै रख्ख लै वीरा वे इक्को अज्ज दी रात उधारी!" (रख लो, रख लो मुझे, मेरे 'वीर', आज की रात भर मुझे उधार में रख लो) पर डोली आगे ही आगे बढ़ती जाती है। भाई मूक बना, आँखों में आँसू भर कर, देखता रह जाता है। वधू जब ये सब गीत गाती है, उसे अपने विवाह का समय याद रहता है।

यों तो संसार भर में बहन का हृदय लोकगीत की चीज़ बना है, प्रत्येक भाषा में बहन-भाई की स्निग्ध, शान्त स्नेह-धारा, ग्राम के पास बहती नदी की-सी, देखी जा सकती है, पर भारत की धरती इस कविता के लिए बहुत उपजाऊ सिद्ध हुई है। प्रान्त प्रान्त में बहन ने न जाने कितना गाया है! प्रान्त-प्रान्त में कन्या ने अपनी तुलना चिड़िया से की है। गीत-शैली भी एक-समान है। गुजरात, युक्त-प्रान्त और राजस्थान का गीत पंजाबी गीत से गले मिला है, अन्य प्रान्त भी दूर नहीं रहे। यह मानव-स्वभाव की एक-समता की दर्श-

८

ध्वनि है। भारतीय लोकगीत के सुविस्तृत कुटुंब-कबीले की एक-स्वरता भारतीयता और राष्ट्रीय एकता की अमर विभूति है।

सम्मिलित परिवार की परिपाटी पुरानी चीज़ है। सुख के सुप्रभात मे इस से अवश्य लाभ हुआ होगा, दोपहरी के घाम मे यह कितना कठिन हो उठा! सास-ननद के अत्याचार ने जब भयानक रूप धारण किया, पंजाब की लडकी करुण स्वरो में गा उठी: "मुण्डे आपणी थाईं रैहँदे, नी धीयाँ क्यो बनाइयाँ रब्ब ने ?" (लडके तो सदा अपने जन्म-स्थानो मे ही रहते हैं। हाय, भगवान ने बेटियो की रचना क्यो की ?) जिठानी अलग रोब जमाती है। नव-वधू रो कर रह जाती है। दुःख की बदली रोज़ उमडती है, रोज़ बरसती है। तब भी वह देखती है, कि उस की हिमायत में पति के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता।

दुःख में कन्या की आँखें नैहर की ओर लग जाती है। भला हो हरियाली तीज का जो प्रति वर्ष आती है, भला हो सावन के इस त्योहार पर लडकी को ससुराल से नैहर में बुला लेने के पुराने रवाज का, वरना दुःख का समय, अविराम और अचूक वेदनाओ का सिलसिला, 'हरे बाग की कोयल' को ससुराल की भट्टी में जल्द ही भून डालता। प्रति वर्ष ज्यो ज्यो तीज का त्योहार समीप आता है, कन्या को वह प्रश्न याद आता है, जो विवाह के पश्चात्, डोली-विदा पर, उस से किया गया था "बोल नी हरियाँ बागाँ दी कोयल, मापे छोड किथ्थे चल्लीएँ ?" (ओ री हरे बागो की कोयल, बोल तो सही कि नैहर छोड कर तू कहा चली है ?), और उसे उस उत्तर की भी याद आती है, जो गीत की अगली पंक्तियो में सजीव आशावाद का संकेत बना था "बाबल मेरे ने वचन जो कीते, बचनाँ ही बद्धी मैं चल्लीयाँ, वीरे मेरे ने वचन जो कीते वचनाँ दी बद्धी मैं चल्लीयाँ, माँ सुपुत्तडी ने दाज रंगाया, दाज पुचावन मैं चल्लीयाँ।" (मेरे पिता वचन दे बैठे हैं, वचन-बद्ध हो कर मैं चली हू। मेरे 'वीर' ने वचन दे दिया हैं, उसी वचन मे बँध कर मैं चली हू। सुपुत्रवती मेरी मा ने दहेज के वस्त्र रँगवाए, इस दहेज को—ससुराल में—ज़रा पहुँचाने चली हू)।

चित्र का एक रुख और भी है। खुल्लम-खुल्ला शायद कुल-वधू अत्याचार का उत्तर नही दे सकती, पर गीत में कही कही विद्रोह की अग्नि भडक उठती है: "नुगदी; ते सस्से पैर लग्ग लैण दे, तेरी गुत्त गलियाँ विच्च रुलदी!" "(नुगदी की मिठाई है। मेरे पैर ज़रा जम जाने दो, सास, फिर देखना तुम्हारी वेणी गलियो में रोती फिरेगी!)

सास उसे भाई की गाली देती है, तो कुल-वधू का सताया हुआ दिल बोल उठता है "गाल भरावाँ दी, मुड देईं न, कुपत्तिए सस्से !" (हे कुपत्ती—लडाकी—सास ! देखना अब फिर मुझे भाई की गाली न देना !) पर इतना साहस कुल-वधू मे बहुत शीघ्र नही आ पाता। फिर वह ननद की शिकायत करती है "मेरा भन्नता चक्की दा हथडा, नणद बछेरी ने।" (बछेडी-सी चचल ननद ने मेरी चक्की का हथ्था तोड दिया है !) मानव-स्वभाव भी बडा विचित्र है। भाई से इतना प्रेम रखने वाली बहन ननद के रूप में भावज से इतना द्वेष क्यो रखती है ! और वही खुद कुल-वधू बन कर फिर अपनी ननद की शिकायत करेगी, इस से उसे कुछ शिक्षा क्यो नही मिलती ? और कुल-वधू जो सास के अत्याचार से तग रहती है, खुद सास बनती है, तो अपनी पुत्रवधू से क्यो अच्छा सलूक नही रखती ! 'तीयाँ' (तीज) के त्योहार म बहन को लिवा जाने मे जरा देर हो जाय, तो सास-ननद ताने देती है 'तैनूँ तीयाँ नूँ लैण न आय, बहुतेयाँ भ्रावाँ वालिय !' (अरी ओ बहुत भाइयो वाली, देखा वे तुझे तीज मे भी लेने न आए !) कुल-वधू की विद्रोही आत्मा सम्मिलित कुटुब से अलग हो जाने पर उतारू हो जाती है "मैनूँ कल्ली नूँ चुबारा पा दे, रोही वाला जड वढ के !" (मुझे अलग चौबारा बनवा दो, निर्जन मैदान के जड (शमी) वृक्ष को काट कर शहतीर बनवा लो) कौन जाने उस के पति पर इस आवाज का कुछ असर भी होता है या नही ! पर जब बहन अलग होने की बात सोचती है, उस के सामने यह ख्याल भी रहता है कि उस सूरत में वह भाई के आगमन पर स्वतत्रता-पूर्वक आतिथ्य कर सकेगी।

उडते काग के हाथ बहन सदेश भेजती है —

उड्डदा ते जाईं कावाँ बैहँदा जाईं, बैहँदा जाईं मेरे पिओकडे।
इक्क नाँ दस्सीं मेरी माँ राणी नूँ, रोऊगी अडिया मेरीयाँ गुड्डियाँ फोलके, मैं वारी।
इक्क नाँ दस्सीं मेरी भैण प्यारी नूँ, रोऊगी अडिया भरिया त्रिंजन वेख के, मैं वारी !
इक्क नाँ दस्सीं मेरी भाबी नूँ, खिड खिड हस्सूगी अडिया पेकडे जा के, मैं वारी !
इक्क नाँ दस्सीं मेरे धरमी बाबल नूँ, रोऊगा अडिया भरीयो कचहरी छोडके, मैं वारी !
दस्सीं, वे कावाँ, मेरे वीर प्यारे नूँ, आऊगा अडिया नीला घोडा दौड के, मैं वारी !

काग, उडते-बैठते जाना, मेरे नैहर में पहुँच जाना।

एक तो मेरी बात मा से न कहना, मैं तुम पर कुरबान जाऊ, वह मेरी गुडिया उठा-उठा कर आँसू गिराएगी !

मेरी प्यारी वहन से भी न कहना, मैं तुम पर कुरबान जाऊ, वह सखियो सहित चरखा कातती होगी, बीच में मुझे न पा कर रो देगी !

मेरी भावज से भी न कहना, अपने नैहर जा कर वह व्यग्य-पूर्ण हँसी उडायेगी !

धर्मी पिता से भी न कहना, मैं तुम पर कुरबान जाऊ, वह भरी कचहरी से बाहर आ कर रो देगा।

काग, मेरे भाई से—'वीर' से—कहना, मै तुम पर कुरबान जाऊ, वह नीले घोडे पर सवार हो कर आएगा।

काग सुने न सुने, मानव भाषा में कही हुई बात समझे न समझे, उसे सबोधन करना तो अनिवार्य ठहरा। बहन का मर्मी गान क्या यो ही उड कर, पख पसार कर, रह जाता होगा ! मनुष्य से काग का क्या कुछ भी सबध नही ? तब फिर वह कोठे से 'का-का-का' पुकार उठता है तो बहन यह सकेत कैसे पा लेती है, कि शीघ्र ही कोई अतिथि आया चाहता है ?

फिर बहन अपने नैहर की ओर जाते पथिक से कहती है कि वह उस का सदेश ले जाय, सदेश पा कर भाई आता है। समस्त नाटच-दृश्य गीत की वस्तु बन गया ह —

'भाइया राहीया ! जाँदिया, जानाएँ तूं केहडे देस, मैं वारी ?'
'जानाएँ, बीबी, तेरे पिस्रोकडे, दे सुनेहाँ लै जावाँ, मैं वारी !'
'जा आखनाँ मेरी माँ राणी नूँ, धीयाँ क्यों दित्तीयाँ दूर, मैं वारी ?'
'मै नाँ दित्तीयाँ दूर, किद्धरे दित्तीयाँ उन्हाँ दे वीर, मै वारी !'
'सुनीं, वे वीरा राजिया, भैणाँ क्यों दित्तीयाँ दूर, मैं वारी !'
'मैं नाँ दित्तीयाँ दूर, किद्धरे दित्तीयाँ उन्हाँ दे लेख, मै वारी !
अज्ज बनावाँ पिन्नीयाँ, भलके सूहियाँ चुन्नीयाँ, परसो भैणा दे देस, मैं वारी !
जाँदा बेहडे जा वडिया, डुल्ह पये भैणा दे नैन, मैं वारी !
सिर दा चीरा पाड के पूंजाँ भैणाँ दे नैण, मैं वारी !'
'सस्स पिहावे चक्कीयाँ, सौहरा घुटावे भग, मैं वारी !

सस्स ने लाह् लइयाँ चँदोडियाँ, सौहरे ने लाह् लये बन्द , मैं वारी !'
'नीला घोड़ा बेच के, बनादेयाँ भैणाँ नूँ बन्द, मैं वारी !
गल दा कण्ठा बेच के, बनादेयाँ भैणाँ नूँ चन्द, मैं वारी !'

'राह्-चलते पथिक, किस देस को जा रहे हो ? मैं तुम पर बलिहारी।'
'बीबी, मैं तेरे नैहर जा रहा हू, कुछ सदेश हो तो ले जाऊ, मै बलिहारी।'
'मेरी रानी मा से कहना, मैं बलिहारी, बेटी को दूर क्यो ब्याह दिया ?'
'मैं ने बेटी दूर नही ब्याही, मैं बलिहारी', मा ने पथिक को उत्तर दिया, 'उस के भाई ने ऐसा किया।'

'अजी ओ राजा भाई, सुनो तो, मैं बलिहारी,' पथिक ने पूछा, 'बहन को दूर क्यो ब्याह दिया ?'

'मैं ने बहन दूर नही ब्याही, मै बलिहारी, उस के भाग्य मे ही ऐसा बदा था।
आज मै पिन्निया (एक मिष्टान्न) बनवाऊँगा, मै बलिहारी।
कल को मै बहन के लिए सूही चुनरिया रँगवाऊँगा, परसो बहन के देस पहुँचूँगा।
चलता-चलता मैं बहन के आँगन मे पहुँचा, मैं बलिहारी।
बहन की आँखो मे आँसू उमड आए। सर का चीरा फाड कर, वस्त्र से, मै बहन की आँखे पोछ रहा हू।'

'सास चक्की पिसवाती है,' बहन बोली, 'ससुर मुझ से भग घुटवाता है, सास न मेरी चदोडीयाँ उतरवा ली, ससुर ने एक दूसरा आभूषण, चद, ले लिया।'

'अपना नीला घोडा बेच कर, मै बलिहारी, बहन के लिए बद गढवा दूँगा, अपना कठा आभूषण बेच कर, बहन के लिए चद बनवा दूँगा।'

कल्पना का रुपहला छोर लोकगीत को कितना छू-छू जाता है। भाई की प्रतीक्षा म खडी बहन क्षितिज की ओर निहारती थकती नही, लोचन भर-भर आते है, जीवन की डाल-डाल हिलती है, डोलती है। बहन की भी कितनी महान आत्मा है ! ससुराल के बदी जीवन की शिकायत वह भाई के सिवा और किस से करे ? अतीत का यह अमर पृष्ठ, बहन का हृदय, वृक्ष से झरते पत्ते की भाँति काँप उठता है, तब कही जा कर भाई का नीला घोडा नजर पडता है।

यो तो कल्पना के ससार में वहन अनक बार भाई से मिलती है। बटलोही में खीर पकन चली है। और बहन इस बटलोही को पुकार कर कहती है —

उब्बल उब्बल, बलटोहिय नी, लप्प चौला दी पावा।
ज वीर डिठठा आयोंदा, लप्प होर वी पावाँ।
ज वीर आया रौड, रोडे हूंज सटावाँ।
ज वीर आया गलिया, पट्ट दरियाइया विछावा।
ज वीर आया वेहड, रत्ता पलॅघ डहावा।
ज वीर मग पानी, बूरी मज्झ चुयावा।
जे वीर मगे रोटी, गिरी छुहार खुआवा।
ज वीर बैठा चौके, भाडिया रिशमाँ छड्डिया।
जे वीर अन्दर वडिया, दीवा लट लट बलिया।
ज वीर चढिया कोठ बाला चन्द वी चढिया।

उबल बटलोही उबल ऱ अभी म तुझमें मुट्ठी भर चावल डालूँगी।
वीर' के आन की खबर सुनूगी तो मुट्ठी भर चावल और डाल दूगी।
वीर' गाव के मैदान म पहुँचगा, तो पथ के ककर उठवा फकूँगी।
वीर गली म पहुचगा तो पथ म रशम और दरियाई के वस्त्र बिछवा दूगी।
वीर' आगन में पहुचगा तो लाल पलँग डलवा दूँगी।
वीर' जल मागगा तो उसे तत्काल दुहा हुआ भूरी भैंस का दूध पिलाऊँगी।
वीर रोटी मागगा तो उसे बादाम की गिरिया और छुहार खिलाऊँगी।
वीर' रसोई में बैठगा, तो भोजन-पात्र किरनें छोडग (चमकग)।
वीर' भीतर आयगा तो दीपक और भी प्रज्वलित हो उठगा।
वीर छत पर चढगा तो आकाश पर दूज का चाँद निकल आएगा।

बटलोही में कोई मानव-हृदय ढूढा गया है। उबलते दूध को सुना-सुना कर सब बात कही गई है और दूध म पकते चावल का एक एक दाना आत्मीयता के धाग म पिरोया ह। आतिथ्य का आदर्श बाधा ह। केवल बहन से ही किरन नही निकलगी रसोई के पात्र भी दुगनी तिगनी चमक ल उठेंग जैसे व बहन के भाई का स्वागत करना अपना

धर्म मानते हो। दीपक भी दिल रखता है, बहन के भाई को पहचानता है, और वह जानता है कि भाई के भीतर आने पर उसे अधिक प्रकाश करना चाहिए। और वह आकाश का चाँद भी तो बहन भाई के मिलन के नाट्य-दृश्य में भाग लेने से नहीं चूकता, वह केवल आदमी की दुनिया पर चमकता ही नहीं, लोकगीत के परिवार से खूब परिचित भी है।

भाई की प्रतीक्षा में बहन ससुराल को छू कर बहती रावी के तीर पर एक नई कुटिया बनाने पर तत्पर होती है —

अखाँ रावी ते घर पाइए, सस्सू जी, जे कोई आवे साडे देस दा !
सौ आवे सठ्ठ जावे, सस्सू जी, इक्क न आवे अम्मा जायडा !
जी मैं चढ़ चुबारे कत्तदी, वीर निल-घोडी असवार, मैं वारी !
जी मैं छड्ड पूणीं गल लग्गदी, वीरा, वर्हियाँ दे विच्छडे मिलपये, मैं वारी !
भैण ने दुक्ख सुख फोलिया, वीरे दे डुल्हडे नैन, मैं वारी !
वीरा, वे नैन डुल्हेंदिया, तेरी वे रोवे बला, मैं वारी !
तूं घोडे मैं पालकी, चल्लागे हंसा दी चाल, मैं वारी !

'सास जी, कोई मेरे देश का पुरुष यहाँ आए तो मैं उस के लिए रावी पर नया घर बनवा दूं।

सौ आते हैं, साठ जाते हैं, एक मेरा मा-जाया ही नहीं आता !

चौबारे में बैठी मैं सूत कात रही हूं, नीली घोडी पर सवार 'वीर' आ रहा है, मैं बलिहारी !

बचती पूनी चरखे पर ही छोड कर, मैं 'वीर' के गले लगूँगी, मैं बलिहारी !

बहन ने दुःख-सुख खोल कर सामने रख दिया, तो 'वीर' के नयन उमड पड़े।

ओ जी उमड़े नयनों वाले 'वीर', तुम्हारी बला रोवे, मैं बलिहारी।

तुम घोड़े पर सवार होंगे, मैं पालकी में बैठूँगी, हंस चाल से हम चलेंगे !

जैसे यह गीत गाँव के पास से गुजरती रावी को सुना कर गाया गया हो। रावी के किनारे बैठ कर कितनी बहनों के आंसू उमड होंगे ! रावी की लहरों में कितने आँसुओं ने शरण ली होगी ! इतने शोकाश्रु रावी कहाँ ले जा रही है ? बहते जल को तो आग

बढना होना है, कोई इस में आँसू मिलाए या मुस्कान की सुनहरी किरन, पर क्या बहता जल कभी भी पीछे मुड कर नही देखता ?

सखियो के बीच सूत कातती बहन, चरखे के एक-एक फेर में, एक-एक तार में, भाई की बाट ही तो जोहती है। यों तो एक एक कर के अनेक दिन गुज़र जाते है, भाई नही आता, फिर एक शाम ऐसी भी तो आती है, जब भाई को आ ही जाना चाहिए, और जब तारो की झिलमिल मिलन के पृष्ठचित्र को सजीव बना देती है —

सञ्झ पई तरकाला पइयाँ, झिम्मीं उत्ते बूँदा पइयाँ !
चारे चरखे चुक्को सहेलियो, तारेयाँ झिरमल लाया !
'उठ्ठ कुडे तूँ केहडी कुडे बीर तेरा मी आया !
आवेंदडा चढ पॅलघे बैहेंदा लस्सी कच्ची दा तरहाया !'
'लस्सी कच्ची मेरी बरती जाँदी, कढदा दुद्ध पिआया !
पीलें पीलें अम्माँ-जाया लप्प कु मिठ्ठा पाया !
हेठाँ गडवा उत्ते कटोरा पी लै वे अम्माँ-जाया !'
आँढनाँ गुयाँढनाँ पुच्छन लग्गीयाँ वीरा की कुज्झ लिआया !
झुग्गा चुन्नी मैंहदी मौली सिर नूँ फुल्ल लिआया !

शाम हो आई। अँधेरा छा गया। 'झिम्मी'[१] पर वर्षा की बूँदे पड गई।

चलो अब चारो चरखे उठा कर रख दें, सखियो, तारो ने कैसी झिलमिल लगा दी है !

'उठ कर खडी हो जा, बहन, मैं—तेरा 'वीर'—तेरे घर आया हू। आते ही मै पलग पर आ बैठा हू, मुझे प्यास लगी है, कच्ची लस्सी पिला।'

'कच्ची लस्सी तो शेष हो गई,' बहन बोली, 'मै तुझे कढता दूध पिलाती हू। लो पीलो, मा-जाये, मुट्ठी भर मीठा डाल कर लाई हू। नीचे गडवा भरा है, ऊपर कटोरा, जी भर दूध पीओ।'

पडोसिनें पूछ रही है—भाई क्या क्या लाया ?

---

[१] रथ पर का उछाड।

ये कमीज, चुनरी, मेहदी, 'मौली' और सर के लिए फूल, भाई ही तो लाया है।

और जब भाई के आतिथ्य मे बहन को स्वतन्त्रता नही मिलती, सास नाक सिकोडती है, बहन के हृदय से एक आह निकल कर रह जाती है "सस्से, तेरी खण्ड मुक्कगी, जद वीर मेरे घर आया।" (हाय, सास, जब भाई मेरे घर आया, तो तुम्हारी खाँड खतम हो गई।), या जब सास घी की कजूसी करती है तो क्रोध मे बहन का शाप बेचारी भैस पर जा कर पडता है "सस्से, तेरी बूरी मरजे, मरे वीर नूं सुक्की खण्ड पाई।" (तुम्हारी भूरी भैस मर जाय, सास, मेरे भाई की थाली मे तुम ने सूखी खाँड रख दी है।)

एक गीत मे भाई को मित्रो सहित बहन के ससुराल से गुजरते दिखाया गया है। भाई आए और बहन से मिले बिना, या उसे लिए बिना, पास से गुजर जाय, बहन यह न सह सकी। भाई ने बहाने किए, बहन ने शाति से अचूक उत्तर दिए —

'वीरा, घर घर धेकाँ फुल्लियाँ, चन्दा, घर घर धेकाँ फुल्लियाँ,
एहवाँ धेकाँ दी ठण्डडी छायों, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल माँ-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'
'किवकुण आवाँ भैणे भोलीए, किवकुण आवाँ बीबी भोलीए,
मेरे साथी ताँ लघ जाँदे दूर, भैणे नीं तूं रह घरे,
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणे रह घरे।'
'तेरे साथीयाँ नूं घियो खिचडी, चन्दा, साथीयाँ नूं घियो खिचडी,
आपणे वीरे नूं गिरीयो छुहारे, वीरा वे तूं आ घरे,
लै चल्ल माँ-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'
'भैणे, अग्गे ताँ नदियाँ डूंघीयाँ, बीबी, अग्गे ताँ नदीयाँ डूंघीयाँ,
इक्क डोब लग्गे मर जाँये, भैणे नीं तूं रह घरे,
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणे रह घरे।'
'वीरा, नमीयाँ बनावाँ मैं बेडीयाँ, चन्दा, नमीयाँ बनावाँ मैं बेडीयाँ,
आपणे वीरे नूं पार लघावाँ, वीरा वे तूं आ घरे,
लै चल्ल माँ-पियो दे देश वे, वीरा आ घरे।'

६

'भैणें, अग्गे ताँ धुप्पाँ करडीयाँ, बीबी अग्गे ताँ धुप्पाँ करडीयाँ,
इक्क धुप्प लग्गे मर जाँय, भैणें नीं तूँ रह घरे,
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणें रह घरे।'
'वीरा, नमीयाँ बनावाँ मैं छतरीयाँ, चन्दा नमीयाँ बनावाँ मैं छतरीयाँ,
आपणें वीरे नूँ छायो कराँ, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल माँ पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'
'भैणे, अग्गे ताँ सूलाँ त्रिखियाँ, बीबी, अग्गे ताँ सूलाँ त्रिखियाँ,
इक्क सूल चुभे मर जायें, भैणें नी तूँ रह घरे।
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणें रह घरे।'
'वीरा, नमीयाँ सुआवाँ जुत्तीयाँ, चन्दा, नमीयाँ सुआवाँ जुत्तीयाँ,
मैं ता ठम्म-ठम्म करदी जावाँ, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल माँ-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'
'भैणे, अग्गे ताँ कुत्ते भौंकदे, बीबी अग्गे ताँ कुत्ते भौंकदे,
इक्क दन्द लग्गे मर जायें, भैणें नी तूँ रह घरे,
रह घर सस्सू जी दे कोल नी भैणे रह घरे।'
'वीरा, मिट्ठीयाँ पकावाँ रोटीयाँ, चन्दा मिट्ठीयाँ पकावाँ रोटीयाँ,
मैं ताँ टुक्क टुक्क पौंदी जावाँ, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल माँ पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'
'भैणे, अग्गे ताँ भाबो लडाकडी, बीबी अग्गे ताँ भाबो लडाकडी,
इक्क बोल लग्गे मर जायें, भैणे नी तूँ रह घरे,
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणे रह घरे।'
'वीरा, कुच्छड लवाँगी गीगडा, चन्दा गोदी लवाँगी भतीजडा,
लोरी गावाँ ते चोहल कराँ, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल माँ पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'

'भाई घर घर अनेक वृक्षों की बहार है। देखो तो आद भाई घर घर अनेक वृक्षों की बहार है।

कितनी शीतल है इन धक वक्षा की छाया! मर घर आओ न प्यार भाई मा बाप के देस को ल चलो मुझ!

ओ भोली बहन बीबी बहन तुम्हार घर कैसे आऊँ? मर साथी तो बहत दूर निकल जा रह ह। यहा अपन घर म रहो सास के पास अपन घर म रहो।

तुम्हार साथियो को घी खिचडी खिलाऊँगी। अपन चाद भाई को बादाम की गिरिया और छुहार खान को दूगी। मर घर आओ ना प्यार भाई मा-बाप के देस को ल चलो मुझ।

बीबा बहन देस के माग म तो गहरी नदिया बहती है। तुम एक भी गोता खा गइ तो मर जाओगी! यहा अपन घर म रहो सास के पास अपन घर में रहो।

चाद भाई म नई-नई किश्तिया बनाऊँगी। इन किश्तियो पर म अपन भाई को पार करूँगी। मर घर आओ न प्यार भाई मा-बाप के देश को ल चलो मुझ।

बीबी बहन आग देस के माग म सख्त धूप पडती है। एक ही बार घाम लगन से तुम मर जाओगी। यहा अपन घर म रहो सास के पास यहीं रहो।

चाद भाई म नई-नई छतरिया बनाऊँगी। अपन भाई पर म छाया करूँगी। मर घर आ जाओ न प्यार भाई मा-बाप के दस को ल चलो मुझ।'

बीबी बहन आग देस का माग तीख काटो से भरा ह। तुम्हार पैर म एक भी काँटा लग गया तो तुम मर जाओगी। यहा अपन घर म रहो साम के पास यहीं रहो।

चाँद भाई म नई जूती सिल्वाऊगी। इसे पहन कर म ठुमुक-ठुमुक कर चलूगी। मर घर आ जाओ न प्यार भाई मा-बाप के देस को ल चलो मुझ।

बीबी बहन आग दस के माग में कुत्त भौंकत ह। तुम्हें एक भी दाँत लग गया तो तुम मर जाओगी। यहा अपन घर में रहो सास के पास यहा रहो।

चाद भाई म मीठी रोटिया पकाऊँगी। रोटी के टुकड कुत्तो के आग डालती चलूगी। मर घर आ जाओ न प्यार भाई मा-बाप के देस को ल चलो मुझ।

बीबी बहन देस म तुम्हारी भावज बहुत भयानक है। उस का एक भी बोल तुम्ह चुभ गया तो तुम मर जाओगी। यहा अपन घर म रहो यहा सास के पास रहो!

'चाँद भाई म अपन नन्हे भतीज को गोद में लूगी। लोरी गाऊँगी और भवज

मचल कर उस से खेलूँगी। मेरे घर आ जाओ न प्यारे भाई, मुझे मा-बाप के देस को ले चलो।'

नारी प्यार के लिए ही उत्पन्न हुई है। मा के रूप में वह अपनी सन्तान से पिता से कहीं अधिक स्नेह करती है, पत्नी के रूप में भी वह पुरुष से कहीं ऊपर उठी रहती है, बहन के रूप में वह भाई से बाज़ी ले जाती है। भाई ने सोचा था कि उस का आखिरी बहाना काम कर जायगा, पर बहन मानव-स्वभाव से परिचित थी। उस ने कहा मैं भावज को सहज ही मोह लूँगी, उस के शिशु को लोरी दे कर। झाड़ी में फुदकती गौरैयों-सा यह गीत पहले-पहल कब गाया गया था? कितनी बार इस ने भाषा का लिबास बदला होगा!

कल्पना-लोक में कितना प्रश्नोत्तर हुआ है? प्रत्येक गीत का अपना व्यक्तित्व है। और सब गीत मिल कर एक पूरा गीत-नाट्य बना डालते हैं—बहन का हृदय कितना गा सकता है! और जब बहन भाई का आवाहन करती गाती है "वीरा मेरेया सवेरे दिया तारया, तीयाँ नूँ मैनूँ लैंजी आन के!" (अजी ओ भोर के तारे, मेरे भाई, तीज पर मुझे लिवा ले जाना!) क्या बहन की आवाज़ आकाश पर के भोर के तारे की समझ में भी आ जाती है?

बहन की उँगली पर घाव हो गया। भाई के आने की बात सुन कर उसे पीडा की सुध बिसर गई। तब चला आतिथ्य का नाट्य-दृश्य

मेरी उँगली चीरी नी, कोई दस्सो दार?
वीरा, आयोदा जो सुणियाँ, उंगली हच्छी होई!
वीरा, कनक मँगाऊँणीया, सठ्ठ मण!
वीरा, पीहण कराऊँणीयाँ, मोतीयाँ वरगा!
वीरा, आटा पिहाऊणीयाँ, सुरमे वरगा!
वीरा, आटा गुन्हाँऊँणीयाँ, मलाई वरगा!
वीरा, पेंडे कराऊँणीयाँ, आड़ूयाँ जेडे!
वीरा, लुच्ची तलावाँ, वे कोई थाल जेडी!
सद्दो सहेलीयो नी, वीर रोटी खावे!
वीर खाण आया, नाल सठ्ठ जणें!

वीर खाय उठ्ठिया, 'कुज्झ मग, भैणे!'
'वीरा सभ कुज्झ बथेरा वे विछोडा मन्दा!'

मेरी उँगली कट गई है, कोई दवा बताओ।

मैं ने सुना, मेरा भाई आ रहा है, उँगली को आराम आ गया।

भाई, मै साठ मन गेहू मँगवा रही हू। भाई, इस गेहू को मै मोतियो-सा साफ करवा रही हू।

भाई, मै सुरमे सा बारीक आटा पिसवा रही हू। भाई, मैं मलाई-सा नरम आटा गुंधवाती हू।

भाई, मैं आडूओ से छोटे पेडे करवा रही हू। भाई, मै थाल-सी बडी लुच्चिया तलवा रही हू।

सखियो, भाई को भोजन पाने के लिए बुलाओ।

भाई भोजन पाने आया, साथ म साठ मित्र थे।

भाई ने भोजन पा लिया, वह उठ कर कहता है, 'बहन कुछ माँग'।

'मेरे घर सब कुछ है', बहन कह रही है, 'लबा वियोग ही बुरा है!'

कल्पना-लोक म तो बहन जितना चाहे भाई का आतिथ्य कर ले, पर वास्तविक जीवन म तो वह इतनी स्वतत्र नही होती। यह भी हो सकता है कि वह सास की दी हुई कडी साँकल खोल कर भाई को अदर बुलाने से झिझके, पर एसा सदा नही होता

'महलां दे थल्लथल्ले जां दिया, वे मेरिया राजिया वीरा!
भैणां नूं मिल घर जा, वे राम!
सभनां भैणा दे वीर मिल मिल जांदे, वे मेरिया राजिया वीरा!
मैं परदेसन बैठी दूर, वे राम!'
'उठ्ठ के कुण्डडा खोल दे, नी मेरिए राणीएँ भैणें!
बाहर खड़ा तेरा वीरा, वे राम!'
'सस्सू दा दित्तडा न खुल्ले, वे मेरिया राजिया वीरा!
कन्ध टप्पे घर आयो, वे राम!'

'कन्धाँ ताँ टप्पदे चोर, नी मेरीए राणीएँ भैणें।
मैं ताँ भैणा दा सका वीर, वे राम!'

'महल के नीचे नीचे जा रहे राजा भाई! बहन से मिल कर जाना। सब बहनों के भाई मिल कर जाते हैं, राजा भाई, एक मैं परदेसिन हू, देस से इस कदर दूर बैठी हू!'

'उठ कर साँकल खोलो, रानी बहन, बाहर तुम्हारा भाई खडा है।'

'सास की दी हुई साँकल मैं नही खोल सकती, राजा भाई, दीवार फाँद कर भीतर आ जाओ।'

'रानी बहन, दीवार तो चोर फाँदते है, मैं तो बहन का सगा भाई हू!'

वास्तविकता की भूमि पर एक दूसरे गीत मे बहन-भाई की भेट का चित्र खीचा गया है

'आयो वे वीरा चढीए उच्चडी माडी, मेरे कान्ह उसारी,
दे मेरी माँयो दे सुनेहडे, राम!'
'माँ ताँ तेरी, भैणें, पँलघे बिठाई, पँलघो पीढे बिठाई,
हथ्थ अटेरन रगली, राम!'
'आयो वे वीरा चढीए उच्चडी माडी, मेरे कान्ह उसारी,
दे मेरी भाबो दे सुनेहडे, राम!'
'भाबो ताँ तेरी बीबी गीगडा जाया, भतीजडा जाया,
उठ्ठदी ताँ बैहँदी देंदी लोरीयाँ, राम!'
'आयो वे वीरा चढीए उच्चडी माडी, मेरे कान्ह उसारी,
दे मेरीयाँ सइयाँ दे सुनेहडे, राम!'
'सइयाँ ताँ तेरीयाँ भैणे छोपडे पाये, वेहडे चरखडे डाहे,
तूँहीयो परदेसन बैठी दूर, नी राम!'
'चल्ल, वे वीरा, चल्लीए मायों दे कोल, भाबो सइयाँ दे कोल,
चुक्क भतीजा लोरी गावाँगी, राम!'

'आओ, भाई, चलो ऊपर अटारी पर चलें, यह अटारी मेरे प्रीतम ने बनवाई है। अच्छा, मुझे मा का समाचार तो दो।'

'मा को तो मैंने पलग पर बिठाया है, पलग से उतर कर वह पीढ़े पर बैठती है, हाथ म रंगीन अटरन लिए वह सूत अटेरा करती है।'

'ऊपर अटारी पर चलो, भाई, प्रीतम की बनाई ऊँची अटारी पर। अच्छा, भावज का समाचार तो दो।'

'तेरी भावज के बालक जन्मा है—वह है तेरा नन्हा भतीजा। उठते-बैठते वह उसे लोरियां सुनाया करती है!'

'ऊपर अटारी पर चलो, भाई, प्रीतम की बनाई ऊँची अटारी पर। हा, तो मेरी सखियो का समाचार कहो।

'तुम्हारी सखिया मिल कर सूत कातती है, आँगन म चरखे जुटे हैं। अकेली तुम ही परदेस मे बैठी हो।'

'चल भाई, मा के पास चल, भावज के पास सखियो के पास। नन्हे भतीजे को उठा कर मैं लोरी गाऊँगी!'

सावन में तो प्रत्येक बहन के भाई को आना ही चाहिए। बहन का दु ख हलका करने के लिए कुछ दिन के लिए उसे नैहर की हरियाली तीज दिखाने के लिए

पज सत्त पिन्नियाँ पा के माये मेरिए नी,
वीर मेरे नूँ भेज, सावन आइया!
उच्चडा उच्चडा चौंतडा ते सोहना मेरा वीर,
खली मैं उडीकाँ राह, सावन आइया!
रत्ते रत्ते पीढे तूँ बैठी अम्माँ-जाइए नी,
केहा मैला तेरा भेस, सावन आइया?
किस दे दुक्खे तूँ दुखी, मेरिये भैणें नी?
कौन कहे वड्डे बोल, सावन आइया?
सस्सू दे दुक्खे मैं दुखी अम्माँ-जाया वे
नणद कहे वड्डे बोल, सावन आया!
रत्ते रत्ते डोले तूँ बैठीं अम्मा-जाइए नीं,
वीर घोडी असवार, सावन आइया!

'मा, पाँच-सात पिन्नियाँ (एक मिष्टान्न) उपहार में दे कर, मेरे भाई को यहा भज, सावन तो आ पहुँचा है।'

ऊँचा-ऊँचा चबूतरा है, कितना सुदर है मेरा भाई। यहा खडी मैं उसी की राह देख रही हू सावन आ पहुँचा है।'

'बहन, तू तो लाल पीढे पर बैठी है,' भाई ने पहुँचते ही कहा। 'पर तेरा भेस यो मैला क्यो है? सावन तो आ पहुँचा है।'

'बहन, किस ने तुझे दुखी किया है? बता तो। किस ने सख्त-सुस्त बोल बोले? सावन तो आ पहुँचा है।'

'मा-जाये भाई, सास ने यो मुझे दुखी किया है। ननद ने कडवे बोल बोले, सावन तो आ पहुँचा है।'

'मा-जाई बहन, तू लाल डोली म बैठेगी। स्वय घोडी पर सवार हो कर मैं तुझे ले चलूँगा, सावन तो आ पहुँचा है।'

और फिर कुल-वधू को नैहर जाने की आज्ञा मिल सकने की एक अलग समस्या आ खडी होती है, कई बार तो भाई की आँखो के सामने अपना अपमान देख कर बहन की सतोषी आत्मा विद्रोही होने पर आ जाती है। पर वह क्या कर सकती है? शायद एकात में भाई के सम्मुख ननद, सास और ससुर का बुरा तक कर, दो चार जल-भुने शब्द कह कर, हृदय की अग्नि किसी कदर ठडी करती है

'सावन नींदाँ आइयाँ, सस्से, सानूँ पेइये घुचा।'
'मैं की जाणाँ नूँहें, कन्त नूँ पुच्छ के जावीं,
पुच्छा के जावीं, झब्बे मुड आवीं।'
'कन्ता कम्म करेंदेया, मैं घर आया वीर, सोने दा तीर,—
लुँगीं पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मैं जाणा पेइए।'
'मैं की जाणा नारे, सौहरे नूँ पुच्छ के जावी,
पुच्छा के जावीं, झब्बे मुड आवीं।'
'सौहरेया पँलघे बैठिया, मैं घर आया वीर, सोने दा तीर,
लुँगीं पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मैं जाणां पेइए।'

'मैं की जाणा, धीए, जेठ नूं पुच्छ के जावीं,
पुच्छा के जावीं, झब्बे मुड़ आवीं !'
'जेठा खूह ते बैठिया, मैं घर आया वीर, सोने दा तीर,
लुंगी पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मैं जाणा पेइए !'
''मैं की जाणा कुड़ीए नणद नूं पुच्छ के जावीं,
पुच्छा के जावीं, झब्बे मुड आवीं !'
'नणदे चरखा कत्तेंदीए, मैं घर आया वीर, सोने दा तीर,
लुंगी पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मैं जाणा पेइए !'
'भाबो, घर आई हूँ, पंजा के जावीं, कता के जावीं,
वटा के जावीं, उणा के जावीं, धुया के जावीं,
रखा के जावीं, झब्बे मुड आवीं !'
'वीरा, सुण वे मेरी नणद दा मर गया अब्बा,
मैं बन विच्च दब्बां, धडा धडा पिट्टां, मैं नहीयों जाणो पेइए—वीरा तूं जावें !'

'अब तो मुझे सावन की नींदें आने लगी हैं ! सास जी, मुझे नैहर पहुँचवा दो !'

'बहू, मैं क्या जानू ? जा कर पति से पूछ ले, पुछवा ले, और चली जा। पर बहुत शीघ्र लौटना।'

'खेत में काम करते कंत, मेरे घर आया है मेरा 'वीर'—सोने के तीर सरीखा, रेशमी लुंगी वाला, तिल्लेदार जूतीवाला, मैं नैहर जाऊँगी।'

'नारी, मैं क्या जानू ? जा कर जेठ से पूछ ले, पुछवा ले, और चली जा। पर बहुत शीघ्र लौटना।

'कुए पर बैठे जेठ जी, मेरे घर मेरा भाई आया है—सोने के तीर सरीखा, रेशमी लुंगी वाला, तिल्लेदार जूतीवाला, मैं नैहर जाऊँगी !'

'मैं क्या जानू, लाडली, ननद की आज्ञा ले ले, पूछ-पुछवा ले और चली जा। पर बहुत शीघ्र लौटना।

'चरखा कातती ननद, मेरे घर भाई आया है—सोने के तीर-सा, रेशमी लुंगी वाला, तिल्लेदार जूती वाला, मैं नैहर जाऊँगी।'

'भावज, अपने घर में नई आई है, पंजवा कर जाना, कतवा कर, सूत वटवा कर

जाना, बुनवा कर जाना, धुलवा कर जाना, ठीक से रखवा कर जाना, और बहुत शीघ्र लौटना।'

'ओजी मेरे 'वीर', बहन न धैर्य छोड कर कहा, 'ननद का पिता मर गया है, मैं उसे जगल मे दफनाऊँगी, धड-धड पीटूगी। मैं नैहर न जा पाऊँगी, तुम चलो।'

एक साथ ननद ने इतने काम बताए! और वह यह भी भूल गई कि गीत की तुक का स्वर और लय का गला घूंटा जा रहा है, भारी भरकम शब्दो के बोझ से! स्वय नारी ने नारी को कितना कष्ट पहुँचाया है! 'ननद मिट्टी की बनी मूर्ति भी क्यो न हो, भावज को वह चिढायेगी ही', पर यह सब क्यो? यहा कही कोई यह न समझ ले कि कुल-वधू नैहर नही जा पाती। "बक्करी दुद्ध ताँ दिन्दीआ, पर मीगना घोल के" (बकरी दूध तो देती है, पर मीगनी घोल कर), पजाब की यह लोकोक्ति शायद सम्मिलित कुटुब के आतरिक व्यथा-चित्र को अकित करने के लिए पनप उठी थी। बोल-बुलावा होता है, कडवी-कसैली आँखे लाल हो हो उठती है, कई-कई दिन तक मन-मुटाव चलता है। इस से क्या? एक दिन कुल-वधू नैहर जाती ही है। नैहर में आ कर कन्या का हृदय फिर पहली सी स्वतत्रता का छोर छूता है, 'वीर' को सुना-सुना कर स्वर भरा जाता है —

पेके किस धरमी बनाये, गलियाँ विच्च दुड्गे लाये!
पेके मोतीचूर दे लड्डू, जेहडा खाये सोई ललचाये!
सौहरे किस पापी बनाये, उड्डदे भौंर पिन्जरे पाये!
सौहरे बूर दे लड्डू, जेहडा खाये सोई पच्छताये!

किस धर्मी ने नैहर की रचना की थी? इस की गलियो में छलाँगें कूदी हू। नैहर मानो मोतीचूर का लड्डू है, जो भी इसे खाता है, ललचाता रहता है। किस पापी ने ससुराल की रचना की थी? उडते भ्रमरो सी कन्याए पिजरे मे डाल दी गई है! ससुराल तो निरा लकडी के बूर का लड्डू है, जो भी इसे खाता है, पछताता है।

पजाबी बहन के पास लोकगीत की मीरास मौजूद है। पुराने पजाब की आत्मा, जीवन की दुख-सुख से परिपूर्ण गगाजमुनी कहानी, कल्पना और घटना का साँझा इतिहास, इन गीतो के एक एक शब्द मे व्यापक है।

पिछले वर्ष मैं अपने ग्राम में गया, तो चदी वहा थी। "मैं यहा नैहर मे आती हू,

तो तुम न जाने कहाँ होते हो? —उस के ये शब्द बहन के हृदय से निकले थे। और फिर उस से अनेक गीत सुनने को मिले थे। इधर कुछ वर्षों से उस के स्वभाव में कुछ परिवर्तन भी हुआ है। पहले वह गीत सुना देती थी, इन का मूल्य न माँगती थी। अब वह कुछ गीत सुनाती है तो कुछ सुनने की शर्त पहले ही लगा देती है।

अब भी चंदी गाती है। संगीतज्ञों की भाँति वह गले से कुश्ती नहीं लड़ती। उस के गीतों की सादी तानें बहन-सुलभ भावनाओं को सजीव कर सकने की शक्ति रखती हैं। और न वह गीतों की आलोचना करती है। उसे आलोचना की आवश्यकता भी क्या पड़ सकती है? वह केवल गा सकती है। लोकगान उस का चिर-सखा है। आलोचक तो यहाँ कहेगा कि हम इन गीतों में जो स्वयं डाल सकें, वही फिर निकाल सकते हैं। पर चंदी बहन है, और बहन के नाते इन गीतों का आलोचक से कहीं अधिक रस ले सकती है। मैंने भी उस के सम्मुख कभी आलोचनात्मक चर्चा छेड़ने से प्रायः परहेज़ किया है। हाँ, थोड़ी थोड़ी सरस टीका-टिप्पणी को मैंने आवश्यक समझा है, और वह इस पर भी लाल-पीली हो उठती है। गीत शांति से सुने जाने चाहिए। इसे वह शायद एक नियम के रूप में पेश करती है। ज़्यादा बात बनाना, बात की और चप्पे हो रहे, यह न कर के बात की खाल उतारना या उस के अपने शब्दों में 'गीतों की अंतड़ियाँ' टटोल-टटोल कर बाहर निकालना, यह सब उसे नापसंद है। समझने समझाने से कहीं अधिक तो रस में डूबने का महत्त्व है, यही शायद उस का प्रिय दृष्टिकोण है।

उस का भाई चनण उस के गीतों की ओर अब भी कोई ख़ास आकर्षण नहीं पाता, यह वह जानती है। अब वह चनण की शिकायत नहीं करता। चनण उस के शहर में आता है, कभी उसे ससुराल में मिल भी जाता है, और यह क्या कम बात है? अब चंदी गाती है: 'सरवन दार कुड़ियो बात चार्ल भणा नें मिल औन्दे!' (सखियों, वीर हों तो सरवन से, जो बाहर ऊँट चराने जाते हैं तो भावावेश में बहनों से मिल कर ही शाम को घर लौटते हैं!) उस का संकेत बहुत कुछ चनण की ओर रहता है। कई बार चनण ने ऐसा किया भी तो है, ऊँट चराते चराते उस चंदी के ससुराल जाने का मन भी, और कई शाम को चंदी से मिल कर घर लौटा तो कोई जान भी न पाया कि वह दिन भर ऊँट चराता रहा या सफ़र करता रहा। चनण के ऊँट को चंदी बहुत प्रिय समझता है, कितने ही गीत ऊँट की प्रशंसा में बन गए हैं, और चंदी को इन में स्नेह है

तेरे वीर दा बागडी बोता, उठ्ठ के मुहार फड लै !

तुम्हारे 'वीर' का ऊँट खास बागड की पैदायश का है साधारण नही, उठ कर इस की मुहार पकड लो न !

लण्डे उठ्ठ नूँ शराब पियावे, भैण बख्तौरे दी !

दुम-कटे ऊँट को बख्तौरे की बहन शराब पिला रही है।

बोता एयो लशके, जिवें कलीयाँ घटाँ विच्च बगला !

ऊँट कितना चमकता है, जैसे वह काली घटाओ का बगुला हो !

जेहडा डण्डीयाँ हिल्लण न देवे, बोना ल्याईं ओह बीरना !

जिस पर सवार हो कर चलते समय मेरे कान की बालिया न हिले, अजी ओ बीरन, ऐसा ऊँट मेरे लिये लाना !

बोता वीर दा नजर न आवे, उडुदी धूड दिस्से !

'वीर' का ऊँट कही नजर नही आता, खाली धूल उडती देख रही हू !

किते नाईयाँ दा टट्टू न लियाईं,
बोता लियाईं सत्त सौ दा !

देखना कही मेरे लिए नाइयो का टट्टू न ले आना। मुझे लिवाने आए, तो पूरे सात-सौ रुपये के मोल वाला ऊँट लाना !

जदों वेख ल्या वीर दा बोता,
मल्ल वाँगूं पैर चुक्कदी !'

उस ने 'वीर' का ऊँट आता देख लिया है, तभी वह पहलवान-सी चाल से पैर उठाती है !

बग्गा बोता ते कन्नाँ तों काला,
बीहो दे विच्च आवे बुक्कदा !

सफेद ऊँट है, उस के कान काले है, 'बुक्कता' हुआ—गरजता हुआ वह गली मे आ रहा है।

खालै वे वीर दिया बोतेआ !
तारा मीरा पा'ता वड्ढ के !

हे मेरे 'वीर' के ऊँट, लो खालो, तुम्हारे सम्मुख मैंने 'तारा-मीरा' काट कर डाल दिया है !

मेरे सज्जरे वन्हाये कन्न दुख दे,
हौली हौली तुर बोतिया !

मैंने इन्ही दिनो कान बिंधाए है, उन मे पहनी बालिया हिलती है तो पीडा होती है, अजी ओ ऊँट, जरा धीरे गति से चलो न !

'बोते तेरे निज्ज मैं चढ़ी, जुत्ती डिग्गपी सतारेयां वाली !'
'डिग्गपी तां डिग्ग पैण दे, पिण्ड जा के समा दूं चली !'

'तुम्हारे ऊँट पर मै न बैठती तो अच्छा होता। हाय पथ मे वही मेरी सतारो-जडित जूती गिर गई !' गिर गई तो बला से परवाह न करो, ग्राम मे चल कर मै, एक क्या, चालीस जूतिया बनवा दूगा !'

उठ्ठ आपणी जबानो बोले, न डर भैणे मेरिए !

ऊँट खुद अपनी जबान से कह रहा है–'बहन, चढते समय डरो मत।'

तेरे बोते दी मुहार बन जावां, स्योने दे तबीतां वालिया !

जी चाहता कि मै तेरे ऊँट की मुहार बन जाऊँ ! अजी ओ सोने के 'तबीत' पहनने वाले !

ऐतकीं फसल दे दाणे, लाईं वीरा बग्गे उठ्ठते !

इस फसल से जितना रुपया मिले, उस से एक सफेद ऊँट खरीद लेना, भाई !

पंजा दी लिआई लोगडी, मैं उट्ठ लई हार बनावां !

पाँच रुपये की 'लोगडी' ले आना, मैं ऊँट के लिए हार बनाऊँगी !

और जब चढ़ी ये सब गान गाती है, चनण का ऊँट उस के हृदय मे बसता है। चनण तो 'उसे बहन'—मा-जाई—मानता ही है उस का ऊँट भी तो उसे बहन कह कर

पुकारता है—वह कहता है, डरो मत, प्रेम से मुझ पर सवार हो लो न, बहन !

अरब की एक लोक-कथा में यह बताया गया है कि एक कबीले के सब लोग खुदा से गुमराह हो गए थे, और इसी जुर्म मे वे सब के सब आदमी की जून से ऊँट की जून मे परिणत कर दिए गए थे। पजाब के जन-साधारण तक अभी यह कथा नही पहुँची।

चदी को शायद यह मालूम नही कि उस के ये गान जीवन मे सदियो तक नही टिकने के, यो किताबो मे भले ही बद हो जायें। जमाना बदल रहा है, चीजो की कीमते बदल रही है। खुद जन-साधारण में भी अपने त्योहारो और गान-नृत्य आदि मे पहली-सी श्रद्धा और आस्था नही रही, गाते वे अब भी है, पर वह पहली बेफिकरिया, वह अवकाश की शात घडिया, अब कहा है ?

हमारा साहित्य क्या बहन का गीत न सुनेगा ? लोकगीत के प्रति यह उपेक्षा का भाव कब तक बना रहेगा ? कब हमारे देश में कोई पुश्किन जन्म लेगा, कोई रौबर्ट बर्न्स, कोई येट्स ! बहन का गीत किसी अमर साहित्यसेवी के पारस-स्पर्श की प्रतीक्षा मे मेरे घर के पास की नीम के पत्तो की तरह क्या यो ही झर जायगा ?

अनागारिक गोविंद और उन की चित्रकला

[लेखक—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

अनागारिक ब्रह्मचारी गोविंद एक कुशल चित्रकार हैं। वह बौद्ध दर्शन तथा पुरातत्व के एक श्रमशील विद्यार्थी भी हैं। यह प्राचीन बौद्ध भिक्षुओं के आदर्शों से प्रभावित हो कर कला और धर्म के बीच सामंजस्य स्थापित करने के कार्य को अपने जीवन का मुख्य ध्येय मानते हैं।

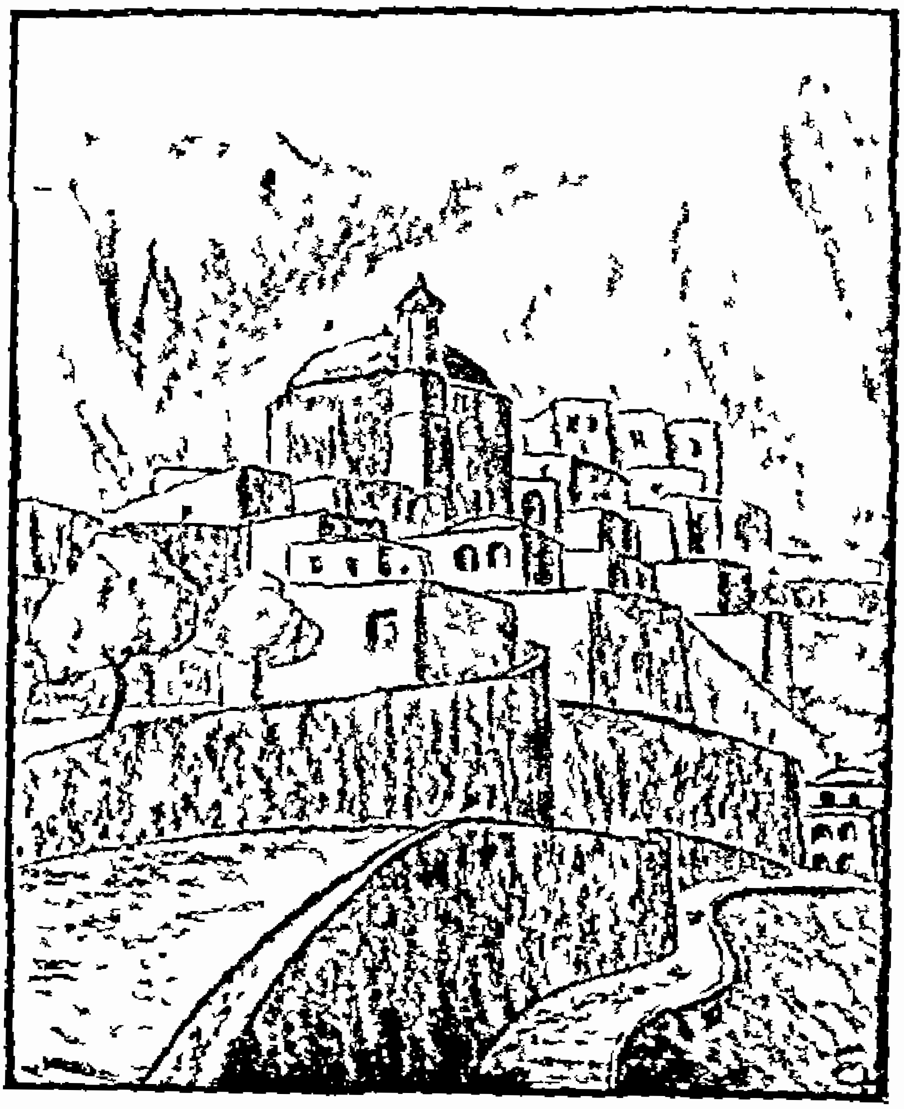
अनागारिक गोविंद का पहला नाम अर्न्स्ट हाफमैन था। इन का जन्म जर्मनी के सैक्सनी प्रांत में मई १८९८ ई० में हुआ था। इस प्रकार इन की अवस्था इस समय प्राय ४१ वर्ष की है। बाल्यावस्था से ही यह धार्मिक प्रवृत्ति के थे, और जब से इन्हों ने स्वतंत्र-रूप से विचार करना आरंभ किया, तभी से यह विभिन्न-धर्मों तथा दर्शनों के अध्ययन में लगे। इन्हों ने सभी धर्मों में सुंदर और सच्चे विचार पाए, फिर भी इन्हें अपनी साधना के लिए कोई निश्चित मार्ग न मिला। अंत में इन्हों ने अपने विचारों को स्थिर करने के उद्देश्य से संसार के तीन महान् धर्मों अर्थात् बौद्धधर्म, ईसाई धर्म, तथा इस्लाम का तुलनात्मक अनुशीलन आरंभ किया। आरंभ में उन का ऐसा विचार था कि ईसाई धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठतर सिद्ध होगा, परंतु ज्यों-ज्यों वह अपने विषय में पैठे त्यों-त्यों उन्हें बौद्धधर्म ने अधिक आकृष्ट किया, और यह केवल इसी धर्म का अध्ययन करते रहे। यहां तक कि आपने अपनी भाषा, जर्मन में, बौद्धधर्म पर एक ग्रंथ लिख कर प्रस्तुत कर दिया। जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ उस समय लेखक की अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। इस पुस्तक का प्रचार जर्मनी में तो हुआ ही, दूसरे देशों में भी, बौद्धों में इस की माँग हुई, और इस का एक अनुवाद जापानी भाषा में हुआ जिसे तोकियो की इंपीरियल यूनिवर्सिटी ने प्रकाशित किया।

अनागारिक गोविंद ने फ्रीबर्ग की यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र में शिक्षा पाई और फिर इटली में पुरातत्व का अध्ययन करते रहे। विगत महायुद्ध के बाद से यह इटली में,

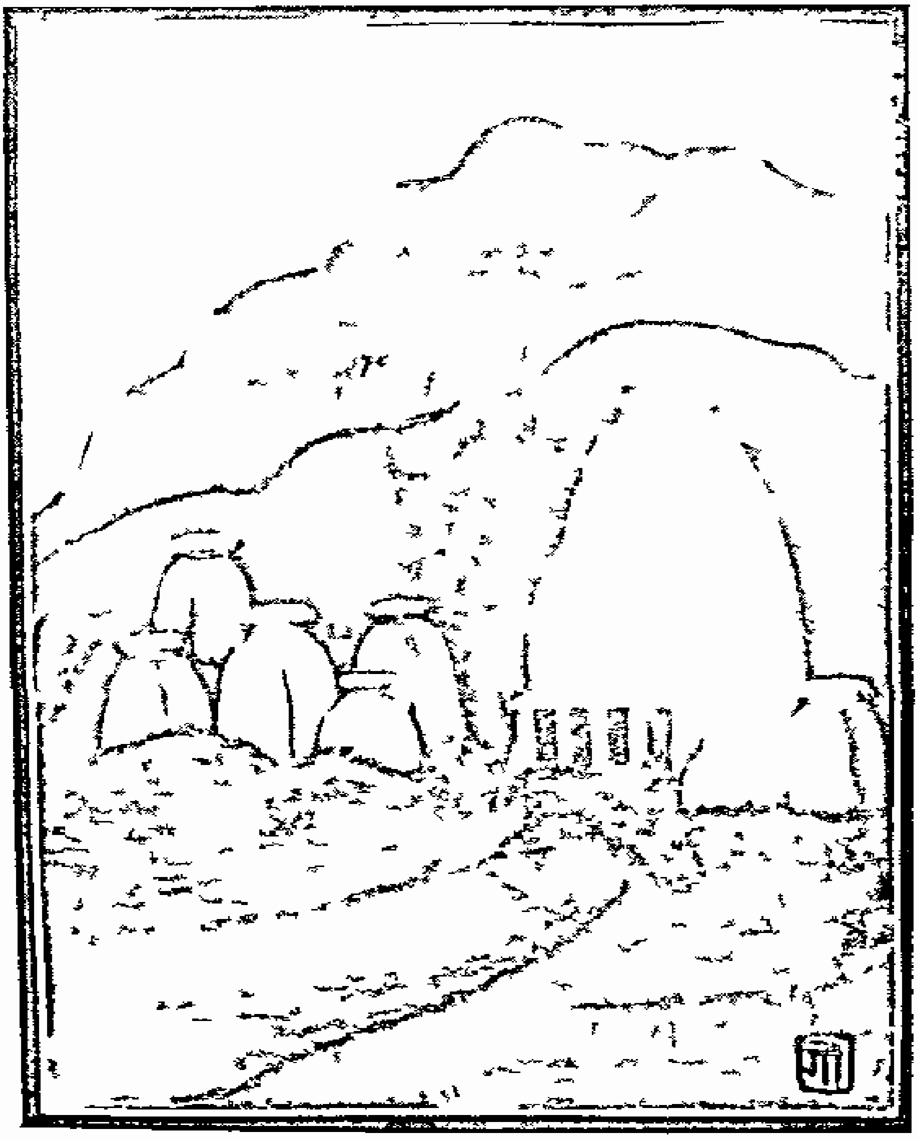
नेपल्स के निकट केप्री नामक टापू में बस गए थे। केप्री समस्त यूरोप के विचारकों के मिलने-जुलने की जगह और कला तथा साहित्य का एक अंतर्जातीय केंद्र-सा है। यहा पर वह अंतर्जातीय ख्याति के कलाकारों और कवियों तथा लेखकों के संपर्क में आए। मुझे यह जान कर किंचित कौतूहल हुआ कि यह प्रसिद्ध रूसी साहित्यिक गोर्की के पड़ोसी रहे हैं। इन के घर पर कभी-कभी कलाकार तथा कविगण एकत्र हुआ करते थे और उन्हीं के प्रोत्साहन से यह चित्रकार के रूप में जनता के सामने आए। इन की चित्रकला की पहली प्रदर्शनी, यही पर, केप्री में, हुई थी।

अनागारिक गोविंद तीन महाद्वीपों में खूब घूमे फिरे हैं। विभिन्न बौद्ध संगठनों के संबंध में इन्हों ने समस्त यूरोप की यात्रा की है। जर्मन सरकार के शिक्षा-विभाग से वज़ीफा पाकर यह समस्त उत्तरी अफ्रीका में अटलांटिक महासागर से ले कर ईजिप्ट (मिश्र) तक पुरातत्व-संबंधी खोज का कार्य करते रहे हैं। जिस समय यह सन् १९२८ के अंत में लंका में आए उस समय यह जर्मनी की, बौद्ध-साहित्य की सब से बड़ी प्रकाशन-संस्था म्यूनिक की 'बनारस-वरलाग' के साहित्यिक मंत्री तथा उस संस्था की पत्रिका के संपादक थे। लंका में ही, सन् १९२९ में यह बौद्ध भिक्षु हो गए और सन्यास ले कर 'अनागारिक' वर्ग में दीक्षित हुए। तब से यह बर्मा, तिब्बत और हिंदुस्तान में भ्रमण करते रहे हैं और बौद्ध तीर्थों के दर्शन तथा बौद्ध-साहित्य और पुरातत्व के अनुशीलन में समय व्यतीत कर रहे हैं। इन के उपर्युक्त दूर देशों के भ्रमण के परिणाम-स्वरूप हमारे सामने वे विविध चित्र-पट हैं जो कि चित्रकार ने इटली, अफ्रीका, तिब्बत, लंका, बर्मा और हिंदुस्तान में तैयार किए हैं। यह चित्रपट इन विभिन्न देशों के प्राकृतिक दृश्यों तथा स्थापत्य के विशाल नमूनों को अंकित करते हैं।

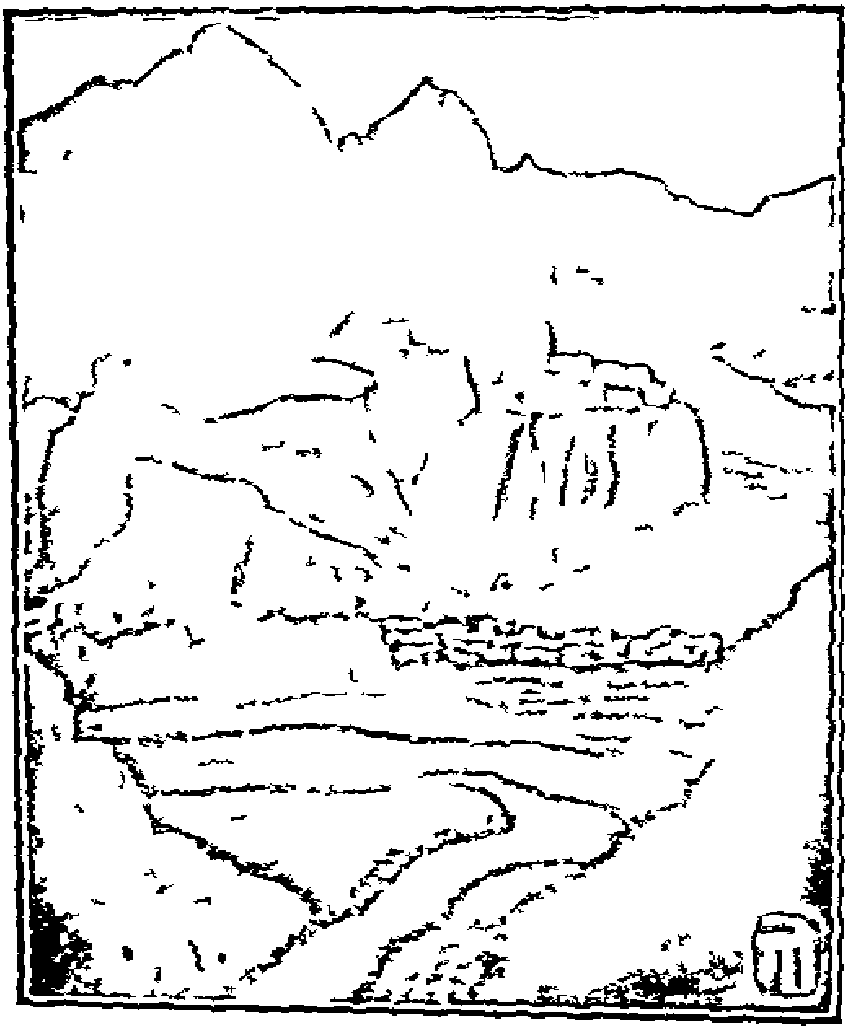
हिंदुस्तान में अनागारिक गोविंद की चित्रकला का पहला प्रदर्शन सन् १९३४ में, कलकत्ता में, इंडियन सोसाइटी अव् ओरियंटल आर्ट के तत्वावधान में हुआ था। वहां के कला के केंद्रों में इन चित्रों ने बहुत मनोरंजन उत्पन्न किया था और इन की चित्रांकण-संबंधी प्रतिभा बहुमत से स्वीकृत हुई थी। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने इन के विषय में लिखा था—"यद्यपि यह बौद्ध-पुरातत्व के गंभीर विद्यार्थी हैं, फिर भी अपने चारों ओर के सौंदर्य को ग्रहण करने के निमित्त यह सदा जागृत रहते हैं, और इन के कुछ चित्र इस बात के प्रमाण हैं कि इन्हों ने प्रकृति से अंतरंग परिचय प्राप्त किया है। इन की शैली में बड़ा बल



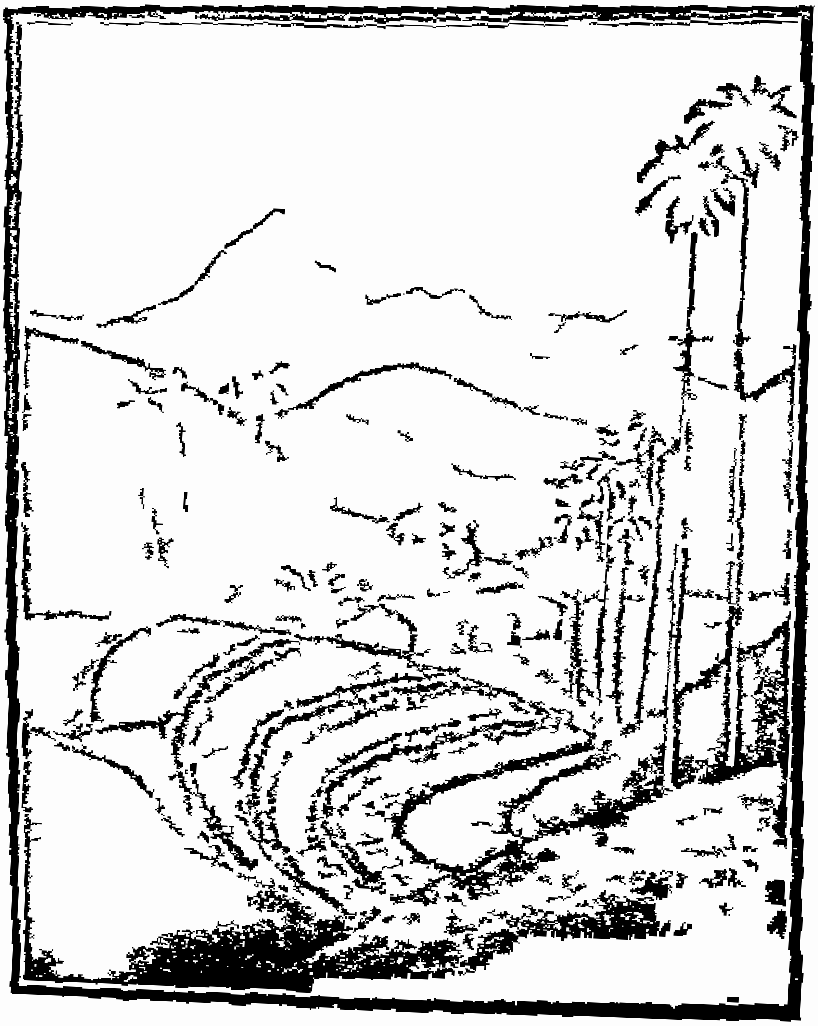
पोसिटानो (इटली)



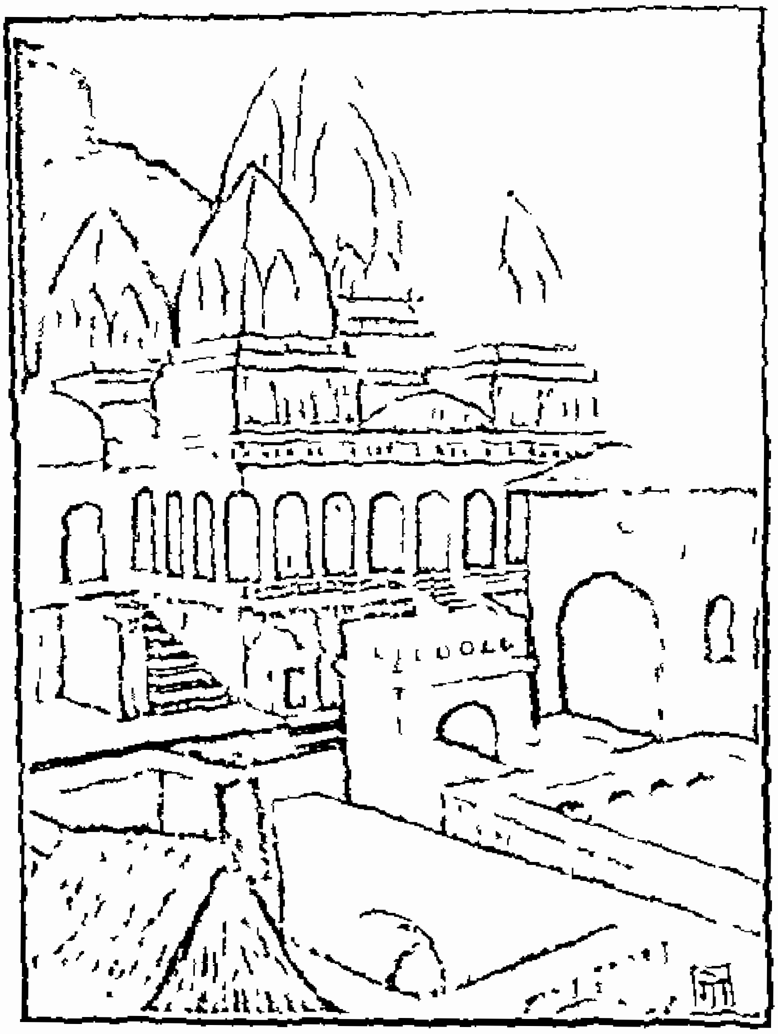
हिमालय में हिंदू मंदिर



तिब्बत का एक पर्वतीय दृश्य



अलागला पर्वत (लंका)



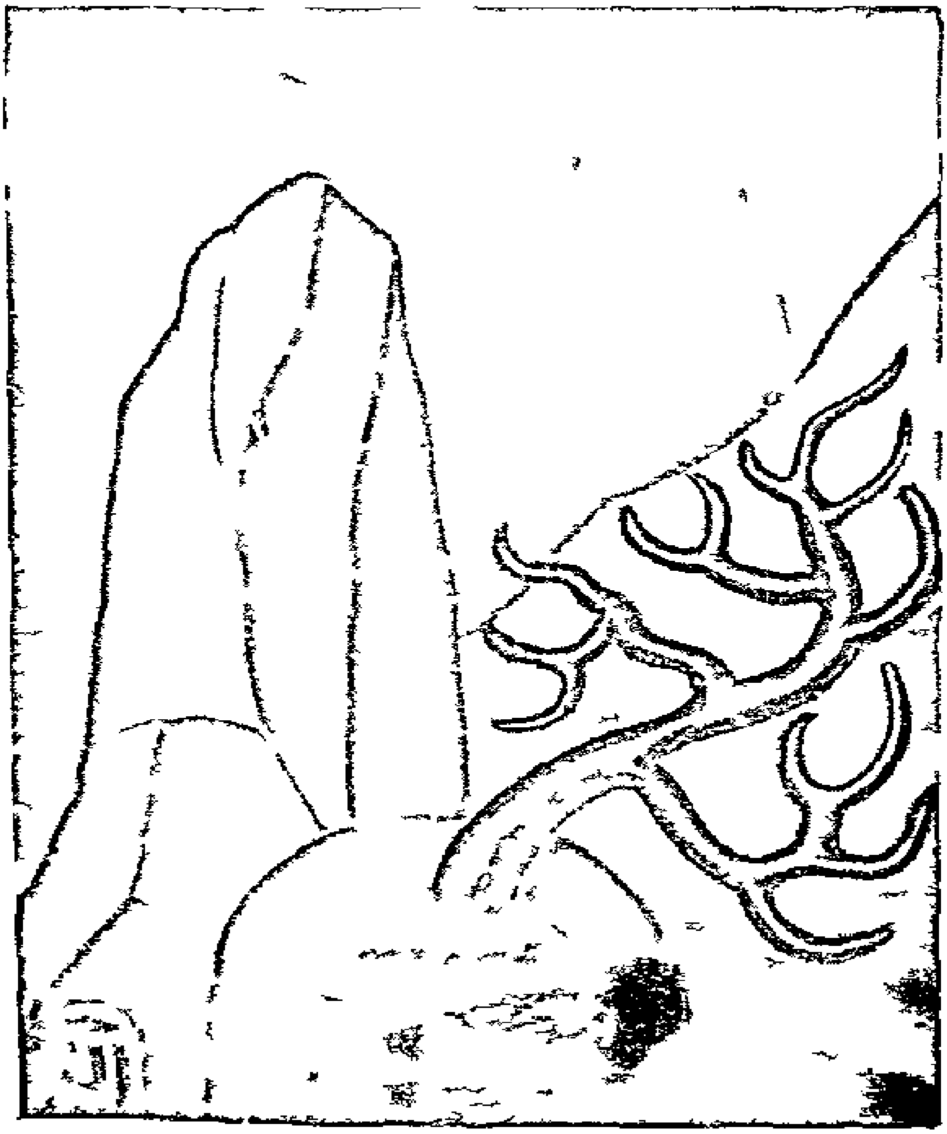
ब्रह्मकुंड, राजगिर



संत मिलारेपा



स्तूपासीन बुद्ध



मेरु पर्वत

है और इन की कल्पना भी शक्तिशालिनी है।" श्री नदलाल बोस, जो स्वय एक बडे कलाकार है इन के विषय में लिखते है —"इन के चित्रो मे एक सादगी और शाति का वातावरण है, यद्यपि ये चित्र गति तथा रग से परिपूर्ण हैं। यह नक्काशी की भाति सुस्पष्ट और शिल्पकला की श्रेष्ठ कृतियो की भाँति सुव्यवस्थित है। "

सन् १६३६ के आरभ में अनागारिक गोविंद के चित्रो के प्रदर्शन इलाहाबाद में रोरिक सटर अव् आर्ट ऐंड कल्चर के तत्वावधान में और लखनऊ म गवर्नमेंट स्कूल अव् आर्टस् ऐंड क्राफ्ट्स मे हुए। इन दोनो प्रदर्शनो ने कला मर्मज्ञो का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया और इस बात का अनुभव किया जाने लगा कि यह ऐसे कलाकार हैं जिन की कृतियो की उपेक्षा नही हो सकती, जिन की रग-व्यवस्था अपनी विशेषता और अनोखापन रखती है, और जो गहन भावो को उपयुक्त ढग से प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील है। सन् १६३६-३७ की सयुक्त-प्रातीय बडी प्रदर्शनी मे भी आप के चित्र लखनऊ म प्रदर्शित हुए थ।

अनागारिक गोविंद के चित्रपट, जिन की सख्या लगभग २५० के है, पाँच वर्गों म विभक्त है। इन मे से चार वर्ग तो चार भिन्न भूभागो से सबद्ध है, अर्थात् इटली, उत्तरी अफ्रीका, हिंदुस्तान (जिस म लका और वर्मा सम्मिलित है) और तिब्बत। पाँचवें वर्ग के चित्र लाक्षणिक या साकेतिक है। यह सभी चित्र अधिकाश पैस्टल (रगीन खरिया) से काले कागज़ की भूमि पर अथवा चारकोल (कोयला) स सफेद कागज़ की भूमि पर अकित हैं। केवल रगीन खरिया के सहारे चित्रकार आश्चर्य-जनक प्रभाव उत्पन्न कर सका है, यह इन चित्रो का प्रत्येक देखने वाला स्वीकार किए बिना नही रह सकता। कुछ चित्र चित्रकार ने वाटर-कलर (पानी के घोल के रगो) में भी चित्रित किए हैं।

साधारणत चित्रकार की प्रतिभा ऐसी उच्चकोटि की है कि इन म से केवल थोडे से चित्रो का चुन लेना कदाचित् औरो के साथ अन्याय करना होगा। स्थानाभाव से केवल कुछ चित्रो का निर्देश यहा पर हो सकता है। इटली के चित्रो के वर्ग में कदाचित् 'कैप्री—माउट सोलेरो' शीर्षक चित्र सब से प्रभावशाली हुआ है। चित्र ग्रीष्म-कालीन सूर्याभा म डूबा हुआ जान पडता है। नीले रग के समुद्र के भीतर स उठता हुआ गेरुआ और हरे रगो से भरा हुआ सोलेरो का पहाड अत्यन्त रम्य दीखता है। कैप्री में चाँदनी रात' उन स्वप्नो को चित्रित करता है, जहा चित्रकार न अपन युवावस्था के अनेक

वर्ष व्यतीत किए हैं। चित्र में चाँदनी का प्रदर्शन बहुत सुदर ढग से हुआ है। इस वर्ग के दो कोयले से अकित चित्र भी विशेपरूप से वर्णनीय हैं। "गुफाएं" शीर्षक चित्र यद्यपि वास्तविक स्थल चित्रित करता है, फिर भी एक लाक्षणिक चित्र-सा जान पडता है। इन गुफाओ मे चित्रकार ने कई वर्षों तक एकात-सेवन तथा ध्यान किया है। "भयावह घाटी" दक्षिणी इटली मे एक ऐसी घाटी है जहा पर किसी समय डाकुओ के अड्डे थे। अब वह घर सुनसान खाली पडे हुए हैं। इन्ही में से एक में चित्रकार ने एक मित्र के साथ रात बिताई थी। इस विचित्र अनुभव के स्मृति-रूप यह चित्र अकित किया गया है।

अफ्रीका-सबधी चित्रो मे दो चित्र सर्वथा विलक्षण हैं। एक तो वह है जिस का शीर्षक चित्रकार ने "अरबी पवित्र-गेह" रक्खा है। कितना सादा और प्रशान चित्र है! एक नीलिम-हरित वातावरण मे एक छोटे-से पूजागृह का साध्य चित्रण किया गया है। पृष्ठ-भूमि मे अधकार ताल-वृक्षो का स्पर्श कर चुका है। इस चित्र में मानो इस्लाम की प्रशात आत्मा प्रतिबिंबित होती है। दूसरा चित्र "अवसन्न ज्वालामुखी पर्वत" का है। समुद्र-तट पर स्थित इस लालिम पर्वत के सामने के झोपडो में एक विचित्र निर्जनता है। अफ्रीका के चित्रो मे अधिकाश इमारतो या मसजिदो के हैं। चित्रकार इन इमारतो के साथ-साथ उस देश के वातावरण को बडी सफलता के साथ उपस्थित कर सका है। अनागारिक गोविंद स्वय स्थापत्यकला के विद्यार्थी है और उन का कहना है कि "मेरी समझ में मानवी सभ्यता का यथार्थ उद्गार स्थापत्य-कला में मिलेगा। स्थापत्य-कला द्वारा ही किसी देश, धर्म, या सभ्यता की आत्मा प्रतिबिंबित हो उठती है।" "कैरुआ की सध्या" और "छत और मीनार" शीर्षक चित्रो मे उत्तरी अफ्रीका के स्थापत्य और नगर-निर्माण का अध्ययन किया गया है। दोनो ही चित्र सुदर बन पडे हैं। हिंदुस्तान के चित्रो में "ब्रह्मकुड, राजगिर" प्रमुख है। चित्रकार ने इमारतो से घिरे हुए मदिर द्वारा यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि हिंदुस्तान में धार्मिक जीवन एक प्रकार से जनता की आवश्यकताओ का अग है, इसी लिए मदिर को निवासो से दूर बनाने का प्रयास नही किया गया है वरन् मदिर ही की मानो छत्रछाया में निवास-गृह निर्मित हुए है। "शातिनिकेतन बगाली गाँव" में चित्रकार ने बगाली गाँवो की बस्ती का नमूना प्रस्तुत किया है। तमाल-वृक्षो से घिरी हुई झोपडियो का चित्र अत्यत सजीव है। इसी प्रकार "हिमालय का हिंदू मदिर" भी बडा विलक्षण है। यह पर्वतीय दृश्य

का एक सहज अग ज्ञात होता है। और इस मे भी वातावरण सफल रूप मे प्रस्तुत हुआ है।

तिब्बत-सबधी चित्रो मे विषयो की बडी विभिन्नता है। हमे न केवल प्राकृतिक दृश्यो और वास्तुकला का चित्रण मिलता है वरन् देवी-देवताओ का भी। पश्चिमी तिब्बत में कलाकार ने खूब भ्रमण किया है। इस प्रदेश मे उस ने मनुष्य और प्रकृति का ध्यान से अध्ययन किया है। उस का कहना है कि "यह रहस्यमय देश ससार के सभी भूभागो से नितात भिन्न है—क्या धरातल की ऊँचाई, क्या वायु की पवित्रता, क्या प्रकृति के स्वच्छ रगो का खेल, क्या आकाश की गहनतम नीलिमा—सभी बातो मे अनोखा है, यहा की सपूर्ण चेतना ही भिन्न है।" अपने इस अनुभव को चित्रकार ने रेखाओ और रगो म बाँधने का प्रयत्न किया है।

"झील और हरित भूमि" में तिब्बती प्राकृतिक दृश्य का हमे एक सुदर उदाहरण मिलता है। पृष्ठ-भूमि मे अनुर्वर पहाडो की सपाट चट्टाने है, मध्य म गहरे नीले जल की विशाल प्रशात झील, सामने एक छोटा रम्य हरित स्थल है। यह चित्र समुद्रतल से १४००० फीट ऊँचाई के एक विस्तृत निर्जन स्थल का है जहा प्रकृति की नग्न सुदरता का चित्रकार ने परिचय प्राप्त किया था। चित्रकार के अधिकाश अन्य चित्रो की भाँति यह भी गहरे रगो में अकित है। "लामायुरु मठ" तिब्बत के धार्मिक जीवन का एक जागृत केंद्र है इस चित्र द्वारा हमे उस विशाल निर्जन परतु रजित प्रदेश के वातावरण का आभास मिलता है जिस के द्वारा वहा का धार्मिक जीवन प्रभावित होता रहता है। तिब्बती वास्तुकला का अत्युत्कृष्ट उदाहरण हमें "लाहुल के राजमहल" में मिलता है, जो कि ल्हासा के दलाई लामा के राजमहल से मुकाबला करता है। "स्तूपासीन बुद्ध" की कल्पना एक विशिष्ट कल्पना है। एक छोटे स्तूप के सामने विनत होते हुए आराधक के मन म जिस बुद्ध की मूर्ति प्रकट होती है वही स्तूप में से छाया-सी प्रतिबिंबित हो रही है। बुद्ध के तेजोमडल के ऊपर एक दूसरी बोधिसत्व की प्रतिमा है जो कि आराधक को आशीर्वाद द रही है। तात्पर्य यह है कि आराधक की आराधना आशीर्वाद का रूप ग्रहण कर के उस के प्रति वापस आती है। यह चित्र भी तिब्बती चित्रो के वर्ग में है। इस वर्ग का एक और चित्र विशेष रूप से वर्णनीय है, और वह है "कुरुकुल्ला"। यह बोधिसत्व का रौद्र-स्वात्मक नारी-रूप है और तिब्बत की परपरागत शैली में अकित है और यह सूचित करता है कि चित्रकार ने

तिब्बत में निवास करते हुए कितने ध्यान से वहा की धार्मिक परपरा के अनुशीलन का प्रयत्न किया है। इस देवी की समता बहुत कुछ हमारी काली के रूप से है—वही विकराल भाव-भगी इस में भी है, और गले मे मुडमाल देख कर भी काली का धोखा होता है।

चित्रकार के अतिम वर्ग के चित्र साकेतिक है। अपने अन्य चित्रो मे वह वाह्य रूपो, रगो तथा आकारो का आश्रय ग्रहण करता तथा उन का अनुकरण करता रहा है। उन में चित्रकार के अपने विचार, अपनी भावनाए अधिकरण के रूप मे आ पाई है। इन साकेतिक चिह्नो मे वह अपने आतरिक भावनाओ तथा चितन को, जो रूप, रग, आकार से मुक्त है इन सीमाओ में लाने का प्रयत्न करता है।

इन चित्रो में उन की वाह्य रूप-रेखा उतनी ही आकस्मिक है जितना कि अन्य चित्रो में रचयिता की निजी भावनाओ का पुट था। इन चित्रो में सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभवो को रेखाओ और रगो द्वारा व्यक्त करने का एक दुरूह कार्य चित्रकार ने सपादित करने का प्रयत्न किया है। इन में उसे कितनी सफलता मिली है, वतलाना कठिन है। यह चित्र ऐसे है भी नही जिन की विशेष व्याख्या की जा सके। यह चित्रकार के निजी आध्यात्मिक अनुभवो को व्यक्त करते है। इस वर्ग की मुख्य रचनाए वह है जो ध्यान की विविध अवस्थाए तथा विकास के विविध क्रम चित्रित करती है। इस वर्ग का एक चित्र 'मेरु पर्वत' है। यह हमारे लिए विशेष दिलचस्पी की वस्तु है, क्योंकि इस के द्वारा हमें इस बात का परिचय मिलता है कि किस प्रकार एक पाश्चात्य विचारक—जिस ने हमारे देश को अपना घर वना लिया है—हमारी रूढियो से प्रभावित होता है और उन के द्वारा विचारो का नव-सचार प्राप्त करता है।

साधारणत जो प्रभाव इन चित्रो का पडता है वह यह है कि इन मे कलाकार गहन प्रेरणा से प्रेरित है। वह कला को कौतूहल की वस्तु नही समझता। अधिकाश चित्र प्राकृतिक दृश्यो तथा इमारतो के है, फिर भी उन में हमे चित्रकार के मनन के गुण का आभास मिलता है। अथवा जैसा कि कलाकार नदलाल वोस ने बताया है "वह रग और आकार प्रदर्शित करते है अवश्य, परतु यह वह रग और आकार है जिसे कि कलाकार ने अपने ध्यान और प्रकृति के अन्यतम निरीक्षण द्वारा प्राप्त किया है।"

अनागारिक गोविंद कवि भी है। उन्हो ने जर्मन भाषा मे दो छोटी कविता-पुस्तके प्रस्तुत की है। इन के शीर्षक है "रिद्मश अफारिजमेन" (पद्यमय सूक्तिया) (१९२७)

और "जेदाक्न ऊँद जेसिचे" ("विचार और कल्पनाए") (१६२८)। इन पुस्तकों में हमें कलाकार के गहन विचारों और उस की कोमल कल्पनाओं का परिचय मिलेगा। अनागारिक गोविंद ने बौद्ध दर्शन, और मनोविज्ञान पर एक सग्रह ग्रथ भी प्रकाशित किया है जो पाली-अभिधम्म पर आश्रित है। यह ग्रथ सन् १६३१ में प्रकाशित हुआ था और जर्मनी में सरकारी सहायता से प्रकाशित हुआ था। कलाकार श्री रवींद्रनाथ ठाकुर के विश्व-विख्यात शातिनिकेतन में, 'विश्वभारती' में कई वर्ष तक शिक्षक भी रहा है। अनागारिक गोविंद ने अन्य भारतीय यूनिवर्सिटियों में भी बौद्ध विषयों पर अनेक व्याख्यान दिए है। अभी हाल में पटना यूनिवर्सिटी ने इन्हे "प्राचीन बौद्ध दर्शन" पर व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया था और शीघ्र ही उन के व्याख्यान पुस्तक-रूप में प्रकाशित होंगे। बौद्ध-पुरातत्व पर आप के कई व्याख्यान जो शातिनिकेतन में दिए गए थे अब क्रमश प्रकाशित हो रहे हैं। स्तूपों के लाक्षणिक सकेतों के कुछ पहलुओं के विषय पर दो खड १६३५ और १६३६ में प्रकाशित हो भी चुके है। इन्हें इटर्नेशनल बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटी असोसिएशन ने प्रकाशित किया है। अनागारिक गोविंद इस सस्था के स्वय जेनरल सेक्रेटरी भी है। सन् १६३७ में बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी के तत्वावधानमें भी अनागारिक गोविंद स्तूप निर्माण-कला पर सारगर्भित व्याख्यान दे चुके हैं। उन की एक और कृति भी विशेष रूप से उल्लेख्य है। वह है आर्ट ऐंड मेडिटेशन जिस में कला और साधना पर लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर सूक्ष्म विवेचन किया है। यह विषय भी पहले व्याख्यान के रूप में इलाहाबाद के रारिक सेंटर अव् आर्ट ऐंड कल्चर के तत्वावधान में जनता के सामने आ चुका था।

महात्माओ के जीवन-वृत्त तथा प्रवचन सरक्षित हुए हैं वरन् इन के चित्र भी। अनागारिक गोविंद इन की नकलें लाए हैं। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित होगी, उस समय, ऐसी आशा है कि यह भारतीय इतिहास के कुछ धुंधले पृष्ठो को प्रकाशित करेगी।

विगत फरवरी में अनागारिक गोविंद के नाम पर इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्यूजियम में राय राजेश्वर बली महोदय के हाथो एक 'हाल' का उद्घाटन हुआ जिस में कि कलाकार की अनेक मौलिक कृतिया सुरक्षित और एकत्रित हुई हैं। इन के आधार पर गोविंद की कला का समुचित अध्ययन किया जा सकता है।

कलाकार, कवि, यात्री और व्याख्याता—इन सभी रूपो में अनागारिक गोविंद अपनी प्राथमिक प्रेरणा को—कला और धर्म के बीच के सामजस्य को प्रख्यापित करने के कार्य को—अग्रसर कर रहे है। उन्हो ने एक स्थल पर कहा था कि "मैं नई पीढी का इसे एक कर्तव्य मानता हू कि वह बोधिसत्व की भावना से प्रेरित ऐसे धार्मिक मनुष्यो को उत्पन्न करे जो कि ससार से मुख न मोड कर, उसे सत्य और समत्व के प्रकाश से उज्ज्वल करें। भिक्खु को ससार का त्यागी न बन कर उस पर निछावर हो जाने वाला व्यक्ति बनना चाहिए। उसे ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अपने घर को छोड कर ससार को अपना घर वनाता हैं, जो निजी कुटुब का त्याग कर के विश्व को अपना कुटुब बनाता है। साराश यह कि त्याग मे नकारात्मक भावना को स्थान न दे कर ऐसी भावना को स्थान देना उचित है जो बधनो को तोड कर उस मुक्ति की ओर अभिमुखी होती है जो समस्त धर्मो का, और निश्चय रूप से कला का भी, ध्येय है।" इस आदर्श से प्रेरित हो कर अनागारिक गोविंद लोक-सग्रह के कार्य मे दत्त चित्त हुए है और उन के विचारो का किंचित् परिपाक उन के जीवन, उन की पुस्तको, और उन के बनाए चित्रो मे हमें मिलता है[1]।

---

[1] इस लेख से सबद्ध चित्रो के ब्लाक इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स के स्वामी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। सपादक।

समालोचना

नवीन भारतीय शासन-विधान—लेखक, श्री रामनारायण "यादवेंदु", बी० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, नवयुग-साहित्य-निकेतन, आगरा। पृष्ठ-संख्या, २७०+१४+२। मूल्य २)

मध्यप्रांत के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर डा० नारायण भास्कर खरे ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है और युक्तप्रांत के न्याय-मंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू ने प्रस्तावना लिखी है। दोनों ने मुक्तकंठ से पुस्तक का स्वागत किया है और खुशी ज़ाहिर की है कि हिंदी में ऐसी पुस्तक निकलने लगी है। इस में कोई संदेह नहीं कि लेखक ने सन् १९३५ ई० के नए-नए शासन-कानून का बड़ी मेहनत से अध्ययन किया है और उस के गुण-दोषों को समझने की चेष्टा की है। इस के अलावा पहले अध्याय में उन्हों ने देश के अर्वाचीन राजनैतिक इतिहास का सिंहावलोकन भी किया है और राजनैतिक विधान के सिद्धांतों को भी स्पष्ट किया है। पुस्तक के दो भाग हैं—एक में तो प्रांतीय स्वराज्य की चर्चा है और दूसरे में संघशासन की। दोनों ही भागों में १९३५ के विधान का विश्लेषण बहुत योग्यता-पूर्वक किया है। जहां तहां प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों की सम्मतियां भी दी हैं। हिंदी के लेखकों को और पाठकों को इस से बहुत सहायता मिलेगी।

खेद है कि हिंदी के अन्य ग्रंथों की तरह इस में भी छापे की कुछ गलतियां रह गई हैं। आशा है कि भविष्य संस्करणों में यह दूर कर दी जायँगी।

बेनीप्रसाद

* * *

साहित्य का सुबोध इतिहास—लेखक, श्री गुलाबराय, एम्० ए०। प्रकाशक साहित्य-भंडार, आगरा। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री गुलाबराय के नाम से हिंदी-समाज सुपरिचित है।

ठोस गठीली भाषा और सुसस्कृत विचारो की अभिव्यक्ति, उन की विशेषता है। साथ ही, एक परिपक्व भावुक हृदय उन की समालोचनाओ में उन के साथ रहता है, जिस के कारण उन की कृतिया रुखी-सूखी न हो कर सरस रहती है। अपनी इन्ही विशेषताओ के साथ उन्हो ने इस साहित्यिक इतिहास को भी लिखा है। साहित्यिक इतिहासो की आवश्यकता है, और वे इधर कुछ दिनो से हमारे साहित्य मे निकलने भी लगे है। किंतु इतिहास-लेखन जितना गुरुतर कार्य है, उतना ही उत्तरदायित्व भी चाहता है। श्री गुलाबराय की यह पुस्तक उत्तरदायित्व-पूर्ण है, और सक्षिप्त इतिहास-लेखन के लिए एक आदर्श है। इस में हिंदी के आदिकाल से ले कर आधुनिक काल तक की समस्त धाराओ का सुबोध अवगाहन है। नवयुवक विद्यार्थियो के लिए यह एक उपयोगी वस्तु है। इसे पढ कर वे बडे इतिहासो को ग्रहण करने लायक सस्कार पा जाएँगे।

शा० द्वि०

* * *

सुमित्रानदन पत—लेखक, प्रो० नगेद्र, एम्० ए०। प्रकाशक, साहित्य-रत्न-भडार, आगरा। मूल्य १)

यह हिंदी के कोमल-कात कवि श्री सुमित्रानदन पत की समस्त काव्य-कृतियो पर लिखी गई एक समीक्षा पुस्तक है। अपने थोडे वर्षों की द्रुतगामी प्रगति में हमारा साहित्य इतना आगे बढ आया है कि न केवल उस के इतिहास की, बल्कि, वर्तमान साहित्य के विशेष-विशेष निर्म्मायक स्तभो पर स्वतत्र समीक्षात्मक पुस्तको की भी आवश्यकता है। साथ ही, इतिहास-लेखन के लिए जैसे बहुत सधी हुई कलम की जरूरत पडती है, उसी प्रकार ऐसे ग्रथो के लिए भी। कुछ अशो में यह कार्य इतिहास-लेखन से भी गुरुतर है। इतिहास-लेखक तो विशेष-विशेष परिणत धाराओ को शृखला-बद्ध पिरो लेता है, किंतु इतिहास की धारा में सूक्ष्म वीचिया उठाने वाले कलाकारो की बारीक अनुभूतियो पर कुछ कहने के लिए लेखक को बहुत ही आत्मविदग्ध होना पडता है। प्रस्तुत पुस्तक को पढने से ज्ञात होता है कि इसके लेखक पत जी पर लिखने के सुयोग्य अधिकारी है। उन्हो ने बडी ही सहृदय दृष्टि से कवि पत को जाना-समझा है और एक कलाकार पर एक कलात्मक दृष्टिकोण से ही स्वच्छ प्रकाश डाला है। हिंदी-समालोचना की शैली कितनी बदल गई है, यह इस पुस्तक से स्पष्ट ज्ञात होता है। जिस तेजी से हमारे साहित्य और कला की व्यजनाए

बदल रही है उसी तेज़ी स समालोचना की तर्ज़-अदा भी बदल रही है। पुरानी रुचि का जो साहित्यिक समाज वतमान साहित्य के स्पर्श में नही है, वह नई समालोचना-शैली को देख कर एक बदल हुए ससार का अनुभव करेगा। लेकिन नई पीढ़ी, नए ससार और नए साहित्य को बड मनोयोग स ग्रहण कर लेती है। फलत यह पुस्तक भी नई पीढ़ी के पाठकों के लिए उन की अपनी चीज़ है।

अग्रज़ी शैली की समालोचना के अनुरागी पाठकों के लिए पुस्तक सुरुचिपूर्ण और सग्राह्य है। कवि पन्त को जानन के लिए भी इसे प्रथम पुस्तक समझना चाहिए।

शा० द्वि०

* * *

मधूलिका—रचयिता अचल। प्रकाशक साधना-मदिर प्रयाग। मूल्य २)

श्री अचल हिंदी के सद्य नवयुवक कवियो म है। उन्हो न बहुत सी कविताए लिखी है जिन म से कुछ का सग्रह इस पुस्तक म है। अपनी कविताओ म कवि न रूप की ज्वलित तृष्णा ले कर उस क पीछे एक परवान की तरह अपन को न्योछावर किया है इसी लिए इन कविताओ म एक मोहिनी ज्वाला है। यह नही कि कवि इन कविताओ म जल कर भस्म हो गया है बल्कि दग्ध हो कर उस न ट्रैजडी की तप्त-कचन मूर्ति पाई है।

कवि अपन उद्गारो म सच्चा है उस न बिना किसी बचाव छिपाव के अपन तृष्णावेग को स्वाभाविक रूप म रख दिया है। इस की अनेक पक्तियां गुनगुनाने क समय गुनगुनान की चीज़ ह।

कोमल प्रकार विभिन्न कवियो क विभिन्न भाव भी इस कविता-पुस्तक म गुम्फित ह किंतु कवि का अपना व्यक्तित्व सुरक्षित है। हम आशा करत ह कि मधूलिका क कवि का यौवन प्रौढ़ता भी प्राप्त करेगा।

शा० द्वि०

* * *

कहानी-कला—लेखक श्री विनोदशकर व्यास और श्री शातचद्र जैन। प्रकाशक हिंदी-साहित्य-कुटीर बनारस। मूल्य ॥।≈)

[illegible] कहानी-कला क सबध म एक पुस्तक है।

[illegible] क परिचय म कहा गया है कि— [illegible]

चाहते हैं, उन के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।" यहा यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या कहानी किसी कहानी-शास्त्र से सीखी जा सकती है? इसे मानना ऐसा ही होगा जैसे रीति-शास्त्र पढ कर कविता लिखना। कला के शास्त्रीय टेकनीक तो रचनाकारो के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। एक युग तक कला जिन कलाकारो में विकास पाती है वे कला की अंतिम सीमा नहीं होते, अतएव उनकी परिधि मे ही कोई परिपूर्ण आदर्श नही उपस्थित किया जा सकता।

इस प्रकार की कृतियो का वास्तविक उपयोग तो यह होता है कि वैज्ञानिक वस्तुओ की तरह ही किसी कला के निर्माण के आभ्यतरिक रहस्यो से उस समाज को परिचित कराया जाय जो उस के प्रति अपने कुतूहल मे अबोध है। विज्ञान की किसी वस्तु के आभ्यतरिक रहस्यो को जान कर जनसाधारण वैज्ञानिक के मानसिक ततुओ की क्रिया-प्रक्रिया के प्रति सहानुभूतिपूर्ण सामाजिक सौहार्द्र प्रदान करता है, इसी प्रकार कवि और कहानी-लेखक के प्रति भी। अतएव, ऐसी पुस्तको की उपयोगिता सर्वसाधारण के लिए विशेष है, किंतु किसी आगतुक रचनाकार के लिए सिर्फ एक निर्देश मात्र है। रचनाकार इस से लाभ उठा भी सकता है और नही भी उठा सकता। उस के लिए यह निश्चित रूप से अनिवार्य नही। यो, यह पुस्तक सुरुचि और गहराई के साथ लिखी गई है और लिखने के ढग में रोचकता और नवीनता है।

शा० द्वि०

*   *   *

नवयुग-काव्य-विमर्श—लेखक, श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल'। प्रकाशक, गगा-ग्रथागार, लखनऊ। मूल्य, सादी २॥), सजिल्द ३)

यह हिंदी के 'छायावादी' कवियो की कविताओ का सग्रह है। प्रत्येक कवि की रचनाए देने के पहले, प्रारभ में कवि का सक्षिप्त परिचय, इस के बाद विस्तृत भाव-परिचय दिया गया है। विशेष-विशेष कवियो के चित्र भी हैं। कवियो के चित्र और कवियो की कविताओ पर लेखक के अपने भाव-चित्र इस के बाद काव्य-सग्रह, इस क्रम को मिला कर यह पुस्तक एक सचित्र काव्य है। नवयुवको के मनोविनोद के लिए अच्छी है।

शा० द्वि०

*   *   *

संगीतांजलि—लेखक पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर संगीत महामहोपाध्याय संगीत मार्तण्ड आदि। प्रकाशक श्री संगीत निकेतन खनवाला मेनरोड बम्बई ४। पृष्ठ-संख्या १०३ मूल्य १।)

संगीत के विद्यार्थियों के उपयुक्त अच्छी पुस्तकों की अभी बहुत कमी है। सिवा स्वर्गीय भातखंडे और विष्णु दिगम्बर की पुस्तकमालाओं के अभी तक प्रामाणिक रचना और अपने विषय के विशेषज्ञों की लिखी हुई पुस्तकें नहीं के बराबर हैं। मुश्किल यह है कि इस विद्या के ज्ञाता उस्ताद प्रायः साहित्यिक नहीं होते और जो साहित्यिक होते हैं वह इस विद्या के पूरे जानकार नहीं हो पाते। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक भारत के एक अग्रगण्य गायक और स्वर्गीय विष्णु दिगम्बर के प्रधान शिष्य हैं। आप इस विषय पर प्रामाणिक ग्रंथ लिखने के सर्वथा अधिकारी हैं। इस पुस्तक को आपने अपने लम्बे अनुभव और गंभीर ज्ञान के अनुसार प्रथम शिक्षार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी बनाया है इसमें कोई सन्देह नहीं। नौसिखियों की कठिनाइयों का ध्यान रखते हुए आपने एक नई नोटेशन-पद्धति और स्वर साधन की प्रणाली सामने रक्खी है। आपने पहले पांच स्वरों के राग भूपाली दुर्गा आदि से रागप्रवेश का मार्ग दिखाया है। साथ ही आपने आरम्भ में जो राग-परिचय और ताल

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक, लेखकों के नाम सहित अंकित किए गए हैं।]

क्या असहयोग उठा लेने का समय आ गया है ?—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्०, रूपाभ, जूलाई '३८

खड़ीबोली का स्थान—श्री रामजीलाल, एम्० ए०, 'साहित्यरत्न', वीणा, जूलाई '३८

गोस्वामी जी का काव्यसौंदर्य—रायबहादुर श्री श्यामसुंदरदास, बी० ए०, कल्याण, सितंबर '३८

चान्हुडेरो की खुदाई—श्री अमृतवसन, विशाल-भारत, जूलाई-अगस्त '३८

छंदोगति की रूपरेखा—श्री बच्चनदा जी, सुधा, सितंबर '३८

जिगर और असग़र—श्री नानकचंद श्रीवास्तव, विशाल-भारत, अगस्त '३८

ठाकुर जगमोहन सिंह जू देव का एक प्राचीन चित्र—श्री लोचनप्रसाद पांडेय, विशाल भारत, सितंबर '३८

तुलसीदास का पुनर्युग और उस के गुण-दोष—श्री राजबहादुर लमगोड़ा, एम्० ए०, एल् एल्० बी०, सुधा, अगस्त सितंबर '३८

दक्षिण के एक महाकवि पोतन्ना—श्री य० वंकटेश्वर राव, हंस, जूलाई '३८

देवनागरी लिपि में सुधार—श्री यदुनंदन लाल, चाँद, जूलाई '३८

धरती माता की कहानी—श्री ब्रजकिशोर वर्मा, 'श्याम', विश्वमित्र, जूलाई '३८

पूज्यपाद गोस्वामी जी का अभिमत सिद्धांत—सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार, कल्याण, सितंबर '३८

फ़ायड और वर्तमान सभ्यता—श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०, विश्वमित्र, अगस्त '३८

बीसवीं सदी के चतुर्थांश में हिंदी साहित्य की प्रगति—श्री कृष्णलाल, एम्० ए०, साहित्य-संदेश, सितंबर '३८

बौद्ध संप्रदाय के पवित्र स्थान—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०, वीणा, जूलाई '३८

भक्तिमार्ग के गुण-दोष—श्री बल्देवप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, सम्मेलन-पत्रिका, भाग २५–११–१२

भूपति की सतसई—श्री ब्रजकिशोर मिश्र, एम्० ए०, सरस्वती, जूलाई '३८

साधनाकार—श्री आत्मानंद मिश्र, एम्० ए०, बी० एस्-सी० एल् एल्० बी०, सुधा सितंबर '३८

सिंध देश का लोक-साहित्य—कुमारी कमला भन्भानी, बी० ए०, साहित्य-संदेश, सितंबर '३८

सृष्टि-रचना में प्रयोजन—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम्० ए०, सुधा, सितंबर '३८

सौ टाइप का मुद्रण यंत्र—श्री करणसिंह चुडासमा, विशाल भारत, सितंबर '३८

स्वर्गीय अज़ीज़ लखनवी—श्री इकबाल वर्मा 'सेहर', माधुरी, जूलाई '३८

स्वर्गीय डाक्टर इकबाल—प्रोफ़ेसर मुहम्मद मुजीब, विशाल-भारत, जूलाई '३८

स्वर्गीय सर सैयद रास मसूद—श्री लक्ष्मण अय्यर, वीणा, जूलाई '३८

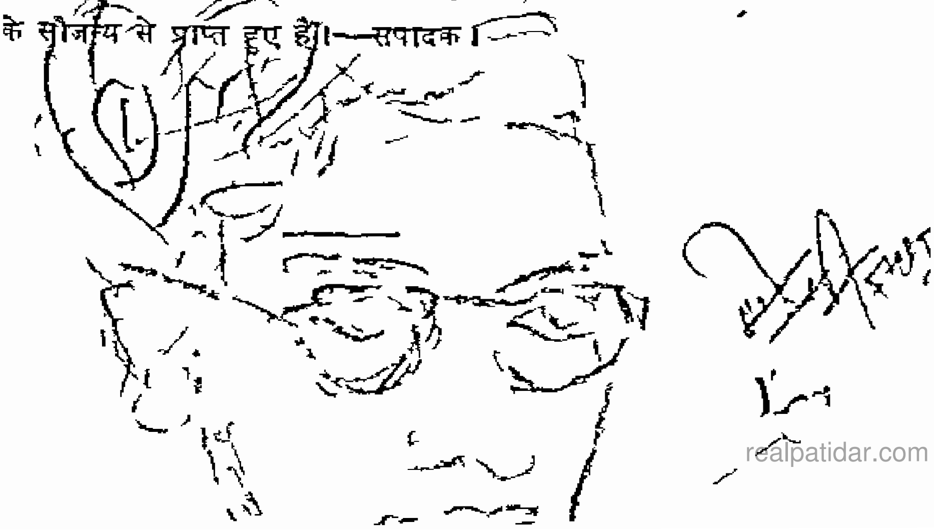
हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०, रूपाभ, जूलाई '३८

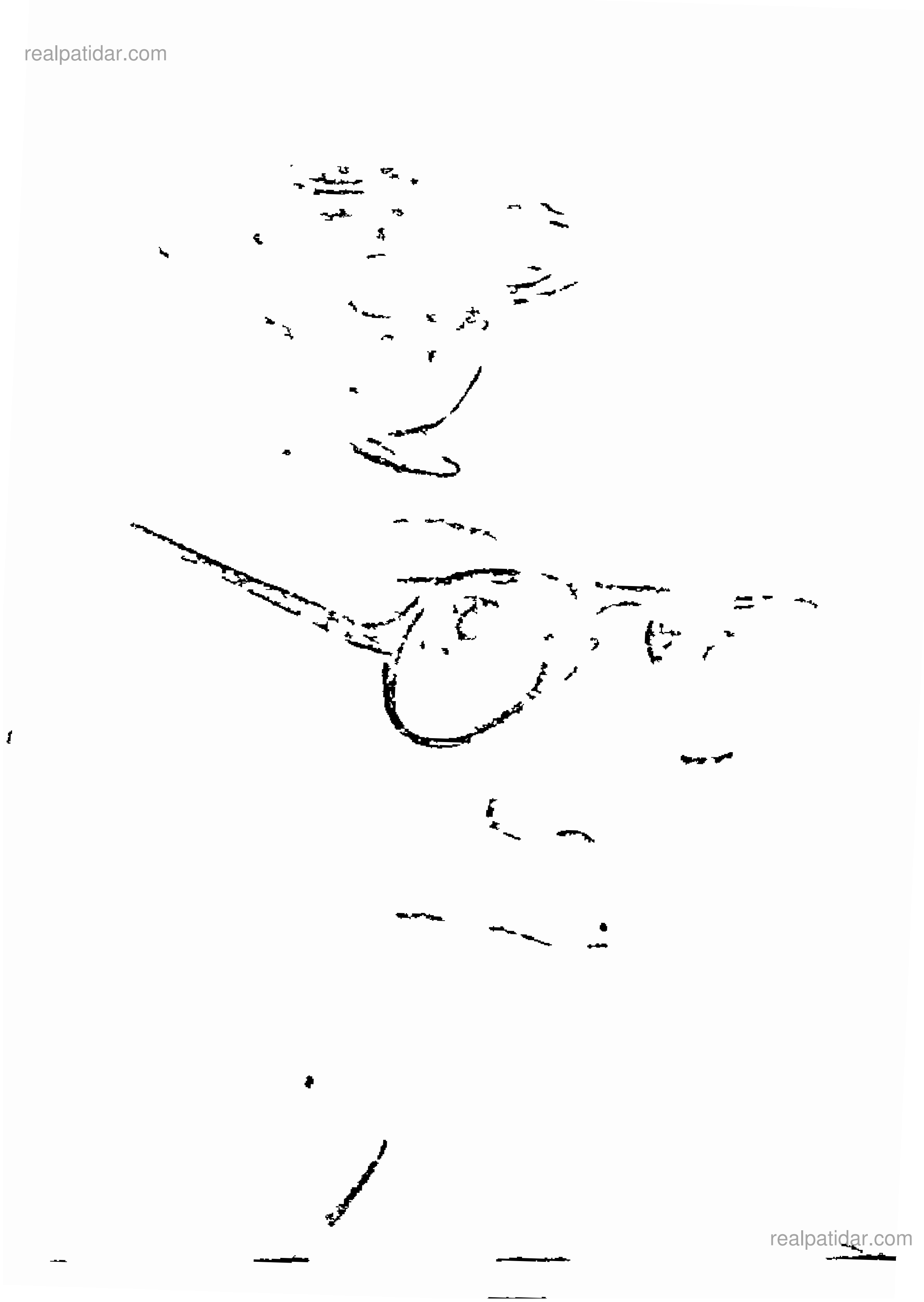
हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का मोह—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (परिस), सरस्वती, जूलाई '३८

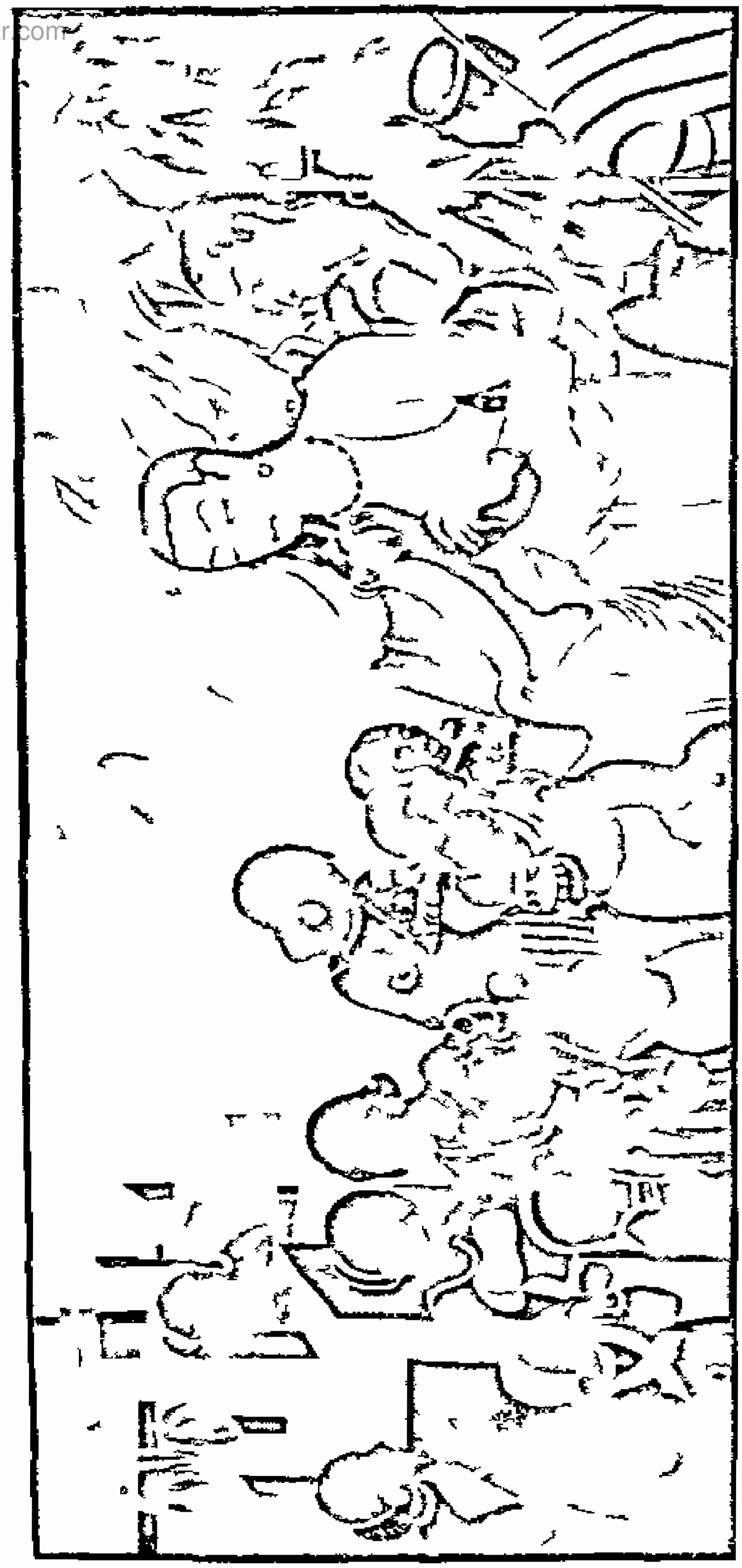
हिंदू संस्कृति—डाक्टर राममनोहर लोहिया, रूपाभ, सितंबर '३८

सूचना

इस अंक के अंत में दिए हुए चित्र 'असितकुमार हल्दार की चित्रकला' शीर्षक लेख से संबंध रखते हैं। यह लेख पिछले अंक में प्रकाशित हुआ था। चित्रों के ब्लॉक इंडियन प्रेस के स्वामी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।—संपादक।



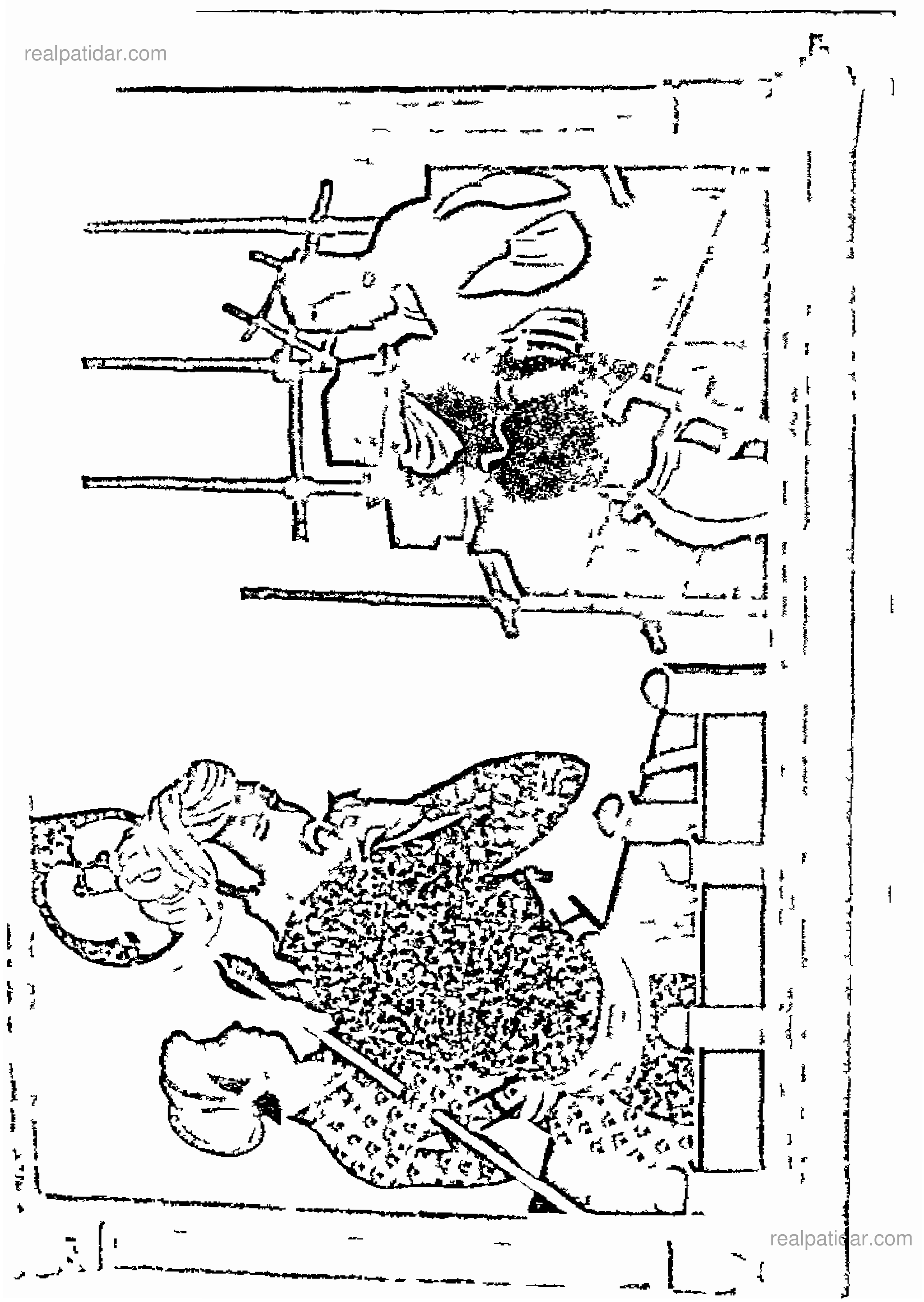




राम गुहक मिलन

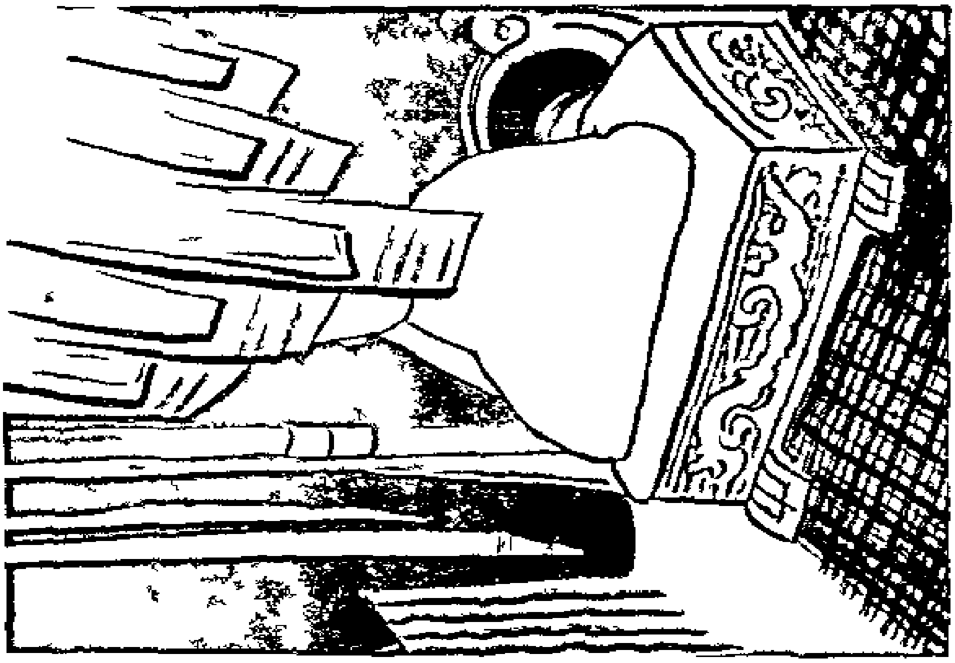


ननापेत और दास





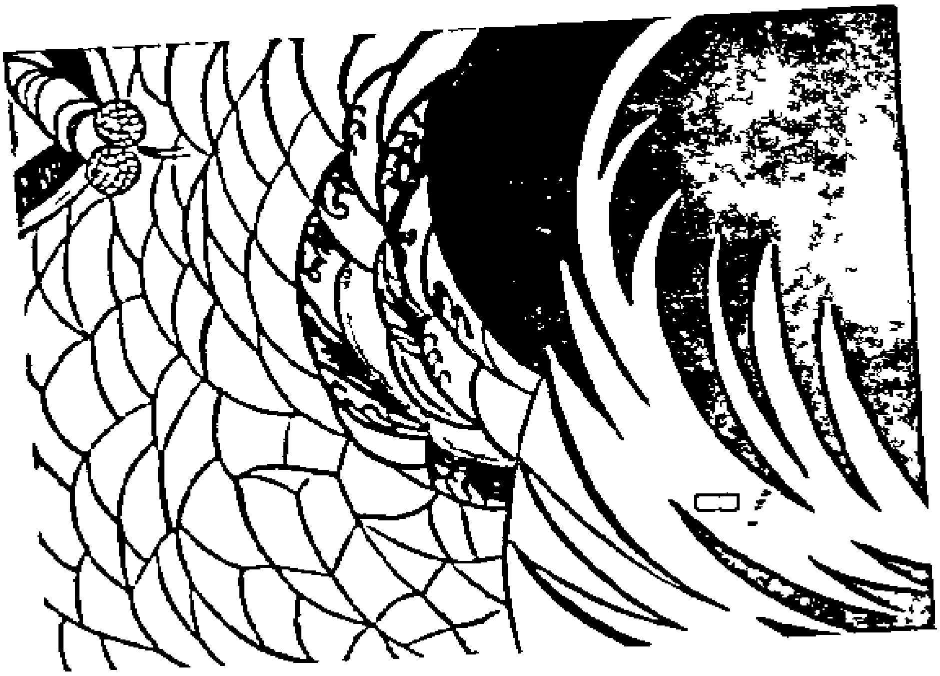
कनुआ का ताण्डव



लामा



यात्री



मछली की दृष्टि में संसार



पक्षी की दृष्टि में संसार



विश्वमातृका

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

१९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

[illegible]

हिंदुस्तानी, १९३८

संपादक—रामचंद्र टंडन

लेख-सूची

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥) सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥), सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुलफ़ज़ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥), सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥), सादी जिल्द ४)

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥), सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६), कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २), सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

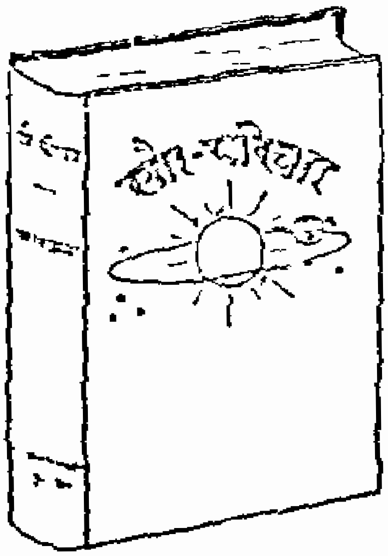
(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल् एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट् (पेरिस) मूल्य ।)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]



आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र
(जिन में ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमीं जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय को रोचक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे लोग तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

* * पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना समाप्त किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I have seen, lacking in precision * * I congratulate you on this excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—पी० टोपा, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक—डाक्टर ताराचंद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

The ARYAN PATH

Vol XXVII APRIL 1956 No 4

यह न खयाल कीजिए कि हम ने अल्फाज़ के मानी बदल दिए। ईरानियो ने भी ऐसा किया है, मसलन 'नाखुशी' हम असली मानी 'नाराजी' मे इस्तैमाल करते है, ईरानियो ने 'नाखुशी' को 'बीमारी' के मानी दे दिए हैं।

(३)

यह जो आम शिकायत की जाती है कि आज कल उर्दू लिखने वाले जान जान कर ग़ैर मानूस और सख्त अरबी-फारसी के अल्फाज़ अपनी तहरीरो में ठूँसते है, और रोज़मर्रा के सादा अल्फाज़ के इस्तैमाल को अपने खिलाफ शान समझते है, यह एक हद तक सही है। मगर मेरा खयाल है कि एक जिंदा और तरक्की करने वाली ज़बान हमेशा नए नए लफ्ज़ अपने मे जज्ब करती रहती है। इस को कतअन रोकने की कोशिश करना मुज़िर होगा। अब यह मज़ाक सलीम और हिंदोस्तानी एकेडेमी के अहकामात पर मौकूफ है कि लिखने वाला कौन से लफ्ज़ अख्तियार करे और उन को रवाज देने की कोशिश करे। 'नान कोआपरेशन' के ज़माने में अखबारात और तकरीरो में 'अदम तआउन' और 'मुकावमत मजहूल' पढने और सुनने मे आते थे। मुकावमत मजहूल लाहौल विला कूअत ! सिवाय इस के कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' का एक भोडा सा तर्जुमा कर दिया, मक्खी की जगह मक्खी मार दी, मगर सुनने वाला खाक नही समझा कि यह 'मुकावमत मजहूल' क्या बला है ! मै अब भी कहता हू कि अगर ज़ेहन मे 'पैसिव रेजिस्टेंस' के अल्फाज़ पेश्तर से न हो तो कोई अरबीदा भी इस के वह मानी नही बता सकता जिस के लिए 'मुकावमत मजहूल' गढा गया। बह-हाल 'मुकावमत मजहूल' अपनी मौत मर गया, मगर 'अदम तआउन' ज़िंदा व कायम है, इसी तरह 'मंदूब', 'मबऊस', 'नुमाइंदा' तीन लफ्ज़ निकले। यह उर्दू में 'रिप्रेज़ेंटेटिव' या 'डेलीगेट' के मानो म नए लफ्ज़ थे। 'मंदूब' व 'मबऊस' का इस्तैमाल इस कदर कम है कि बमंज़िले न होने के है, मगर 'नुमाइंदा' चल पडा है। 'एक्टिंग' की जगह 'अदाकारी' ने ली है और यह अच्छा लफ्ज़ है।

बाज अच्छे खासे लफ्ज़ छोड कर, नए लफ्ज़ महज़ इस लिए कि वह शानदार है, अख्तियार किए जा रहे है। 'नाज़रीन' करीब करीब मरहूम है, उस की जगह 'कारईन कराम' ने ली है। 'हीरो' को छोड कर 'बतल' को रायज करने की कोशिश की गई, मगर शुक्र है कि उस में कामयाबी नही हुई।

मैं ने एक उसूल कायम किया है, या यो कहिए कि यह मेरा एक नज़रिया है। अरबी